श्रीमद् वीरनंदि सिद्धान्त चक्रवर्ती प्रणीत

# आचारसार



हिन्दी अनुवादिका

**विद्यावारिधि-आर्यिकारत्न पूज्यनीया**

१०५ श्री सुपार्श्वमती माताजी



संशोधक

**धर्मालंकार पं० हेमचन्द्र जैन शास्त्री एम.ए.**

न्याय काव्यतीर्थ, प्रभाकर–अजमेर



प्रकाशक

**दिगम्बर जैन समाज**



वीर निर्वाण सं. २५०७

# आचारसार



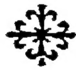
श्रीमद् वीरनंदि सिद्धान्त चक्रवर्ती प्रणीत



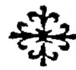
अनुवादिका
आर्यिकारत्न विद्यावारिधि
श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजी



मूल्य—१५) मात्र



मुद्रकः—
श्री जैन आर्ट प्रिन्टर्स
नया बाजार, अजमेर



प्राप्ति स्थानः—
श्री १०५ इन्दुमती माताजी संघ
मधुवन (गिरीडीह) हजारीबाग

स्वर्गीय परमपूज्य, आर्षमार्गप्रवर्तक, उग्रतपस्वी
निर्भीक-ओजस्वी वक्ता

**आचार्यकल्प १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज**



*जन्म* माघ कृष्ण त्रयोदशी, विक्रम सम्वत् १९४०

*समाधि* फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा, विक्रम सम्वत् २००१

# प्राक्कथन

वर्तमान समय मे दिगम्बर जैन आचार्यों की तप पूत साधना का ही परिणाम है कि उनकी प्रौढ और प्रामाणिक लेखनी द्वारा प्रसूत अनेक महान व लघुग्रन्थ हमे भंडारो, मन्दिरो, सरस्वतीभवनो में उपलब्ध हो रहे हैं। यह हमारा सातिशय पुण्योदय है कि हमारे समक्ष सभी विषयो के शास्त्र हमे स्वाध्याय, अध्ययन, मनन को प्राप्त हो रहे हैं। जैन संघ मे चारित्र की प्रधानता रही है, जिसमे मुनि धर्म का प्रामुख्य रहा है। प्रातः स्मरणीय अध्यात्म गुरु आचार्य कुन्दकुन्द ने आचार विषय पर अनेक लघु पाहुडो और स्वतन्त्र पाहुडो के रूप मे विवेचना की। इतना ही नही, उन्होने दिगम्बरत्व की रक्षा और समृद्धि के लिए उस वातावरण मे जब साधु वर्ग मे शिथिलता बढ़ रही थी, स्तम्भ की तरह अडिग रहकर साधु वर्ग को सुस्थिर किया था।

जैन धर्म आचार प्रधान है और इसी के आधार पर अनेक ग्रन्थो की आचार्यों ने रचना की है। भारत मे दिगम्बर साधु परम्परा सदियो तक अक्षुण्ण रही है। समय परिवर्तन के साथ आचार का रूप शिथिल अवश्य हुआ, परन्तु आचार विषयक कोई परिवर्तन शास्त्र परम्परा मे नही आया। आज उत्तर प्रान्त मे हजार वर्ष के बाद भी साधु वर्ग का विहार हो रहा है। आचार्य व गृहस्थ विद्वानो द्वारा रचित अनेक शास्त्र प्राकृत, संस्कृत एव लोक भाषा मे उपलब्ध हो रहे हैं। मुनिमार्ग चन्द्रगुप्त के स्वप्नो के फलानुसार ही अपनी परम्परा मे प्रचलित है।

## सिद्धान्तचक्रवर्ति वीरनन्दि

बडी कठिनाई जब उपस्थित होती है जब कोई विद्वान किसी आचार्य या लेखक के बारे मे कुछ लिखना चाहता है। उसे परिपक्व लेख सामग्री उपलब्ध ही नही होती। क्योकि विगत साधुवर्ग ने अपना परिचय देना ही उपयुक्त नही माना। गृहस्थ जीवन सम्बन्धी बातें तो किंचित मात्र भी नही मिलती है। अधिकाश अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख अवश्य किया गया है। दूसरे सघो की विभिन्न शृंखला, एक नाम के अनेक लेखक अन्वेषक को भ्रम मे डाल देते हैं और निर्णय अधूरा या अन्वेषणीय ही रह जाता है। इस विषय मे अन्वेषक विद्वानो का सुप्रयत्न होना चाहिये ताकि किसी भी रचनाकार का प्रामाणिक इतिहास और उनकी रचना का सही मूल्याकन हो सके।

हमारे इस कार्य के मूल स्रोत रचनाकार द्वारा उल्लिखित गुरु परम्परा, शिलालेख और पट्टावलिया हैं जिनके आधार पर ग्रन्थकार के विषय मे कुछ लिखा जा सकता है। प्रस्तुत आचारसार ग्रन्थ के रचयिता सिद्धान्त चक्रवर्ती वीरनदि हैं। ये मूल संघ के पुस्तक गच्छ और देशीय गण के आचार्य हैं। आचारसार के अन्तिम अध्याय मे जो उल्लेख मिलता है वह यह है।

**श्री मेघचन्द्रोज्वल मूर्तिकीर्तिसमस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्ती।**
**श्री वीरनन्दिकृतवानुदार आचारसारं यतिवृत्त सारम्॥**

।१२ अ० ३३। इसी प्रकार ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वासु पूज्य भगवान की स्तुति करते हुए उल्लेख हुआ है।

**विनेयसस्योत्पलपुण्यवारिप्रस्यन्दनानन्दनमेघचन्द्रः।**
**श्रीवासुपूज्यो व्रतिवंद्यपादो वरप्रदः स्यान्मम योगिवर्ग॥**

ग्रंथ के अन्त मे निम्न प्रकार प्रशस्ति दी गई है।

इति श्रीमन्मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवपादप्रसादासादितात्मप्रभावसमस्तविद्याप्रभावसकलदिग्वर्तिकीर्तिश्रीमद्वीरनन्दि सैद्धान्तिकचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसार नाम्नि ग्रन्थे शीलगुणवर्णनात्मको द्वादशोऽधिकार.।

उक्त प्रशस्ति तथा उल्लेख के आधार पर यह स्पष्ट है कि वीरनन्दि के गुरु मेघचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती थे। आप न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त आदि विषयो के प्रकाण्ड विद्वान थे और इनकी शिष्य परम्परा तत्कालीन विद्वानो मे गण्यमान मानी जाती थी। एक शिलालेख के अनुसार यह भी ज्ञात होता है कि मेघचन्द्र और वीरनन्दि का केवल गुरु शिष्य संबध ही नही था वे पिता-पुत्र भी थे।

# प्राक्कथन

वर्तमान समय मे दिगम्बर जैन आचार्यों की तप पूत साधना का ही परिणाम है कि उनकी प्रौढ और प्रामाणिक लेखनी द्वारा प्रसूत अनेक महान व लघुग्रन्थ हमे भंडारो, मन्दिरो, सरस्वतीभवनो मे उपलब्ध हो रहे है। यह हमारा सातिशय पुण्योदय है कि हमारे समक्ष सभी विषयो के शास्त्र हमे स्वाध्याय, अध्ययन, मनन को प्राप्त हो रहे हैं। जैन संघ मे चारित्र की प्रधानता रही है, जिसमे मुनि धर्म का प्रामुख्य रहा है। प्रात स्मरणीय अध्यात्म गुरु आचार्य कुन्दकुन्द ने आचार विषय पर अनेक लघु पाहुडो और स्वतन्त्र पाहुडो के रूप मे विवेचना की। इतना ही नही, उन्होने दिगम्बरत्व की रक्षा और समृद्धि के लिए उस वातावरण मे जब साधु वर्ग मे शिथिलता बढ़ रही थी, स्तम्भ की तरह अडिग रहकर साधु वर्ग को सुस्थिर किया था।

जैन धर्म आचार प्रधान है और इसी के आधार पर अनेक ग्रन्थो की आचार्यों ने रचना की है। भारत मे दिगम्बर साधु परम्परा सदियो तक अक्षुण्ण रही है। समय परिवर्तन के साथ आचार का रूप शिथिल अवश्य हुआ, परन्तु आचार विषयक कोई परिवर्तन शास्त्र परम्परा मे नही आया। आज उत्तर प्रान्त मे हजार वर्ष के बाद भी साधु वर्ग का विहार हो रहा है। आचार्य व गृहस्थ विद्वानो द्वारा रचित अनेक शास्त्र प्राकृत, संस्कृत एव लोक भाषा मे उपलब्ध हो रहे हैं। मुनिमार्ग चन्द्रगुप्त के स्वप्नो के फलानुसार ही अपनी परम्परा मे प्रचलित है।

## सिद्धान्तचक्रवर्ति वीरनन्दि

बडी कठिनाई जब उपस्थित होती है जब कोई विद्वान किसी आचार्य या लेखक के बारे मे कुछ लिखना चाहता है। उसे परिपक्व लेख सामग्री उपलब्ध ही नही होती। क्योकि विगत साधुवर्ग ने अपना परिचय देना ही उपयुक्त नही माना। गृहस्थ जीवन सम्बन्धी बातें तो किंचित मात्र भी नही मिलती है। अधिकाश अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख अवश्य किया गया है। दूसरे सघो की विभिन्न शृंखला, एक नाम के अनेक लेखक अन्वेषक को भ्रम मे डाल देते हैं और निर्णय अधूरा या अन्वेषणीय ही रह जाता है। इस विषय मे अन्वेषक विद्वानो का सुप्रयत्न होना चाहिये ताकि किसी भी रचनाकार का प्रामाणिक इतिहास और उनकी रचना का सही मूल्याकन हो सके।

हमारे इस कार्य के मूल स्त्रोत रचनाकार द्वारा उल्लिखित गुरु परम्परा, शिलालेख और पट्टावलिया है जिनके आधार पर ग्रन्थकार के विषय मे कुछ लिखा जा सकता है। प्रस्तुत आचारसार ग्रन्थ के रचयिता सिद्धान्त चक्रवर्ती वीरनदि हैं। ये मूल सघ के पुस्तक गच्छ और देशीय गण के आचार्य हैं। आचारसार के अन्तिम अध्याय मे जो उल्लेख मिलता है वह यह है।

**श्री मेघचन्द्रोज्वल मूर्तिकीर्तिसमस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्ती।**
**श्री वीरनन्दिकृतवानुदार आचारसारं यतिवृत्त सारम् ॥**

।१२ अ० ३३। इसी प्रकार ग्रन्थ के प्रारम्भ मे वासु पूज्य भगवान की स्तुति करते हुए उल्लेख हुआ है।

**विनेयसस्योत्पलपुण्यवारिप्रस्यन्दनानन्दनमेघचन्द्रः।**
**श्रीवासुपूज्यो व्रतिवंद्यपादो वरप्रदः स्यान्मम योगिवर्ग ॥**

**ग्रंथ के अन्त मे निम्न प्रकार प्रशस्ति दी गई है।**

इति श्रीमन्मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवपादप्रसादासादितात्मप्रभावसमस्तविद्याप्रभावसकलदिग्वर्तिकीर्तिश्रीमद्वीरनन्दि सैद्धान्तिकचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसार नाम्नि ग्रन्थे शीलगुणवर्णनात्मको द्वादशोऽधिकार.।

उक्त प्रशस्ति तथा उल्लेख के आधार पर यह स्पष्ट है कि वीरनन्दि के गुरु मेघचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती थे। आप न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त आदि विषयो के प्रकाण्ड विद्वान थे और इनकी शिष्य परम्परा तत्कालीन विद्वानो मे गण्यमान मानी जाती थी। एक शिलालेख के अनुसार यह भी ज्ञात होता है कि मेघचन्द्र और वीरनन्दि का केवल गुरु शिष्य सबध ही नही था वे पिता-पुत्र भी थे।

# समय

शिला-लेख के अनुसार श्री मेघचन्द्र का स्वर्गवास वि. स ११७२ मे हुआ और उनके योग्य शिष्य शुभचन्द देव का स्वर्गारोहण वि. सं. १२०३ मे हुआ था। इन दोनो आधारो से श्री वीरनन्दि क्योकि शिष्य व पुत्र थे, का समय इसी के लगभग १२ वी शताब्दी का प्रारभ रहा होगा।

विशेष उल्लेखनीय है १२ वी सदी तथा १३ वी सदी मे साधुवर्ग के साथ अनेक गृहस्थ विद्वानो ने भी बडी प्रौढ रचनाओ की रचना की है। यद्यपि मुनिधर्म पर विरले ही ग्रन्थो का निर्माण हुआ परन्तु गृहस्थ धर्म की अच्छी सयुक्तिक विवेचना हुई है। इन रचनाओ मे पडित प्रवर आशाधरजी का नामोल्लेख महत्व पूर्ण है जिन्होने धर्मामृत की रचना कर आचार धर्म का विस्तृत विश्लेषण किया है। आपका पाण्डित्य श्लाघनीय है। इसके उपरान्त भी चरणानुयोगी ग्रन्थो की रचना हुई परन्तु उनका महत्व उन्ही के सदृश ही हैं।

ग्रन्थो की रचनाओ मे एक और विलक्षणता मिलती है। प्रत्येक लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान चाहे वे त्यागी रहे हो या गृहस्थी परन्त वे अपनी शिष्य परम्परा को विद्वान बनाने की विशेष चेष्टा करते थे। वीरनदि को ज्ञान गरिमा अपने पिता श्री मेघचन्द्र से प्राप्त हुई थी और बाद मे ये ही गुरु पद से व्यवहृत हुए। श्री मेघचन्द्र के अनेक शिष्यो मे इनके ही पुत्र वीरनन्दि सुयोग्य शिष्य रहे। श्री वीरनन्दि अपने गुरु के समान न्याय, व्याकरण साहित्य आदि प्रौढ विद्वान थे और सैद्धान्तिकचक्रवर्ती कहे जाते थे। पिता का उद्भट ज्ञान इन्हे स्वय विरासत मे प्राप्त हुआ था।

आचार्य वीरनन्दि ने कितनी रचनायें लिखी यह पता नही चल सका है परन्तु उनकी एक मात्र रचना आचारसार है। इसमे मुनि धर्म का साङ्गोपाँग वर्णन किया गया है। यह १२ अध्यायो मे विभक्त है। ग्रन्थ का परिमाण स्वय ग्रन्थ कर्ता ने इस प्रकार लिखा है।

ग्रन्थप्रमाणमाचारसारस्यश्लोकसम्मितम्।
भवेत्सहस्त्रं द्विशतं पंचाशच्चांकतस्तथा॥

अर्थात् आचारसार ग्रन्थ की श्लोक सख्या १२५० प्रमाण है। ग्रन्थ के प्रथम अधिकार मे मूल गुणो का वर्णन ४६ पद्यो मे किया गया है। द्वितीय अधिकार मे मुनियो के आचार-विचार दैनिक क्रिया-कलाप आदि का ९४ श्लोको मे वर्णन है। तृतीय अधिकार के ७५ पद्यो मे दर्शनाचार और चतुर्थ अधिकार के ९७ पद्यो मे ज्ञानाचार का विस्तृत वर्णन हुआ है। पाचवें अधिकार मे १५२ पद्य हैं और चारित्राचार का कथन है। छठवें अधिकार मे १०२ पद्यो मे तपाचार का सुन्दर वर्णन हुआ है। सातवें अधिकार के २६ पद्यो मे वीर्याचार का हृदय ग्राही वर्णन है और ८ वें अधिकार मे अष्ट शुद्धियो का ८४ पद्यो मे वर्णन है। नवम् अधिकार मे १०१ पद्यो मे स्वाध्याय, कर्तव्य आदि एव दशवे अधिकार मे ६३ पद्यो मे ध्यान का सुन्दर वर्णन है। ग्यारहवें अधिकार मे जीव और कर्म की प्ररूपणा १६० पद्यो मे की गई है और अन्त के बारहवें अधिकार मे शील व्रत वर्णन ३३ पद्यो मे हुआ है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ मे मुनि धर्म का उत्तम रीति से बारह अधिकारो मे वर्णन हुआ है। इन अधिकारो के आदि और अन्त मे चौवीस तीर्थंकरो की स्तुति की गई है जो ग्रन्थकार की जिनेन्द्र भक्ति की परिचायक है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन वी नि. स. २४६२ में श्रीयुत पं लालारामजी चावली (आगरा) निवासी के हिन्दी अनुवाद सहित हुआ था। ग्रन्थ अप्राप्य होने के कारण पूज्य १०५ विदुषी आर्यिका सुपार्श्वमतीजी द्वारा इसका सरल सुबोध अन्वय भावार्थ सहित अनुवाद किया गया है जिसमे आर्यिका माताजी का पाण्डित्य उपलक्षित हो रहा है। साधु वर्ग इसका अध्ययन, मनन, चिन्तन कर अपने संयम को सोत्साह वृद्धिगत एव निर्मल करेगा, यही मगल कामना है।

(धर्मालंकार) हेमचन्द्र जैन शास्त्री M A
न्याय काव्यतीर्थ, प्रभाकर, अजमेर

# ग्रन्थ परिचय

यह आचारसार वीरनंदि विरचित है-इसमें मुनिगणों की चर्या का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है जिसका अवलोकन कर तपस्वीगण अपने चारित्र को निर्मल बना सकते है। साधुगणों की चर्या के लिए यह आदर्श ग्रन्थ है। इसका हिन्दी प्रकाशन पूर्व में पं. लालाराम शास्त्री ने किया है परन्तु उसकी उपलब्धि इस समय दुष्कर है इसलिए १०८ श्री अजितसागरजी (मेरे विद्यागुरु) ने मुझे प्रेरित किया। पूज्य मां इन्दुमती का प्रोत्साहन और स्नेह ने ही आज मुझ तुच्छ बुद्धि वाली आर्यिका को ग्रन्थ की हिन्दी टीका करने का साहस प्रदान किया। उनकी आज्ञानुसार मैने इसकी हिन्दी लिखी है। इसमें त्रुटियां रहना संभव, है इसलिए विद्वज्जन क्षमा करेंगे।

—आ. सुपार्श्वमती

# —: दो शब्द :—

साल और समय का स्मरण नही रहा परन्तु धर्मोद्योत की वे सारी परिस्थितिया स्मृति पटल पर ज्यों की त्यो उभर रही है जिस समय अजमेर नगर मे परम पूज्य आचार्य १०८ श्री शिवसागरजी महाराज का चातुर्मास का समागम प्राप्त हुआ जो आचार्य १०८ वीरसागरजी के सुशिष्य एव उन्ही के आसन पर अभिषिक्त हुये थे। यह पट्ट स्वर्गीय आचार्य १०८ वीरसागरजी को स्वर्गीय १०८ आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी से उत्तराधिकार मे प्राप्त हुआ था। पूज्यनीया १०५ आर्यिका श्री इन्दुमतीजी माताजी व विद्यावारिधि आर्यिकारत्न १०५ श्री सुपार्श्वमतीजी इन्ही परम पूज्य १०८ आचार्य वीरसागरजी से दीक्षित हैं। अपने शिक्षा गुरु श्री १०८ मुनिराज अजितसागरजी महाराज से सतत विद्याध्ययन एव चारित्र का निर्मल साधन करते हुए पूज्यनीया १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजी अपने अनुपम क्षयोपशम, मधुर वक्तव्य, शैली एव सयम साधना से प्रथमतः राजस्थान को ही उपकृत करती रही। राजस्थान मे आपके सुजानगढ, लाडनू, नागौर-नावा आदि कई स्थानो मे चातुर्मास हुए। अजमेर नगर मे जो आपका चातुर्मास सम्पन्न हुआ वह अब भी स्मरणीय है। आपके समागम मे इन सभी स्थानों मे महती धर्म प्रभावना हुई।

विक्रम संवत् २०२८ मे आपका सघ शिखरजी वदनार्थ पहुचा और वहा से विहार करते हुए समस्त विहार प्रान्त के प्रमुख नगरों मे आपके सघ द्वारा महती धर्म प्रभावना हुई। मैं तीसरी वार कलकत्ता पर्यू षण पर्व मे आमन्त्रित किया गया था। वडी प्रवल आकाक्षा थी आपके सघ के दर्शन करने की। उस समय आपके सघ का चातुर्मास धूलियान (प वगाल) मे था। सपत्नीक मैं वहा पहुँचा। सघ का दर्शन किया और धर्म लाभ लिया। माताजी का आग्रह दस दिन रोकने का था, पर समय की कमी होते हुए भी तीन दिन ही रुका। इन दिनो माताजी सुपार्श्वमतोजी अज्ञात रूप से लेखन प्रवृत्ति मे लगी हुई थी। अप्रकाशित प्राचीन आर्ष ग्रन्थो का प्रकाशन एवं नवीन लोकोपयोगी साहित्य प्रकाशन की वलवती भावना मैंने माताजी मे पाई। दर्शन लाभ लेकर हम कलकत्ते से अजमेर आ गये।

विक्रम सवत् २०३१ मे गौहाटी पर्यू षण पर्व मे जाना पडा। वहा मालूम हुआ कि आपका सघ बंगाल मे विहार करता हुआ आसाम की ओर वढ रहा है। गौहाटी के धर्मवत्सल वन्धुओ ने संघ को आसाम मे विहार कराने की ठान ही रखी थी। श्रीमान् सेठ लखमीचंदजी छावडा, सेठ मिश्रीलालजी वाकलीवाल, श्री मोतीलालजी छावडा, सेठ हरकचंदजी पाड्या आदि से विचार विनिमय चला और हमसे सघ विहार कराने के परामर्श किये। सघ इस समय किशनगज मे था। हम इच्छा रखते हुए भी वहां दर्शनार्थ नही पहुच सके। सघ क्रमशः विहार करता रहा। हम गौहाटी से पर्यू षण समाप्त कर कानकी पहुचे।

कानकी मे हमसे सबसे पहिला प्रश्न माताजी का था कि एक मास का सावकाश रखकर ही आये होगे। अब तो रिटायर्ड भी हो गये हो। मैं माताजी के अनुरोध पर तीन दिन रुका और प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन की चर्चा प्रारम्भ हुई।

उस समय भी सघ का रूप वही था जो आज भी शिखरजी मे है। सघ नायिका पूज्यनीया १०५ आर्यिका इन्दुमतीजी, आर्यिकारत्न सुपार्श्वमतीजी, आर्यिका विद्यामतीजी व आर्यिका सुप्रभामतीजी तथा कुछ ब्रह्मचारिणिया सघ मे विद्यमान हैं। कुछ परामर्श के वाद प्रस्तुत कार्य का शुभारम्भ हुआ। कु० प्रमिला ने १२ रजिस्टर सामने रख दिये। ग्रन्थ था "आचार्य वीरनंदि कृत आचारसार"। माताजी ने वडे परिश्रम से उक्त चारित्र विषयक ग्रन्थ की अत्यन्त सरल अन्वयार्थ सहित भाषा मे टीका की है अर्थात् यह कहना विशेष संगत होगा कि आचार श्री की संस्कृत भाषा को जनभाषा मे ढाल दिया है। कुछ सिंहावलोकन के वाद मे यह कह कर चला आया था कि आप इसे एक वार भली प्रकार देख लें पीछे मैं इस कार्य मे अपनी सेवायें दे सकूंगा। वात गई आई हुई।

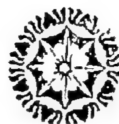
और एक दिन डाक का पार्सल आया और ग्रन्थ के कुछ अध्याय मुझे मिले। मैंने उन्हें ध्यान से देखा और उचित संशोधन भी किया। गत वर्ष कोडरमा मे पर्यू षण विताने के वाद राजगृही में संघ के दर्शन सौभाग्य से मिले और ग्रन्थ प्रकाशन व्यवस्था का कार्य अजमेर में होना निश्चित हुआ। अब सारा ग्रन्थ मेरे पास था। प्रकाशन व्यवस्था का भार श्री महेन्द्रकुमारजी बोहरा एव मिलापचन्दजी पाटनी ने लेकर मेरे उत्साह को वृद्धिगत किया।

किसी भी पूर्ण ग्रन्थ को संशोधन का यह मेरा प्रथम प्रयास था अत कठिनाइयो से बचा नही। मैंने पूज्य माताजी के शब्द, वाक्य, तात्पर्य, भावार्थ आदि को पूर्णत: सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है, केवल भाषा का रूप निखारने का अवश्य प्रयत्न किया है। ग्रन्थ का सरल अनुवाद पूज्य माताजी की देन है। मेरे द्वारा जो इसका परिमार्जन एव सृजन हुआ है उससे ग्रन्थ सुशोभित हुआ है या नही यह तो विद्वज्जन ही समझ सकेंगे। यह एक आचार्य प्रणीत आचार ग्रन्थ है इससे मुनि मार्ग दर्शन प्रशस्त होगा, यह सुनिश्चित है।

धर्मप्रेमी श्रीमान् स्वर्गीय सेठ प्रेमसुखजी पाड्या मैनसर की पुण्य स्मृति मे उनके सुपुत्र श्रीमान् रतनलालजी, मोहनलालजी, रूपचदजी, पदमचदजी एवं प्रकाशचदजी ने उक्त ग्रन्थ की स्वाध्यायार्थ ५०० प्रतियो के प्रकाशनार्थ जो द्रव्य प्रदान कर जिनवाणी की सेवा की है तथा अन्य ५०० प्रतियो के प्रकाशन के लिए जिन २ महानुभावो ने अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। श्री महेन्द्रकुमारजी बोहरा एवं मिलापचदजी पाटनी अजमेर के सहयोग से वह कार्य मुझसे बन गया है, अत वे सस्नेह धन्यवाद के पात्र है।

श्री जैन आर्ट प्रिन्टर्स-नया बाजार, अजमेर के स्वत्वाधिकारी बाबू मूलचन्दजी बाकलीवाल का मुझे सहयोग विशेष ही मिला। आज जबकि सभी प्रकाशकीय वस्तुये महगी एवं दुर्लभ हो रही हैं, परन्तु आपके सतत परिश्रम से कठिनाइया सरल हुई और ग्रन्थ का प्रकाशन सुलभ हो सका। अन्त मे सभी भाइयो से जिस प्रकार की मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ उन्हें मै साधुवाद करता हूँ तथा अपनी त्रुटियो के लिए क्षमा याचना करता हूँ।

विनीत.—
(ध. लं.) हेमचन्द्र जैन शास्त्री **M.A.**
अजमेर (राज०)



# मातृश्री के प्रति किञ्चित प्रसून

पूज्य आर्यिका रत्न विद्यावारिधि सुपार्श्वमती माताजी ने आचारसार ग्रन्थ की हिन्दी टीका करके मुनि के आचार का ज्ञान सुलभ कर दिया इससे साधुवर्ग तो अपनी क्रियाओ से अवगत होगे ही, किन्तु श्रावक भी उनकी चर्या और चारित्र को जानकर उनसे बन जायेंगे ऐसी आशा है। पूज्य माताजी के पास रहते हुये मुझे १० वर्ष हो गये, इन वर्षो के अन्तराल मे मैंने माताजी मे जो कुछ पाया और देखा उसको लिखने के लिए मेरी लेखनी समर्थ नही हो सकती। प्रात ब्रह्ममुहूर्त्त से उठकर रात्रि ११ बजे तक का कार्यक्रम माताजी का इस तरह चलता है जैसे कोई सरकारी कानून की कार्यवाही की जा रही है। और उनका इस तरह का पाठन और अध्यापन का कार्य ही मुझे दो शब्द लिखने का प्रोत्साहन दिया है। और पूज्यमातृश्री के पास रहकर ही मैंने लौकिक शिक्षा एम ए पास किया और आपकी ही प्रेरणा तथा पूर्ण सहयोग से मैं P H D करने का साहस कर रही हूँ।

पूज्य माताजी ने इस पुस्तक मे पाच महाव्रत, पाच समिति, पचेन्द्रियो का दमन, षट् आवश्यक, केशलुञ्चन नग्नत्व, अस्नान, पृथ्वीशयन, अदन्त घर्षण, खडे होकर एक बार आहार करना, इन सब अट्ठाईस मूलगुणो का तथा क्षुधा तृण आदि बाईस परिषहो को भी साधु स्वेच्छा पूर्वक सहन करता है और स्वाध्याय संयम और आत्म निरक्षण मे सर्वदा प्रवृत्त रहता है—ऐसा दर्शाया है।

जिस प्रकार प्रारंभिक अभ्यासी अक्षरो की और शब्दो की आकृतियो को देखकर उसी प्रकार के अक्षर और शब्द लिखने लगता है उसी प्रकार आत्माभ्यासी वीतरागी सर्वज्ञ और हितोपदेशी तीर्थंकरो की वाणी को सुनकर और समझकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार पूज्य माताजी ने इसका हिन्दी सार्थ करके जिनवाणी का विस्तार किया है।

ऐसी परम श्रद्धेय आध्यात्मदर्शी, चैतन्य विहारिणी, जिनशासन की प्रचारिका, आत्म साधिका पूज्य माताजी के चरणो पर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करती हुई, उनके मार्ग पर चलने की भावना भाती हुई, प्रभु से प्रार्थना करती हूँ: कि आप दीर्घायु होवे और हम सबका मोक्ष मार्ग प्रशस्त करें।

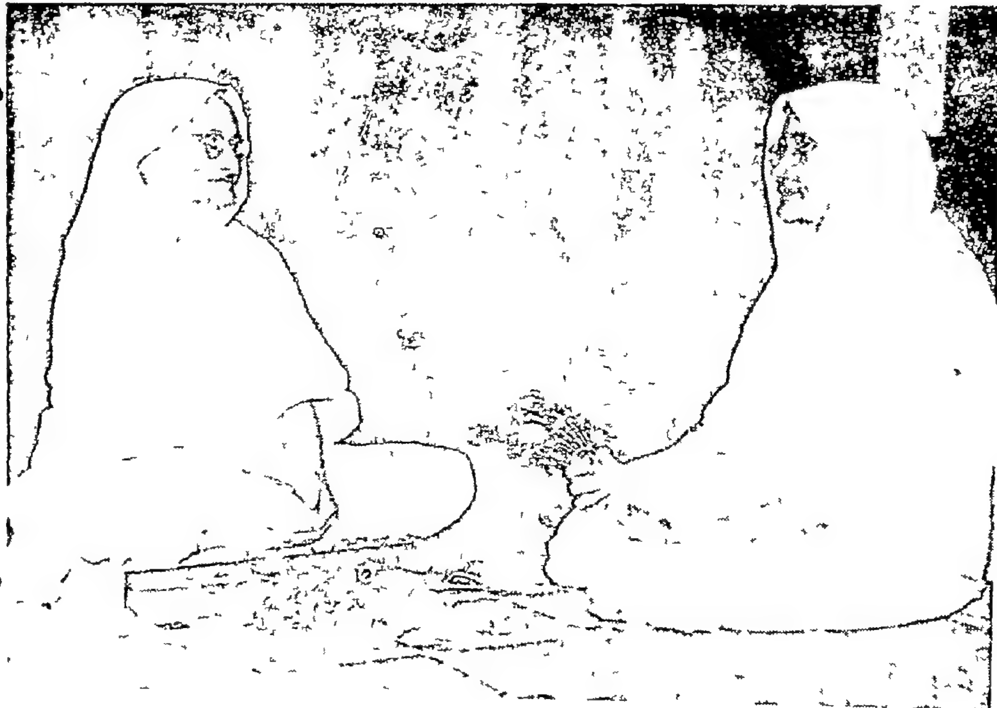
तूने ऐसा जादू डाला।
अणु अणु जीवित कर डाला ॥
अरे मात् तेरी प्रतिमा ने।
जादू सा ये क्या कर डाला ॥

—कुमारी प्रमिला शास्त्री एम ए.
जबलपुर

### * आशीर्वाद *

इस शास्त्र के अवलोकन से अत्यन्त हर्ष हुआ । तुम्हारे द्वारा सतत जिनवाणी का प्रचार और प्रसार हो । तुम दीर्घायु हो-यही मेरा आशीर्वाद है ।

आ. इन्दुमती

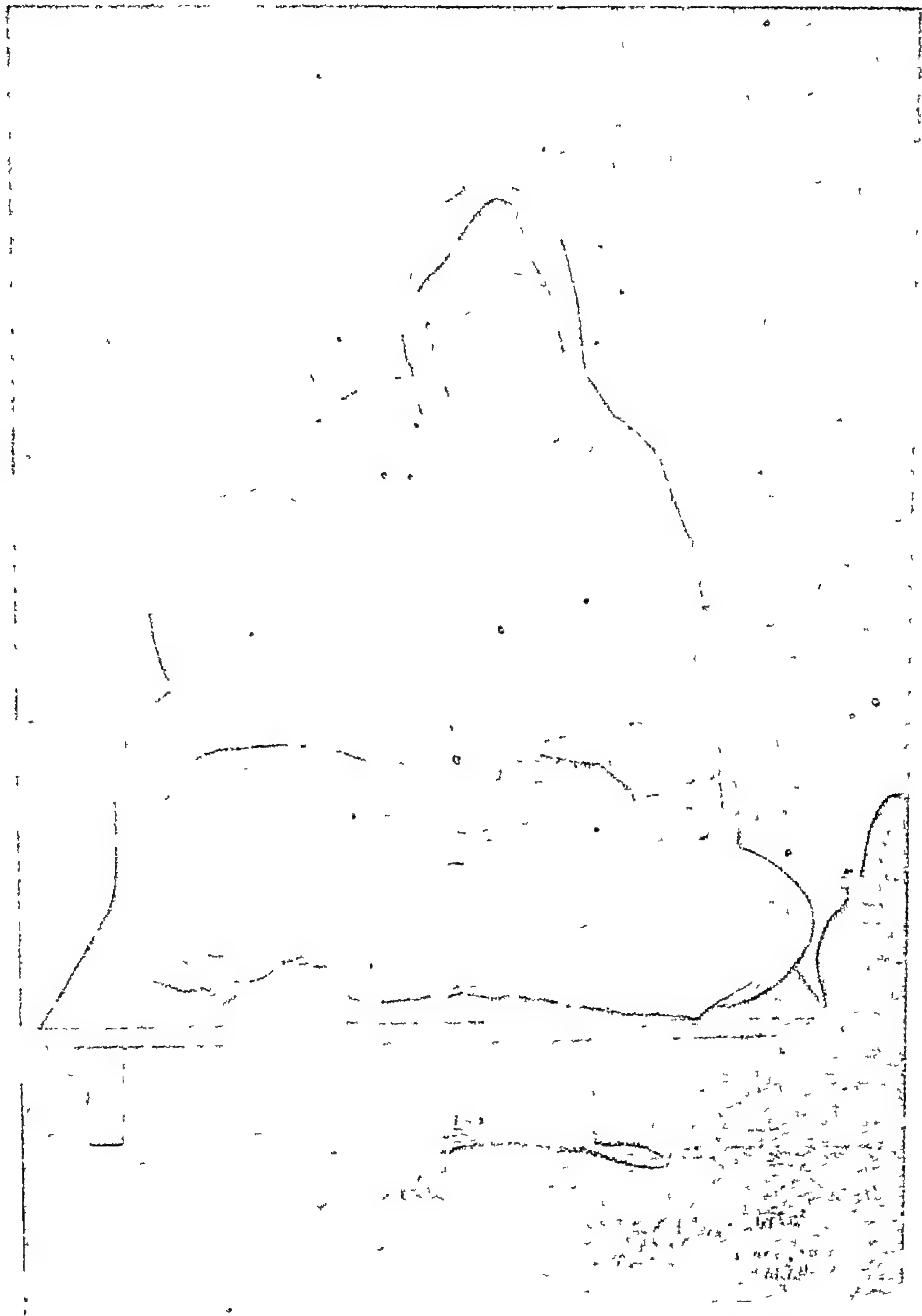


आर्यिका श्री इन्दुमतीजी एवं आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी

### * सादर समर्पित *

सन्मार्ग प्रकाशिका, मोक्षमार्ग निर्देशिका, संघ का संचालन करने के लिये गुरु के समान, ममत्व को प्रदान करने के लिये, पिता समान व जिनके चरणों का आश्रय पाकर मै धन्य होगई, ऐसी ममतामयी माता के ~~चरणों में~~ कर कमलों सादर समर्पित ।

—सुपार्श्वमती



परमपूज्य १०५ आर्यिकारत्न विद्यावारिधि श्री सुपार्श्वमती माताजी

# परम पूज्या १०५ आर्यिका-रत्न सिद्धान्त-वारिधि प्रकान्ड-पण्डिता श्री सुपार्श्वमतीजी माताजी का संक्षिप्त जीवन परिचय

परम पूज्या श्री सुपार्श्वमतीजी का जीवन चारित्र लिखते अथवा मनन करते समय कितनी प्रेरणा मिलती है यह तो जो उनके निकट सम्पर्क में रहा हो, वो अनुभव कर सकता है। पू. माताजी ने जैन धर्म का ध्वज उत्तर-दक्षिण एव पूर्व भारत मे समस्त जगह इस प्रकार से फहराया कि जहा जहा आपका पदार्पण हुआ, वहा के जन समुदाय पर आपकी अमिट छाप आज तक भी स्मृति रूप मे बनी हुई है।

**जन्मः–**

पूज्य माताजी का जन्म फाल्गुन शुक्ला ६ सं १६८५ की शुभ घडी मे ग्राम मेनसर (जिला नागौर) मे हुआ। आपकी जन्मदात्री मातेश्वरी महान पुण्यवती श्रीमती अणची देवी एव पिता श्री हरकचदजी चूडीवाल थे।

**परिवारः–**

आपके पाच भाई एव एक बहिन थी। जन्म नाम आपका "भवरी बाई" रक्खा गया।

**शिक्षाः–**

गाँव छोटा सा होने के कारण आप पाठशाला मे केवल अक्षर बोध तक का ही ज्ञान प्राप्त कर सकी थी।

**परिणय संस्कारः–**

मारवाड की प्राचीन परम्परानुसार आपका विवाह १२ वर्ष की अवस्था मे ही माघ शुक्ला १० सबत १६६७ मे श्री इन्द्रचंदजी बडजात्या नागौर निवासी के साथ सम्पन्न हुआ था। आपको दो माह पश्चात् ही पति वियोग का असह्य दु:ख सहन करना पडा। सासारिक भोगो से विरक्तता तो थी ही, इस वियोग ने सासारिक वास्तविकता का और विशेष अनुभव करा दिया। अत माताजी दिनोदिन अपनी दनिक चर्या मे धार्मिक कार्यो मे अधिक समय बिताने लगी।

**वैराग्य भावनाः–**

गृहस्थ मे रह इसीप्रकार लगभग ६-७ साल तक धर्माध्यान करती रही। सयोगवश २००५ की साल मे पूज्या १०५ श्री इन्दुमतीजी माताजी का उस गाव मे पदार्पण हुआ। पू. इन्दुमतीजी ने माताजी सुपार्श्वमतीजी की दैनिक चर्या देख कर इन्हे होनहार समझकर धार्मिक उपदेश से सम्बोधित किया। जिसका परिणाम यह निकला कि भवरी बाई (सुपार्श्वमतीजी) ने उसी वक्त सकल्प कर लिया कि क्यो नही मैं भी जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मानव जीवन को सफल बनाऊ। अत माघ शुक्ला ४ सवत २००५ को आपने पू इन्दुमतीजी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए। आपकी विवाह विधि तो अवश्य सम्पन्न हुई थी परन्तु आपको बाल ब्रह्मचारिणी कहना ही न्याय सगत है।

**शिक्षा अध्ययनः–**

भ्रमण करते करते आप जयपुर परम पूज्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज के संघ मे पधार गई। वहा श्री राजमलजी ब्रह्मचारी (वर्तमान मे पू श्री अजीतसागरजी) से चारो ही अनुयोग एव संस्कृत-प्राकृत का पठन-पाठन अध्ययन मनन किया। चौबीस घंटो मे १६ घंटे आपके पठन पाठन मे व्यतीत होने लगे।

**आर्यिका-दीक्षाः–**

त्याग की अन्तिम श्रेणी आर्यिका दीक्षा -आपने भाद्रपद शुक्ला ६ सं २०१४ को ग्रहण की। दीक्षा गुरु थे परम पूज्य १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज। इसी तिथी को भगवान सुपार्श्वनाथ भगवान का गर्भ कल्याणक होने से आपका नाम भी सुपार्श्वमतीजी रक्खा गया।

**विशेषता:–**

चारो अनुयोगो के साथ आपको ज्योतिष, यात्रिक, सात्रिक, तान्त्रिक, वैद्यक विषयो का भी गहन अनुभव है। स्मरण शक्ति क्रमबद्ध ग्रन्थो के नाम, श्लोक आदि का उद्धरण के साथ प्रवचन, कषायो का अभाव, मधुर भाषी होना ही आपकी विशेषता है।

**चातुर्मास:–**

आपने अब तक जयपुर, लाडनू, सीकर, अजमेर, चापानेर सनावद, औरंगाबाद, कुभोज बाहूबली, अकलूज, बारामती, क रन्जा, सम्मेदशिखर, कलकत्ता, धुलियान, किशनगज, गोहाटी, डीमापुर (नागालैड) बिजयनगर (आसाम) कानकी, भागलपुर मे चातुर्मास किये। स २०३७ मे आपका चातुर्मास पुन तीर्थराज सम्मेदशिखर मे बडी प्रभावना के साथ हो रहा है। स २०३५ मे भागलपुर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मे आपका पूर्ण सक्रिय सहयोग रहा। इस अवसर पर आपको 'सिद्धान्त वारिधि आर्यिका रत्न' की उपाधि से अलकृत किया इसके पूर्व किशनगज (पू. बगाल) मे आपका चातुर्मास हुआ था। बाद मे बिजयनगर (आसाम) मे आपका चातुर्मास हुआ। बिजयनगर की मनोहर समवशरण रचना आपकी ही प्रेरणा का सुफल है।

**ग्रंथ रचना एवं अनुवाद:–**

आपका स्वास्थ्य निरतर खराब रहता आया है फिर भी आप चारित्र पालन,पठन पाठन मे सदा लीन रहती है। आपने योगसार-सूक्ति मुक्तावली श्लोको का अन्वय अर्थ, सागर धर्मामृत सस्कृत, प्रमेय कमल मार्तन्ड आचारसार आदि का अनुवाद एवं नारी का चातुर्य,मेरा चिन्तवन, दश लक्षण धर्म, पार्श्वनाथ का पंचकल्याणक स्वतत्र, प्रतिक्रमण पजिका सटीक रचना आपके द्वारा लिखी जा चुकी हैं।

**शिक्षण शिविर:–**

सवत २०३६ मे परम पावन तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर पर अष्टान्हिका पर्व पर एक धार्मिक शिक्षण शिविर आपके सानिध्य मे आयोजित हुआ था जिसमे देश के सभी विद्वान आये थे। सभी के द्वारा माताजी के इस सफल आयोजन की भूरि-भूरि प्रशसा की गई।

**संघस्थ त्यागीगण:–**

परम पूज्य इन्दुमतीजी, पू सुपार्श्वमतीजी, पू विद्यामतीजी, पू. सुप्रभामतीजी ब्रह्मचारिणी कु. प्रमिला आदि सभी त्यागीगण निरन्तर स्वाध्यायरत रहकर आत्म कल्याण के मार्ग की ओर अग्रसर हैं। मेरी ओर से सभी आर्यिका माताजी के चरण कमलो मे वन्दामी।

गुरु चरण सेवक
**स्वरूपचंद कासलीवाल**
**अजमेर**

# विषय-सूची

## प्रथम-अधिकार



## दूसरा अधिकार

*(समाचार नीति का वर्णन)*

## तृतीय-अधिकार

*[ दर्शनाचार का वर्णन ]*



## चतुर्थ-अधिकार

*(ज्ञानाचार का वर्णन)*

## पांचवां अधिकार

*(चारित्राचार का वर्णन)*



## छठा-अधिकार

*(तप आचार का वर्णन)*

## सातवां-अधिकार

*[ वीर्याचार का वर्णन ]*



## आठवां-अधिकार

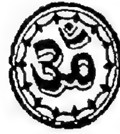
*(शुद्धियो का वर्णन)*



## नौवां-अधिकार

*(आवश्यकों का वर्णन)*

卐 श्री महावीराय नम 卐



महाकवि श्री वीरनन्दि प्रणीतः

# 卐 आचारसारः 卐

लक्ष्मीं वीरजिनेश्वरः पदनतानंतामराधीश्वरः
पद्मासद्मपदांबुजः परमचिल्लीलात्ततत्त्वव्रजः ।
विद्यानद्युदयाचलोऽमितबलः शान्ताखिलैनोमलो
दद्यान्नस्त्रिजगन्नुतिं गुणमणिव्रातोज्ज्वलालंकृतिम् ॥ १ ॥

**अन्वयार्थ**—पदनताननतामराधीश्वर =चरणो मे झुके हुये हैं अनन्त देवो के अधीश्वर जिसके, पद्मासद्म-पदावुज = लक्ष्मी का स्थान हैं चरण कमल जिसके, परमचिल्लीलात्ततत्त्वव्रज =परम चैतन्य लीला से प्राप्त किया है तत्व के समूह को जिसने, विद्यानद्युदयाचल =विद्या रूपी नदी के उदयके लिये पर्वत के समान, अमितबल =अनन्तवल के धारी। शाताखिलैनोमल =शात हो गये हैं अखिल पाप मल जिसके ऐसे, वीरजिनेश्वर =महावीर भगवान। न = हमारे लिये। गुणमणिव्रातोज्ज्वलालकृति =गुणरूपी मणियो के समूह से अलकृत। त्रिजगन्नुति =तीनो जगत मे पूज्यनीय। लक्ष्मी =लक्ष्मी (मुक्तिरूपी लक्ष्मी) को। दद्यात् =देवे।

महावीर भगवान के चरण कमलो मे तीन जगत के समस्त देव नमस्कार करते हैं, जिनके चरण कमल के प्रसाद से परम केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, जो परम चैतन्य लीला के विलास को प्राप्त हैं, ज्ञानरूपी नदी का निर्गमन इसी हिमाचल (उदयाचल) से होता है, जो अनन्तज्ञानके धारी हैं, अखिल कर्म रूपी पाप रज से रहित है, वह वीर भगवान हमको जगत्पूज्य रत्नत्रयरूपी गुणो से अलकृत केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्रदान करें ॥ १ ॥

विनेयसस्योत्पलपुण्यवारि
प्रस्यन्दनानन्दनमेघचन्द्रः ।
श्री वासुपूज्यो व्रतिवंद्यपादो,
वरप्रदः स्तान्मम योगिवर्गः ॥ २ ॥

**अन्वयार्थ**–विनेयसस्योत्पलपुण्यवारिप्रस्यन्दनानन्दनमेघचन्द्र =शिष्यरूपी धान्य वा कमल के लिये पवित्र जल का सिंचन करने वाले आनन्द मेघ अथवा=भव्य रूपी कमलो को विकसित करने के लिये चन्द्रमा, व्रतिवद्यपाद =व्रतियो के द्वारा वदनीय हैं चरण जिसके ऐसे। योगिवर्ग.=योगिवर्ग। श्री वासुपूज्य =श्री वासुपूज्य भगवान। मम=मेरे लिये। वरप्रद =वर को देने वाले। स्तात्=हो।

**भावार्थ**–शास्त्र के प्रारम्भ मे निर्विघ्नशास्त्र की समाप्ति के लिये सर्वप्रथम मगलाचरण किया जाता है। इसलिये इस ग्रन्थ मे आचार्य ने इन दो श्लोको मे मगलाचरण किया है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा मगलाचरण छह प्रकार का है। उन छहो मे इस ग्रन्थ मे भाव मगल की मुख्यता है। प्रथम श्लोक मे महावीर और द्वितीय मे वासुपूज्य को नमस्कार किया है। सम्बन्धाभिवेय, इष्टप्रयोजन और शक्य अनुष्ठान वाले ही ग्रन्थ आदरणीय होते है, इसलिये आचार्य इस ग्रन्थ मे प्रतिपाद्य विषय को प्रतिपादन करते हैं जिसका सम्बन्धाभिवेय इस ग्रन्थ मे रहेगा ॥२॥

संसारनीराकरमुत्तरीतुं
तरिश्चरित्रं गुणरत्नपात्रम् ।
सद्दर्शनज्ञानसमेतमेत-
त्तत्पक्षलक्ष्माहमिहाऽस्य वक्ष्ये ॥ १ ॥

**अन्वयार्थ**–ससारनीराकरम्=ससाररूपी समुद्र से। तरितु =तिरने के लिये। तरि =नौकातुल्य। गुणरत्नपात्र=गुणरूपी रत्नो का पात्र। सम्यग्दर्शनज्ञानसमेत=सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से युक्त। एतत्=यह। चरित्रं=चारित्र है। अस्य=इस चारित्र का। तत्पक्षलक्ष्म=श्रेष्ठलक्षण। इह=इसग्रन्थमे। अह=मैं वक्ष्ये=कहूँगा।

**भावार्थ**-इस ग्रन्थ मे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के अविनाभावी सम्यकचारित्र का वर्णन है। वह सम्यकचारित्र ससाररूपी समुद्र से भव्य जीवो को पार करने के लिये नौका के समान है। उस चारित्र का श्रेष्ठ लक्षण वर्णन करने की आचार्य ने प्रतिज्ञा की है ॥ १ ॥

देहव्यूहमहीजराजिभयदे दुखावलीश्वापदे,
विश्वाशांतिकरालकालदहने शुष्यन्मनीषावने ।
नानादुर्जयमार्गदुर्गमतमे दृङ्मोहिनां देहिनां
जैनं दर्शनमेकमेव शरणं जन्माटवीसंकटे ॥ २ ॥

**अन्वयार्थ**–देहव्यूहमहीजराजिभयदे=शारीरिक दु खरूपी वृक्षो की पक्तियो से भयकर। दुखावलीश्वापदे=दुखो के समूहरूपी हिंसक प्राणियो का स्थान। विश्वाशातिकरालकालदहने=ससार की अशाति रूपी प्रलयकाल की अग्नि है जिसमे। शुष्यन्मनीषावने=शुष्क है बुद्धिरूपी भूमि जिसमे। नानादुर्जयमार्गदुर्गमतमे=अनेक प्रकार की दुर्जयरूपी मार्ग से

[1] पक्षो मासार्धके गेह पार्श्वसाध्यविरोधयो.। केशादे परतो वृन्दे बले सखिसहाययो ॥

दुर्गम तम ऐसी । जन्माटवीसकटे=जन्म रूपी भयानक अटवी मे । दृड मोहिना=मिथ्यादृष्टि । देहिना=प्राणियो के लिये । एक=एक । जैन=जैन । दर्शन=दर्शन । एव=ही । शरण=शरण हैं ।

**भावार्थ**—आचार्यवर्य ने ससार की उपमा अटवी से दी है । जिस प्रकार अटवी अनेक प्रकार के वृक्षो की पक्तियो से भयकर होती है । सिह आदि हिंसक पशुओ से व्याप्त होती है । विकराल दावानल से सतप्त होती है । स्थल २ पर भूमि शुष्क रहती हैं । अनेक प्रकार के मार्गो से युक्त होती है ऐसी भयकर अटवी मे दिग्भ्रात हुये प्राणियो के लिये जैसे मार्ग दर्शक राहगीर शरण होता है, उसी प्रकार प्राणियो के शरीर समूह तो जिसमे वृक्ष है, दुखो का समूह सिंहादि हिंसक पशु है । सासारिक मानसिक अशाति, विकराल प्रलयकाल की अग्नि है, शुष्क बुद्धि भूमि है, अनेक प्रकार के एकातवादियो के द्वारा कथित दुर्जय (परस्पर निरपेक्षनय) जिसमे अनेक मार्ग हैं, ऐसी ससार अटवी मे दिग्भ्रात [सम्यग्दर्शन का नही होना ही दिग्भ्रान्ति है] होकर भ्रमण करने वाले ससारी प्राणियो के लिये एक जैन धर्म ही शरण है । अन्य कोई शरण नही है अर्थात् ससार अटवी से प्राणियो को निकालने के लिये जिनधर्म को छोडकर अन्य कोई समर्थ नही है ॥२॥

**कायोऽयं रसरक्तमांसविसरो मेदोऽस्थिमज्जव्रजो**
**वीभत्सो विततांत्यधातुरुदितः शुक्रार्तवाभ्यां क्षयी ।**
**जीवाश्लेषवशात्तकान्तिरखिलक्लेशैकनीडो जडः**
**संगोऽनेन सतां दुनोति हृदयम् मोदोऽत्र लज्जास्पदम् ॥ ३ ॥**

**अन्वयार्थ**—अय=यह । काय =शरीर । रस रक्तमासविसर =वीर्य रक्त मास से भरा है मेदोऽस्थिमज्जव्रज =भेद, अस्थि, मज्जा का समूह है, वीभत्स =ग्लानि कारक है, विततात्यधातु =सप्तधातु से निर्मित है, शुक्रार्तवाभ्या=वीर्य और रज के द्वारा, उदित =उत्पन्न है, क्षयी=क्षयशील है, जीवाश्लेषवशात्तकान्ति =जीव के सयोग से ही देदीप्तमान है । अखिलक्लेशैकनीड =सारे क्लेशो का एक घोसला है । जड =अचेतन है । अनेन=इस शरीर के साथ । सग =सहवास । सता=सज्जनो के । हृदय=हृदय को । दुनोति=दुखी करता है । ऐसे । अत्र=इस शरीर मे । मोद = हर्षमानना । लज्जास्पदम्=लज्जा का स्थान है ।

**भावार्थ**—जिस शरीर मे अनादिकाल से यह आत्मा निवास कर रही है, वह शरीर हाड, मास, खून, मेद, मज्जा, वीर्यादि सप्त धातु से निर्मित है । माता का रज और पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ है । नाशवान है, ग्लानि कारक है, मलमूत्र की थैली है, समस्त दुखो का घर है, अर्थात् अनत दुखो की खान शरीर है जिसकी सगति से सम्यग्दृष्टियो का हृदय खेद खिन्न होता है । जब तक वह शरीर जीव सहित रहता है तब तक ही सुन्दर प्रतीत होता है । आत्मा के निकलते ही अमनोज्ञ और घृणास्पद हो जाता है । ऐसे उस अचेतन शरीर मे हे आत्मन् ! यदि तू आनद मनाता है, आत्मानुभूति को छोडकर इस पूतिगध शरीर मे रमण करता है तो यह बडी लज्जा की बात है ॥३॥

**चेतस्त्वं किमिति व्रजस्यतितरां, भ्रान्तिस्तवात्रास्ति किं**
**मोहोत्पादकमिन्द्रजालललिते कान्तैककान्तेऽक्षजे**
**सौख्यं ते विरसेऽभिमानसरसे कान्ताश्च तद्दर्पण—**
**प्रोल्लासिप्रतिबिंबडँवरभराः समोहदाः केवलम् ॥४॥**

**अन्वयार्थ**—इन्द्रजालललिते=इन्द्रजाल के समान सुन्दर । अत्र=इस । कान्तैककान्ते=कान्ताजनित सुख से मनोज्ञ । विरसे=विरस । अभिमानसरसे=कल्पना से मनमोहक ऐसे । अक्षजे=इन्द्रियो से उत्पन्न सुख मे । तव=तेरी ।

भ्रान्ति =भ्रान्ति । अस्ति=है । इति=इसलिये । चेत =हे मन । त्व=तू । अतितरा=अत्यत । मोहोत्पादक=मोहोत्पादक । सौख्य=सौख्य को । व्रजसि=प्राप्त हो रहा है । ते=तेरे । तद्दर्पणप्रोल्लासिप्रतिबिम्बडवरभरा=मनरूपीदर्पण मे प्रोल्लासित प्रतिबिम्बडवर भारवाली । कान्ता =स्त्रिया । केवल=केवल । समोहदा =समोहन करने वाली है ।

**भावार्थ**—हे आत्मन् ! तुझे इन्द्रियो से उत्पन्न हुये सुख इन्द्रजाल के समान सुन्दर दीखते हैं, परन्तु वास्तव मे ये सुन्दर नही हैं, दुखद है । उनमे तुझे सुख की केवल भ्रान्ति हो रही है ॥४॥

**मत्वेवं भवदेहभोगजनितक्लेशाग्निहृत्प्लोषण-**
**स्तच्छान्त्यै प्रगुणस्तदक्षयपदानन्दामृतान्वेषणः**
**शुश्रूषाश्रवणादिपुण्यधिषणः सद्भव्यताभूषण-**
**श्चार्वी चारुपरीक्षितान्यसमयाप्ताचारसद्दूषणः ॥५॥**

**अन्वयार्थ**—एव=ऐसा । मत्वा=मानकर । तच्छान्त्यै=उस सासारिक दुखो को शात करने के लिये । भवदेहभोगजनितक्लेशाग्निहृत्प्लोषण =ससार शरीर और भोगो से उत्पन्न क्लेशरूपी अग्नि से हृदय जल रहा है जिसका । प्रगुण =सरल । तदक्षतपदानन्दामृतान्वेषण =उस अक्षय पद के आनन्दामृत का अन्वेषण करने वाला । शुश्रूषाश्रवणादि-पुण्यधिषण =शुश्रूषा-श्रवणादि से पवित्र बुद्धि वाला । सद्भव्यताभूषण =सद्भव्यता का भूषण । चारुपरीक्षितान्य-समयाप्ताचारसद्दूषण =भली प्रकार परिचित है अन्य धर्मों मे कथित आचार (चारित्र) के दूषण जिसने । चार्वी=श्रेष्ठ बुद्धि वाला भव्य ।

**युक्त्या युक्तं जिनोक्तं जिनवृजिनजिनं दत्तहस्तावलंबं**
**जन्मोदन्वन्निमज्जद्गुरु दुरितभरार्त्ताङ्गिनां तद्दयाढ्यम् ।**
**धर्मं स्वर्मोक्षशर्मप्रदमपि मुदितः प्राप्य दुःप्रापमीशं**
**प्रीत्यै प्रीत्यर्त्तिपापप्रभवभवकरागारचारातिभीरुः ॥ ६ ॥**

**अन्वयार्थ**—युक्त्या=युक्ति से । युक्त=युक्त । जिनवृजिनजिन=काम और क्लेश को जीतने वाला । जन्मोदन्वन्निमज्जद्गुरु दुरित भरार्ताङ्गिना=ससार रूपी समुद्र मे डूबने वाले गुरुतर पाप के भार से दुखी प्राणियो को । दत्तहस्तावलव=दिया है हस्तावलम्बन जिसने । तद्दयाढ्यम्=दया से युक्त । स्वर्मोक्षशर्मप्रद=स्वर्ग और मोक्ष के सुखो को देनेवाले । दु प्राप=बडी कठिनता से प्राप्त । अपि=और । ईश=ईश ऐसे । जिनोक्त=जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित । धर्म=धर्म को । प्राप्य=प्राप्त करके । मुदित =जो हर्षित हुवा है । तथा प्रीत्यै=प्रीति के लिये । प्रीत्यर्त्तिपापप्रभवभव रागारचारातिभीरू =रागद्वेषरूपी पाप से उत्पन्न ससार रूपी काराग्रह के सचार से भयभीत ।

**सन्नाथं परिपूर्णनिर्मलकलं सल्लक्ष्मलक्ष्मीकुलं**
**दोषासंगमनगराजविजय नित्यं सुवृत्तोदयम् ।**
**स्वान्तध्वान्तविनाशिनं कुवलयानन्दामृतस्यन्दिनं**
**प्रीत्योपेत्य मुनीन्द्रचन्द्रमपरं तत्पादसेवापरः ॥ ७ ॥**

**अन्वयार्थ**—तत्पादसेवापर =मुनियो के चरणो की सेवा करने मे तत्पर ऐसा भव्य । सन्नाथ=सज्जन पुरुषो का स्वामी । चन्द्रपक्षे=नक्षत्रो का स्वामी । परिपूर्णनिर्मलकल=परिपूर्ण और निर्मल है शरीर जिसका, चन्द्रपक्षे

परिपूर्ण निर्मल है कलाओ का समूह जिसका, सल्लक्षमलक्ष्मीकुल=समीचीन लक्षणवाली लक्ष्मी से व्याप्त, (चन्द्र पक्षे) नक्षत्रो के लक्षणवाली लक्ष्मी से व्याप्त, दोषासगम=दोषो के सगम से रहित, (चन्द्रपक्षे)=दोषा अर्थात् रात्रि के सग से सहित, अनगराजविजय=कामदेव को जीतने वाला परन्तु चन्द्रमा अनगराज विजयी नही है, नित्य=निरतर, सुवृतोदयम्=समीचीनमहाव्रतादि के उदय सहित, (चन्द्रपक्षे) सुव्रतोदयी, गोलाकार, स्वान्तध्वान्तविनाशिन=आतरिक अज्ञान अधकार का नाशक (चन्द्रपक्षे) आन्तरिक अधकार का नाशक, कुवलयानन्दामृतस्यन्दिन=पृथ्वीमडल पर आनन्दामृत के प्रवाहक, (चन्द्रपक्षे)रात्रिविकाशी कमलो को अमृतानद से सीचने वाला अर्थात् उनको विकसित करने वाला ऐसे अपर=अपूर्व, मुनीन्द्रचन्द्रम्=मुनिचन्द्रमा के, प्रीत्या=प्रीति से, उपेत्य=समीप जाकर।

**नत्वा तमीशं विनतार्त्तिनाशं**
**विज्ञापितात्मीयमनोगतार्थः।**
**संगानपेक्षां मम देहि दीक्षां**
**दयामयीं भो ! यतिवल्लभेति ॥८॥**

अन्वयार्थ –त=उस, विनतार्त्तिनाश=शिष्यो के दुख के नाशक मुनिपुगव को, नत्वा=नमस्कार कर, विज्ञापितात्मीयमनोगतार्थ =विज्ञापित किया है स्व मनोगत अभिप्राय जिसने ऐसा भव्य निवेदनकरता है कि, भो=हे यतिवल्लभ=गुरुदेव, मम=मुझको, सगानपेक्षा=परिग्रह की अपेक्षा न रखने वाली, दयामयी=दयामयी, दीक्षा=दिगम्बरी दीक्षा, देहि= दीजिये।

भावार्थः–यह ससार असार है, इन्द्रिय जन्य ससारिक सुख इन्द्रजाल के समान है, मोह का उत्पादक है, कल्पना मात्र से रम्य और सरस प्रतीत होता है। वास्तविक विचार किया जाय तो यह सासारिक भोग विरस है। यह स्त्रियो का समूह दर्पण मे प्रतिबिम्बित हुये के समान निस्सार है। आत्मीय गुणो का घातक है, ऐसा जिसने विचार किया है तथा ससार शरीर और भोगो से उत्पन्न हुई क्लेश रूपी अग्नि से जिसका हृदय सतप्त है, जो अक्षय, अविनाशी पदरूपी अमृतानद का अन्वेषण करने का इच्छुक है, शुश्रूषा श्रवण आदि गुणो से जिसकी बुद्धि पवित्र हो गयी है, श्रेष्ठ भव्यता का जो भूषण है, जिसने अन्य मिथ्यादृष्टियो के चारित्र के दूषण को जान लिया है ऐसा भव्यप्राणी सासारिक दुखो को शात करने के लिए प्रत्यक्ष और अनुमान से अखडित, काम क्रोधादि क्लेशो का नाशक, ससार समुद्र मे डूबे हुये महापाप के भार से दुखी प्राणियो को हस्तावलवन देकर निकालने वाला, स्वर्गमोक्ष का दायक, दु प्राप्य जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित जिनधर्म को प्राप्त करता है। तदनतर रागद्वेष से उत्पन्न ससाररूपी कारागृह से भीरु वह भव्य, मुनिपुङ्गव के समीप जाता है, और सत्पुरुषो के स्वामी, निर्मल शरीर के धारक, सुलक्षणो से लक्षित, निर्दोष चारित्र के धारक, काम सुभट के विजेता, मानसिक अज्ञान अन्धकार के नाशक, अपने पवित्र वचनामृत के द्वारा पृथ्वीतल को आनन्दित करने वाले, शिष्यो के दु खो के नाशक, मुनिचन्द्र को नमस्कार कर, अपनी मनोगत भावना को प्रकट करता हुआ कहता है कि हे यतिवल्लभ ! आप मुझे दयामयी निर्ग्रन्थ दीक्षा दीजिये। ॥ ५, ६, ७, ८ ॥

**प्राज्ञेन ज्ञातलोकव्यवहृतिमतिना तेन मोहोज्झितेन**
**प्राग्विज्ञातः सुदेशो द्विजनृपतिवणिग्वर्णवर्योऽङ्गपूर्णः।**
**भूभृल्लोकाऽविरुद्धः स्वजनपरिजनोन्मोचितो वीतमोह-**
**श्चित्रापस्माररोगाद्यपगत इति च ज्ञाति संकीर्त्तनाद्यैः ॥९॥**

अन्वयार्थ –सुदेश =योग्यदेशीय, द्विजनृपतिवणिग्वर्णवर्य =ब्राह्मण, क्षत्रिय और वणिक वर्ण मे श्रेष्ठ, अगपूर्ण = परिपूर्ण अगयुक्त यह नवीन दीक्षार्थी, भूभृल्लोकाऽविरुद्ध =राजा और लोक से अविरुद्ध, स्वजनपरिजनोन्मोचित

=स्वजन परिजन से उन्मोचित, वीतमोह =वीतमोही और चित्रापस्माररोगाद्यपगत =चित्र, अपस्मार (मृगी) आदि रोगो मे रहित है, इति=इस प्रकार, ज्ञातिसकीर्तनाद्यै =उसकी जाति के सकीर्तनादि द्वारा, प्राक्=पूर्व मे, मोहोज्झितेन=मोह न रहित, प्राज्ञेन=बुद्धिमान । ज्ञातलोकव्यवहृतिमतिना= लोक व्यवहार के जानने वाले आचार्य द्वारा, विज्ञात =जान लिया जाता है ।

**भावार्थ**—जो दीक्षार्थी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग का है वही दीक्षा योग्य है । शूद्रवर्ण के मानव दीक्षा के योग्य नही है । जिसका अग खण्डित नही है, जो राजा और लोक से अविरूद्ध है, परिवार के लोगो से अनुमति लेकर आया है, इस प्रकार उसकी जाति आदि के द्वारा प्रज्ञाशील आचार्य प्रथम उसकी शुद्धि जानते हैं ।।१६।।

**ततस्तदाज्ञामृतपानपुष्टो निर्बन्धगन्धद्विपवत्प्रहृष्टः ।**
**बाह्यान्तरंगं परिहृत्य संग शस्ते मुहूर्ते स्थिरलग्नपूर्ते ।।१०।।**

**प्रीत्या चैत्यगृहादि दक्षिणदिशि क्षोणीतले प्रासुके**
**प्राचीसन्मुखमुत्तरास्यमथवा कृत्वा सरोजासनम् ।**
**आसीनश्चिकुरोत्करं भवलतां वा दक्षिणावृत्तितः**
**प्रोत्पाट्याविकृतिं जगत्रयनतिं स्वीकृत्य जाताकृतिम् ।।११।।**

**प्रऽदक्षिणीकृत्य जिनेन्द्रगेहे प्रविश्य जैनप्रतिबिम्बपार्श्वे ।**
**रम्ये स्थले वा प्रतिपाज्ञयैव क्रियां विधायात्तमहाव्रतादि ।।१२।।**

**स्थित्वा ततः प्रमुदितो गुरुवामपार्श्वे**
**श्रुत्वा प्रतिक्रमणमीडितयोगिवर्गः ।**
**योऽयं जिनोक्तविधिनाऽधिगतागमार्थ-**
**श्चारित्रसंपदमुदंचति तां गुणालीम् ।।१३।।**

**अन्वयार्थ**—तत =तदनतर, तदाज्ञामृतपानपुष्टो =उस आचार्यवर्य के आज्ञारूपी अमृतपान से पुष्ट, निर्बन्धगन्धद्विपवत्प्रहृष्ट =बन्धरहित गन्ध जाति के हाथी के समान प्रहर्षित दीक्षार्थी, बाह्यान्तरग =बाह्य और अभ्यतर, सग=परिग्रह को, परिहृत्य=छोडकर, स्थिरलग्न पूर्ते=स्थिर लग्न से परिपूर्ण, प्रशस्ते=प्रशमनीय, मूहूर्ते=मुहूर्त मे, प्रीत्या=प्रीति से, चैत्यगृहादिदक्षिणदिशि=चैत्य गृहादि की दक्षिण दिशा मे, प्रासुके=प्रासुक, क्षोणीतले=पृथ्वी तलपर, प्राचीसमुख=पूर्व मे मुख अथवा उत्तरास्य=उत्तर मुख, कृत्वा=करके, सरोजासन=पद्मासन से, आसीन =वैठा हुआ, दक्षिणावृत्तित =दक्षिण आवृत्ति से, भवलता=ससार बल्लरी के समान, चिकुरोत्कर=केशो के समूह को, प्रोत्पाट्य=उखाडकर, जगत्त्रयनतिं=तीन जगत मे पूज्यनीय, अविकृतिं=अविकारी, जाताकृति=यथाजात आकृति को, स्वीकृत्य=स्वीकार करके, प्रदक्षिणीकृत्य=प्रदक्षिणा देकर, जिनेन्द्रगेहे=जिन मन्दिर मे, प्रविश्य=प्रवेश करे, फिर जिनप्रतिबिम्बपार्श्वे=जिन प्रतिबिम्ब के पार्श्व भाग मे, रम्ये=रमणीय, स्थले=स्थल पर, प्रतिपाज्ञया=आचार्य की आज्ञा से, क्रिया=क्रिया को, विधाय=करके, आत्तमहाव्रतादि =महाव्रती वने । तत =तदनन्तर, प्रमुदित =हर्षित होता हुआ, गुरुवामपार्श्वे=गुरु के वाम पार्श्व मे, स्थित्वा=वैठकर, प्रतिक्रमण=प्रतिक्रमण को, श्रुत्वा=सुनकर, ईडित योगिवर्ग =स्तुति की है योगिवर्ग की जिसने, जिनोक्तविधिना=जिनेद्र कथित विधान से, अधिगतार्थ =

जान लिया है अर्थ को जिसने ऐसा, य =जो, श्रय=यह भव्य मुनि। ता=उस, गुणाली=२८ मूलगुणरूप, चारित्रसपद =चारित्ररूपी सपदा को, उदयति=प्राप्त करता है।

**भावार्थ**—आचार्य की सम्मति पाकर आचार्य की आज्ञारूपी अमृतपान से पुष्ट होता हुवा बध से छुटे हुये गध सिन्धुर के समान अत्यन्त हर्षित होता हुआ वह दीक्षार्थी शुभ मुहूर्त और स्थिर लग्न मे चैत्यगृहादि की दक्षिण दिशा मे प्रासुक भूमि पर पूर्व या उत्तर दिशा मे मुख करके परिग्रह का त्यागकर पद्मासन से बैठ जाय। तदनतर ससार की लतारूप शिर के केशो को दाढी और मूछ के बालो को दक्षिणावृत्ति से उखाड कर फेक देवे। उसके बाद तीन जगत मे पूज्यनीय हृदय के अविकार को प्रकट करने वाले यथाजात (दिगम्बर) रूप को धारण करे।

दिगम्बर मुद्रा के धारण करने के बाद तीन प्रदक्षिणा देकर जिन मन्दिर मे प्रवेश कर जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करे तथा जिनेन्द्र भगवान के विम्ब के पार्श्व भाग मे रमणीय स्थलपर बैठकर आचार्यवर्य की आज्ञा से विधिपूर्वक क्रिया विधि को धारण करके महाव्रत को ग्रहण करे। तदनतर जिनेन्द्र के द्वारा कथित विधि से आगम के अर्थ को जानने वाला वह नवीनसाधु अत्यन्त हर्षित मन से गुरु के वाम पार्श्व भाग मे बैठकर प्रतिक्रमण सुने तथा अपने सघ के साधुओ को नमस्कार करके शास्त्रो मे कथित चारित्र सम्पदा को स्वीकार करे। १०।११।१२।१३।

## साधु के २८ मूलगुणों का वर्णन

**युक्ताः पंचमहाव्रतैः समितयः पंचाक्षरोधाशयाः**
**पंचावश्यकषट्क लुञ्चनवशाचेलक्यमस्नानता।**
**भूशय्यास्थितिभुक्तिदन्तकषणं चाप्येकभक्तम् यता-**
**वेवं मूलगुणाष्टविंशतिरियं मूलं चरित्रश्रियः ॥१४॥**

**अन्वयार्थ**—पच्महाव्रतै =पाँच महाव्रतो से, युक्ता =युक्त पच=पाँच, समितय =समिति, पचाक्षरोधाशया =पचेन्द्रिय निरोध, आवश्यकषट्कलुञ्चनवराचेलक्य=छह आवश्यक, केशलोच, श्रेष्ठ अचेलकत्व, अस्नानता =स्नानत्याग, भूशय्यास्थितिर्मुक्तिदन्तकषण=भूमि पर शयन करना, खडे होकर आहार करना, दान्तौन नही करना, च=और, अह्नि=दिन मे, एकमुक्त=एक बार भोजन करना, एव=इस प्रकार, यतौ=मुनियो मे, चारित्रश्रिय =चारित्र श्री के, मूल=मूलभूत। इय=ये, मूलगुणाष्टविंशति =मूलगुण अट्ठाईस होते हैं।

**भावार्थः**—पाँच महाव्रत, पाँच समितिया, पाँच ही इन्द्रियो के निरोध, छह आवश्यक, केशलोच, आचेलक्य, अस्नास्वन, पृथ्वीशयन, अदतघर्षण, स्थितभोजन, एक भक्त जैन साधुओ के अट्ठाईस मूलगुण है ॥ १४ ॥

**अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमसंगता**
**महाव्रतानि पंचैव निःशेषावद्यवर्जनात् ॥१५॥**

**अन्वयार्थ**—नि शेषावद्यवर्जनात्=नि शेष सावद्य का त्याग होने से, अहिसा=अहिसा, सत्य=सत्य, अस्तेय=अचौर्य, ब्रह्मचर्य=ब्रह्मचर्य, असगता=अपरिग्रह, पचैव=ये पाँच ही महाव्रतानि=महाव्रत हैं।

**भावार्थ**—अहिसा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और अपरिग्रह महाव्रतये पाँच महाव्रत होते है ॥ १५ ॥

जन्मकाय कुलाक्षाद्यैर्ज्ञात्वा सत्त्वततिं श्रुतेः ।
त्यागस्त्रिशुद्धया हिंसादेः स्थानादौ स्यादहिंसनम् ॥१६॥

**अन्वयार्थ**.—श्रुते =शास्त्र से, जन्मकायकुलाक्षाद्यै =जन्म, काय, कुल और इन्द्रियादि के द्वारा, सत्वतति =जीवो के समूह को, ज्ञात्वा=जानकर, स्थानादौ=कार्योत्सर्ग आदि क्रिया मे, त्रिशुद्धया=मन, वचन, काय की शुद्धि से, हिंसादे =हिंसादि का, त्याग =त्याग करना, अहिसन=अहिंसा, स्यात्=है ।

**भावार्थ**—कुल, जाति इन्द्रियादि के द्वारा जीवो के भेदो को जानकर मन, वचन, कायसे कार्योत्सर्ग आदि स्थानो मे हिंसादि का त्याग करना अहिंसा महाव्रत है ॥ १६ ॥

रागद्वेषादिजासत्यमुत्सृज्यान्याहितं वचः ।
सत्यं तत्वान्यथोक्तं च वचनं सत्यमुत्तमम् ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—रागद्वेषादिजासत्य=रागद्वेष आदि से उत्पन्न असत्य, अन्याहित =दूसरे का अहितकारी, सत्य=सत्य, च=और, तत्वान्यथा=शास्त्र के विरुद्ध, वच =वचनो को, समुत्सृज्य =छोडकर, वचन=वचनो को, उत्तम=उत्तम, सत्य=सत्य, उक्त=कहा है ।

**भावार्थ**—रागद्वेष, मोह आदि के कारणभूत असत्य वचन तथा परपीडाकारक सत्य वचन को छोडकर शास्त्रानुसार उत्तम वचन बोलना सत्य महाव्रत है ॥ १७ ॥

बह्वल्पं वा परद्रव्यं ग्रामादौ पतितादिकम् ।
अदत्त यत्तदादानवर्जन स्तेयवर्जनम् ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—ग्रामादौ=ग्रामादि मे, पतितादिक=गिरे हुए और आदि शब्द से रखे हुए, भूले हुए, बह्वल्प=बहुत अथवा अल्प, अदत=बिना दिये हुए, परद्रव्य=दूसरे की वस्तु को, यत्=जो, आदानवर्जन=नही लेना है, तत्=वह, स्तेयवर्जन=अचौर्य महाव्रत है ।

**भावार्थ**—ग्राम, मार्ग आदि मे गिरी हुई, भूली हुई, एकत्रित की हुई दूसरे की वस्तु को प्रमाद के वशीभूत होकर बिना दिये ग्रहण नही करना अचौर्य महाव्रत है ॥ १८ ॥

रागालोककथात्यागः सर्वस्त्रीस्थापनादिषु ।
माताऽनुजातनुजेति मत्या ब्रह्मव्रतं मतम् ॥१९॥

**अन्वयार्थ**—सर्व स्त्री स्थापनादिषु—समस्त स्थापनादि स्त्रियो मे, माता—माता, अनुजा—छोटी बहन, तनुजा=पुत्री, इति=इस प्रकार की, मत्या=बुद्धि से, रागलोककथात्याग =रागपूर्वक देखने और कथा का त्याग करना, ब्रह्मव्रत=ब्रह्मचर्य व्रत, मत=माना गया है ।

**भावार्थ**—वृद्ध, बालक, युवा आदि सर्व स्त्रियो को तथा उनके चित्राम को देखकर उनको माता, बहिन, पुत्री के समान जानकर स्त्री सम्बन्धी कथा, राग पूर्वक अवलोकन, स्पर्शन एव उनके साथ विकार भाव मे वार्तालाप आदि नही करना ब्रह्मचर्य व्रत है ॥१९॥

**चेतनेतरवाह्यांतरंगसंगविवर्जनम् ।**
**ज्ञानसंयमसंगो वा निर्ममत्वमसंगता ।।२०।।**

**अन्वयार्थ**—(चेतनेतरबाह्यातरगसगविवर्जनम्) चेतन, अचेतन बाह्याभ्यतर परिग्रहो का त्याग करना, (वा) अथवा, (ज्ञानसयमसग ) ज्ञान, सयम, शौच के उपकरण मे (निर्ममत्व) ममत्व रहित होना, (असगता) अपरिग्रह महाव्रत है ।

**भावार्थ**—गाय, भैंस, दासी, दास, स्त्री चेतन परिग्रह है । सोना, चान्दी, घर, आदि अचेतन परिग्रह है, अथवा क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भाड यह दस प्रकार के बहिरग परिग्रह हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपु सकवेद और मिथ्यात्व यह १४ प्रकार के अतरग परिग्रह है । इन बाह्याभ्यतर परिग्रह का त्याग करना तथा ज्ञानोपकरण (शास्त्र) मे सयमोपकरण (पिच्छिका) मे भी ममत्व नही करना अपरिग्रह महाव्रत है ।।२०।।

**ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसज्ञिकाः ।**
**व्रतत्राणाय पचैताः स्मृताः समितयो यतेः ।।२१।।**

**अन्वयार्थ**—(व्रतत्राणाय) व्रतो की रक्षा करने के लिए (यते ) मुनिराजो की (ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसज्ञिका ) ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और-उत्सर्ग नामक, (एता ) ये (पच) पाच (समितय.) समिति (स्मृता ) कही गई हैं ।

**भावार्थ**—अहिंसादि पाँच महाव्रतो की रक्षा करने के लिए ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग ये पँच समिति कही गई हैं ।।२१।।

**पुरो युगान्तरेऽक्षस्य दिने प्रासुकवर्त्मनि ।**
**सदयस्य सकार्यस्य स्यादीर्यासमितिर्गतिः ।। २२ ।।**

**अन्वयार्थ**—(दिने) दिन मे (प्रासुकवर्त्मनि) प्रासुक मार्ग मे (पुर ) सामने (युगान्तरे) चार हाथ प्रमाण भूमि (अक्षस्य) देखकर (सदस्य) दयालु (सकार्यस्य) साधु का कार्यवश (गति ) गमन है वह (ईर्यासमिति ) ईर्यासमिति, (स्यात्) है,

**भावार्थ**—सामने की चार हाथ जमीन देखकर प्रासुक मार्ग मे दयालु साधु सप्रयोजन गमन करता है, वह ईर्या समिति है ।।२२।।

**भेदपैशून्यपरुषप्रहासोक्त्यादिवर्जिता ।**
**हितामितानिः सन्देहा भाषा भाषासमित्यान्या ।। २३ ।।**

**अन्वयार्थः**—(भेदपैशून्यपरुषप्रहासोक्त्यादिवर्जिता) भेद, पैशून्य, परुष, प्रहास के वचन आदि से रहित, (हितामितानि सदेहा ) हित, मित, सन्देह रहित भाषा, वचन बोलना, (भाषा समित्यान्या) भाषा समिति है ।

**भावार्थः**—दूसरो की गुप्त वार्ता प्रकट करना भेद है। झूठा दोषारोपण करना पैशून्य है। मर्म भेदी कठोर वचन बोलना परुष है। किसी की हँसी उडाना या किसी से रागपूर्वक अश्लील वचन वोलना प्रहास है। इन भाषा समिति के घातक वचनो को त्याग कर हितकारी, मधुर, सशय के वाशक स्वल्प वचन बोलना भाषा समिति है ॥२३॥

**षट्चत्वारिञ्शद्दोषोना प्रासुकान्नादिकस्य या।**
**एषणासमितिर्भुक्तिः स्वाध्यायध्यानसिद्धये ॥२४॥**

**अन्वयार्थ**—(स्वाध्यायध्यानसिद्धये) स्वाध्याय और ध्यान की सिद्धि के लिए (षट्चत्वारिञ्शद्दोषोना) छियालिस दोष रहित (प्रासुकान्नादिकस्य) प्रासुक अन्नादि की (या) जो (भुक्ति) भुक्ति है, वह (एषणासमिति) एषणा समिति है।

**भावार्थः**—सयमीजनो का, आहार, ध्यान और स्वाध्याय की सिद्धि के लिए है, शरीर की पुष्टि के लिए नही है, इसलिए ध्यान और स्वाध्याय की सिद्धि के लिए साधुगण जो उद्गमादि छियालीस दोष रहित प्रासुक शुद्ध आहार करते हैं उसको एषणा समिति कहते है ॥२४॥

**ज्ञानोपकरणादीनामादान स्थापनं च यत्।**
**यत्नेनाऽऽदाननिक्षेपसमितिः करुणापरा ॥२५॥**

**अन्वयार्थ**—(ज्ञानोपकरणादीना) ज्ञानादि के उपकरणो का (यत्नेन) यत्न पूर्वक (यत्) जो (आदान) ग्रहण करना, (स्थापन) स्थापन करना है वह (परा) श्रेष्ठ, (करुणा) दयाशील (आदाननिक्षेपसमिति) आदान निक्षेप समिति है।

**भावार्थ**—ज्ञान के निमित्त पुस्तक आदि उपकरण रूप ज्ञानोपधि, पापक्रिया की निवृत्तिरूप सयम के लिए पीछी, आदिक सयमोपधि, मूत्रविष्ठा आदि देहमल के प्रक्षालनरूप शौच का उपकरण कमडलु आदि शौचोपधि, और अन्य सस्तर आदि के निमित्त उपकरण रुप अन्योपधि इनको यत्नपूर्वक उठाना, रखना आदाननिक्षेपण समिति है ॥२५॥

**दूरगूढविशालाविरुद्धशुद्धमहीतले।**
**उत्सर्गसमितिर्विण्मूत्रादीनां स्याद्विसर्जनम् ॥२६॥**

**अन्वयार्थ**—(दूरगूढविशालाविरुद्धशुद्धमहीतले) दूर, गूढ, विशाल, अविरोधी, शुद्ध भूतलपर (विण्मूत्रादीना) मलमूत्रादिक का (विसर्जन) विसर्जन करना (उत्सर्ग समिति) उत्सर्ग समिति है।

**भावार्थ**—ग्राम के वाहर का स्थान दूर कहलाता है। छिपे हुए स्थान को गूढ कहते है। बिल, छेद रहित चौडे स्थान को विशाल कहते हैं। लौकिक जनो के विरोध से रहित स्थान को अविरोधी कहते हैं। ऐसे जीवादि से रहित शुद्ध स्थान मे मलमूत्र आदि करना उत्सर्ग समिति है ॥२६॥

**चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वास्पर्शाक्षगोचरे भिक्षोः।**
**रत्यरतिचितवृत्ते रोधः स्यादक्षसंरोधः ॥२७॥**

**अन्वयार्थ**—(चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वास्पर्शाक्षगोचरे) चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, स्पर्शन आदि इन्द्रिय गोचर विषयो मे (रत्यरतिचितवृते ) रति, अरति रुपचित वृत्ति का (रोधः) निरोध करना (भिक्षो॰) भिक्षु का, (अक्षसरोध.) इन्द्रिय निरोध है।

**भावार्थ**—स्पर्श आदि इन्द्रियो को अपने विषयो से रोकना इन्द्रियरोध है ॥२७॥

**चेतनेतरवस्तूनां हर्षमर्षाकरक्रिया ।**

**वर्णसंस्थानभेदेषु चक्षूरोधोऽविकारधीः ॥२८॥**

**अन्वयार्थ**—(चेतनेतरवस्तूना) चेतन, अचेतन वस्तुओ के (वर्णसस्थानभेदेषु) वर्ण, सस्थान और भेदो मे (अविकारधी ) विकारबुद्धि नही होना (हर्षमर्षाकरक्रिया) हर्ष, विषाद को नही करने वाली चेष्टा होना (चक्षुरोध ) चक्षु इन्द्रिय का निरोध है।

**भावार्थ**—चेतन और अचेतन वस्तु के वर्ण (काला और गोरा आदि) सस्थान (समचतुरस्रादि) आदि भेदो मे अविकारी होना, इष्टानिष्ट की कल्पना नही होना चक्षु इन्द्रिय निरोध है ॥२८॥

**जीवाजीवोभयोद्भूते चेतोहारीतरस्वरे ।**

**रागद्वेषाविलस्वान्तदण्डनं श्रोत्रदण्डनम् ॥२९॥**

**अन्वयार्थ**—(जीवाजीवोभयोद्भूते) जीव अजीव और जीव अजीव से उत्पन्न (चेतोहारीतरस्वरे) चित्त को हरण करने वाले तथा इत्तर स्वर मे (रागद्वेषाविलस्वान्तदण्डन) राग द्वेष से व्याप्त चित्त का दण्डन करना (श्रोत्र-दण्डनम्) कर्णइन्द्रिय का निरोध है।

**भावार्थ**—षड्ज, ऋषज, गन्धार, आदि सात स्वर जीवोत्पन्न तथा वीणा आदि से तत, विततादि अजीवोत्पन्न मनोज्ञ अमनोज्ञ स्वरो मे रागद्वेष नही करना श्रोत्र इन्द्रिय निरोध है ॥२९॥

**प्रकृतिप्रयोगगन्धे जीवाजीवोभयाश्रये ।**

**शुभेऽशुभे मनः साम्यं घ्राणेन्द्रियजयं विदुः ॥३०॥**

**अन्वयार्थ**—(जीवाजीवोभयाश्रये) जीव, अजीव और उभय के आश्रित (शुभाशुभे) मनोज्ञामनोज्ञ (प्रकृतिप्रयोगगन्धे) स्वाभाविक तथा प्रयोगकृत गध मे (मन॰ साम्य) मन की समता को (घ्राणेन्द्रियजय) घ्राणेन्द्रिय विजय, (विदु ) कहा है।

**भावार्थ**—पुरुष, स्त्री, देवागना आदि की गध जीवाश्रय कहलाती है। पुष्प, चन्दन आदि की गंध अजीवाश्रय है। चन्दन, कमल आदि की गध प्राकृतिक है।

दूसरे पदार्थो के सयोग से होने वाली गंध प्रायोगिक है जैसे वस्त्र मे चन्दन आदि के तेल डालने मे जो सुगधी

होती है, वह प्रायोगिक है अथवा कितनी ही वस्तुओ का मिश्रण करके तेल वनाया जाता है वह भी प्रायोगिक है। वह गध दो प्रकार की है शुभ और अशुभ।

घ्राण इन्द्रिय को प्रिय लगने वाली गध शुभ है, जैसे चन्दन, गुलाब के फूल आदि की सुगध। घ्राण इन्द्रिय को अप्रिय गध अशुभ है जैसे मलमूत्र आदि की दुर्गन्ध। इन प्राकृतिक, प्रायोगिक आदि शुभ-अशुभ गध मे मनोज्ञ अमनोज्ञ की कल्पना कर रागद्वेष नही करना घ्राण इन्द्रिय निरोध है ॥३०॥

**गृहिदत्तेऽन्नापानादावदोषे समतायुतम् ।**
**गात्रयात्रानिमित्तं यद्भोजन रसनाजयः ॥ ३१ ॥**

**अन्वयार्थ**—(गृहिदत्ते) गृहस्थ के द्वारा दिये हुए (अदोषे) निर्दोष अन्नपानादौ) अन्न पानी आदि मे (समता युत) समता युक्त होकर (गात्रायात्रानिमित्तम्) शरीर की स्थिति के लिए (यत्) जो (भोजन) भोजन किया जाता है वह (रसनाजय) रसना इन्द्रिय जय है।

**भावार्थ**—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय के भेद से आहार चार प्रकार का है। दाल, भात, लड्डू रोटी आदि खाद्य है। पान सुपारी, इलायची आदि स्वाद्य है। रवडी, चटनी आदि लेह्य है। दूध, शरबत, पानी, मौसमी आदि का रस पेय है।

गृहस्थ के द्वारा दिया हुआ निर्दोष प्रासुक खाद्य आदि चार प्रकार के आहार मे मनोज्ञामनोज्ञ की भावना न करके केवल शरीर की स्थिति के लिए जो भोजन किया जाता है, वह रसना इन्द्रिय का निरोध है ॥३१॥

**जीवाजीवोभयस्पर्शे कर्कशाद्यष्टभेदके ।**
**शुभेऽशुभेऽतिमध्यस्थं मनःस्पर्शाक्षनिर्जयः॥३२॥**

**अन्वयार्थ**—(कर्कशाद्यष्टभेदके) कठोर आदि अष्ट भेद वाले (शुभेऽशुभे)शुभाशुभ (जीवाजीवोभयस्पर्श) जीव अजीव और उभय से उत्पन्न स्पर्श मे (अतिमध्यस्थ) अत्यन्त मध्यस्थ (मन) मन का होना (स्पर्शाक्षनिर्जय) स्पर्शइन्द्रिय का निरोध है।

**भावार्थ**—हलका, भारी, कर्कश, मुदु, रूखा, चिकना, शीत, उष्ण, के भेद से स्पर्श आठ प्रकार का है। वह स्पर्श जीवोत्पन्न, अजीवोत्पन्न और जीवाजीवोत्पन्न के भेद से तीन प्रकार का है। स्त्री आदि का स्पर्श जीवोत्पन्न है। शय्यादि का स्पर्श अजीवोत्पन्न है।

जीव और अजीव इन दोनो से उत्पन्न स्पर्श उभयात्मक है इन समस्त स्पर्शन इन्द्रिय के विषय भूत स्पर्श मे इष्टानिष्ट की कल्पना नही करना स्पर्शन इन्द्रियरोध है ॥३२॥

**आवश्यकक्रियाषट्कं समतास्तववंदनम् ।**
**सप्रतिक्रमणं प्रत्याख्यानं कायविसर्जनम् ।३३।**

**अन्वयार्थ**—(समतास्तववदनम्) समता, स्तवन, वदना (सप्रतिक्रमण) प्रतिक्रमण (प्रत्याख्यान) प्रत्याख्यान (कायविसर्जनम्) कार्योत्सर्ग ये (आवश्यकक्रियाषट्क) षट आवश्यक क्रियाये हैं।

**भावार्थ**—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान् कार्योत्सर्ग ये छह मुनियो की षट आवश्यक क्रियाये है ॥३३॥

**लाभालाभासुखक्लेशप्रमुखे समतामतिः।**
**स्वायत्तकरणस्वान्तज्ञानिनः समता मता ॥३४॥**

**अन्वयार्थ**—(स्वायतकरणस्वान्तज्ञानिन) अपने आधीन किया है, इन्द्रिय और मन को जिसने ऐसे ज्ञानी को (लाभालाभसुखक्लेशप्रमुखे) लाभ और अलाभ मे; सुख और दु ख मे (समतामति) जो साम्यभाव है उसको (समता) सामायिक (मता) माना है।

**भावार्थ**—इष्ट वस्तु की प्राप्ति का नाम लाभ है। इष्ट वस्तु की अप्राप्ति का नाम अलाभ है। इन्द्रिय जन्य विषयो की प्राप्ति सुख है, मानसिक शारीरिक दु ख क्लेश है। ये दो ही प्रमुख हैं। इसी मे जीवन-मरण, शत्रु-मित्र, आदि गर्भित होते है। इन लाभ, अलाभ आदि वस्तुओ और शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदि मे रागद्वेष, भय परिणाम नही करना, मनोज्ञ पदार्थों मे साम्यभाव रखना सामायिक है ॥३४॥

**कृत्वा गुणगणोत्कीर्तिनामव्युत्पत्तिपूजनम्।**
**वृषभादिजिनाधीशस्तवनं स्तवनं मतम् ॥३५॥**

**अन्वयार्थ**—(गुणगणोत्कीर्त्तिनामव्युत्पत्तिपूजनम्) असाधारण गुणो के समूह का उत्कीर्तन, नामो की व्युत्पत्तिसे चरण कमल की पूजा (कृत्वा) करके, (वृषभादिजिना) वृषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरो का स्तवन करना (सस्तवन) सस्तवन (मत) कहलाता है।

**भावार्थ**—वृषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरो के नामके अनुसार अर्थ करना नाम व्युत्पत्ति है। जैसे—वृष अर्थात् धर्म और धर्म के वाहक को वृषभ कहते हैं। नाभि के पुत्र होने से नाभेय है। किसी से जीता नही गये इसलिए अजित है। अपने दोषो को शात करने से शाति है इत्यादि नामानुसार कथन करना नाम व्युत्पत्ति है। जिनेन्द्र के असाधारण गुणो का कथन करना गुणोत्कीर्त्तन है। इसप्रकार गुणो का कथन आदि करके मन, वचन, काय की शुद्धि से उनके चरण कमल की पूजा करना, स्तुति करना सस्तवन कहलाता है ॥३५॥

**जैनैकतीर्थकृत्सिद्धसाधूनां क्रिययान्वितम्।**
**वन्दन स्तुतिमात्र वा वन्दनं पुण्यनन्दनम् ॥३६॥**

**अन्वयार्थ**—(जैनैकतीर्थकृत्सिद्धसाधूना) एक जिन, तीर्थंकर, सिद्ध और साधु की (क्रिययान्वितम्) सिद्धभक्ति आदि क्रिया से युक्त (पुण्यनन्दनम्) पुण्यवर्द्धक (स्तुतिमात्र) स्तुति मात्र करना (वा) अथवा (वन्दन) वन्दना का करना ही वन्दना है।

**भावार्थ**--एक तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओ की सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, कायोत्सर्ग आदि क्रियायुक्त मन, वचन, काय से नमस्कार कर स्तुति करना वन्दना है ॥३६॥

**निन्दन गर्हणं कृत्वा द्रव्यादिषु कृतागसाम् ।**
**शोधनं वाङ्मनः कायैस्तत्सप्रतिक्रमणं मतम् ॥३७॥**

**अन्वयार्थ**--(द्रव्यादिषु) द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव मे (कृतागसाम्) किये गये अपराधो की (निन्दन) निन्दा (गर्हण) गर्हा (कृत्वा) करके (वाडमन कार्यं) मन, वचन, काय से (शोधन) शोधन करना (तत्) उसको (प्रतिक्रमण) प्रतिक्रमण (मतम्) माना है।

**भावार्थ**--आहारशरीरादि द्रव्य मे, वसति का शयन आसन आदि क्षेत्र मे प्रात काल आदि काल मे, चित्र के व्यापाररूप भाव (परिणाम) मे किया गया जो व्रत मे दोप उसका शुभ मन, वचन, काय से, शोधना, अपने दोषो को अपने आप प्रकट करना, आचार्यादिको के समीप आलोचनापूर्वक अपने दोपो को प्रगट करना प्रतिक्रमण कहलाता है ॥३७॥

**यन्नामस्थापनादीनामयोग्यपरिवर्जनम् ।**
**त्रिशुद्धयाऽनागते काले तत्प्रत्याख्यानमीरितम् ॥३८॥**

**अन्वयार्थ**--(यत्) जो (अनागते) भविष्यत् (काले) काल मे (नामस्थापनादीना) नामस्थापनादिके (अयोग्यपरिवर्जन) अयोग्य का त्याग किया जाता है (तत्) उसको, (प्रत्याख्यान) प्रत्याख्यान (ईरित) कहा गया है।

**भावार्थ**--नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन छहो मे शुद्ध मन वचन काय से आगामी काल के लिए अयोग्य द्रव्य का त्याग करना अर्थात् मैं अयोग्य नाम नही कहूगा, न अयोग्य काम करूगा और न अयोग्य चितवन करूगा इत्यादि त्याग को प्रत्याख्यान कहते हैं ॥३८॥

**स्तवनादौ तनुत्यागः श्रीमत्पंचगुरुस्मृतिः ।**
**व्युत्सर्गः स्याच्छ्रुतप्रोक्तोच्छ्वासावसरलक्षणः ॥३९॥**

**अन्वयार्थ**--(स्तवनादौ) स्तवनादि क्रियाओ मे (श्रुतप्रोक्तोच्छ्वासावसरलक्षणः) शास्त्रोक्त विधि से प्रमाण काल तक श्वासोच्छ्वास को विश्राम देना (श्रीमत्पचगुरुस्मृत्ति) श्री पचगुरु के गुणो का स्मरण करते हुए (तनुत्यागः) शरीर से ममत्व का त्याग करना (व्युत्सर्ग) कायोत्सर्ग (स्यात्) है।

**भावार्थ**----दैवसिक और स्तवन आदि क्रियाओ मे पचपरमेष्ठी के गुणो का चितवन करते हुए २७, ५४, १०८ आदि श्वासोच्छ्वास प्रमाण शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग कहलाता है ॥३९॥

**कूर्चश्मश्रुकचोल्लुञ्चो लुंचनं स्यादमी यतः ।**
**परीषह जयाऽदैन्यवैराग्यासंगसंयमाः ॥४०॥**

**तच्चतुस्त्रिद्विमासेषु सोपवासे विधीयते ।**
**जघन्य मध्यमं ज्येष्ठं सप्रतिक्रमणे दिने ॥४१॥**

**अन्वयार्थ**---(अमी) ये (परीषहजयाऽदैन्यवैराग्य सगसयमा ) परिषहजय अदीनता, वैराग्य और अपरिग्रह वाले सयमी (कूर्चश्मश्रु कचोल्लुञ्च ) दाढी, मू छ और मस्तक के बालो को उखाडते है वह (लु चन) केशलोच (स्यात्) मूलगुण हैं ।।४०।।

(तत्) वह केशलोच (चतुस्त्रिद्विमासेषु) दो, तीन, चार, मास मे (सोपवासे) उपवास सहित (सप्रतिक्रमणे) प्रतिक्रमण सहित (दिने) दिन मे (जघन्य) जघन्य (मध्य) मध्य (उत्कृष्ट) उत्कृष्टरूप से (विधीयते) किया जाता है ।४१।

**भावार्थ**-दिगम्बर साधु परिषहजयी होते हैं। दीनता के त्यागी होते हैं, अपरिग्रही होते हैं। वैराग्य सयम से सम्पन्न होते हैं। इसलिए वह धीर वीर महापुरुष दाढी मू छ के तथा शिर के बाल अपने हाथो से उखाडते है।

क्योकि अपरिग्रही होने से साधु अपने पास उस्तरा कैंची आदि रख नही सकते। किसी से याचना भी नही कर सकते, क्योकि याचना से दीनता प्रकट होती है। वह सिह वृत्ति के धारक होते, है इसलिए याचना कर नही सकते। यदि केशो को नही उखाडते है तो उसमे लीख जू की उत्पत्ति होती है जिससे ध्यान मे बाधा आती है और खुजलाने से उन जीवो की विराधना होती है। सयमी अहिंसा के प्रतीक होते हैं, इसलिए प्रतिक्रमण और उपवास पूर्वक दो महीना मे, तीन महीना मे, चार महीना मे, वैराग्य भावपूर्वक दाढी, मू छ और मस्तक के केशो को अपने हाथो से उखाडते है वह केशलोच कहलाता है। दो महीने मे करना उत्तम, तीन महीने मे करना मध्यम और चार महीने मे करना जघन्य है ।।४१।।

**वल्कला जिवनवस्त्राद्यैरंगासंवरणं वरम् ।**
**आचेलक्यमलंकारानंगसंगविवर्जितम् ।।४२।।**

**अन्वयार्थ**----(वल्कला जिनवस्त्राद्यै ) छाल, चर्म, वस्त्र आदि से (अगासवरण) शरीर का आच्छादन नही करना तथा (अलकारानगसगविवर्जितम्) अलकार और कामादि की भावना से रहित होना (वर) उत्कृष्ट (आचेलक्यम्) आचेलक्य मूलगुण है।

**भावार्थ**-वृक्षादि छाल से उत्पन्न हुए चटाई आदि से कपास, रेशम आदि के वस्त्र, मृगछालादि चर्म से शरीर को आच्छादित नही करना, तथा हार, मुकुट आदि आभूषणो से शरीर को सुसज्जित नही करना, और मानसिक काम विकारो को उत्पन्न नही होने देना ही उत्तम आचेलक्य मूलगुण है ।।४२।।

**सयमद्वयरक्षार्थं स्नानादेर्वर्जनं मुनेः ।**
**जलस्वेदमलालिप्तगात्रस्यास्नानता स्मृता ।।४३।।**

**अन्वयार्थ**----(जलस्वेदमलालिप्तगात्रस्य) जल, पसीना, शरीर के मैल आदि से लिप्त है गात्र (शरीर) जिसका-ऐसे (मुने ) मुनिका जो (सयमद्वयरक्षार्थ) दोनो सयम की रक्षा करने के लिए (स्नानादेर्वर्जन) स्नान आदि का त्याग करना (अस्नानता) स्नान त्याग मूलगुण (स्मृता ) माना है।

**भावार्थ**-जल से स्नान करने से जलकाय और त्रसकाय जीवो की विराधना होती है, तथा शरीर के प्रति ममत्व भी उत्पन्न होता है, स्नान करने से प्राणि सयम और इन्द्रिय सयम इन दोनो सयमो का घात होता है। इसलिए साधुगण दोनो प्रकार के सयम की रक्षा करने के लिए स्नान का त्याग करते है। इससे कषाय का निग्रहरूप इन्द्रिय सयम और जीवो की रक्षा रूप प्राणि सयम का पालन होता है। स्नानत्याग उपलक्षण मात्र है। इसलिए चदन का लेपन लगाना आदि शरीर के सस्कारो का भी त्याग करना चाहिए ।।४३।।

प्रसन्नप्रासुकाऽनात्मसंस्कृतेलाशिला दिषु ।
एक पार्श्वेन कोदण्डदण्डशय्या महीशयः ।।४४।।

**अन्वयार्थ**--(प्रसन्नप्रासुकाऽनातमसस्कृतेलाशिलादिषु) निर्मल प्रासुक अपने लिए नही बनाइ हुई पृथ्वी, शिला आदि पर (एकपार्श्वेन) एक पार्श्व भाग से (कोदण्डदण्डशय्या) धनुष वा दड के समान सोना (महीशय) भूमि शयन है ।

**भावार्थ**-जीव जन्तु रहित निर्मल वस्तु पर वा अपने लिए नही बनायी हुई शिलामय, तृणमय, केष्ठमय आसन पर दड के समान अथवा धनुष के समान एक पसवाडे से शयन करना भूमि शयन नाम मूलगुण है ।।४४।।

स्वपात्रदातृशुद्धोर्व्या स्थित्वा समपदद्वयम् ।
निरालंबं करद्वन्द्वभोजनम् स्थितिभोजनम् ।।४५।।

**अन्वयार्थ**-(स्वपात्रदातृशुद्धोर्व्या) अपनी पात्र की और दाता की शुद्ध भूमि पर (निरालव) दीवाल आदि के अवलंबन से रहित (समपदद्वयम्) चार अगुल के अन्तर से दोनो चरणो को समपाद से (स्थित्वा) खडा होकर (करद्वन्द्व-भोजन)दोनो हाथो को अजुलि करके भोजन करना स्थिति भोजन है ।

**भावार्थ**-अपने चरणतल के स्थान को स्वस्थान कहते है । जिसमे अपनी जूठन गिरती है उसको पात्र स्थान कहते हैं । आहार देने वाले दाता के खडे रहने आदि के स्थान को दातृस्थान कहते हैं । उन तीनो की भूमि की शुद्धि को देखकर किसी दीवाल आदि का आश्रय नही लेकर चार अगुल के अन्तर से रहित दोनो पैरो को समपाद से खडा होकर अपने हस्ताजुलि रूप भाजन मे आहार करना स्थिति भोजन नामक मूलगुण है ।।४५।।

दशनाघर्षणं पाषाणांगुलीत्वंगनखादिभिः ।
स्याद्न्ताकर्षणं भोगदेहवैराग्यमन्दिरे ।।४६।।

**अन्वयार्थ**---(भोगदेहवैराग्यमदिरे) भोग और शरीर से विरक्ति प्राप्त आत्मा मदिर मे (पाषाणागुलीत्वङ्न-खादिभि ) पाषाण अगुलि छाल नख आदि के द्वारा (दशनाघर्षण) दान्तो को नही घिसना (दन्ताकर्षण) अदन्त धावन मूलगुण है ।

**भावार्थ**-अगुली, नख, दातौन, तृणविशेष, पैनी ककणी, वृक्ष की छाल, आदि से दातमल को शुद्ध नही करना अर्थात् दातौन नही करना, वह इन्द्रिय सयम की रक्षा करने वाला अदतधावन मूलगुण है ।।४६।।

उदयास्तोभय त्यक्त्वा त्रिनाडीर्भोजनम् सकृत् ।
एकद्वित्रिमुहूर्त स्यादेकभक्तम् दिने मुनेः ।।४७।।

**अन्वयार्थ**-(उदयास्तोभय) सूर्योदय और अस्त इन दोनो के (त्रिनाडी) तीन घडी काल को (व्यक्त्वा) छोडकर (दिने) दिन मे (एकद्वित्रिमुहूर्त) एक, दो, तीन मुहूर्त काल मे (सकृत्) एक वार (भोजन) भोजन करना (मुने ) मुनि का (एकमुक्तम्) एक मुक्त नामक मूलगुण (स्यात्) है ।

**भावार्थ**-सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घडी छोडकर, मध्याह्न कालके एक मुहूर्त, दो मुहूर्त, तीन मुहूर्त काल मे एक बार भोजन करना वह एकभक्त नामक मूलगुण है ॥४७॥

**येषां भूषणतां गता गुणगणैकावल्यलं निर्मला,**
**येय विश्वनरामरेश्वरमिलिन्दानन्दिपादाम्बुजाः ।**
**ते यान्ति श्रमणाग्रगण्यपदवीगण्या वरेण्यम् पद**
**सिद्धिश्रीपरिरम्भणामृतसुखास्वादास्पद योगिनः ॥४८॥**

**अन्वयार्थ**-(येषा) जिन दिगम्बर साधुओ के (या) जो (इय) यह (निर्मला) निर्मल (गुणगणैकावल्यल) गुणो की समूहरूप श्रेष्ठ आवलि (भूषणतां) भूषणता को (गता) प्राप्त होती है (विश्वनरामरेश्वरमिलिन्दानन्दिपादाम्बुजा) विश्व के चक्रवर्ती, इन्द्र आदि भ्रमरो को आनन्ददायक चरण कमल युक्त (श्रमणाग्रपदवीगण्या.) श्रमणो के अग्रणीय पदवी मे श्रेष्ठ (ते) वे (योगिन ) योगिगण (सिद्धिश्रीपरिरभणामृतसुखास्वादास्पद) मुक्ति श्री के आलिगनामृतरूपी सुख के स्वाद का स्थान स्वरूप (वरेण्य) श्रेष्ठ मुक्ति (पद) पदको (याति) प्राप्त करते हैं ।

**भावार्थ**-जो योगिगण इन निर्मल अट्ठावीस मूलगुणो से शोभित होते हैं, उनके चरण कमलो मे चक्रवर्ती, इन्द्र आदि निरतर नमस्कार करते हैं । वे दिगम्बर साधु श्रमण पदवी मे अग्रणीय होते हैं तथा अनत समस्त कर्मो का नाशकर मुक्तिरूपी लक्ष्मी के आलिगन से उत्पन्न हुए सुस्वाद अमृतपान का आस्वादन करने के स्थान भूत मुक्ति पद को प्राप्त करते है ॥४८॥

**प्रोन्निर्यत्करनीलरत्नरुचिरो दाराङ्गचेतोहरः,**
**पूर्णोदीर्णसदाश्रयान्तरमहाभोगास्पदाशोत्करः ।**
**गंभीरास्तसमस्तदोषमधुरह्वानोद्यदानन्दनः,**
**सर्वोर्वीसुखसंपदेऽस्त्वमृतदो नेमिर्घनः पावनः ॥४९॥**

**अन्वयार्थ**—(प्रोन्निर्यत्करनीलरत्नरुचिर ) उत्कृष्ट रूप से निकलती हुयी किरणो वाली नीलमणि के समान काति वाले (दाराङ्गचेतोहर ) स्त्रियो के श्रेष्ठ चित्त को हरने वाला (पूर्णोदीर्णसदाश्रयान्तर महाभोगास्पदाशोत्कर ) पूर्णवृद्धि को प्राप्त निरन्तर आश्रयभूत जीवो के महाभोगो के आस्थान रूपी आशाओ का समूह (गभीरास्तसमस्त दोष-मधुरह्वानोद्यदानन्दन ) गभीर, निर्दोष, मधुर ध्वनि से महान आनन्ददायक ऐसा (पावन ) पवित्र (नेमिर्घन ) नेमिनाथ रूपी मेघ (सर्वोर्वीसुख सपदे) सारी पृथ्वी की सुख सपदा के लिए (अमृतवद ) अमृत को देने वाला (अस्तु) हो ।

**भावार्थ**—इस श्लोक मे आचार्य ने नेमिनाथ भगवान को बादल से उपमा दी है ।

बादल दैदीप्यमान नीलमणि के समान वर्ण वाले होते हैं । भगवान नेमिनाथ दैदीप्यमान नीलमणि के समान वर्ण वाले थे । बादल-दार खेती करने वाले किसानो के अर्ग और चित्त को हरने वाले होते हैं । नेमिनाथ भगवान भी अपने सौन्दर्य से "दार" स्त्रियो के श्रेष्ठचित्त को हरने वाले थे । बादल अपनी ध्वनि से आनददायक होते हैं । भगवान भी अपनी निर्दोष

मधुर ध्वनि से भव्यो को आनन्द देने वाले थे। बादल सर्व पृथ्वी पर अमृत पानी देता है और नेमिनाथ भगवान सारी पृथ्वीतल पर रहने वाले भव्य जीवो को अमृत-मोक्ष को देने वाले हैं ॥४६॥

विघ्नो को नाश करने के लिए आदि, मध्य और अत मे मगलाचरण करना चाहिए।

**आदीवसाणमज्झे पण्णतं मंगलं जिणिदेहि।**
**तो किय मंगल विणयो वि णमो सुत्तं पवक्खामि ॥**

**आदिम्हि भद्द वयणं सिस्सा लहु पारया हवंतु त्ति।**
**मज्झे अव्वोच्छित्ति य विज्जाविज्ज फलं चरिमे ॥**

जिनेन्द्रदेव ने आदि, अन्त और मध्य मे मगल करने का विधान किया है।

शिष्य सरलता पूर्वक प्रारम्भ किये गये ग्रन्थाध्ययनादि कार्य के पारगत हो इसलिए आदि मे भद्र वचन अर्थात् मगलाचरण करना चाहिए। प्रारम्भ किये गये कार्य की व्युच्छिति न हो इसलिए मध्य मे मगलाचरण करना चाहिए और विद्या तथा विद्या के फल की प्राप्ति हो इसलिए अन्त मे मगलाचरण करना चाहिए। इसीलिए आचार्य ग्रन्थ के एक अधिकार के प्रारभ और समाप्ति मे मगलाचरण करने के लिए भगवान को नमस्कार करते हैं।

**इति श्री वीरनन्दि सिद्धान्तिचक्रवर्त्ति विरचिते श्री आचारसारनाम्नि शास्त्रे प्रथमोऽधिकारः ॥१॥**

# अथ द्वितीयोऽधिकारः

**श्रियः पदं सर्वविदः पदाम्बुजं नमन्निलिपालिमिलिन्दमन्दिरम्**
**सन्मानसोल्लासिनखांशुकेसरं पार्श्वस्य नः स्ताद्वरद जिनेशिनः ॥१॥**

**अन्वयार्थ**—(श्रिय) लक्ष्मी को (पद) स्थान (नमन्निलिपालिमिलिन्दमन्दिरम्) नमस्कार करते हुए देवो के समूह रूपी भ्रमरो का मन्दिर (सन्मानसोल्लासिनखांशुकेसर) सज्जनो के मन को उल्लासित कारक हैं नखो की कातिरूपी केशर जिसमे ऐसे (सर्वविद.) सर्वज्ञ (जिनेशिन) जिनेश्वर (पार्श्वस्य) पार्श्वनाथ के (पादाम्बुज) चरण कमल (न.) हमारे लिए (वरद) वर देने वाले (स्तात्) हो।

**भावार्थ**—जो शत इन्द्ररूपी भ्रमरो से सेवित हैं, सज्जनो के चित्त को उल्लसित करने वाली नखरूपी केशर से व्याप्त मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्थान हैं ऐसे सर्वज्ञ जिनेश्वर पार्श्वनाथ भगवान के चरण कमल हमको वर देने वाले हो ॥१॥

**तनोति संपदं नीतिर्यद्वत्तद्वद्गणश्रियम्।**
**सत्प्रियां या समाचारनीतिः सा कीर्त्यतेऽधुना ॥२॥**

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (नीति ) नीति (सत्प्रिया) सज्जनो को प्रिय (सपद) सम्पदा को (तनोति) विस्तारित करती है (तद्वत्) उसीप्रकार (य॰) जो (समाचार नीति ) समाचार नीति (सत्प्रिया) सज्जन पुरुष को प्रिय (गणश्रिय) गणश्री (सम्पद) सम्पदा को (तनोति) विस्तरित करती है (अधुना) इस समय (सा) वह समाचार नीति (कीर्त्यते) कही जाती है।

**भावार्थ**—जिसप्रकार नीति महान सम्पदा को देने वाली है, उसी प्रकार समाचार नीति महान गुण श्री को देने वाली है। वह मुनियो की समाचार नीति अब कही जाती है ।।२।।

## समाचार का निरुक्ति अर्थ:—

**समः समानः सं सम्यगाचारो यः समैर्युतः ।**
**आचार्यत इति प्राज्ञैः स समाचार ईरितः ।।३।।**

**अन्वयार्थ**—(समः) समान (समान ) या समान (स) अर्थात् (सम्यक्) समीचीन (आचार ) आचार अथवा जो (समै ) समता (युतै ) सहित (आचार्यते) आचरण किया जाता है (इति) ऐसा (प्राज्ञै ) बुद्धिमानो के द्वारा (स ) वह (समाचार ) समाचार (ईरित.) कहा जाता है।

**भावार्थ**—रागद्वेष के अभावरूप समताभाव है वह समाचार है, अथवा सम्यक् अर्थात् आचार रहित जो मूलगुणो का अनुष्ठान आचरण है वह समाचार है, अथवा प्रमत्तादि समस्त मुनियो का समान अहिंसादि रूप आचार है वह समाचार है, अथवा सब क्षेत्रो मे हानिवृद्धि रहित कायोत्सर्गादिक सदृश परिणामरूप आचरण है वह समाचार है ।।३।।

**एष· संक्षेपविस्तारद्विभेदो दशभेदगः ।**
**संक्षेपोऽनल्पभेदोऽन्य आदिभेदा इमे दशः ।।४।।**

**अन्वयार्थ**—(एष ) यह समाचार विधि (सक्षेपविस्तारात्) सक्षेप और विस्तार से (द्विभेद ) दो प्रकार की है। (सक्षेप ) सक्षेप समाचार (दशभेदग ) दश भेद वाला है (अन्य ) दूसरा विस्तार समाचार (अनल्पभेद ) बहुत से भेद वाला है (इमे) ये (दश ) दश (आदिभेदा ) आदि समाचार के भेद हैं।

**भावार्थ**—समाचार अर्थात् सम्यक् आचरण दो ही प्रकार है १ औघिक २ पदविभागिक। औघिक के दश भेद होते हैं और पदविभागिक समाचार अनेक प्रकार का है ।।४।।

**इच्छामिथ्यातथाकारेच्छावृत्यासीर्निषिद्धिकः ।**
**आप्रच्छत्नं प्रतिप्रश्नश्च निमंत्रणसंश्रयौ ।।५।।**

**अन्वयार्थ**—इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, इच्छावृत्ति, आशिका, निषिद्धिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, सनिमन्त्रणा और सश्रय इस तरह ये औधिक समाचार के दश भेद है।

**पुस्तकातापयोगादेर्या याञ्चा विनयान्विता ।**
**स्वपरार्थे यतीन्द्राणां सेच्छाकार प्ररुपित ।।६।।**

**अन्वयार्थ**—(यतीन्द्राणा) मुनियो को (स्वपरार्थे) स्वपरार्थ मे (पुस्तकातापयोगादे ) पुस्तक आतापयोगादिकी

(या) जो (विनयान्विता) विनयपूर्वक (याचा) याचना है (सा) वह (इच्छाकार) इच्छाकार (प्ररूपित) कहा जाता है।

**भावार्थ**—पिच्छिका आदि सयम के उपकरण, शास्त्रादि ज्ञानोपकरण, कमण्डलु शौचोपकरण, औषधि आदि के ग्रहण और आतापन योगादि के करने के लिए गुरु से जो विनयपूर्वक याचना की जाती है वह इच्छाकार है ।।६।।

**यन्मया दुष्कृतं पूर्वं तन्मिथ्याऽस्तु न तत्पुर ।**
**करोमीति मनोवृत्तिर्मिथ्याकारोऽतिनिर्मल· ।।७।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (मया) मैंने (पूर्व) पूर्व मे (दुष्कृत) पाप किये है (तत्) वह (मिथ्या) मिथ्या (अस्तु) हो (तत्) वह पाप (पुरा) आगे (न) नही (करोमि) करता हू-करूँगा (इति) इस प्रकार की (अतिनिर्मल) अतिनिर्मल (मनोवृत्ति) मनोवृत्ति (मिथ्याकार) मिथ्याकार है।

**भावार्थ**—जो व्रतादिक मे अतीचाररूप पाप मैंने किया हो वह मिथ्या हो, ऐसे मिथ्या किये हुए पाप को फिर करने की इच्छा नही करता और मनरूप अतरग भाव से प्रतिक्रमण करता है उसीके दुष्कृत मिथ्याकार होता है ।।७।।

**तत्वाख्यानोपदेशादौ नान्यथा भगवद्वच ।**
**तत्तथेत्यादरेणोक्तिस्तथाकारो गुणाकर· ।।८।।**

**अन्वयार्थ**—(तत्वाख्यानोपदेशादौ) तत्वव्याख्यान के उपदेश आदि मे (भगवद्वच) भगवान के वचन (अन्यथा) अन्यथा (न) नही है (तत्तथा) जैसा भगवान कहते हैं वैसा ही है (इति) इस प्रकार (आदरेण) आदर पूर्वक (उक्ति) कहना (गुणाकर) गुणो को करने वाला (तथाकार) तथाकार है।

**भावार्थ**—भगवान सर्वज्ञ ने जो कहा है वह सत्य है क्योकि भगवान अन्यथा वादी नही है। ऐसा दृढ विश्वास करना तथाकार है ।।८।।

**पूर्वात्तानशनातापयोगोपकरणादिषु ।**
**सेच्छावृत्तिर्गणीच्छानुवृत्तिर्या विनयास्पदा ।।९।।**

**अन्वयार्थ**—(पूर्वात्तानशनातापयोगोपकरणादिषु) पूर्व मे गृहीत उपवास, आतापन, योग पुस्तकादि उपकरणो मे (या) जो (गणीच्छानुवर्ती) गुरु की इच्छानुकूल वृत्ति है (सा) वह (विनयास्पदा) विनय का स्थान (इच्छानुवृत्ति) इच्छानुवृत्ति है।

**भावार्थ**—आचार्य आदि के द्वारा दी हुई पुस्तक आदि उपकरण के ग्रहण मे गुरु की इच्छानुकूल प्रवृत्ति करना इच्छानुवृत्ति (छदन) है ।।९।।

**स्थिता वयमियत्कालं याम क्षेमोदयोस्तु ते ।**
**इतीष्टाशंसनं व्यंतरादेराशीर्निरुच्यते ।।१०।।**

**अन्वयार्थ**—(इयत्काल) इतने काल तक यहा पर (स्थिता) ठहरे थे अब हम (याम) जा रहे हैं (ते) तेरा (क्षेमोदय) कल्याण (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार (व्यतरादे) व्यतरादिकी (आशसन) प्रशसा करना (इष्टा) इष्ट (आशी) आशी (निरुच्यते) कही जाती है।

**भावार्थ**—किसी गुफा, शून्य मकान, पर्वत की कन्दरा, आदि मे ठहर कर पुन वहा से निकलते समय कहना कि हे व्यतर देवो, हम इतने काल तक यहा पर ठहरे थे, अब हम जा रहे हैं, तुम्हारा कल्याण हो इस प्रकार के वचनो से व्यतरादि देवो को आशीर्वादात्मक वचन कहना आशी है ॥१०॥

**जीवानां व्यन्तरादीनां बाधायै यन्निषेधनम् ।**
**अस्माभिः स्थीयते युष्मद्दृष्ट्यैवेति निषिद्धिका ॥११॥**

**अन्वयार्थ**—(व्यन्तरादीना) व्यन्तरादि जीवादि की (बाधायै) बाधा के लिए (यत्) जो (निषेधन) निषेध है कि हे व्यन्तर देवो ! (अस्माभि ) हम लोगो के द्वारा (युष्मद्दिष्ट्याएव) तुम्हारी दृष्टि से ही (स्थीयते) ठहरा जाता है (इति) इस प्रकार कहना (निषिद्धिका) निषिद्धिका है ।

**भावार्थ**—किसी जिन मदिर, शून्य गृह, उपवन, पर्वत की कन्दरा आदि मे प्रवेश करते समय हे व्यतरदेव ! हम लोग यहा ठहरना चाहते है । तुम्हारी दृष्टि से हमारा स्थान निर्विघ्न हो ऐसा कहना निषिद्धिका है । अर्थात् किसी स्थान मे प्रवेश करते समय नि सहि-२ का उच्चारण करना तथा वहा से निकलते समय आसहि-२ का उच्चारण करना आसिका और निषिद्धिका है ॥११॥

**प्रवासावसरे कन्दारावासादेर्निषिद्धिका ।**
**तस्मान्निर्गमने कार्या स्यादाशीर्वैरहारिणी ॥१२॥**

**अन्वयार्थ**—(कन्दरावासादे ) कन्दरावासादि के (प्रवासावसरे) प्रवेश के समय (निषिद्धिका) निषिद्धिका तथा (तस्मात्) उस स्थान से (निर्गमने) निकलते समय (वैरहारिणी) वैर विरोध को नाश करने वाली (आशी ) आसिका (कार्या) करना (स्यात्) चाहिये ।

**भावार्थ**—शून्य मकान आदि मे प्रवेश करते समय निषिद्धिका और निकलते समय आसिका करना चाहिए यह आसिका और निषिद्धिका विरोध की नाशक है । अन्यथा देवों के साथ विरोध होने की सभावना है ॥१२॥

**ग्रंथारंभकचोल्लोचकाय शुद्धि क्रियादिषु ।**
**प्रश्नः सूर्यादिपूज्यानां भवत्याप्रच्छनं मुनौ ॥१३॥**

**अन्वयार्थ**—(ग्रन्थारभकचोल्लोचकायशुद्धिक्रियादिषु) ग्रन्थ का आरभ, केशलोच, आदि काय शुद्धि की क्रिया मे (सूर्यादिपूज्याना) आचार्यादि पूज्य पुरुषो को (प्रश्न ) पूछना (मुनौ) मुनि मे (आप्रच्छना) आप्रच्छन (भवति) होती है ।

**भावार्थ**—किसी शास्त्र का आरम्भ, केशलोच, आदि क्रिया करना हो तो आचार्य को पूछकर करना चाहिये । इसी को प्रच्छना कहते हैं ॥१३॥

**यत्किंचन महत्कार्यं कार्यं पृष्ट्वा यतीश्वरान् ।**
**विनयेन पुनः प्रश्नः प्रतिप्रश्नः प्रकीर्तित ॥१४॥**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (किंचन) कुछ छोटा या (महत्) वडा (कार्यं) कार्य हो उसको (यतीश्वरान्) आचार्यों को (विनयेन) विनयपूर्वक पूछकर (पुन ) पुन (प्रश्न ) प्रश्न करना (प्रतिप्रश्न ) प्रतिप्रश्न (प्रकीर्त्तित ) कहा जाता है ।

**भावार्थ**—जो कुछ महान कार्य हो वह गुरु प्रवर्तक स्थविरादिक से पूछकर करना चाहिए उस कार्य के करने के लिए दूसरी बार उनसे तथा अन्य साधर्मी साधुओ से पूछना वह प्रतिपृच्छा है ऐसा जानना चाहिए ॥१४॥

**पुस्तकादौ पुरा दत्ते स्वात्मार्थे यन्निवेदनम् ।**
**जिघृक्षायां पुनः सूरिप्रमुखेष्वानिमंत्रणम् ॥१५॥**

**अन्वयार्थ**—(पुरा) पूर्व मे (दत्ते) दी हुई (पुस्तकादौ) पुस्तक आदि मे (स्वात्मार्थे) स्व के लिए स्वीकार करने के लिए (पुन) पुन (जिघृक्षायां) ग्रहण करने की इच्छा होने पर (सूरिप्रमुखेषु) आचार्य आदि मे (यत्) जो (निवेदनम्) निवेदन किया जाता है. (आनिमत्रणम्) वह आनिमत्रण है ।

**भावार्थ**—पूर्व गुरु आदि को दी हुई अपनी पुस्तक वा उसकी पुस्तकादि कोई वस्तु पुन ग्रहण करने की इच्छा हो तो विनय पूर्वक याचना करके लेना चाहिए अथवा पूर्व ग्रहण की हुई पुस्तकादि को पुन देते समय कोई अब हमे नही चाहिए ऐसा विनयपूर्वक निवेदन करना आनिमत्रण है ॥१५॥

**संश्रय के भेद.—**

**विनयक्षेत्रमार्गाणां संश्रयः सुखदुखयोः ।**
**सूत्रस्य चेत्ययं पंचप्रकारः सश्रयः स्मृतः ॥१६॥**

**अन्वयार्थ**—(विनयक्षेत्रमार्गाणा) विनय, क्षेत्र, मार्ग का (सुखदुखयो) सुख दुख का (य) और (सूत्रस्य) सूत्र का (इति) इस प्रकार (अयं) यह (पचप्रकार) पाच प्रकार का (सश्रय) सश्रय (स्मृत) कहा गया है ।

**भावार्थ**—गुरुजनो के लिए मैं आपका हू, इस प्रकार आत्मसमर्पण करना संश्रय (उपसयत) है । तथा यह विनय सश्रय, क्षेत्र सश्रय, मार्ग सश्रय, सुख या दुख सश्रय, और सूत्र सश्रय के भेद से पाच प्रकार का है ॥१६॥

**"विनय संश्रय"**

**वीक्ष्याऽऽगन्तुकमायातं यतिमुत्थाय संभ्रमात् ।**
**पदानि सप्त गत्वा च कृत्वा तद्योग्यवन्दनम् ॥१७॥**

**मार्ग श्रान्तिमपोह्यासनप्रदानादियत्नतः ।**
**त्रिरत्नसुस्थितादीनां प्रश्नो विनय संश्रयः ॥१८॥युग्मम्॥**

**अन्वयार्थ**—(आयात) आये हुए (आगन्तुक) आगन्तुक (यति) मुनि को (वीक्ष्य) देखकर (सभ्रमात्) शीघ्र ही (उत्थाय) उठकर (सप्तपदानि) सात पैर (गत्वा) उसके सम्मुख जाकर (च) और (तद्योग्यवन्दनम्) उसके योग्य वन्दना (कृत्वा) करके (आसनप्रदानादियत्नत) आसन प्रदान आदि के यत्न से (मार्गश्रान्तिम्) मार्ग के खेद को (अपोह्य) दूर करके (त्रिरत्नसुस्थितादीना) रत्नत्रय की कुशल (प्रश्न) पूछना (विनय सश्रय) विनय सश्रय है ।

**भावार्थ**—अन्य सघ के मुनि को अपने सघ मे आता हुआ देखकर शीघ्र ही उठकर सात पैर उसके सम्मुख जाकर उसका सत्कार करना, तदनतर आसन प्रदान करना, पैर दवाकर मार्ग के खेद को दूर करना आपका आगमन कहाँ से हुआ है, ? आपका स्थान कहा है ? आपके गुरु का नाम क्या है ? आपके रत्नत्रय की कुशलता है, आदि पूछना विनय सश्रय है ॥१७,१८॥

व्यक्त्वा दुर्नृपमक्ष्मापं पापं पापिजनाकुलम् ।
देशं दीक्षोन्मुखापेतं दुर्भिक्षं क्लेशदायकम् ॥१९॥

निर्वाधसस्यवद्यत्र वर्द्धते गुणमण्डलम् ।
क्षेत्रसंश्रयणं तत्राऽऽवासश्चेतः सुखावहः ॥२०॥युग्मम्॥

**अन्वयार्थ**—(अक्ष्माप) पृथ्वी रक्षा नही करने वाला (दुर्नृप) दुराचारी राजा (पाप) सावद्य युक्त (पापिजनाकुलम्) पापीजनो से भरे हुए (दीक्षोन्मुखापेत) दीक्षा का सम्मुखता से रहित (दुर्भिक्ष) दुर्भिक्ष से व्याप्त (क्लेशदायक) क्लेश दायक (देश) देश को छोडकर (यत्र) जिस देश मे (निर्वाधसस्यवत्) निर्वाधसस्य के समान (गुणमण्डलम्) गुणो का समूह (वर्द्धते) वृद्धिगत होता है (तत्र) उस क्षेत्र मे (चेत) चित्त को (सुखावह) सुखकारी (आवास) आवास करना (क्षेत्रसश्रयण) क्षेत्रसश्रय है।

**भावार्थ**—जिस क्षेत्र मे राजा नही है, अथवा पापी राजा है, जो क्षेत्र पापाचार या पापीजनो से व्याप्त है, जो दुर्भिक्ष से पीडित है, दीक्षा के सन्मुखता से रहित है, ऐसे क्षेत्र को छोडकर जिस देश मे निर्विघ्नव्रतो के समूह का पालन होता है उस क्षेत्र मे रहना क्षेत्र सश्रय है ॥१९,२०॥

आगन्तुकमुनेर्मार्गयातागमनजातयोः ।
यः सुखासुखयोः प्रश्नः सोऽयं स्यान्मार्गसंश्रयः ॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(आगन्तुकमुनेः) आगन्तुक मुनि के (मार्गयानागमनजातयो) मार्ग मे गमनागमन से उत्पन्न हुए (सुखासुखयो) सुखदुख मे (यत्) जो (प्रश्न) प्रश्न पूछना है (स) वह (अय) यह (मार्गसंश्रय) मार्ग सश्रय (स्यात् है।

**भावार्थ**—आगन्तुक मुनि के मार्ग मे गमनागमन से उत्पन्न हुए सुख, दुख के विषय मे प्रश्न पूछना यह मार्ग सश्रय है ॥२१॥

चौरक्रूरगदोर्वीशपीड़िताद्यर्तिवर्त्तिनाम् ।
तोषोत्कर्षणमाहारभेषजायतनादिभि· ॥२२॥

स्वात्मार्पणमहं तुभ्यस्मीति च सुखेऽसुखे ।
यत्तच्चित्तप्रसादार्थं तत्सुखासुखसंश्रय ॥२३॥ युग्मम्

**अन्वयार्थ**—(चौरक्रूरगदोर्वीशपीडिताद्यर्त्तिवर्त्तिनाम्) चोर, क्रूर प्राणी, रोग, राजा आदि से पीडित होने से दुखी यतिगणो को (आहारभेषजायतनादिभि) आहार, औषध, आयतन आदि के द्वारा (तोपोत्कर्पण) सन्तुष्ट करना (सुखे) सुख मे (च) और (असुखे) दुख मे (अहः मैं (तुभ्य) तुम्हारे लिए (अस्मि) हूँ (इति) इस प्रकार (यत) जो (आत्मसमर्पण) आत्म समर्पण करना है (तत्) वह (तच्चित्तप्रसादार्थ) उसके चित्त को प्रसन्न करने के लिए (तत्सुखासुखसश्रय) वह सुखासुख सश्रय है।

**भावार्थ** - जिस क्षेत्र मे व्रत, सयम, तप की विराधना होती है, दुर्जन राजा व अगामी जनों के निमित्त से परिणामो मे आकुलता होती है, उस क्षेत्र को छोडकर तप, सयम के वृद्धिकारक क्षेत्र मे निवास करना क्षेत्र सश्रय है।

आगन्तुक मुनि के मार्ग मे उत्पन्न हुई सुख दुख की वार्ता पूछना मार्ग सश्रय है, तथा मार्ग मे उनको किसी चोरने वा किसी दुष्ट प्राणी ने पीडित किया है, अथवा कोई रोग उत्पन्न हुआ है, उसको औषधि, आसन, उपकरण आदि देकर दूर करना और आप आकुलित न हो, सुख दुख मे मैं आपका ही हूँ इस प्रकार आत्म समर्पण करना सुख दुख सश्रय है । २२।२३।

"सूत्र संश्रय के भेद"

पुरा स्वगुरुपादान्ते शास्त्रं श्रुत्वाऽखिल पुन ।
जिज्ञासायां स्वलोकान्यथा ग्रंथातिशये मुनि: ॥२४॥

भक्त्योपेत्य गुरुन्नत्वा युष्मत्पादप्रसादत ।
अन्यन्मुनीन्द्रवृन्दं मे द्रष्टुं वांछा प्रवर्त्तते ॥२५॥

इत्येवं बहुशः स्पृष्ट्वा लब्धवाऽनुज्ञां गुरोर्व्रजेत् ।
व्रतिनैकेन वा द्वाभ्यां बहुभिः सह नान्यथा ॥२६॥ त्रिकलम् ॥

अन्वयार्थ—(पुरा) प्रथम (स्वगुरुपादान्ते) अपने गुरु के चरणो मे (अखिल) सर्व (शास्त्र) शास्त्रो को (श्रुत्वा) सुनकर (पुन) पश्चात् (ग्रन्थातिशये) ग्रन्थो के अतिशय के लिये (स्वलोकान्यथा) दूसरे ग्रन्थो को पढने की (जिज्ञासाया) इच्छा होने पर (मुनि) मुनि (भक्त्या) भक्ति से (गुरुन्) गुरु के (उपेत्य) समीपजाकर (नत्वा) नमस्कार करके (युष्मत्पादप्रसादत) आपके चरणो के प्रसाद से (मे) मेरी (अन्यत्) दूसरे (मुनीन्द्रवृन्दं) मुनि समूह के (द्रष्टु) दर्शन करने की (वाछा) इच्छा (प्रवर्त्तते) है (इत्येवं) इस प्रकार (अयं) यह (बहुश) बारम्बार (स्पष्ट्वा) पूछकर (गुरो) गुरु की (अनुज्ञा) अनुमति को (लब्ध्वा) प्राप्तकर (एकेन) एक (व्रतिना) मुनि (द्वाभ्या) दो (बहुभि) या बहुत से मुनियों के (सह) साथ (व्रजेत्) जावे (अन्यथा) अकेला (न) नही जावे ।

भावार्थ—सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ के जानने के प्रयत्न को सूत्र सश्रय कहते हैं । उसके अर्थ को जानने का प्रयत्न करना अर्थ सश्रय है । सूत्रार्थ का जानने का प्रयत्न करना उभय सश्रय है । इसी को मूलाचार मे उपसयत् कहा है । उसी मे सूत्र सश्रय, अर्थ सश्रय, उभय सश्रय, लौकिक, वैदिक और सामायिक के भेद से तीन-२ प्रकार का कहा है । व्याकरण गणित आदि लौकिक सूत्र हैं । सिद्धात शास्त्र वैदिक कहलाते हैं । स्याद्वाद, न्याय शास्त्र अथवा आध्यात्मिक शास्त्र सामायिक है । जिसने पूर्व मे स्वकीय गुरु से सर्व सिद्धान्तो को जान लिया है पुन: विशेष शास्त्रो के जानने की इच्छा होने पर विनयशील मुनि भक्ति और आदर पूर्वक अपने गुरु के पास जाकर बार-२ प्रार्थना करता है कि हे गुरुदेव, आपके प्रसाद से यद्यपि मैंने सारे सिद्धान्त को जान लिया है फिर भी विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मैं सकल शास्त्र के पारगत अन्य आचार्यों के समीप जाना चाहता हू, इस प्रकार बार-२ प्रच्छना करे । तदनतर-गुरु की अनुमति से एक, दो या बहुत से मुनियो के साथ वह दूसरे आचार्य के समीप जाने के लिए विहार करे ॥२४,२५,२६॥

"एकाकी विहार करने वाले का लक्षण"

ज्ञानसंहननस्वांतभावना बलवन्मुने ।
चिरप्रव्रजितस्यैक विहारस्तु मतः श्रुते ॥२७॥

एतद्गुणगणापेत. स्वेच्छाचाररत पुमान् ।
यस्तस्यैकाकिता मा भून्मम जातु रिपोरपि ॥२८॥

**अन्वयार्थ**—(चिरप्रव्रजित ) बहुत काल के दीक्षित (ज्ञानसहननस्वातभावनावलवन्मुने ) ज्ञान, सहनन, स्वातभावना से वलशाली मुनि के (एकविहार ) एकाकी विहार करना (श्रुते) शास्त्रो मे (मत ) माना है (तु) परन्तु (यः) जो (एतत्) इन (गुणगणापेत ) गुणो के समूह से रहित (स्वेच्छाचाररत ) स्वेच्छाचार मे रत (पुमान्) पुरुष है (तस्य) उस (मम) मेरे (रिपो ) शत्रु के (अपि) भी (एकाकिता) एकाकी विहार (जातु) कभी भी (माभूत्) नही हो।

**भावार्थ**—जो ज्ञानवल, सहननवल, मनोवल और शुभ भावना से युक्त है वह एकाकी विहार कर सकता है। ज्ञानवल, विशिष्ट आध्यात्मिक ज्ञान का धारी हो। सहननबल, उत्कृष्ट सहनन का धारी हो, अर्थात भूख, प्यास सहन करने की शक्ति वाला हो, आत्मानुभूति से अपने मन को वश मे करने वाला हो, चिरकाल का दीक्षित हो, ऐसा विशिष्ट मुनि एकाकी विहार करने वाला हो सकता है। परन्तु जिसमे यह गुण नही है, जो स्वेच्छाचार मे रत रहता है अर्थात् सोने, बैठने, मलमूत्र के त्याग मे वस्तु के ग्रहण करने मे स्वच्छद होकर प्रवृत्ति करता है ऐसा मुनि कभी एकाकी विहार न करे।

*आचार्य खेद के साथ कहते है कि इन गुणो से रहित साधु मेरा शत्रु भी हो तो भी एकाकी विहार न करे।२७२८।*

"एकाकी विहार करने से हानि"

**श्रुतसंतानविच्छित्तिरनवस्था यमक्षयः।**
**आज्ञाभंगश्च दुष्कीर्त्तिस्तीर्थस्य स्याद्गुरोरपि ॥२९॥**

**अग्नितोयगराजीर्णसर्पक्रूरादिभिः क्षयः।**
**स्वस्याप्यार्त्तादिकादेकविहारेऽनुचिते यतः ।३०।युग्मम्।**

**अन्वयार्थ**—(यत ) क्योकि (अनुचिते) अनुचित (एकविहारे) एकाकी विहार करने पर (श्रुतसतान-विच्छिति ) श्रुतज्ञान के सतान की विच्छित्ति (अनवस्था) अनवस्था (यमक्षय ) सयम का नाश (तीर्थस्य गुरो ) तीर्थ और गुरु की (अपि) भी (आज्ञाभग) आज्ञा का भग और (दुकीर्ति ) अपयशस्कीर्ति (अग्नितोयगराजीर्णसर्पक्रूरादिभि ) अग्नि, जल, विष, अजीर्ण और सर्पादि क्रूर प्राणियो के द्वारा (आर्तादिकात्) आर्तध्यान से (स्वस्य) अपना (क्षय ) नाश होगा।

**भावार्थ**—एकाकी विहार करने से सयम का घात, श्रुत का विच्छेद, दीक्षा देने वाले गुरु की निन्दा, जिन शासन मे कलक, मूर्खता, कुशीलता आदि अनेक दोष उत्पन्न होते है तथा जो स्वच्छद होकर एकाकी विहार करते हैं, वे कटक, चोर, क्रूर, पशुओ के द्वारा पीडित होते हैं, उनका अजीर्ण रोगादि से आर्त्तध्यान युक्त होकर मरण होता है। अनेक प्रकार की आपत्तियो का सामना करना पडता है। इसलिए एक, दो, तीन या वहुत से मुनियो के साथ विहार करना चाहिए। एकाकी विहार नही करना चाहिए ॥२९,३०॥

**गत्वातः सूर्योपाध्यायवर्त्तकस्थविरान्वितम्।**
**गणं गणधरोपेतमुपेयादीदृशाश्चते ॥३१॥**

**अन्वयार्थ**—(ईदृशा ) ऐसे साधु अत अपने सघ से (गत्वा) निकलकर (सूर्योपाध्यायवर्त्तकस्यविरान्वितम्) आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर से युक्त (गणधरोपेत) गणधर वाले (गणं) गण को (उपेयात्) प्राप्त करे।

**भावार्थ**—गुरु की अनुमत्ति लेकर वह तपस्वी दो, तीन मुनियो के साथ अन्य सघ मे जाता हैं जिसमे आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्त्तक और गणधर यह पाच मुनि होते है ॥३१॥

"आचार्य का लक्षण"

संग्रहानुग्रहप्रौढ़ो रुढ़ः श्रुतचरित्रयोः।
य पचविधमाचारमाचारयति योगिन ॥३२॥

बहि क्षिप्तमल सत्वगांभीर्यातिप्रसादवान्।
गुणरत्नाकर सोऽयमाचार्योऽवार्यधैर्यवान् ॥३३ युग्मम्॥

**अन्वयार्थ**—(य) जो (सग्रहानुग्रहप्रौढ) सग्रह और अनुग्रह करने मे प्रौढ है (श्रुतचरित्रयो) श्रुत और चारित्र मे (रुढ) आरुढ है (योगिग्र) योगियो को (पचविध) पाच प्रकार के (आचार) आचार को (आचारयति) आचरण कराता हो (वहि क्षिप्तमल) जिसमे व्रतादि अतिचार नही-हो (सत्वगाभीर्यातिप्रसादवान्) सत्व, गाभीर्व और अत्यन्त प्रसन्नता से युक्त (अवार्यधैर्यवान्) अत्यन्त धैर्यशाली (गुणरत्नाकर) गुणो का समूद्र है (स.) वह (अय) यह (आचार्य) आचार्य परमेष्ठी है।

**भावार्थ**—जो शिष्यो का सग्रह और सग्रह किये हुये का अनुग्रह उपकार करने मे चतुर है, ज्ञान और चरित्र मे प्रौढ है अर्थात् जिसका ज्ञान विशाल है, और चरित्र अत्यन्त निर्मल है, दिगम्बर साधुओ को ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार, चारित्राचार, दर्शनाचार का पालन कराता है, स्वत पाच आचारो का पालन करता है जिसका भेष पच अतिचार के मल से रहित हैं अर्थात् व्रतो मे दूषण नही लगाता है, जो पृथ्वी के समान क्षमा शील है, समुद्र के समान गभीर है, निर्मल जल के समान अत्यन्त प्रसन्न है, आकाश के समान निर्लेप है, वायु के समान अपरिग्रही है, मेरु के समान धैर्यशाली है ऐसे गुणो के समुद्र आचार्य परमेष्ठी होते हैं ॥३२,३३॥

'उपाध्याय का लक्षण"

संसारज्वरसंतापच्छेदि यद्वचनामृतम्।
पीयते भव्यलोकेन प्रीत्या नित्यं स देशक ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(ससारज्वरसतापच्छेदि) ससार रूपी ज्वर के सताप के छेदक (यद्वचनामृतम्) जिनका वचनामृत (प्रीत्या) प्रीति से (भव्यलोकेन) भव्य लोगो के द्वारा (नित्य) हमेशा (पीयते) पीया जाता है (स) वह (देशक) उपाध्याय है।

**भावार्थ**— जिसके समीप जाकर मुनिगण विनय पूर्वक शास्त्रो का अध्ययन करते हैं, जिनके ससार ताप छेदक वचनामृत को भव्य लोक अपनी कर्णाजुलि के द्वारा नित्य पीते हैं वह उपाध्याय है ॥३४॥

प्रभावनाधिकोऽवाधमन्नाद्यैं संघवर्त्तक।
जगदादेयवाग्मूर्त्तिर्वर्त्तक कालदेशवित् ॥३५॥

**अन्वयार्थ**—(प्रभावनाधिक) अधिक प्रभावनाकारी (अन्नाद्यैं) अन्न आदि के द्वारा (अवाध) अवाधितरूप मे (सघवर्त्तक) सघ का प्रवर्त्तक (कालदेशवित्) देश काल को जानने वाला (जगदादेयवाग्मूर्ति.) जगत मे आदेय है वचन-मूर्त्ति जिनकी ऐसा (वर्त्तक) प्रवर्तक साधु होता है।

**भावार्थ**—जो देशकाल का ज्ञाता है, निर्दोषरूप से अन्न औषधि आदि के द्वारा सघ का पोषण करता है, सारे

प्राणियो के द्वारा जिनके वचन माननीय है, जो जिन धर्म का प्रभावक है वह प्रवर्त्तक कहलाता है ॥३५॥

## "स्थविर और गणी का लक्षण"

**समयस्थितिसद्गीति स्थविरः स्याद्गुणस्थिरः ।**
**गणरक्षाक्षम सूरिर्गुणी गणधरः स्मृत ॥३६॥**

**अन्वयार्थ**—(समयस्थितिसद्गीति ) समय की स्थिति को जानने वाला (गुणस्थिर ) स्थिर गुण वाला (स्थविरः) स्थविर (गणरक्षाक्षम ) गण की रक्षा करने मे समर्थ (गुणी) गुणी (सूरि ) आचार्य (गणधर ) गणधर (स्मृतः) कहलाते है ।

**भावार्थ**—जो दीक्षादि देकर शिष्यो के उपकार करने मे चतुर हो वह आचार्य है, जो धर्म का उपदेश देते हैं शास्त्र पढाते हैं, वह उपाध्याय है जो चर्या आदि के द्वारा सघ का उपकार करते हैं, वह प्रवर्त्तक है, जो सघ की रीति, स्थिति, प्राचीन परम्परा की मर्यादा को जानते हैं वह स्थविर है और जो गण को पालते है, रक्षा करते हैं, वह गणधर कहलाते हैं ॥३६॥

**तं प्राप्य तद्गणाधीशमभ्यायांतं सहात्मनः ।**
**गणेनाऽऽज्ञानतिस्वीकारेच्छावात्सल्यकारणैः ॥३७॥**

**प्रीत्या प्रेक्ष्यातिभक्त्या तं प्रणम्य गणमप्यथ ।**
**मार्गातिचारनियमं निवर्त्यान्याः क्रिया अपि ॥३८॥**

**वंदित्वा गणिनं गणमप्युचितक्रियया दिनम् ।**
**तद्विश्रम्य द्वितीयेऽह्नि तृतीये वासरेऽथवा ॥३९॥**

**गणिनं गुणिन संघगुणसंगमवेत्य तम् ।**
**दयादमशमावश्यकक्रियाकरणादिषु ॥४०॥**

**सूरिं संश्रित्य नत्वेष्टं स्वस्य विज्ञापयेच्छनैः ।**
**दत्वाऽस्मै चेतनाचेतनांतरालार्जितोपधिम् ॥४१॥**

**अन्वयार्थ**—(आत्मन ) अपने (गणेन) गण के (सह) साथ (अभ्यायात) सन्मुख आये हुए (त) उस (तद्गणाधीश) उस गण के अधीश को (प्राप्य) प्राप्त कर (आज्ञानतिस्वीकारेच्छावात्सल्यकारणैः) आज्ञा, नति स्वीकार की इच्छा, वात्सल्य आदि कारणो के द्वारा (प्रीत्या) प्रीति से (प्रेक्ष्य) परीक्षा करके (अतिभक्त्या) अति भक्ति से (त) उस (गण) गण को (प्रणम्य) नमस्कार कर (अथ) इसके बाद (मार्गातिचारनियम) मार्ग के अतिचार के नियम को (अपि) और (अन्या ) अन्य भी (क्रिया) क्रियाओ को (निवर्त्य) निवृत कर (उचितक्रियया) योग्य क्रियाओ से (गणिन) सूरि को (अपि) और (गण) सघ को (वदित्वा) नमस्कार कर (तत्) उस (दिनं) दिन को (विश्रम्य) विश्राति लेकर (द्वितीये) दूसरे (अह्नि) दिन मे (अथवा) अथवा (तृतीये) तीसरे (वासरे) दिन मे (दयादमशमावश्यकक्रियाकरणादिषु) दया, दम, शम, आवश्यकादि क्रिया करण आदि मैं (गुणिन) गुणशाली (सघगुणसघ) सघ के गुणो का समूह (तं) उस (गणिन)

आचार्य को (अवेत्य) जानकर (सूरि) सूरि के (सश्रित्य) समीप मे बैठकर (नत्वा) नमस्कार करते हुए (चेतनाचेतनात-रालार्जितोपधिम्) मार्ग मे प्राप्त हुई चेतन, अचेतन उपधि (पुस्तकादि) को (अस्मै) उस आचार्य के लिए (दत्वा) देकर (स्वस्य) अपने (इष्ट) इष्ट को (शनै ) धीरे-धीरे (विज्ञापयेत्)'विज्ञापन करे।

**भावार्थ**—शास्त्रज्ञान का इच्छुक सयमी अपने गुरु की अनुमति लेकर आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर गणी से शोभित पर सघ मे जाते हैं पर सघ के साधु उस आगन्तुक मुनि को देखकर सात पैर उसके सम्मुख जाकर तथा परस्पर मे नमस्कार करके रत्नत्रय की कुशल पूछते हैं। तदनन्तर आगन्तुक मुनि और सघ के मुनि परस्पर मे एक दूसरे की आज्ञापालन नमस्कारस्वीकार, इच्छा, वात्सल्यादि कारणो के द्वारा परीक्षा करके प्रीति और अतिभक्ति से आचार्य को नमस्कार करके आगन्तुक के मुनिमार्ग के अतिचारो को दूरकर, उचित क्रिया से एक दिन विश्राति देकर दैनिक सारी आवश्यक क्रियाओ मे तथा प्रतिलेखन क्रिया मे परस्पर दो तीन दिन तक परीक्षा करते हैं। तदनतर दूसरे या तीसरे दिन जाकर साधु आचार्य को नमस्कार कर उनके समीप बैठ जाय। तदनतर मार्ग मे शिष्य आदि चेतन, पुस्तक कमण्डलु आदि अचेतन कोई भी वस्तु प्राप्त हुई हो तो आचार्य को अर्पण करदे। उसके बाद अति विनय भावो से धीरे-२ अपने आने के कारण को आचार्य से निवेदन करे ॥३७,३८,३९,४०,४१॥

**गुरुसन्तानचारित्रशुद्धो शास्त्रो यदीतरः।**
**कृत्वा छेदमुपस्थापनादिशुद्धश्च नेतरः ॥४२॥**

**अन्वयार्थ**—(गुरुसन्तानचारित्रशुद्ध ) गुरु की सन्तान और चारित्र जिसका शुद्ध है ऐसा वह आगन्तुक मुनि (ग्राह्य ) ग्रहण करने योग्य हैं (च) और (यत्) जो (इतर ) गुरुसतान, चारित्र से शुद्ध नही है वह (छेद) छेद (कृत्वा) करके (उपस्थापनादिशुद्ध ) उपस्थापनादि से शुद्ध है वह ग्राह्य है (इतर ) जो प्रायश्चित लेकर शुद्ध नही हुआ हो वह (न) ग्राह्य नही है।

**भावार्थ**—आगन्तुक यति की गुरु परम्परा और चारित्र शुद्ध हो तो आचार्य उसको ग्रहण करे। यदि चारित्र आदि मे अशुद्धि हुई हो तो प्रायश्चित देकर पुन व्रतो की उपस्थापना करें। यदि आगन्तुक मुनि प्रायश्चित ग्रहण नही करे तो उसे स्वीकार नही करे और उसको अपने सघ मे आश्रय नही दे ॥४२॥

**शिलाभग्नघटाजाविडालमृच्चालिनीशुकैः।**
**मशका चाहिमहिषैरपि श्रोतान् समान् त्यजेत् ॥४३॥**

**अन्वयार्थ**—(शिलाभग्नघटाजाविडालमृच्चालिनीशुकै ) शिला, भग्नघट, अजा (बकरी) विडाल (बिल्ली) मिट्टी, चालनी, तोता (मशका चाहिमहिषैरपि) मशक, सर्प, भैसा के (समान्) समान (श्रोतान्) श्रोताओ को (त्यजेत् छोड देवे

**भावार्थ**—शिला, भग्नघट, बकरी, विडाल, मिट्टी, चालनी, तोता, मशक, सर्प, भैसा आदि के समान श्रोताओ को छोड दे। अर्थात् उनको समझाने की चेष्टा नही करे।

मिट्टी=सुनते समय ही प्रभावित होने वाले, बाद मे जो सुने और समझकर उसपर आचरण नही करने वाले। भ्रमर=सार ग्राहक असार को छोडने वाला। भैसा=सुना ना सुना दोनो बराबर। हस=विवेकशाली। शुक=जितना सुना उतना ही बिना समझे याद रखने के समान होता है। बिल्ली=चालाक पाखण्डी। बगुला=अर्थात् सुनने का ढोग करने वाले। मशक=वक्ता तथा सभा को परेशान करने मे प्रवीण। बकरा=देर मे समझने वाले तथा कामी। जौक=दोषग्राही। अन्य कुछ श्रोताओ के उदाहरण, सैकडो छेद युक्त घडे या फूटे घडे=इस कान सुना उस कान निकाल दिया। पशु=किसी का जोर पडा तो कुछ सुन समझ लिया। सर्प=कुटिल। शिला=प्रभावशाली से दिये जा सकते हैं। इस प्रकार ससार के सभी श्रोता चौदह प्रकार के होते हैं।

जो विवेकी श्रोता सासारिक भोग विलासरूपी फलो की स्वप्न मे भी इच्छा नही करता, तथा मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति करने का अडिग तथा अकम्प निर्णय करके प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारिणी जिनधर्म की विशाल कथा को सुनता है उस मनुष्य के सब ही पापो का निसन्देह समूल नाश हो जाता है ।।४३।।

**मोहादिना निषिद्धस्य श्रोतुर्मन्दमतेरपि ।**
**सति प्राज्ञैर्विनीतेऽस्मिन् यो व्याख्याति नराधमः ।।४४।।**

**भिन्नरत्नत्रयीयानपात्रोऽसौ भूरिगौरवात् ।**
**विधूतबोधिः ससारवारिराशौ निमज्जति ।।४५।।युग्मम्।**

**अन्वयार्थ**—(य ) जो (नराधम ) नीच (अस्मिन्) इस (विनीते) विनीत शिष्य के होने पर भी (मोहादिना) मोहादि के कारण (प्राज्ञै , विद्वानो के द्वारा (निषिद्धस्य) निषिद्ध (मन्दमते ) मन्दमति (श्रोतु ) श्रोता को (अपि) भी (व्याख्याति) उपदेश देता है । (भिन्नरत्नत्रयीयानपात्र ) नष्ट हो गया है रत्नत्रयरूपी यानपात्र जिसका और (विधूतबोधि ), नष्ट हो गया है ज्ञान जिसका ऐसा (असौ) वह आचार्य (भूरिगौरवात्) महान गौरव होने से (ससारवारिराशौ) ससाररूपी समुद्र मे (निमज्जति) डूब जाता है ।

**भावार्थ**—जो आचार्य विद्वानो के द्वारा निषिद्ध श्रोता को धर्म का उपदेश देता है, अध्ययन कराता है, उसकी रत्नत्रय रुपी नौका नष्ट हो जाती है और वह ससार समुद्र मे डूब जाता है ।।४४,४५।।

**सचिन्त्येति स्थितस्थानं तपः कालं गुरुं कुलम् ।**
**पृष्ट्वा श्रुत नाम एव प्रतिक्रमणादिकम् ।।४६।।**

**शयनासनयनादौ प्रेक्ष्य वृतं दिनत्रयम् ।**
**निश्चित्य गुरुश्चारित्रशुद्धि तत्सूरिसम्मतः ।।४७।।**

**स्वशक्तिमुक्त्वा व्याख्यादौ तद्व्याख्यातं पठेच्छ्रुतम् ।**
**स्वस्येष्ट प्रश्रयादेतत्पठनं सूत्रसंश्रय ।।४८।। त्रिकम्।।**

**अन्वयार्थ**—(इति) इस प्रकार (सचिन्त्य) विचार कर (स्थितस्थान) रहने के स्थान (काल) काल (तप ) तप (गुरु ) गुरु (कुल) कुल (श्रु त) श्रु त (स्व) अपने (श्रु त) सुने हुए (नाम) नाम और (प्रतिक्रमणादिकम) प्रतिक्रमणादि को (पृष्ट्वा) पूछकर (दिनत्रय) तीन दिन तक (शयनासनयानादौ) शयन आसनादि मे (वृत) आचरण की (प्रेक्ष्य) परीक्षा करके (चारित्रशुद्धि) चारित्र की शुद्धि को (निश्चित्य) निश्चय कर (गुरु ) गुरु (तत्सूरिसम्मत ) उसके आचार्य की सम्मति से (स्वशक्ति) अपनी शक्ति को (उक्त्वा) कहकर (व्याख्यादौ) व्याख्यान आदि मे (व्याख्यात) कहे गये (श्रु त) श्रु त को (पठन) पढे । (प्रश्रयात्) विनय से (स्वस्येष्ट) अपने इष्ट को (पठन) पढना (एतत्) यह (सूत्रसंश्रय ) सूत्र सश्रय है ।

**भावार्थ**—सर्व प्रथम आचार्य आगन्तुक मुनि के रहने के स्थान और गुरु के कुल को पूछे तथा तुमको दीक्षा लिये कितने दिन हुए हैं, तुमने प्रतिक्रमण कहाँ-२ किये हैं, तुम्हारे गुरु का क्या नाम है आदि सभी क्रिया पूछकर तीन दिन तक उसकी सामायिक आदि क्रियाओ का निरीक्षण करे । पीछे सूक्ष्म दृष्टि से उसके चारित्र और गुरु की शुद्धि का निर्णय करे, तथा आगन्तुक व्रती भी तीन दिन नूतन सघ के आचार्य वा सघस्थ साधुओ की चारित्र शुद्धि व कुल शुद्धि का निर्णय

करे। तदनन्तर आचार्य की अनुमति से व्याख्यानादि मे कथित श्रुत का अध्ययन करे। इस प्रकार विनयपूर्वक उस सघ मे जाकर विधिपूर्वक आचार्य के समीप शास्त्रो का अध्ययन करना सूत्र सश्रय है ।।४६,४७,४८।।

**सविस्तारसमाचारनैकभेदोऽत्र वर्ण्यते ।**
**उदाहरणमात्रेण विश्व को वक्तुमीश्वरः ।।४९।।**

**रात्रिं दिवं यमिष्वार्ये यत्कर्माचर्यते वरम् ।**
**तद्विस्तारसमाचार इति येन जिनोदितः ।।५०।।युग्मम्।**

**अन्वयार्थ**—(सविस्तारसमाचारनैकभेद) विस्तार सहित समाचार के अनेक भेद हैं। (अत्र) इस ग्रन्थ मे (उदाहरणमात्रेण) उदाहरण मात्र से (वर्ण्यते) वर्णन किया जाता है। क्योकि (विश्व) सम्पूर्ण समाचार विधि को (वक्तुम्) कहने के लिए (क) कौन (ईश्वर) समर्थ है। (येन) जिसके द्वारा (यमिषु) साधुओ मे (आर्ये) आर्यिकाओ मे (यत्) जो (वर) श्रेष्ठ (कर्म) क्रिया (रात्रिदिन) रातदिन (आचर्यते) आचरण की जाती है (इति) इस प्रकार (जिनोदित) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित (तद्विस्तारसमाचार) विस्तार समाचार है।

**भावार्थ**—पूर्व मे सक्षेप समाचार विधि कही है। इस समय उसके भेद वाले विस्तार समाचार विधि का उदाहरणमात्र कथन करते हैं। क्योकि सम्पूर्ण समाचार विधि का कथन करने के लिए कौन समर्थ है। मुनि आर्यिकाओ को जो रात्रि और दैवसिक क्रिया जिनेन्द्र ने कही है, वह विस्तार समाचार विधि है ।।४९,५०।।

**क्रियाकलापमल्पाल्पसूत्राण्याचारवर्णनम् ।**
**पठदेथ पुराणानि त्रिकलो स्थितिकीर्तनम् ।।५१।।**

**सिद्धांत तर्कमगांगवाह्यादेशार्थदेशनम् ।**
**स्वीयशक्त्यनुसारेण भक्त्या मोक्षैककांक्षया ।।५२। युग्मम्।**

**अन्वयार्थ**—(अथ) इसके वाद (स्वीयशक्त्यनुसारेण) अपनी शक्ति के अनुसार (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (मोक्षैककाक्षया) मोक्ष की अद्वितीय आकाक्षा से (त्रिकल) रत्नत्रयधारी (क्रियाकलाप) क्रिया कलाप को (अल्पाल्यसूत्राणि) अल्पाल्प सूत्रो को (आचारवर्णन) आचरण वर्णन करने वाले शास्त्रो को (पुराणानि) पुराणो को (स्थितिकीर्त्तनम्) स्थितिकीर्तन (तर्क) तर्कशास्त्र (अगागवाह्यदेशार्थदेशनम्) अगवाह्य, अगप्रविष्ट का कथन करने वाले (सिद्धान्त) सिद्धान्त ग्रन्थो को (पठेत्) पढे।

**भावार्थ**—क्रियाकलाप जिसमे श्रावक और मुनियो के क्रियाओ का वर्णन हो। अल्पाल्यसूत्र-जिसमे अल्प अक्षर हो और वहुत विषय का वर्णन हो। आचारवर्णन-जिसमे ग्रहस्थ और मुनियो के चारित्र का वर्णन हो। पुराण-जिसमे त्रेपठ शलाका पुरुषो का वर्णन हो। स्थितिकीर्तन-जिसमे मोहनीय आदि सारे कर्मो की सर्व प्रकृतियो का जघन्य उत्कृष्ट स्थितिवन्ध का वर्णन हो। सिद्धान्त ग्रन्थ-पट्खड आदि सिद्धान्तग्रन्थ जिनमे गुण स्थान, मार्गणा, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, उपयोग आदि सारे सिद्धान्तो का वर्णन हो। प्रमाण, नय के द्वारा जिसमे वस्तु की सिद्धि की जाती है वह तर्क शास्त्र है। गणधर के द्वारा पदो मे रचित वारह अग हैं। दशवैकालिक आदि अगवाह्य ग्रन्थ है। साधु अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि पूर्वक उन शास्त्रो का अध्ययन करे ।।५१,५२।।

**रुचिश्चार्वी चरित्राणां शरणं शरणं सताम् ।**
**महत्वसत्वगांभीर्यधैर्यादिगुणभूषणः ॥५३॥**

**चिरप्रव्रजितो दांतः प्रव्यक्तसमयस्थितिः ।**
**दयावात्सल्यसाकल्यः शांतोऽयं गणितोचितः ॥५४॥**

**अन्वयार्थ**—(सता) समीचीन (चरित्राणि) चारित्रो की (शरणं) रक्षा करने वाला (शरण) शरणभूत चार्वी) श्रेष्ठ (रुचि) श्रद्धानवाला (महत्वसत्वगाभीर्यधैर्यादिगुणभूषण) महानता, सत्व, गभीरता, धैर्यादि गुणो से भूषित (चिरप्रव्रजित) चिरकाल का दीक्षित (दात) इन्द्रियविजयी (प्रव्यक्तसमयस्थितिः) लोकस्थिति का ज्ञाता दयावात्सल्यसाकल्य) दया, वात्सल्यादि से परिपूर्ण (शात) क्षमाशील (अय) यह साधु (गणितोचित) आचार्य पद के योग्य हैं ।

**भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का धारी, सत्वधारी, गभीर, धीर, वीर, इन्द्रियविजयी, क्षमाशील, लोकव्यवहारक साधु ही आचार्य पद के योग्य होता है ॥५३,५४॥

**इति सूर्यपिताचार्यपदः सन् सघसम्मतः ।**
**प्रायश्चितादिशास्त्राणि रहस्यानि पठदेथ ॥५५॥**

**अन्वयार्थ**—(इति) इस प्रकार (अथ) शास्त्रो का अध्ययन कर लेने पर (सघसम्मतः) सघ की सम्मति से (सूर्यपिताचार्यपद) आचार्य के द्वारा अर्पित किया गया है आचार्य पद जिसको ऐसा साधु (रहस्यानि)-रहस्यभूत (प्रायश्चितादिशास्त्राणि) प्रायश्चित आदि शास्त्रो को (पठेत्) पढे ।

**भावार्थ**—पूर्व मे गुरु के समीप पुराण, सिद्धान्त आदि शास्त्रो का अध्ययन करे तदनन्तर आचार्य के द्वारा आचार्य पद अर्पण करने के वाद रहस्यभूत प्रायश्चित ग्रन्थो का अध्ययन करे ॥५५॥

**यः शिष्यत्वमकृत्वैव सूरितां कर्तुमीहते ।**
**सः स्यादुन्मार्गगस्तीक्ष्णो वाऽशिक्षिततुरंगमः ॥५६॥**

**अन्वयार्थ**—(य) जो (शिष्यत्व) शिष्यत्व को (अकृत्वा) नही करके (एव) ही (सूरिता) आचार्य (कर्तु) वनना (ईहते) चाहता है (स) वह (अशिक्षिततुरगम) अशिक्षित घोडे के समान (तीक्ष्ण) तीक्ष्ण (उन्मार्गग) उन्मार्ग-गामी (स्यात्) हो जाता है ।

**भावार्थ**—जो साधु शिष्यत्व को स्वीकार नही करके आचार्यत्व प्राप्त करने की चेष्टा करना चाहता है वह अशिक्षित घोडे के समान उन्मार्गगामी हो जाता है ॥५६॥

**सर्वसत्वगुणिक्लेशिनिर्गुणेषु करोत्वलम् ।**
**मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि यथाक्रमम् ॥५७॥**

**अन्वयार्थ**—(सर्वसत्वगुणिक्लेशिनिर्गुणेषु) वे मुनि सर्वजीव, गुणी, दुखी और निर्गुणियो मे (यथाक्रमम) यथाक्रम से (मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि) मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, और माध्यम भाव को (अल) अतिशयरूप से (करोतु) करे ।

**भावार्थ**—साधुओ को सर्व जीवो के साथ मैत्रीभाव, गुणिजनो के साथ प्रमोदभाव, दुखी दीन जनो को प्रति कारुण्यभाव, तथा दुर्जन क्रूर कुमार्ग गामी के प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिए ॥५७॥

जिनान् सिद्धान् गणाधीशानुपाध्यायाञ्जगद्गुरून् ।
साधून् धर्मं जगच्छर्मकरं वन्देत नेतरान् ॥५८॥

**अन्वयार्थ**—साधुगण (जिनान्) जिन (सिद्धान्) सिद्ध (गणाधीशान्) आचार्य (उपाध्यायान्) उपाध्याय (जगदगुरुन्) जगतगुरु (साधून्) साधुओ (जगच्छर्मकर) जगत मे सुखकारी (धर्मं) धर्म को (वन्देत) नमस्कार करे (इतरान्) दूसरो को (न) नमस्कार नही करे ।

**भावार्थ**—दिगम्बर साधु अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन धर्म, जिनविम्ब और जिन शास्त्रो, को ही नमस्कार करे । इनके सिवाय अन्य लोगो को, पाखण्डियो को, नमस्कार नही करे ॥५८॥

क्षुतार्तो भयजृम्भेष्टार्थारंभस्खलने बुधैः ।
शयने विस्मयादौ च स्मर्तव्यो वृजिनो जिन॥५९॥

**अन्वयार्थ**—(क्षुतार्तोभयजृभेष्टार्थारभस्खलने) भूख, प्यास, पीडा, भय, जृभा और इष्ट अर्थ के आरम्भ मे स्खलित होने पर (शयने) शयन मे (विस्मयादौ) आश्चर्य आदि के होने पर (बुधैः) बुद्धिमानो को (वृजिन) कामक्रोधादिकनाशक (जिन) जिनेन्द्र भगवान का (स्मर्तव्य) स्मरण करना चाहिये ।

**भावार्थ**—बुद्धिमानो को भूख, प्यास, दुख, भय मे और जभाई आदि के आने पर, अपने इष्ट कार्य मे स्खलित हो जाने पर, शयन मे तथा विस्मयादि के हो जाने पर जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करना चाहिये ॥५९॥

सुखेनासीनमव्यग्र सूरिं वदेत् सम्मुखम् ।
वदेऽहमिति विज्ञाप्य हस्तमात्रांतरस्थितः ॥६०॥

प्रमृज्य कर्तरीस्पर्शात्माण्टागान्यवनीमपि ।
पश्चर्द्धशय्ययाऽऽनम्य सपिच्छांजुलिभालक. ॥६१॥

**अन्वयार्थ**—(हस्तमात्रातरस्थित) हस्तमात्र अन्तर मे स्थित होकर (अहं) मैं (वन्दे) वन्दना करता हू (इति) इस प्रकार (विज्ञाप्य) विज्ञापन करके (सन्मुख) सन्मुख होकर (कर्तरीस्पर्शात्मात्यगानि) कर स्पर्श किये हुये अपने अष्ट अंगो को (अपि) और (अवनी) पृथ्वीतल को (प्रमृज्य) मार्जन करके (सपिच्छांजुलिभालक) पिच्छि सहित अजुलि है मस्तक पर जिनके ऐसा मुनि (पश्चर्द्धशय्यया) गवासन मे (आनम्य) झुककर (अव्यग्र) अनाकुल होकर (सुखेन) सुख पूर्वक (आसीन) बैठे हुये (सूरि) आचार्य को (वन्देत) नमस्कार करे ।

**अन्वयार्थ**—(विगौरवादिदोषेण) ऋद्धि, गौरव, आदि दोष रहित (सपिच्छाजुलिशालिना) पिच्छि सहित है अजुलि जिसकी ऐसे (सदब्जसूर्याऽऽचार्येण) सज्जनरूपी कमल के लिए सूर्य के समान आचार्य के द्वारा (प्रतिवदनम्) प्रतिवन्दना (कर्तव्य) करना चाहिए ।

**भावार्थ**—जब मुनिराज आचार्य को वन्दना करते है तब सज्जनकमलवनदिवाकर आचार्य, ऋद्धिगौरव, रस गौरव, ज्ञान गौरव से रहित होकर हाथ मे पिच्छि लेकर नमोस्तु कहकर प्रतिवन्दना करे ।।६२।।

**ये दोषान्वेषिणोऽन्येषां सद्गुणावर्णवर्णनाः ।**
**तपस्विनोऽपि पार्श्वस्था ये च वंद्या न ते यतेः ।।६३।।**

**अन्वयार्थ**—(ये) जो (अन्येषा) दूसरो के (दोषाचेषिण) दोषो का अन्वेषण करने वाले है (च) और (सद्गुणावर्णवर्णना) सद्गुणो को आच्छादन करने वाले तथा (ये) जो (पार्श्वस्था) पार्श्वस्थ हैं (ते) वे (तपस्विन) तपस्वी होते हुए(अपि) भी (यतेः) यति के (वद्या) वन्दनीय (न) नही है ।

**भावार्थ**—जो मुनि दूसरो के दोषो का कथन करता है तथा उनके सद्गुणो का आच्छादन करता है अथवा जो पार्श्वस्थ मुनि है वे साधुओ के द्वारा वदनीय नही है ।।६३।।

**पुरो गुरुणां स्थातव्यं न यथेष्टमकोपयन् ।**
**तानापृच्छेद्वचस्तेषा प्रतीच्छेत्तत्परो भवेत् ।।६४।।**

**अन्वयार्थ**—(गुरुणा) गुरुओ के (पुरा) सामने (न स्यातव्य) नही बैठना चाहिए (तान्) उनको (अकोपयन्) कुपित नही करके (यथेष्ट) अपनी इच्छित बात को (पृच्छेत्) पू छना चाहिए (तेषा) उनके (वच) वचनो को (प्रतीच्छेत्) स्वीकार करते हुए (तत्परोभवेत्) उसमे लीन होना चाहिए ।

**भावार्थ**—गुरु के सामने बैठना नही चाहिए, आचार्य को कुपित नही करते हुए अपनी इच्छा को पूछे तथा उनकी बात को तत्पर होकर स्वीकार करे ।।६४।।

**हस्तद्वयेन दातव्यं ज्येष्ठेभ्यः पुस्तकादिकम् ।**
**तत्तद्देयं करद्वन्द्वेनादेयं विनयानतैः ।।६५।।**

**अन्वयार्थ**—(ज्येष्ठेभ्य) अपने बडे गुरु आदि को (हस्तद्वयेन) दोनो हाथो से (पुस्तकादिकम्) पुस्तकादि (दातव्य) देना चाहिए (तत्तद्देय) उनके द्वारा दी हुई पुस्तकादि (विनयानतै) विनयशील पुरुष के द्वारा (करद्वयेन) दोनों हाथो से (आदेय) लेनी चाहिये ।

**भावार्थ**—अपने गुरु आदि को विनयपूर्वक दोनो हाथो से पुस्तक देना चाहिए और उनके द्वारा दी हुई पुस्तक आदि को भी महान आदर से दोनो हाथो से ही ग्रहण करना चाहिये ।।६५।।

**नमोऽस्त्विति नतिः शस्ता समस्तमतसंमता ।**
**कर्मक्षयः समाधिर्तेऽस्त्वित्यार्याजने नते ।।६६।।**

**धर्मवृद्धि· शुभं शांतिरस्त्वित्याशीरगारिणि ।**
**पापक्षयोऽस्त्विति प्राज्ञैश्चाण्डालादिषु दीयताम् ।।६७।।**

**अन्वयार्थ**—(नमोस्तु) नमस्कार हो (इति) इस प्रकार की (नति) नमस्कार मुनियो मे (समस्तमत समता) सबने माना है (आर्याजने) आर्यिकाओ के (नते) नमस्कार करने पर (ते) तेरा (कर्मक्षयः) कर्मक्षय हो (समाधि) तेरी समाधि (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार कहना चाहिये। (अगारिणि) जिनधर्मावलम्बी गृहस्थो के नमस्कार करने पर (धर्मवृद्धि) धर्मवृद्धि हो (शुभ) शुभ हो (शाति) शाति (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार (आशी) आशीर्वाद (दीयता) देना चाहिए (चाण्डालादिषु) चाडाल आदि के नमस्कार करने पर (प्राज्ञै) बुद्धिमानो के द्वारा (पापक्षय) तेरा पापक्षय (अस्तु) हो (इति) इस प्रकार आशीर्वाद देना चाहिए।

**भावार्थ**—दिगम्बर साधु परस्पर मे नमोस्तु ऐसा व्यवहार करें। यदि दिगम्बर साधु को आर्यिका नमस्कार करे तो तेरा कर्म क्षय हो। तुम्हारी समाधि हो ऐसा आशीर्वाद दे तथा जिन धर्मावलम्बी गृहस्थ के नमस्कार करने पर तेरे धर्म की वृद्धि हो, तुम्हारा कल्याण हो, शाति हो, मन प्रसन्न हो इत्यादि आशीर्वाद देना चाहिए तथा चाडालादि के नमस्कार करने पर तेरा पाप क्षय हो ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए ॥६६,६७॥

**मान्यः सद्दर्शनो ज्ञानी हीनोऽप्यपरसद्गुणैः।**
**वरं रत्नमनिष्पन्नशोभं किं नार्घ्यमर्हति ॥६८॥**

**अन्वयार्थ**—(अपरसद्गुणैं) उत्तरगुणो से (हीन) हीन (अपि) भी (सद्दर्शनी) सम्यग्दृष्टि (ज्ञानी) ज्ञानवान मुनि (मान्य) माननीय हैं (अनिष्पन्नशोभ) जिसकी शोभा निष्पन्न नही है ऐसा (वर) श्रेष्ठ (रत्न) रत्न (कि) क्या (अर्घ्य) बहुमूल्य को (न) नही (अर्हति) प्राप्त करता है।

**भावार्थ**—जो मुनि अपर-उत्तर गुणादि सद्गुणो से सम्पन्न नही है परन्तु सम्यग्दृष्टि है, ज्ञानी है तो वह श्रेष्ठ है, वदनीय है। क्योकि श्रेष्ठरत्न यदि सस्कार आदि से रहित है तो भी बहुमूल्य होता है ॥६८॥

**उक्तिः कार्या सहाचार्यैः कार्यार्थे शेषयोगिभिः।**
**न मिथ्यादृष्टिभिर्भाज्या श्रावकैः स्वजनैश्च सा ॥६९॥**

**अन्वयार्थ**—(आचार्यै) आचार्य के (सह) साथ (उक्ति) वार्तालाप (कार्या) करना चाहिए (शेषयोगिभि.) शेष योगियो के साथ (कार्यार्थे) कोई विशिष्ट कार्य होने पर वार्तालाप करना चाहिए (मिथ्यादृष्टिभि न) मिथ्यादृष्टि के साथ वार्तालाप नही करना चाहिए (च) और (स्वजनै) स्वजन (श्रावकै) श्रावको के साथ (सा) वह वार्तालाप (भाज्या) भजनीय है।

**भावार्थ**—मुनि उन आचार्यों के साथ वार्तालाप करे। शेष मुनिजनो के साथ कोई कार्य विशेष हो तो वार्तालाप करे। मिथ्यादृष्टियो के साथ कभी भी वार्तालाप नही करे। जिनधर्मावलम्बी श्रावको के साथ कभी किसी कार्यवश बात करे और निष्प्रयोजन कभी वार्तालाप न करे ॥६९॥

**स्पृष्टे कपालिचांडालपुष्पवत्यादिके सति।**
**जपेदुपोषितो मंत्रं प्रागुप्लुत्याशु दंडवत् ॥७०॥**

**अन्वयार्थ**—(कपालिचाडालपुष्पवत्यादिके) कापालिक, चाडाल, पुष्पवती स्त्री आदि के (स्पृष्टे) स्पर्श (सति) हो जाने पर (प्राग्) प्रथम (दडवत्) दड के समान (आशु) शीघ्र ही (उप्लुत्य) स्नान कर (उपोषित) उपवास करता हुआ (मत्र) मत्र को (जपेत्) जपे।

**भावार्थ**—यदि कापालिक, चाडाल, पुष्पवती (मासिक धर्म वाली) स्त्री का स्पर्श हो जावे तो शीघ्र ही दडवत् स्नान करे और उपवास करके णमोकारमत्र का जाप्य करे ॥७०॥

संस्तरावासयोः प्रेक्षा कार्या कल्पास्तकालयोः ।
प्रकाशे सूरिभिः सार्धं वृत्तिश्चावश्यकादिषु ।।७१।।

**अन्वयार्थ**—[कल्पास्तकालयो ] सूर्य के उदय और अस्तकाल मे [सस्तरावासयो ] सस्तर और आवास का [प्रेक्षा] निरीक्षण [कार्या] कार्य करना चाहिए [च] और [प्रकाशे] प्रकाश मे [आवश्यकादिषु] आवश्यकादि क्रियाओ मे [सूरिभिः] आचार्य के [सार्धं] साथ [वृत्ति ] वृत्ति करना चाहिये ।

**भावार्थ**—सूर्य के अस्त और उदयकाल मे प्रकाश मे सस्तर और आवासादि का निरीक्षण करना चाहिये तथा सामायिक आदि आवश्यक क्रिया आचार्य के साथ करनी चाहिये ।।७१।।

मुनिनैकेन नो वाच्यमेकार्या यदि पृच्छति ।
गणमुख्यां पुरस्कृत्य पृष्ट ब्रूयात् तदीक्षितम् ।।७२।।

**अन्वयार्थ**—[यदि] यदि [एका] अकेली [आर्या] आर्यिका [पृच्छति] कोई बात पूछती हो तो [एकेन] एक [मुनिना] मुनि को [न] नही [वाच्य] बोलना चाहिए [यदि गणमुख्या] यदि गणनी को [पुरस्कृत्य] आगे करके [पृष्ट] पूछे तो [तदीप्सित्त] उसकी इच्छित बात को [ब्रूयात्] मुनि बोले ।

**भावार्थ**—यदि अकेली आर्यिका अकेले मुनि को कोई बात पूछे तो मुनि को उत्तर नही देना चाहिये । यदि अपनी गणिनी को साथ मे लेकर आवे और कोई बात पूछे तो उत्तर देना चाहिये ।।७२।।

मालालापं कथाश्चार्याजनैः साद्धं यमी त्यजेत् ।
तदाश्रयेऽशनं स्थानं व्याख्यानं शयनादिकम् ।।७३।।

**अन्वयार्थ**—[यमी] साधु [आर्याजनै.] आर्यिकाओ के साथ [मालालाप] स्पर्श, आलाप [च] और [कथा.] कथा को [त्यजेत्] छोड दे [तदाश्रये] आर्यिकाओ के स्थान मे [अशन] भोजन [स्थान] रहना [व्याख्यान] व्याख्यान [शयनादिक] सोना आदि [त्यजेत्] छोड दे ।

**भावार्थ**—आर्यिकाओ के साथ वार्तालाप करना, उनके स्थान मे बैठना, आवास करना, व्याख्यान देना, सोना, साधुओ को नही करना चाहिये ।।७३।।

मुनिनैकाकिनैकान्ते न स्थातव्यं कदाचन ।
योषिज्जनागमे काले सदाचारयशोऽर्थिना ।।७४।।

**अन्वयार्थ**—[योषिज्जनागमे] स्त्रियो के आगमन [काले] समय मे [एकान्ते] एकान्त मे [सदाचार-यशोऽर्थिना] सदाचार और यश के इच्छुक [मुनिना] मुनि को [एकाकिना] एकाकी [कदाचन] कभी भी [न] नही [स्थातव्य] रहना चाहिये ।

**भावार्थ**—सदाचार और यश के इच्छुक मुनियो को स्त्रियो के आगमन के समय एकान्त मे एकाकी कभी नही रहना चाहिये ।।७४।।

**नामाऽप्यानन्दनिष्यन्दि "स्त्रीति" लोचनगोचरम् ।**
**तदगमगजस्फारशरोग्रं न करोति किम् ॥७५॥**

**अन्वयार्थ**—[स्त्री] "स्त्री" [इति] इस प्रकार का [नाम] नाम [अपि] भी [आनदनिष्यन्दि] आनन्द दायक है [लोचनगोचर] तो दृष्टिगोचर हुआ [तदग] उसका अग [किं] क्या [अगजस्फारशरोग्रम्] कामदेव के स्फार वाण की उग्रता को नही करता है अर्थात् करता ही है ।

**भावार्थ**—"स्त्री" इस प्रकार का नाम भी आनन्दामृत को वर्षाने वाला है । तो फिर दृष्टिगोचर हुआ स्त्री का शरीर क्या कामोत्पादक नही होगा, अवश्य ही होगा इसलिए उसकी सगति नही करना चाहिये ॥७५॥

**स्त्रीणां दर्शनमादरेक्षणमतो वार्तेष्टवार्त्ता मनाङ् ।**
**नर्मोक्तिर्नतिनर्मरत्यनुगवाक् श्रृंगारसार वचः ॥**

**खान्तस्योल्लसनं धृतेः क्षितिरतिप्रीतिर्मतेर्भ्रान्तिता ।**
**तस्यां च स्मरवीरविशिखव्रातस्य लक्षः क्षणात् ॥७६॥**

**अन्वयार्थ**- [स्त्रीणा] स्त्रियो के [दर्शन] सामान्य दर्शन, [आदरेक्षण] आदरपूर्वक देखना [अतः] इसके वाद [तस्या वार्त्ता] उसी मे वार्त्ता [इष्टवार्त्ता] इष्टवार्ता [मनाक्] थोडी-२ [नर्मोक्ति] हसी मजाक सहित बोलना [नतिनर्मरत्यनुगवाक्] नमस्कार, हँसी, रति पीछे-२ चलना उसके अनुसार बोलना [श्रृगारसार] श्रृगारसार [वच ] वचन [स्वान्तस्य] चित्त का [उल्लसता] उल्लसित होना [धृते ] धैर्य की [क्षिति ] नाश [अतिप्रीति ] अति प्रीति [मते ] मति की [भ्रान्तिता] भ्रान्ति [च] और [स्मरवीरविशिखव्रातस्य] कामरूपी वीर के वाण के समूह का [लक्ष ] लक्ष्य [क्षणात्] क्षण मे हो जाता है ।

**भावार्थ**—पूर्व मे (पुरुष) स्त्रियो को सामान्य रूप से देखता है, पुन आदर पूर्वक देखता है, तदनन्तर इष्ट वार्तालाप करता है, थोडी-२ हँसी मजाक सहित वोलता है, तदनन्तर नमस्कार, प्रेम सहित अनुगमन एव उसके अनुसार अति प्रेम श्रृंगार के वचनादि वोलता है जिससे उसका चित उल्लसित हो जाता है, धैर्य नष्ट हो जाता है, मति भ्रमित हो जाती है इस प्रकार एक क्षण मे वह काम वाणो से पीडित हो जाता है ॥७६॥

**चिरप्रव्रजितः सूरि स्थविर श्रुतपारग ।**
**तपस्वीति यतो नास्ति गणना विषमायुधे ॥७७॥**

**अन्वयार्थ**—[यत ] क्योकि [विपमायुधे] कामवासना मे [सूरि ] आचार्य हैं [चिरप्रव्रजित ] चिरकाल का दीक्षित है [स्थविर.] स्थविर है [श्रुतपारग ] श्रुत का पारगामी है [तपस्वी] तपस्वी है [इति] इस प्रकार की [गणना] कोई गणना [नास्ति] नही है ।

**भावार्थ**—काम के उत्पन्न होने मे आचार्य चिरदीक्षित, स्थविर, श्रुतपारगामी आदि की गणना नही है । अर्थात् चिरदीक्षित, तपस्वी, श्रुतपारगामी भी त्यागी काम के वशीभूत हो जाते हैं ॥७७॥

विधवी लिंगिनी कन्यां स्वैरिणीं गणिकादिकाः ।
आसजन्नचिराद्भिक्षुरपवादैकमन्दिरम् ॥७८॥

**अन्वयार्थ**—(विधवा) विधवा (लिंगिनी) स्त्री सामान्य (कन्या) कन्या (स्वैरिणी) वैश्या (गणिकादिका) गणिनी आदि की (आसजन्) सगति करता हुआ (भिक्षु) भिक्षु (अचिरात्) शीघ्र ही (अपवादैकमन्दिरम्) अपवाद का स्थान होता है ।

**भावार्थ**—कन्या विधवा, रानी वा विलासिनी, स्वेच्छाचारिणी, दीक्षा धारण करने वाली ऐसी स्त्रियो से क्षणमात्र भी वार्तालाप करता हुआ मुनिराज भी लोकनिंदा का पात्र होता है ॥७८॥

संवृतांगोऽतिगंभीरो जिताखिलपरीषहः ।
ज्ञानचारित्रवान् सूरिरार्याणां मितभाषणः ॥७९॥

**अन्वयार्थ**—(सवृताग) सवृताग (अतिगभीर) अतिगभीर (जिताखिलपरीषह) अखिल परीषह को जीतने वाला (ज्ञानचारित्रवान्) ज्ञानचारित्रवान (मितभाषण) मितभाषी (आर्याणा) आर्यिकाओ का (सूरि) आचार्य होता है ।

**भावार्थ**—इन्द्रियविजयी, गभीर, परीषहजयी, मितभाषी, सम्यग्ज्ञान और उत्कृष्ट चारित्र शील साधु ही आर्यिकाओ का आचार्य हो सकता है ॥७९॥

आज्ञाभंगादिदोषार्हः करोति यदि सूरिताम् ।
मदोदयाद्गुणव्रातेनैतेन रहितो यतिः ॥८०॥

**अन्वयार्थ**—(यदि) यदि (एतेन) इन (गुणव्रातेन) गुणो के समूह से (रहित) रहित (यति) यति (मदोदयात्) मान के उदय से (सूरिता) आचार्यपना (करोति) करता है तो (आज्ञाभगादिदोषार्ह) आज्ञा भगादि दोषो के योग्य होता है ।

**भावार्थ**—जो मुनि पूर्व कथित गुण सहित नही हैं और मान कषाय के वशीभूत होकर आर्यिकाओ का आचार्य-पना करता है तो आज्ञा का भग, निंदा, गणपोषण, गच्छ आदि की विराधना होती है ॥८०॥

लज्जाविनयवैराग्यसदाचारादिभूषिते ।
आर्याव्राते समाचारः संयतेष्विव किन्त्विह ॥८१॥

**अन्वयार्थ**—(लज्जाविनयवैराग्यसदाचारादिभूषिते) लज्जा, विनय, वैराग्य, सदाचार आदि से भूपित (आर्याव्राते) आर्यिकाओ के समूह मे (समाचार) समाचार विधि (सयतेषु) सयतो के (इव) समान ही है (किन्तु) परन्तु (इह) इसमे कुछ अन्तर है ।

**भावार्थ**—जो समाचार विधि सयमियो की कही है वही समाचार विधि आर्यिकाओ की है परन्तु आतापन योगादि कुछ विधि आर्यिकाओ के नही है ॥८१॥

"आर्यिकाओं का वर्णन"

द्वयाद्याः समं वसंत्यार्या गृहस्थासंकराश्रये ।
तद्गृहानतिदूरातिसमीपेऽवद्यवर्जिते ॥८२॥

**अन्वयार्थ**—(तद्गृहानितदूरातिसमीपे) गृहस्थियो के घर से अत्यन्त निकट भी नही और अत्यन्त दूर भी नही (अवद्यवर्जिते) सावद्य रहित (गृहस्थासकराश्रये) गृहस्थो से अमिश्रित गृह मे (द्वया:) दो आदि के (सम) साथ (आर्या) आर्यायें (वसति) रहती हैं।

**भावार्थ**—जो असयमी जनो के आवास से रहित हो, श्रावको के घर से अत्यन्त दूर भी नही और अत्यन्त समीप भी नही हो, सर्व सावद्य से रहित हो, ऐसे स्थान मे दो तीन आदि आर्यिका मिलकर रहे। अकेली नही रहे। आर्यिकाओ को अकेली रहना आगम मे निषिद्ध है ॥८३॥

मौनेनाटंतिभिक्षार्थं वृद्धार्यान्तरिता गृहान् ।
अन्योन्यपरिरक्षानुकूलवृत्तिपरायणाः ॥८३॥

**अन्वयार्थ**—ये आपिकाए (अन्योन्यपरिरक्षानुकूलवृत्तिपरायणा) परस्पर मे रक्षा अनुकूल वृत्ति मे तत्पर (वृद्धार्यान्तरिता) वृद्ध आर्यिकाओ से अन्तरित (मौनेन) मौन पूर्वक (भिक्षार्थ) भिक्षा के लिए (अटति) भ्रमण करती है।

**भावार्थ**—जब आर्यिकाये आहार के लिए जाती हैं, तब वृद्ध आर्यिकाओ से अन्तरित परस्पर मे एक दूसरे की रक्षा करती हुई दो तीन मिलकर मौन पूर्वक भ्रमण करती हैं, आहार के समय भी अकेली आर्यिका नही जाती है, दो तीन साथ मे जावें। आर्यिकाओ का कर्त्तव्य है कि वह परस्पर अनुकूल वृत्ति तथा रक्षा करने मे तत्पर रहे ॥८३॥

अन्यदावश्यगन्तव्यं धर्मकार्यं गृहेस्ति चेत् ।
गणिन्यादेशतो याति द्वयाद्याः सार्धं न चान्यथा ॥८४॥

**अन्वयार्थ**—(चेत्) यदि (गृहे) श्रावक के घर मे (अन्यदा) भिक्षा के काल से अन्यकाल मे (अवश्यगतव्य) अवश्य जाने योग्य (धर्मकार्य) धर्मकार्य (अस्ति) हो तो (गणिन्यादेशत) गणिनी के आदेश से (द्वयाद्या) दो आदि के (सार्धं) साथ (याति) जाती है (अन्यथा) अन्यथा (न) नही जाती है।

**भावार्थ**—आर्यिकाओ को बिना प्रयोजन पराये स्थान पर नही जाना चाहिये। यदि अवश्य जाना हो तो भिक्षा आदि काल मे बडी आर्यिका को पूछकर अन्य आर्यिकाओ को साथ लेकर जाना चाहिये ॥ ८४ ॥

नमन्ति सूर्यपाध्यायसाधूनार्या यथाक्रमम ।
पचषट्सप्तहस्तान्तरालस्थाः पशुशय्याः ॥८५॥

**भावार्थ**—आर्यिकाये आचार्यो को पाच हाथ दूर से, उपाध्याय को छह हाथ दूर से और साधुओ को सात हाथ दूर से बैठकर वदना, आलोचना, अध्ययन, स्तुति करती हैं ।। ८५ ।।

**कर्मभूद्रव्यनारीणां नाद्यं संहननत्रयम् ।**
**वस्त्रादानाच्चारित्र च तासां मुक्तिकथा वृथा ।।८६।।**

**अन्वयार्थ**—(कर्मभूद्रव्यनारीणा) कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाली द्रव्य स्त्रियो को (आद्य) आदि के (सहननत्रय) तीन सहनन (न) नही होते हैं (च) और (वस्त्रादानात्) वस्त्रो का आदान होने से (चारित्र) चरित्र भी पूर्ण नही होता है (तासा) उन स्त्रियो मे (मुक्तिकथा) मुक्ति की कथा तो (वृथा) व्यर्थ है ।

**भावार्थ**—कर्मभूमि स्त्रियो के वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच, ये आदि के तीन सहनन नही होते है । इनसे वस्त्रो का पूर्ण त्याग नही होता है, इसलिये चरित्र भी पूर्ण नही है, उन स्त्रियो को मुक्ति होती है ऐसा कहना तो निष्प्रयोजन है ।। ८६ ।।

**यदि त्रिरत्नमात्रेण सा पुसां नग्नता वृथा ।**
**तिरश्चामपि दुर्वारा निर्वाणाप्तिरलिंगिता ।।८७।।**

**अन्वयार्थ**—(यदि) यदि (त्रिरत्नमात्रेण) रत्नत्रय मात्र से (सा) वह मुक्ति मिल जाय तो (पु सा) पुरुषो का (नग्नता) नग्नत्व (वृथा) व्यर्थ है और (तिरश्चा) तिर्यंचो के (अपि) भी (अलिंगिता) बिना लिग ही (निर्वाणाधि) निर्वाण की प्राप्ति (दुर्वारा) दुर्निवार होगी ।

**भावार्थ**—एक देश रत्नत्रय से स्त्रियो को मुक्ति की प्राप्ति होती है, तो पुरुषो की नग्नता व्यर्थ है, अर्थात् पुरुषो को भी नग्न नही होना चाहिये । उनको भी वस्त्र सहित मुक्त हो जायेगी । तथा एक देश रत्नत्रय तो तिर्यंचो को भी होता है, इसलिये उनको तो मुक्ति हो जानी चाहिये ।। ८७ ।।

**मुक्तिश्चेदस्ति किं नासां प्रतिमाः स्तवनान्यपि ।**
**क्रियन्ते पूज्याश्चेत्तासां मुक्तेर्दत्तो जलांजुलिः ।।८८।।**

**अन्वयार्थ**—(चेत्) यदि (आसा) इन स्त्रियो को (मुक्ति) मुक्ति (अस्ति) है, तो (तासा) उनकी (प्रतिमा) प्रतिमा (स्तवनान्यपि) स्तवन भी (कि) क्यो (न) नही (क्रियन्ते) किये जाते हैं (चेत्) यदि ये (पूज्या) पूज्य हैं तो (तासा) उनकी (मुक्तेः) मुक्ति की (जलाजुलि) जलाजुलि (दत्त) देदी ।

**भावार्थ**—यदि उन स्त्रियो को मुक्ति होती है तो उनकी प्रतिमा और स्तोत्र क्यो नही है । यदि कहो कि वह पूज्य है तो सत्य है । मुक्ति के लिये तिलाजलि देदी । अर्थात् पूज्य होने मात्र से मुक्ति की पात्र नही है ।। ८८ ।।

**देशव्रतान्वितैस्तासामारोप्यन्ते बुधैस्ततः ।**
**महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारतः ।।८९।।**

**अन्वयार्थ**—(तत) इसलिये (बुधै) बुद्धिमानो के द्वारा (तासा) उन आर्यिकाओ के (सज्जातिज्ञप्त्यर्थं)

सज्जाति की ज्ञप्ति के लिये (उपचारत) उपचार से (देशव्रतान्वितैः) देश व्रतो से युक्त (महाव्रतानि) महाव्रत (आरोप्यते) आरोपण किये जाते हैं।

भावार्थ—यद्यपि स्त्रिया पूर्णमहाव्रत को धारण नही कर सकती हैं, तथापि उनकी सज्जाति को प्रकट करने के लिये आचार्य आर्यिकाओ मे देशव्रत के साथ उपचार से महाव्रतो का आरोपण करते हैं, अर्थात् आर्यिकाओ के वास्तविकता से तो देश सयम है क्योकि इनके पाचवा गुण स्थान हैं, परन्तु उपचार से महाव्रत कहे जाते हैं ॥ ८९ ॥

**ऋतौ स्नात्वा तु तुर्येऽह्नि शुद्ध्यंत्यरसभुक्तयः।**
**कृत्वा त्रिरात्रमेकान्तरं वा सज्जपसंयुताः ॥९०॥**

अन्वयार्थ—(ऋतौ) मासिकधर्म के समय आर्यिकायें (सज्जपसयुता) सज्जप युक्त (त्रिरात्र) तीन दिन तक (अरसभुक्तय) नीरस आहार (वा) अथवा (एकान्तर) एकान्तर भोजन (कृत्वा) करके (तुर्ये) चौथे (अह्नि) दिन मे (स्नात्वा) स्नान करके (शुद्ध्यति) शुद्ध होती है।

भावार्थ—मासिक धर्म मे आर्यिका तीन दिन तक एक स्थान बैठकर अन्तर्जल्प से णमोकार मन्त्र का जाप करती है, तथा नीरस भोजन का एक दिन बाद आहार करती है और चतुर्थ दिन स्नान करके शुद्ध होती है ॥ ९० ॥

**गानाक्रन्दनसन्मार्जनाद्यवद्यक्रियोज्झिताः।**
**जातिकीर्त्यर्चिताचाराश्चार्वीक्षान्त्यार्जवान्विता. ॥९१॥**

**अविकारवस्त्रवेषा स्वकीयकायेऽपि निःस्पृहा नित्यम्।**
**पठनपरिवर्त्तनाऽऽख्यानादिश्रुतभावनानिरताः ॥९२॥**

अन्वयार्थ—(गानाक्रन्दनसन्मार्जनाद्यवद्यक्रियोज्झिता) गीत, आक्रन्दन सन्मार्जन आदि सावद्य क्रियाओ से रहित (जातिकीर्त्यर्चिताचारा) जाति कीर्ति से पूजनीय है चारित्र जिन्होका ऐसे (क्षान्त्या) क्षमा और आर्जव से युक्त। (अविकारवस्त्रवेषा) निर्विकार वस्त्रधारी (स्वकाये) अपने शरीर मे (अपि) भी (निस्पृह) निस्पृह (नित्य) निरन्तर (पठनपरिवर्त्तनाऽऽख्यानादिश्रुतभावनानिरता) पठन, परिवर्तन, व्याख्यानादि श्रुत भावना मे रत (चार्वी) श्रेष्ठ आर्यिका होती हैं।

भावार्थ—आर्यिकाओ को गीतगाना, रोना, घर को झाडू देकर साफ करना और हिंसामय क्रिया करना निषिद्ध है। आर्यिका क्षमा आर्जव आदि गुणो से युक्त होती है। जाति कीर्त्ति मे पूज्यनीय होती है। निर्विकार वस्त्र धारण करती है। अपने शरीर मे जिनके ममत्व नही है ॥९१,९२॥

**चरंति ये चारुचरित्रसंपद**
**पद समाचारमिमं यमीशिन ।**

**समाश्रयंतेऽभ्युदयप्रमोदिन**
**परां श्रियं ते कृतिलोकनंदिनः ॥९३॥**

अन्वयार्थ—(ये यमीशिन) जो सयमी (चारुचरित्रसपद) चारित्र रूपी सपदा का (पदं) स्थान (इम) इस

(समाचार) समाचार विधि का (चरति) आचरण करते है (अभ्युदयप्रमोदिन:) अभ्युदय से हर्षित (कृतिलोकनदिन) नेपुणजनो को सतोषकारी ऐसे (ते) वे मुनिगण (परा) उत्कृष्ट (श्रिय) लक्ष्मी को (समासश्रयन्ते) प्राप्त करते हैं।

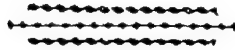
**भावार्थ**—सज्जन पुरुषो को आनन्दकारक यशस्वी मुनि और आर्यिका, चारित्र रूपी सपदा की स्थान भूत इस समाचार विधि का जो पूर्णरूप से पालन करते हैं, वे स्वर्ग सम्पदा का अनुभवकर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करते है ।।९३।।

**श्रीमान् जिन संभृतधर्मचक्र:**
**श्रुतैर्युत सारगुणैरवक्र ।**
**मनोरथाप्त्यै हृतचक्रिचक्रो**
**भूयादर पालितधर्मचक्र ।।९४।।**

**अन्वयार्थ**- (श्रीमान्) श्रीमान् (सभृतधर्मचक्र) धारण किया है धर्मचक्र को जिन्होने (सारगुणैं) सारगुण वाले श्रुतै) श्रुत से (युत) युक्त (अवक्र) सरल (हस्तचक्रिचक्र) छोड दिया है, चक्रवर्ती के चक्र को जिसने (पालित धर्मचक्र) पालित किया है धर्मचक्र को जिसने ऐसा (अर) अरनाथ (जिन) जिन (मनोरथाप्त्यै) मनोरथ की प्राप्ति के लिए (भूयात्) कारण हो ।

**भावार्थ**- जिसने चक्रवर्ती के चक्र को छोडकर धर्मचक्र को स्वीकार किया है। जो सारगुणो से युक्त है, ऐसे अतरग, बहिरग आदि लक्ष्मी से युक्त अरनाथ भगवान मेरे मनोरथ को पूर्ण करे ।।९४।।

**इति श्रीवीरनदसिद्धांतिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि ग्रथे द्वितीयोऽधिकार ।।२।।**



# अथ तृतीयाधिकार:

**श्रिय· प्रिय सगतविश्वरूप**
**सुदर्शनच्छिन्नपरावलेप ।**
**दद्यादनन्त प्रणतामरेन्द्रो**
**रमां ममाद्य परमां जिनेन्द्र ।।१।।**

**अन्वयार्थ**—(श्रिय) मोक्ष लक्ष्मी का (प्रिय) पति (सगतविश्वरूप) जान लिया है विश्व के रूप को जिसने (सुदर्शनच्छिन्नपरावलेप) सम्यग्दर्शन के द्वारा नष्ट किया है अपर भवलेप (कर्मो का लेप) जिसने (प्रणतामरेन्द्र) देवों के द्वारा नमस्कृत (अनत जिनेन्द्र.) अनन्त जिनेन्द्र भगवान (मम) मेरे लिए (अद्य) आज (परमा) परम (रमा) मोक्षलक्ष्मी को (दधात्) देवे ।

**भावार्थ**— मोक्षलक्ष्मी के पति, विश्व के ज्ञाता, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित, अविनाशी, देवो से पूज्यनीय अनन्तनाथ जिनेन्द्र भगवान मेरे लिए आज उत्कृष्ट अतरग अनन्तचतुष्टयरूप और बहिरग समवशरणादि विभूति रूप लक्ष्मी को प्रदान करे ।।१।।

दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यविशेषत ।
पंचभेदांचिताचारे तावदाद्यो निगद्यते ॥२॥

**अन्वयार्थ**—(दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यविशेत ) दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार के विशेष से । (पचभेदाचिताचारे) पाच भेद से ज्ञापित आचार मे (तावत्) पूर्व मे (आद्य ) प्रथम दर्शनाचार (निगद्यते) कहा जाता है ।

**भावार्थ**—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्रचार, तपाचार और वीर्याचार के भेद से पाँच प्रकार का आचार है । उसमे प्रथम दर्शनाचार का वर्णन किया जाता है ॥२॥

"दर्शनाचार का वर्णन"

रूचिराप्तागमार्थानां दर्शनं मूढवर्जितम् ।
प्रशमादियुगष्टांगं निसर्गाधिगमोद्भवम् ॥३॥

**अन्वयार्थ**—(आप्तागमार्थाना) आप्त, आगम और पदार्थो का (मूढवर्जित) मूढता रहित (प्रशमादियुगष्टाग) प्रशमादि गुण और अष्ट अग सहित (निसर्गाधिगमोद्भवम्) निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न (रूचि ) श्रद्धान (दर्शनम्) सम्यग्दर्शन है ।

**भावार्थ**—निशकितादि अष्टअगसहित, प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और अस्तिक्यादि ८ गुणयुक्त, लोकमूढता, गुरुमूढता, देवमूढता आदि तीन मूढता रहित, आप्त, आगम और जीवादि पदार्थो का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ।३।

व्यपेताऽशेषदोषो यः शरीरी तत्वदेशकः ।
समस्तवस्तुतत्वज्ञ. सः स्यादाप्तः सतां पतिः ॥४॥

**अन्वयार्थ**—(य ) जो (व्यपेताऽशेपदोप ) अठारह दोपो से रहित (शरीरी) शरीरधारी (तत्वदेशक ) तत्वो के उपदेशक (समस्तवस्तुतत्वज्ञ ) समस्त वस्तु तत्वो को जानने वाला है (स ) वह (सता) सज्जन पुरुषो का (पति ) स्वामी (आप्त ) आप्त (स्यात्) होता है ।

**भावार्थ**—सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी ही आप्त होता है ॥४॥

आप्तोक्तिजार्थविज्ञानमागमस्तद्वचोऽथ वा ।
पूर्वापराविरुद्धार्थं प्रत्यक्षाद्यैरबाधितम् ॥५॥

**अन्वयार्थ**—(आप्तोक्तिजार्थविज्ञान) आप्त के वचन से उत्पन्न विज्ञान (आगम ) आगम है (अथवा) अथवा (पूर्वापराविरुद्धार्थ) पूर्वापर अविरुद्धार्थ (प्रत्यक्षाद्यै ) प्रत्यक्ष अनुमानादि विज्ञान से (अबाधित) अबाधित (तद्वच ) आप्त के वचन आगम है ।

**स्याज्जीवः पुद्गलो धर्मोऽधर्म· कालो नभोऽपि च ।**
**मानेनार्थ्यन्त इत्यर्थस्तत्वं चार्थ स्वरूपता. ॥६॥**

**अन्वयार्थ**—(जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल नभ) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह (मानेन) प्रमाण के द्वारा (अर्थ्यंते) जाने जाते है (इति) इसलिए (अर्थ) अर्थ और (स्वरुपता) अपने स्वरूप से युक्त है इसलिए (तत्व) तत्व (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अपने अपने गुण पर्याय को प्राप्त होते है, इसलिए यह द्रव्य है । ज्ञानके द्वारा जाने जाते हैं अर्थात् ज्ञान का विषय है इसलिए अर्थ है तथा अपने स्वरूप मे रहते हैं दूसरे द्रव्यो के साथ सयोगी होने पर भी अपने स्वभाव को नही छोडते है इसलिए इनको तत्व भी कहते हैं ॥६॥

**स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मा द्रवति द्रोष्यत्यद्रुद्रुवत् ।**
**स्वपर्यायानिति द्रव्यमर्थस्तान्तान्विवक्षितान् ॥७॥**

**अन्वयार्थ**—(तान् तान्) उन उन (विवक्षितान्) विवक्षित (स्वपर्यायानिति) स्वकीय गुण पर्यायो को (द्रवति) प्राप्त हो रहे है (द्रोष्यति) भविष्यतकाल मे प्राप्त होगे (अदुद्रुवत्) भूत काल मे प्राप्त हुये थे (इति) इसलिए (स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मा) स्थिति व्यय और ध्रौव्यात्मक पदार्थों को (द्रव्य) द्रव्य कहते हैं ।

**भावार्थ**—जो भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल मे अपने अपने गुण पर्यायो को प्राप्त होते है, किसी भी काल मे अपने गुण पर्यायो को नही छोडते है, इसलिए जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल को द्रव्य कहते है । ये ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं वा ज्ञानका विषय है इसलिए इनको प्रमेय या अर्थ कहते है । अपने स्वरूप को कभी नही छोडते है इसलिए इनको तत्व कहते हैं । यह अस्ति रूप है इसलिए इनको भाव भी कहते हैं । यह द्रव्य स्थिति, व्यय और उत्पत्ति स्वरूप है । पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते है । उत्तर पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं और दोनो पर्यायो मे अनुस्यूत अखण्ड रूप से रहने वाले को ध्रौव्य कहते हैं ॥७॥

**गुणपर्ययवद्द्रव्यं स्याद्द्रव्यान्वयिनो गुणाः ।**
**निर्गुणाश्चेतनाद्यस्ते तद्विशेषास्तु पर्ययाः ॥८॥**

**अन्वयार्थ**—(गुणपर्ययवद्) गुण और पर्याय युक्त (द्रव्य) द्रव्य (स्यात्) है (द्रव्यान्वयिन) द्रव्य के साथ अन्वयी (निर्गुणा) स्वय गुण रहित (चेतनाद्य) चेतनादि (ते) वे (गुणा) गुण होते हैं (तु) और (तद्विशेषास्तु) उन गुणो की विशेष (पर्यया.) पर्याय होती हैं ।

**भावार्थ**—जो गुण और पर्याय से युक्त हो उसको द्रव्य कहते है । जो द्रव्य के साथ अन्वयी होकर सहभावी हो, उनको गुण कहते है । जो उन गुणो का विकार है, जो क्रम से उत्पन्न होते हैं उनको पर्याय कहते हैं । उक्तच— सहभाविनोगुणा क्रमवर्तिन पर्याया सहभावी गुण है और क्रमभावी पर्याय है ॥८॥

**जीवत्यजीवीज्जजीविष्यतीति जीवश्चिदात्मना ।**
**ज्ञाता द्रष्टा जगन्मात्रदेशोऽमूर्तश्च निर्वृत ॥९॥**

**अन्वयार्थ**—(चिदात्मना) अपने चैतन्य स्वरूप से (जीवति) वर्तमान मे जीवित है (अजीवीत्) भूतकाल मे जीवित था (जीविष्यति) भविष्यकाल मे जीवित रहेगा (इति) इसलिए (जीव) जीव है (ज्ञाता) वह जीव ज्ञाता है (दृष्टा) दृष्टा है (जगन्मात्रप्रदेश) लोक का प्रमाण प्रदेश वाला (अमूर्ति) अमूर्तिक (च) और (निवृत) निवृत है।

**कर्त्ता स्वकर्मणो भोक्ता तत्फलस्योद्ध्र्वगः क्षयात् ।**
**तस्य स्वगात्रमात्रश्च स्याद्विसर्पणसहृतेः ॥१०॥**

**अन्वयार्थ**—(स्वकर्मण) अपने कर्मों का (कर्त्ता) करने वाला है (तत्फलस्य) उन कर्मों के फल का (भोक्ता) भोगने वाला है (तस्य) उन कर्मो के (क्षयात्) क्षय हो जाने से (उद्ध्र्वग:) ऊपर गमन करने वाला है (च) और (विसर्पण-सहृते) सकोच विस्तार वाला होने से (स्वगात्रमात्र) अपने शरीर प्रमाण रहने वाला है।

**भावार्थ**—यह आत्मा तीनो काल मे अपने चैतन्य परिणामो से जीवित रहता है इसलिए जीव है। स्वपर का ज्ञाता, दृष्टा है। लोकप्रमाण असख्यात प्रदेशी है। अमूर्त है। मुक्त है। अपने कर्मों का कर्त्ता है। किये हुये कर्मों के फल का भोक्ता है। कर्मों का क्षय हो जाने से उर्ध्व गमन करने वाला है और प्रदेशो के सकोच विस्तार शक्ति वाला होने से स्व शरीर प्रमाण रहने वाला है ॥१०॥

**मुक्त ससारिभेदोऽयं मुक्तः कृत्स्नैनसोऽत्ययात् ।**
**हेमोपलो मलोन्मुक्त्या हेम स्यादमल यथा ॥११॥**

**अन्वयार्थ**—यह जीव (मुक्त ससारिभेद) मुक्त और ससारी के भेद से दो प्रकार का है (यथा) जैसे (मलोन्मुक्त्या) मल के नाश से (हेमोपल) सुवर्णपाषाण (अमल) निर्मल (हेम) सुवर्ण (स्यात्) हो जाता है उसी प्रकार (कृत्स्नैनस) समस्त पाप सयोग के (अत्ययात्) नाश हो जाने से (मुक्त) मुक्त (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार कीट कालिमा से व्याप्त हेम पाषाण अग्नि के ताप तथा पारा आदि के सयोग से कालिमा को छोडकर शुद्ध सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार यह अनादि काल से कर्म कालिमा से मलीन आत्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के सयोग से कर्म कालिमा को नाशकर शुद्ध परमात्मा (मुक्तात्मा) बन जाता है ॥११॥

**अनादिकर्मसतानसश्लेषात् क्लेशभाजनम् ।**
**ससारी स्यात्त्रसस्थावराद्यैर्भेदैरनेकधा ॥१२॥**

**अन्वयार्थ**—(अनादिकर्मसतानसश्लेषात्) अनादिकालीन कर्म सतान के सयोग से यह आत्मा (क्लेशभाजन) क्लेश का भाजन (त्रसस्थावराद्यै) त्रस स्थावर आदि (भेदै,) भेदो से (अनेकधा) अनेक प्रकार का (ससारी) ससारी (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, वादर, सूक्ष्म की अपेक्षा छह युगल इनमे सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित वनस्पति मिलाने से सात युगल होते है। इनको पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा गुणा करने से ४२ भेद होते हैं।

त्रस के भेद—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय इनको पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त इन तीनो से गुणा करने से ९ भेद होते है। कर्मभूमि मे होने वाले पचेन्द्रिय तिर्यंचो के तीन भेद होते हैं। जलधर, स्थलधर, नभचर, । ये तीनों ही तिर्यंच सज्ञी और असज्ञी होते हैं तथा गर्भज और सम्मूर्छन होते हैं, परन्तु गर्भजो मे पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त ही होते

है। इसलिये गर्भज के बारह भेद और सम्मूर्छनो मे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त, तीनो ही भेद होते हैं। इसलिए सम्मूर्च्छनो के अठारह भेद; ये सब मिलकर पचेद्रिय कर्मभूमिज तिर्यंचो के तीस भेद होते हैं। भोगभूमि मे पचेन्द्रिय तिर्यंचो के स्थलचर, नभचर दो ही भेद होते हैं और ये दोनो ही पर्याप्त तथा निवृत्यपर्याप्त ही होते है। इसलिय भोगभूमिज तिर्यञ्चो के चार भेद और उक्त कर्मभूमि सम्बन्धी तीस भेद, उक्त पूर्व भेदो मे मिलाने से तिर्यञ्चगति सम्बन्धी सम्पूर्ण जीवसमास के ८५ भेद होते हैं। भोगभूमि मे जलचर, सम्मूर्छन तथा असज्ञी जीव नही होते हैं।

आर्यखण्ड मे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त तीनो ही प्रकार के मनुष्य होते हैं। म्लेच्छखण्ड मे लब्ध्यपर्याप्त को छोडकर दो प्रकार के ही मनुष्य होते हैं। इसी प्रकार भोगभूमि, कुभोगभूमि, देव, नारकियो मे भी दो ही भेद होते हैं। इसलिए सब मिलाकर जीवसमास के ६८ भेद होते हैं।

**अथवा**—शुद्धपृथिवी, स्वरपृथिवी, जल, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद, इतरगोद इनके बादर सूक्ष्म के भेद से १४ भेद, तृण, वल्ली, गुल्म, वृक्ष और मूल इस तरह प्रत्येक वनस्पति के ५ भेदो के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित के भेद से १० भेद विकलेन्द्रियो के द्वीन्द्रियादिक ३ भेद, इस तरह २७ भेदो का पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त से गुणा करने पर ८१ भेद होते हैं। कर्मभूमिज पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे गर्भजो के १२, सम्मूर्छनो के १८, मध्यम जघन्य भोगभूमिजो के १२, इस तरह ४२ भेद होते हैं। मनुष्यो मे आर्यखण्डोद्भव सम्मूर्छन मनुष्य का १ लब्ध्यपर्याप्त भग, तथा कर्मभूमि का गर्भज और म्लेच्छखण्ड, उत्तम, मध्यम, जघन्य, भोगभूमि एव कुभोगभूमि के गर्भज मनुष्यो मे प्रत्येक का एक २ भेद। ६ देवो मे भवनवासीव्यतर ८ ज्योतिष्क ५ वैमानिक ६३ और नारकियो के ४६ इस तरह १४१ के पर्याप्त निवृत्यपर्याप्त की अपेक्षा २८२ भेद हैं। इस तरह कुल मिलाकर ८१+४२+१+२८२=४०६ जीव समास के भेद होते हैं।

नित्यनिगोद सात लाख, इतरनिगोद सात लाख, जल सात लाख, अग्नि सात लाख, वायु सात लाख, वनस्पति की दस लाख, द्वीन्द्रिय की दो लाख, त्रीन्द्रिय की दो लाख, चतुरिन्द्रिय की दो लाख, देव की चार लाख, नारकी की चार लाख, तिर्यंच पचेन्द्रिय की चार लाख मनुष्य की १४ लाख योनि होती है। सारी मिलाकर ८४ लाख योनि होती हैं। शरीर के भेद को कारण भूत नोकर्म वर्गणाओ के भेद को कुल कहते है। पृथ्वी कायिक के २२ लाख कोटि, जलकायिक के सात लाख कोटि, अग्निकायिक के तीन लाख कोटि और वायु कायिक के सात लाख कोटि द्वीन्द्रिय जीव के कुल सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीव के आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीव के नौ लाख और वनस्पति कायिक जीव के २८ लाख कोटि हैं।

पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे जलचर जीव के साढे बारह लाख कोटि, नभचर के १२ लाख कोटि पशुओ के दस लाख कोटि और छाती के सहारे से चलने वाले दुमुहो आदि के नव लाख कोटि कुल हैं। देव के छब्वीस लाख कोटि, नारकी के पच्चीस लाख कोटि, मनुष्य के १२ लाख कोटि हैं जो सभी ससारी जीवो के लिये ज्ञातव्य है। इस प्रकार पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण जीवो के समस्त कुलो की सख्या एक कोडा कोडी तथा सत्तानवे लाख और ५० हजार कोटि होती है। सम्पूर्ण ससारी जीवो के कुलो की सख्या एक करोड सत्तानबे लाख पचास हजार को एक करोड से गुणने पर जितना प्रमाण लब्ध हो उतना अर्थात् १६७५०००००००००००० है। ग्रन्थान्तरो मे मनुष्यो के १४ लाख कोटि कुल गिनाये हैं। उस हिसाब से सम्पूर्ण कुलो का जोड एक करोड निन्यानबे लाख पचास हजार कोटि होता है।

इस प्रकार ससारी प्राणियो के एक करोड निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि कुल है। ये सम्पूर्ण ससारी जीवो के भेद हैं ॥१२॥

"पुद्गल के भेद"

अणुश्च पुद्गलोऽभेद्यावयवः प्रचयशक्तितः।
कायश्च स्कन्धभेदोत्थश्चतुरस्त्रस्त्वतीन्द्रिय ॥ १३ ॥

**अन्वयार्थ**—(अभेयावयव ) अभेद अवयव वाला (प्रचयशक्तित ) प्रचयशक्ति की अपेक्षा (कायश्च) कायवान् (स्कधभेदोत्थ.) स्कन्ध के भेद से उत्पन्न (चतुरस्र ) चतुष्कोण (अतीन्द्रिय.) अतीन्द्रिय (पुद्गल ) पुद्गल (अणु ) अणु है ।

**भावार्थ**– जिसका दूसरा विभाग नही होता है, जो प्रचय शक्ति की अपेक्षा कायवान् है, जो स्कन्ध के भेद से उत्पन्न होता है, जो चतुष्कोण है, अतीन्द्रिय है, वह पुद्गल परमाणु है ।।१३।।

**बिभ्रदेकरसं गन्धं वर्णं शीतचतुष्टये ।**
**स्पर्शौ चाबाधकौ स्पर्शाविकदा सर्वदेदृशः ।।१४।।**

**अन्वयार्थ**—वह अणु (एकदा) एक समय मे (एक) एक (रस) रस (गध) एक गंध (वर्ण) एक वर्ण (च) और (शीत चतुष्टये) शीत उष्ण रूखा चिकना (स्पर्शे) स्पर्श मे (अबाधकौ) अबाधित (स्पर्शौ) दो स्पर्श को (सर्वदा) निरन्तर (विभृत्) धारण करता है वह (ईदृश.) ऐसा पुद्गल परमाणु है ।

**भावार्थ** उस अणु मे एक समय मे एक साथ एक वर्ण, एक रस, एक गध और शीत उष्ण रूक्ष चिक्कण इस चतुष्टय मे से अवाधित अर्थात् शीत उष्ण मे से एक और रूक्ष स्निग्ध मे से एक ऐसे पाच गुण पाये जाते हैं ।।१४।।

**द्वयणुकादिमहास्कंधपर्यन्तानंतपर्यया: ।**
**परमाणोर्विभावाः स्युर्भेदसंघात संभवाः ।।१५।।**

**अन्वयार्थ**—(परमाणो ) परमाणु की (भेदसघातसंभवा ) भेद और सघात से उत्पन्न होने वाली (द्वयणुकादिमहास्कधपर्यन्ता ) दो अणु आदि महास्कन्ध पर्यन्त (विभावा ) विभाव (अनतपर्यया ) अनत पर्याय (स्यु ) होती है ।

**भावार्थ**—परमाणु की भेद और सघात से उत्पन्न होने वाली द्वि अणु आदि महा स्कन्ध पर्यंत अनत विभाव पर्यायें होती हैं ।।१५।।

**स्निग्धरूक्षत्वतो बंधो जघन्यगुणवर्जिते ।**
**गुणे समेऽसमे वाण्वोः सर्वत्र स्निग्धरूक्षयोः ।।१६।।**

**अन्वयार्थ**—(सर्वत्र) सर्वत्र (स्निग्धरुक्षयोः) स्निग्ध रुक्ष वाले (अण्वो) दो अणुओ का (जघन्यगुण) जघन्य गुण से रहित (समे) समान (असमे) विषम (गुणे) दो गुण अधिक होने पर (स्निग्धरुक्षत्वत ) स्निग्ध, रुक्ष वालो से (वध.) वध होता है ।

**भावार्थ**—जघन्य गुण रहित द्विगुण अधिक रुक्ष रुक्ष, स्निग्ध स्निग्ध रुक्ष स्निग्ध आदि परमाणु का वन्ध होता है ।।१६।।

**द्वयविभागप्रतिच्छेदाविहीनेन तु बंधनम् ।**
**स्निग्धाणुनास्य स्निग्धाणोः स्वजातै रुक्षयोस्तथा ।।१७।।**

**अन्वयार्थ**—(अस्य) इस परमाणु का (द्वयविभागप्रतिच्छेदविहीनेन) दो अविभागी प्रतिच्छेद से रहित (स्निग्धाणुना) स्निग्ध अणु के साथ (स्निग्धाणो ) स्निग्ध अणु का (स्वजातै,) अपनी जाति वाले रुक्ष के साथ (रुक्षयो )

रुक्ष दो अणुओ का तथा स्कन्ध रुक्ष का (बंधन) बध होता है ।

**भावार्थ**—इस परमाणु का द्वि अविभागी प्रतिच्छेद से रहित स्निग्ध अणु के साथ स्निग्ध अणु का वा अपनी जाति वाले रूक्ष के साथ रूक्ष का तथा दो गुण अधिक रूक्ष गुण का स्निग्ध के साथ बंध होता है ।।१७।।

**स्कन्धदेशप्रदेशाणभेदो वाऽखिलपुद्गलः ।**
**स्कन्धो ज्येष्ठमहास्कन्धः स्यादन्यश्च धरादिकः ।। १८ ।।**

**अतो हीनाणुतो यावदर्द्ध देशस्ततः क्रमात् ।**
**हीनाणुद्व्यणुको यावत्प्रदेशोऽणुपुरोदित ।।१९।।**

**अन्वयार्थ**—(अखिलपुद्गल ) सारे पुद्गल (स्कन्धदेशप्रदेशाणुभेद ) स्कन्ध, देश, प्रदेश और अणु भेद वाले हैं (च) और (अन्य ) अन्य पिण्ड रूप (धरादिकः) पृथ्वी आदि (ज्येष्ठमहास्कन्ध ) ज्येष्ठ महास्कन्ध है (अत.) इस महास्कन्ध से (अणुत.) अणु तक (यावत्) जब तक (अर्द्ध) अर्द्ध भाग है वह (देश) देश है (तत ) उस अर्द्ध देश से (यावत् हीनाणु ) दो अणु है वह (प्रदेश) प्रदेश है (च) और (पुरोदित ) पूर्व कथित (अणु ) अणु है ।

**भावार्थ**—जिसमे स्पर्श रस गध और वर्ण है अथवा जो पूरण गलन स्वभाव वाला है वह पुद्गल है स्कन्ध और परमाणु के भेद से पुद्गल दो प्रकार है । दो आदि अनत परमाणुओ का पिण्ड स्कन्ध कहलाता है । निर्विभाग एक प्रदेश वाला स्कन्ध का अन्तिम अश परमाणु है । स्कन्ध स्कन्ध, देश और स्कन्ध प्रदेश यह तीन भेद वाला है । अनन्तानन्त परमाणुओ से निर्मित पृथ्वी आदि महास्कन्ध-स्कन्ध कहलाता है । उस स्कन्ध से एक परमाणु हीन से लेकर आधे स्कन्ध तक स्कन्ध देश है । उसमे एक परमाणु हीन से लेकर द्वि अणु तक के परमाणु स्कन्ध प्रदेश है । स्कन्ध के छह भेद भी हैं । बादर-बादर, बादर, बादरसूक्ष्म, सूक्ष्मबादर, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म । काष्ठपाषाणादिक (स्कन्ध) जो छेदन होने पर स्वय नही जुड सकते वे बादर-बादर हैं । दूध, घी, तेल, जल रस आदि स्कन्ध जो छेदन होने पर स्वय जुड जाते हैं वे बादर हैं । छाया धूप, अधकार चादनी आदि स्कन्ध जो स्थूल होने पर भी जिनका छेदन भेदन अथवा (हस्तादि द्वारा) ग्रहण नही किया जा सकता है वे बादरसूक्ष्म है । स्पर्श,रस,गध,वर्ण,शब्द जो सूक्ष्म होने पर स्थूल ज्ञात होते हैं वे सूक्ष्मबादर हैं । कर्मवर्गणादि स्कन्ध जिन्हे सूक्ष्मपना है तथा जो इन्द्रियो से ज्ञात न हो वे सूक्ष्म हैं । कर्मवर्गणा से नीचे के द्विअणुक-स्कन्ध तक के स्कन्ध जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं वे सूक्ष्मसूक्ष्म हैं ।

शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व सस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत ये स्कन्ध के भेद हैं । भाषारूप शब्द और अभाषारूप शब्द इस प्रकार शब्दो के दो भेद है । भाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं । साक्षर और अनक्षर । जिसमे शास्त्र रचे जाते है और जिससे आर्य और म्लेच्छो का व्यवहार चलता है, ऐसे सस्कृत शब्द और इससे विपरीत शब्द ये सब साक्षर शब्द है । जिससे उनके सातिशय ज्ञान के स्वरूप का पता लगता है ऐसे दो इन्द्रिय आदि जीवो के शब्द अनक्षरात्मक शब्द है, ये दोनो प्रकार के शब्द प्रायोगिक है । अभाषात्मक शब्द दो प्रकार के हैं । प्रायोगिक और वैस्रसिक । मेघ आदि के निमित्त से जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे वैस्रसिक शब्द हैं तत्, वितत्, धन, और सौषिर के भेद से प्रायोगिक शब्द चार प्रकार के हैं ।

चमडे से मढे हुए पुष्कर, भेरी और दर्दुर से जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत शब्द है । तात वाले वीणा और सुघोष आदि से जो शब्द उत्पन्न होता है वह वितत शब्द है । ताल, घण्टा और लालन आदि के ताडने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह घन शब्द है बासुरी और शख आदि के फूकने से जो शब्द उत्पन्न होता है वह सौषिर शब्द है । बन्ध के दो

भेद हैं। १ वैस्त्रसिक और २ प्रायोगिक। जिसमे पुरुष का प्रयोग अपेक्षितन ही है वह वैस्त्रसिक बन्ध है, जैसे स्निग्ध और रुक्ष गुण के निमित्त से होने वाला विजली, उल्का, अग्नि और इन्द्रधनुष आदि का विषयभूत बन्ध वैस्त्रसिक बन्ध है और जो बंध पुरुष के निमित्त प्रयोग से होता है वह प्रायोगिक बन्ध है।

इसके दो भेद है। अजीवसम्बन्धी और जीवाजीव सम्बन्धी। लाख और लकडी का अजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है तथा कर्म और नो कर्म का जो जीव से बन्ध होता है वह जीवा-जीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है। सूक्ष्मत्व के दो भेद हैं। अन्त्य और आपेक्षित। परमाणुओ मे अन्त्य सूक्ष्मत्व है तथा वेल आँवला और बैंर, केर आदि मे आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है।

स्थौल्य भी दो प्रकार का है। अन्त्य और आपेक्षिक। जगत् व्यापी महास्कन्ध मे अन्त्य सथौल्य है तथा बेर, आँवला और बेल आदि मे आपेक्षित स्थौल्य है। सस्थान का अर्थ आकृति है। इसके दो भेद है। इत्थलक्षण। जिसके विषय मे यह सस्थान इस प्रकार का है यह निर्देश किया जा सके वह इत्थलक्षण सस्थान है। वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, आयात और परिमण्डल आदि ये सब इत्थलक्षण सस्थान हैं। इससे अतिरिक्त मेघ आदि के आकार अनेक प्रकार के हैं तथा जिनके विषय मे यह इस प्रकार का है यह नही कहा जा सकता है वह अनित्थलक्षण संस्थान है।

भेद के छह भेद है। उत्कर चूर्ण, खण्ड, चूर्णिका, प्रतर और अणुचटन करोत आदि से जो लकडी आदि को चीरा जाता है वह उत्कर नामक भेद है। जौ और गेहू आदि का जो सत्त् और कनक आदि बनता है वह चूर्ण नाम का भेद है। घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकडे होते हैं वह खण्ड नाम का भेद है तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो फुलगे निकलते हैं वह अणुचटन नाम का भेद है। उडद और मूग आदि का जो खण्ड किया जाता है वह चूर्णिका नाम का भेद है। मेघ के जो अलग-अलग पटल आदि होते हैं वह प्रतर नाम का भेद है। जिससे दृष्टि मे प्रतिबंध होता है और जो प्रकाश का विरोधी है वह तम (अन्धकार) कहलाता है। प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है वह छाया कहलाती है। उसके दो भेद हैं। एक तो वर्णादि के विकार रूप से परिणत हुई और दूसरी प्रतिबिम्ब रूप जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है उसे आतप कहते हैं। तथा चन्द्रमणि और जुगनू आदि के निमित्त से जो प्रकाश पैदा होता है उसे उद्योत कहते हैं।

ये सब शब्दादिक पुद्गल द्रव्य के विकार (पर्याय) हैं। इसलिए तत्वार्थ सूत्र में पुद्गल को शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, सस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत वाला कहा है। सूत्र मे दिये हुए "च" शब्द से नोदन, अभिघात आदिक जो पुद्गल की पर्यायें आगम मे प्रसिद्ध हैं उनका सग्रह करना चाहिए।

पूर्वोक्त स्कन्धरूप पर्यायो का जो अन्तिम भेद (छोटा से छोटा अश) है वह परमाणु है और वह विभाग के अभाव का कारण होने से अविभागी है। निर्विभाग एक प्रदेशी होने से एक है। मूर्तद्रव्यरूप से सदैव अविनाशी होने से नित्य है। अनादि अनन्त रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने के कारण मूर्तिप्रभव हैं और रूपादि के परिणाम से उत्पन्न होने के कारण भी अशब्द है ऐसा निश्चित है। क्योकि शब्द परमाणु का गुण नही है, किन्तु स्कन्ध की पर्याय है।

सर्वत्र परमाणु मे रस, गध, वर्ण, स्पर्श, सहभावी गुण होते हैं और वे गुण उसमे क्रमवर्ती निज पर्यायो सहित रहते हैं। यह इस प्रकार जानना चाहिए। पाच रस पर्यायो मे से एकसमय कोई एक पर्याय सहित रस वर्तता है। पाच पर्यायो मे से किसी एक समय पर्याय सहित एक वर्ण वर्तता है। दो गध पर्यायो मे से एक समय किसी एक पर्याय सहित गध वर्तता है। शीत-स्निग्ध, शीत-रुक्ष, उष्ण-स्निग्ध और उष्ण रुक्ष इन चार स्पर्श पर्यायो के युगलो मे से किसी समय एक युगल सहित स्पर्श वर्तता है। इस प्रकार जिसमे गुणो का वर्तन (अस्तित्व) कहा गया है ऐसा यह परमाणु शब्द स्कन्धरूप से परिणमित होने की शक्तिरूप स्वभाव वाला होने से शब्द का कारण है, एक प्रदेशी होने के कारण शब्द पर्याय परिणमितरूप वृत्ति के अभाव मे अशब्द है, और स्निग्धरुक्षत्व के कारण बंध होने से अनेक परमाणुओ की एकत्व परिणतिरूप स्कन्ध के भीतर रहा हो तथापि स्वभाव को न छोड़ता हुआ सख्या को प्राप्त होने से (अर्थात् परिपूर्ण एक की भाति पृथक गिनती

मे आने से) अकेला ही द्रव्य है। जो परमाणु स्कन्धो का भेत्ता होता है वह कार्य परमाणु है तथा जो स्कन्धो का कर्त्ता है वह कारण परमाणु है। इस प्रकार पुद्गल के बहुत भेद है ॥१८,१९॥

**जीवपुद्गलजालस्य व्रजतः स्वेन हेतुना।**
**धर्मो याननिमित्तं स्याज्जलं वा जलचारिणाम् ॥२०॥**

**अन्वयार्थ**–(स्वेन) अपने (हेतुना) कारण से (व्रजतः) गमन करते हुए (जीवपुद्गलजालस्य) जीव और पुद्गल समूह के (याननिमित्तं) गमन मे सहकारी (धर्म) धर्मद्रव्य (स्यात्) है (वा) जैसे (जलचारिणा) जलचर जीवो के (जल) जल गमन मे सहकारी होता है।

**भावार्थ**–जैसे जलचर जीवो के गमन मे सहकारी जल है वे जलचर जीव जल के बिना गमन नही कर सकते उसी प्रकार अपने उपादान से गमन करते हुए जीव और पुद्गल के गमन मे सहकारी कारण धर्म द्रव्य है ॥२०॥

**स्वहेतुस्थितिमज्जीवपुद्गलस्थितिकारणम्।**
**अधर्मोऽध्वनि खिन्नस्य ग्रीष्मे छायेव शीतला ॥२१॥**

**अन्वयार्थ**–(स्वहेतुस्थितिमज्जीवपुद्गलस्थितिकारणम्) अपने उपादान कारण से ठहरने वाले जीव और पुद्गल के ठहरने के लिए सहकारी कारण (अधर्मः) अधर्म द्रव्य है। (इव) जैसे (ग्रीष्मे) ग्रीष्म काल मे (अध्वनि) मार्ग मे (खिन्नस्य) खेद खिन्न हुए के ठहरने मे कारण (शीतला) शीतल (छाया) छाया है।

**भावार्थ**–जैसे ग्रीष्म ऋतु के सूर्य के ताप से खेद खिन्न हुये पथिक के ठहरने मे निमित्त कारण शीतल छाया है उसी प्रकार अपने उपादान से ठहरने वाले जीव पुद्गल के ठहरने मे कारण अधर्म द्रव्य है ॥२१॥

**धर्माधर्मौ जगद्व्याप्यारूपिणौ सर्वदा स्थितौ।**
**कालाणवो जगन्मात्राश्चैनं तु मणिराशिवत् ॥२२॥**

**अन्वयार्थ**–(अरूपिणौ) अरूपी (धर्माधर्मौ) धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य (सर्वदा) सर्व काल मे (जगद्व्याप्य) सारे लोकाकाश मे व्याप्त होकर (स्थितौ) स्थित हैं (च) और (कालाणव) कालाणु (तु) तो (मणिराशिवत्) रत्नराशि के समान (जगन्मात्राः) लोक के प्रदेशमात्र हैं।

**भावार्थ**–धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अरूपी है और सदा लोकाकाश मे व्याप्त होकर स्थित है, जैसे तिलो मे तैल होता है तथा एक-२ आकाश प्रदेश पर रत्नो की राशि के समान एक-एक कालाणु स्थित है ॥२२॥

**ते प्रत्येक विवर्त्ताप्तिहेतवः सर्ववस्तुनः।**
**गौणकालस्तु पर्यायस्थितिः स्यात्समयादिका ॥२३॥**

**भावार्थ**–(ते) वह (प्रत्येक) प्रत्येक कालाणु (सर्ववस्तुन) सारी वस्तुओ के (विवर्त्ताप्तिहेतव) वर्तना की प्राप्ति के कारण है (तु) और (समयादिका) समय, घटिका आदि (पर्यायस्थिति) पर्यायस्थिति (गौणकाल.) गौणकाल है।

**भावार्थ**–प्रत्येक आकाश प्रदेश मे स्थित कालाणु सारे द्रव्यो के वर्तना मे कारण होते हैं वह मुख्य काल है

और जो समय, आवलि, घटिकादि परिमाण क्रिया, परत्वापरत्व में कारण है वह व्यवहार काल (गौणकाल) है ।।२३।।

**व्योमामूर्तं स्थितं नित्य चतुरस्त्रं समं घनम् ।**
**भावावगाहहेतुश्चानंतानंतप्रदेशकम् ।। २४ ।।**

**अन्वयार्थ**—(व्योम) आकाश (अमूर्त) अमूर्तिक है (नित्य) नित्य है (स्थित) स्थित है (चतुरस्त्रं) चतुष्कोण है (घन) घन है (सम) प्रमाण है (भावावगाहहेतु) पदार्थो के अवहगाहन मे कारण है (च) और (अनतानतप्रदेशकम्) अनतानत प्रदेशात्मक है ।

**भावार्थ**—पदार्थो को अवगाहना देने मे कारण भूत आकाश है । वह अमूर्तिक है, नित्य है, चतुष्कोण है और अनत प्रदेशी है । उस आकाश के मध्य मे तीन सौ तेतालिस राजू घन प्रमाण लोकाकाश है । जितने आकाश मे जीवादि पदार्थ स्थित हैं उतने आकाश को लोकाकाश कहते हैं । जिसमे जीवादि पदार्थ नही है, केवल शुद्ध आकाश है उसको अलोकाकाश कहते हैं । लोकाकाश नीचे, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण मे सात राजू है अर्थात् चतुष्कोण है । ऊपर क्रम से घटते-२ सात राजू की ऊँचाई पर पूर्व पश्चिम मे एक राजू है । तदनन्तर ऊपर बढते-बढते पाचवे स्वर्ग की ऊँचाई पर पूर्व पश्चिम मे पांच राजू है तथा अन्त में एक राजू है । दक्षिण उत्तर मे आदि मध्य अन्त तक सात राजू है ऐसा यह तीन सौ तैतालीस राजू घनाकार लोकाकाश है ।।२४।।

**अस्तिकाया इमे कालं विना संत प्रदेशिन· ।**
**कायवद्येन कालो प्रदेशप्रचयशक्तिमान् ।। २५ ।।**

**अन्वयार्थ**—(काल) काल के (विना) विना (इमे) यह पाँच द्रव्य (कायवत्) काय के समान (प्रदेशिन।) वहुप्रदेशी (सत ) होने से (अस्तिकाया ) अस्तिकाय है (काल ) काल (प्रदेशप्रचयशक्तिमान्) प्रदेश प्रचय शक्ति शक्तिमान है (येन) जिनसे अस्तिकाय नही है ।

**भावार्थ**—काय के समान वहुप्रदेशी होने से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य अस्तिकाय है तथा प्रदेश प्रचय शक्तिवाला होने से काल द्रव्य अस्तिकाय नही है ।।२५।।

**जीवाजीवौ तयोः पुण्य पापमास्त्रवसंवरौ ।**
**निर्जरावन्धमोक्षाश्चेत्यर्था नवविधाश्च ते ।।२६।।**

**अन्वयार्थ**—(जीवाजीवौ) जीव अजीव (तयो ) जीव और अजीव मे (पुण्य) पुण्य (पाप) पाप (आस्त्रवसंवरौ) आस्रव, संवर (निर्जरावन्धमोक्षा ) निर्जरा, वन्ध और मोक्ष (इति) इस प्रकार (ते) वे (नवविधा.) नव प्रकार के (अर्था) पदार्थ हैं ।

**भावार्थ**—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर निर्जरा, बंध मोक्ष यह नौ पदार्थ है ।।२६।।

**जीवाजीवौ पुरा प्रोक्तौ सम्यक्त्वयुतज्ञानवान् ।**
**जीवः पुण्यं तु पापं स्यान्मिथ्यात्वादिकलंकवान् ।।२७।।**

**अन्वयार्थ**—(जीवाजीवौ) जीव और अजीव तो (पुरा) पहिले (प्रोक्तौ) कह दिये हैं (सम्यक्त्ववृतज्ञानवान्) सम्यदर्शन, ज्ञान और चारित्र सहित (जीव ) जीव (पुण्य) पुण्य जीव है (तु) और (मिथ्यात्वादिकलकवान्) मिथ्यात्वादि से कलकित जीव (पाप) पाप रूप है ।

**भावार्थ**—जीवादि सात तत्व पुण्य और पाप रूप है इसलिए तत्व सात है, और पदार्थ नव हैं । उसमे सम्यग-दर्शन, सम्यगज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित जीव पुण्य रूप है । एव मिथ्यात्व से कलकित जीव पुण्य रूप नही हैं अर्थात् पाप रूप है ।।२७।।

**स्यादजीवात्मकं पुण्यं पापं चाणुकदम्बकम् ।**
**शुभानामशुभानां च कर्मणां सुखदुःखदम् ।।२८।।**

**अन्वयार्थ**—(शुभाना) शुभ (च) और (अशुभाना) अशुभ (कर्मणाँ) कर्मों का (सुखदु.खदम्) सुख दु ख देने वाला (अजीवात्मक) अजीवात्मक (अणुकदम्बक) अणुओ का समूह (पुण्य) पुण्य (च) और (पाप) पाप अजीव है ।

**भावार्थ**—सुखोत्पादक और दु खोत्पादक कार्माण वर्गणादि अजीवात्मक पुण्य पाप है । अर्थात् जीव को इन्द्रिय जन्य सुखोत्पादक कार्माण वर्गणायें पुण्य अजीव है और इन्द्रिय जन्य दुखोत्पादक कार्माण वर्गणाये पाप अजीव हैं ।।२८।।

**मिथ्याविरतिकषाय योगाः स्युरशुभास्त्रवाः ।**
**दयादमयमाद्यास्तु जीवात्मानं शुभास्त्रवाः ।।२९।।**

**अन्वयार्थ**—(मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगा ) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग (अशुभास्त्रवाः) वे अशुभ (पाप) आस्त्रव हैं (तु) और (जीवात्मक) जीवात्मा के (दयादमयाद्या') दया, दम, यम आदि (शुभास्त्रवा ) शुभ (पुण्य) आस्त्रव हैं ।

**भावार्थ**—अतत्व के श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं । पाँच इन्द्रिय और मन को वश मे नही करना, छह काय के जीवो की रक्षा नही करना, हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, और परिग्रह मय पाप मे प्रवृत्ति करना अविरति है । आत्मा को कर्मों से कसने वाली क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय हैं । मन वचन काय की प्रवृत्ति से जीवो पर अनुकम्पा करना दया है । इन्द्रियो का निरोध दम है । अहिंसादि व्रत यम है । दया, दम, यम, नियमादि के द्वारा जो आस्त्रव होता है । वह शुभास्त्रव है ।।२९।।

**उदयोदीरणाकर्म द्रव्यास्त्रवो यतः ।**
**स्यान्नूतनद्रव्यभावैर्नो भावद्रव्यास्त्रवा क्रमात् ।।३०।।**

**अन्वयार्थ**—(उदयोदीरणाकर्मद्रव्यास्त्रव ) उदय, उदीरणा को प्राप्त कर्म द्रव्यास्त्रव है । (यतः) क्योकि (न ) हमारे (नूतनद्रव्य भावै ) नवीन द्रव्य और भावो से (क्रमात्) कर्म से (भावद्रव्यास्त्रवा ) द्रव्य और भाव आस्त्रव (स्यात्) होता है ।

**भावार्थ**—अपनी स्थिति पूर्ण होने के बाद कर्म फल देते हैं वह उदय है । स्थिति पूर्ण होने के पूर्व ही किसी कारण से कर्म उदय मे आकर फल देते हैं वह उदीरणा है । उदय और उदीरणा को प्राप्त हुये कर्म द्रव्यास्त्रव हैं । क्योकि हमारे नवीन द्रव्यास्त्रव से भावास्त्रव होता है और भावस्त्रव से द्रव्यास्त्रव होता है अर्थात् द्रव्यकर्म का उदय, भावास्त्रव का

कारणभूत रागद्वेषमय परिणति का कारण है और रागद्वेषमय परणति नवीन द्रव्यास्त्रव की कारण है। यह दोनो का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्वन्ध है ।।३०।।

**भावद्रव्यास्त्रवानल्पविकल्पेषु यदाऽऽत्मनि ।**
**यस्य यस्य निरोधः स्यात्तत्तत्संवरणं तदा ।।३१।।**

**अन्वया**—(यदा) जिस समय (आत्मनि) आत्मा मे (भावद्रव्यास्त्रवानल्पविकल्पेषु) द्रव्य भावस्त्रव रूप वहुत से विकल्पो मे (यस्य यस्य) जिस जिस का निरोध होता है (तदा) उस समय (तत्तत्) वह वह (सवरण) सवर (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—द्रव्य और भावास्त्रवो मे अनेक विकल्प हैं। इसलिए जिस-जिस काल मे जिस आस्त्रव का निरोध होता है उस उस काल मे उस उस कर्मों का सवर जानना चाहिये। जैसे मिथ्यात्वकर्म के उदय से मिथ्यात्वादि १६ प्रकृतियो का आस्त्रव होता है और मिथ्यात्व के नाश हो जाने से उन प्रकृतियो का सवर हो जाता है ।।३१।।

**भावद्रव्यास्त्रवद्वन्द्वरोधात्संवरणं मतम् ।**
**द्रव्यभावास्त्रवद्वन्द्वस्यैतद्यत्तेन जन्यते ।।३२।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (द्रव्यभावास्त्रवद्वन्द्वस्य) द्रव्यभाव आस्त्रव द्वन्द का (तेन) उसके द्वारा (जन्यते) उत्पाद होता है (भावद्रव्यास्त्रवद्वन्द्वोरोधात्) भाव द्रव्याश्रवद्वन्द्व का निरोध होने से (एतत्) यह (सवरण) संवर (मत) माना है।

**भावार्थ**—जिन द्रव्यभावास्त्रव से कर्म उत्पन्न होते हैं उन भावद्रव्य आस्त्रवो का निरोध हो जाना ही सवर है। अर्थात् द्रव्यास्त्रव का निरोध द्रव्यसवर और भावास्त्रव का निरोध भावसवर है ।।३२।।

**गलनं निर्जरांशस्य स्याच्चिरंतनकर्मण ।**
**सविपाकाऽविपाका च प्राप्तकाला विपाकजा ।।३३।।**

**परिणामविशेषोत्थाऽप्राप्तकालाऽविपाकजा ।**
**कालेनोपायजालैर्वा फलपाको वनस्पते ।।३४।।**

**अन्वयार्थ**—(चिरतनकर्मण.) चिरकाल के सचित कर्मों के (अशस्य) एक अश का (गलनं) नष्ट होना (निर्जरा) निर्जरा (स्यात्) है (सविपाकाऽविपाका) वह सविपाक और अविपाक भेद वाली है (प्राप्तकाला) प्राप्तकाल वाली (विपाकजा) सविपाक निर्जरा है (परिमाणविशेषोत्था) परिमाणविशेष से उत्पन्न (अप्राप्तकाला) अप्राप्तकाल वाली (अविपाकजा) अविपाक निर्जरा है जैसे (कालेन) काल मे (वा) अथवा (उपायजालै) उपायो के द्वारा (वनस्पते') वनस्पति का (फलपाक) फल पाक होता है।

**भावार्थ**—पूर्व सचित कर्मो का एक देश क्षय होना ही निर्जरा है। वह निर्जरा सविपाक और अविपाक के भेद से दो प्रकार की होती है। अपनी स्थिति को पूर्ण करके जो कर्म अपने फल देकर नष्ट होते हैं वह सविपाक निर्जरा है तथा जो कर्म स्थिति पूर्ण किये विना ही उदय मे आकर नष्ट होते हैं, उसको अविपाक निर्जरा कहते हैं। जिस प्रकार कुछ वनस्पति समय पाकर फल देती है और कुछ प्रयोग द्वारा असमय में ही पक जाते हैं ।।३३,३४।।

**रागादीनां विभावानां विश्लेषो भावनिर्जरा ।**
**आत्मनो गलनं द्रव्यकर्मणां द्रव्यनिर्जरा ॥३५॥**

**अन्वयार्थ**—(रागादीना) रागादि (विभावाना) विभाव भावो का (विश्लेष·) अलग होना (भावनिर्जरा) भाव निर्जरा है (आत्मन ) आत्मा के (द्रव्यकर्मणा) द्रव्य कर्मों का (गलन) नाश होना (द्रव्यनिर्जरा) द्रव्य निर्जरा है ।

**भावार्थ**—भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जराओ के भेद से निर्जरा दो प्रकार की है । जिन रागादि भावो से कर्म बधते हैं उन रागादि भावो का एक देश नाश होना भाव निर्जरा है । अनादि काल से आत्मा के एक क्षेत्रावगाह क्षेत्र मे रहने वाले द्रव्य कर्मो का एक देश नाश होना द्रव्य निर्जरा है ॥३५॥

**सम्यक्त्वदेशचारित्र सयमाऽयोगवृतयः ।**
**कारणं निर्जरायाः स्युः संवरस्यापि कर्मणः ॥३६॥**

**अन्वयार्थ**—(सम्यक्त्वदेश, चारित्रसयमाऽयोगवृत्तय ) सम्यक्त्व,देश चारित्र, सयम, अयोगवृत्ति (निर्जरायाः) निर्जरा का (कारण) कारण (स्यु ) हैं (अपि) और (कर्मण ) कर्म के (सवरस्यापि) सवर का भी कारण है ।

**भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, देश चारित्र, सयम और योग का अभाव निर्जरा और सवर का कारण है ॥३६॥

**द्रव्यास्त्रवजमिथ्यात्वयोगाविरमणादिभिः ।**
**नूतनेनैरात्मनः श्लेषो भाववन्धस्तदात्मनः ॥३७॥**

**अन्वयार्थ**—(द्रव्यास्रवजमिथ्यात्वयोगाविरमणादिभि ) द्रव्य आस्रव से उत्पन्न मिथ्यात्व, योग, अविरति आदि के द्वारा (नूतनै । नवीन कर्मों के साथ (आत्मन ) आत्मा का (तदात्मता) एक क्षेत्रावगाही (श्लेष,) सम्बन्ध होता है वह (भाववध ) भाववन्ध है ।

**भावार्थ**—कर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्व, अविरति, कषाय योगादि भावो से नूतन कर्म के साथ आत्मा का सम्वन्ध होता है । वह भाववध है ॥३७॥

**भावास्त्रवातितायात्मलोहस्वात्मैकदेहगम् ।**
**आदत्ते सर्वतोऽनतानतकर्माणुजीवनम् ॥३८॥**

**आत्मनस्तेन संश्लेषो द्रव्यवन्धश्चतुर्विधः ।**
**स स्यात्मप्रकृति प्रदेशानुभाग स्थिति भेदत् ॥ ३९ ॥**

**अन्वयार्थ**—(भावास्रवातितापात्मलोहस्वात्मैकदेहग) भावास्रव से अति तप्तायमान आत्म रूपी लोहा स्वात्म देहगत (सर्वत ) चारो तरफ से (अनतानतकर्माणु जीवनम्) अनतानत कर्माणु जीवन को (आदत्ते) ग्रहण करता है (आत्मन ) आत्मा का (तेन) उन कर्मों के साथ (सश्लेष·) सम्वन्ध (द्रव्यवध ) द्रव्यवन्ध है (स·) वह द्रव्य वन्ध (प्रकृतिप्रदेशानुभाग-स्थितिभेदत ) प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग और स्थिति के भेद से (चतुर्विध ) चार प्रकार का है ।

**भावार्थ**– रागद्वेषादि भावो से सतप्त यह आत्मा सर्वांग मे अनन्तानन्त कर्म परमाणुओ को ग्रहण करता है ।

जैसे —अग्नि से तप्तायमान लोहा का गोला चारो तरफ से जल को ग्रहण करता है। रागादि भाव कर्म निर्मित आत्म प्रदेशो के साथ कार्माण वर्गणाओ का एक क्षेत्रावगाही होना द्रव्य वध है। वह द्रव्य वध, प्रकृति वध, स्थिति वध, प्रदेश वध और अनुभाग वध के भेद से चार प्रकार का है। कर्म स्वभाव का नाम प्रकृति है, जैसे ज्ञानादि गुणो का आच्छादन करने वाली प्रकृति ज्ञानावरण है। योग के निमित्त से सिद्धो के अनन्तवे भाग और अभव्य जीवो से अनन्त गुणी पुद्गल वर्गणायें एक समय मे आत्म प्रदेशो के साथ एक क्षेत्रवगाही होती हैं वह प्रदेश वध है। आये हुए कर्मो का आत्मा के साथ रहने की मर्यादा का नाम स्थिति वध है। कर्मों के फल देने की शक्ति का नाम अनुभाग वध है ।।३८,३९।।

**प्रकृति प्रदेशयोः स्याद्योगात् स्थित्यनुभागयोः ।**
**वंधः कषायतो योगे चाकषाये यतो न तौ ।।४०।।**

**अन्वयार्थ**—(प्रकृति प्रदेशयो ) प्रकृति और प्रदेश का (वध) वध (योगात्) योग से (स्थित्यनुभागयोः) और स्थिति अनुभाग वध (कषायत ) कषाय से होता है (यत ) क्योकि (अयोगे) अयोग मे (च) और (अकषाये) अकषाय अवस्था मे (वध ) वध (न) नही है।

**भावार्थ**- प्रकृति वध और प्रदेश वध योग के निमित्त से होते हैं। तथा स्थिति वध और अनुभाग वध कषाय के निमित्त से होते है। क्योकि अकषाय और अयोग अवस्था मे वध नही होता है ।।४०।।

**भावद्रव्यात्मकाशेषकर्मनोकर्मणां क्षयात् ।**
**भावद्रव्यात्मको मोक्षश्चारुचारित्रसम्पदा ।।४१।।**

**अन्वयार्थ**—(चारुचारित्रसम्पदा) सम्यक्त्वचारित्र की सम्पदा से (भावद्रव्यात्मकाशेषकर्मनोकर्मणा) भाव द्रव्यात्मक अशेष कर्मो के (क्षयात्) क्षय हो जाने से (भावद्रव्यात्मक ) भावद्रव्यात्मक (मोक्ष) मोक्ष होता है।

**भावार्थ**—रागद्वेष विभाव परिणति भाव कर्म है। ज्ञानावरणादि कर्म द्रव्य कर्म है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्त्वचारित्र के द्वारा रागद्वेष भावो से छूटना भाव मोक्ष है। और ज्ञानावरणादि कर्म से छूटना द्रव्यमोक्ष है ।।४१।।

**अनतज्ञानदृग्वीर्यसौख्यात्मस्वात्म लभनम् ।**
**सिद्धिर्नाभावचिन्मात्रणिः शेषात्मगुणक्षयाः ।।४२।।**

**अन्वयार्थ**—(अनतज्ञानदृग्वीर्यसौख्यात्मस्वात्मलभनम्) अनतदर्शन, अनतज्ञान, अनतसुख और अनत वीर्यात्मक स्वात्मोपलब्धि की प्राप्ति (सिद्धि ) सिद्धि है (अभावचिन्मात्रणि शेषात्मगुणक्षया) अभावचितमात्र विशेष गुणो का क्षयरूप (न) सिद्धि नही है।

**भावार्थ**—अनतदर्शन, अनतज्ञान,अनतसुख, अनतवीर्य रूप आत्मीय गुणो का विकास ही सिद्धि है। आत्मा के चैतन्यादि विशेष गुणो का अभाव सिद्धि नही है। विशेषार्थ -समस्त कर्ममलो से रहित आत्मा की शुद्ध अवस्था का नाम मोक्ष है। इस अवस्था मे आत्मा स्थूल औरसूक्ष्म दोनो प्रकार के शरीरो से रहित हो अशरीर हो जाता है। अपने स्वाभाविक अनन्तज्ञान, निर्बाध अनन्तसुख आदि गुणो से परिपूर्ण हो चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। यह आत्मा की अन्तिम विलक्षण अवस्था है। यह शुद्ध दशा सदा एक सी वनी रहती है। इसका कभी विनाश नही होता है। यह दशा इन्द्रिय ज्ञान का विषय न होने से अत्यन्त परोक्ष है। इसलिए विभिन्नवादि मोक्ष के स्वरूप की अनेक प्रकार से कल्पना करते हैं।

(१) सांख्य का मत है कि—पुरुष का स्वरूप चैतन्य है। ज्ञान चैतन्य से पृथक वस्तु है। ज्ञान प्रकृति का

धर्म है। यही ज्ञेय अर्थात् पदार्थों को जानता है। चैतन्य पदार्थों को नही जानता। मोक्ष अवस्थामे आत्मा चैतन्य स्वरूप रहता है। ज्ञान स्वरूप नही। इस मत मे दूषण हैं ज्ञान से भिन्न चैतन्य कोई वस्तु नही है। चैतन्य, ज्ञान, बुद्धि आदि पर्यायवाची है इनमे अर्थ भेद नही है। स्व तथा पर पदार्थों का जानना चैतन्य का स्वरूप है। यदि चैतन्य अपने स्वरूप तथा पर पदार्थों को नही जानता तो वह गधे के सीग की तरह असत् ही हो जायेगा। निराकार अर्थात् ज्ञेय को न जानने वाले चैतन्य की कोई सत्ता नही है।

(२) वैशेपिक बुद्धि सुख, दु ख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और सस्कार इन आत्मा के नव विशेष गुणो के उच्छेद होने को मोक्ष कहते हैं। ये विशेष गुण आत्मा और मन के सयोग से उत्पन्न होते हैं। चूँकि मोक्ष मे आत्मा का मन अत्यन्त सयोग नही रहता है अत· इन गुणो का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है। इस मत मे सबसे बडा दूषण यह है कि-यदि आत्मा के बुद्धि आदि विशेष गुण नष्ट हो जाते हैं तो आत्मा का स्वरूप ही क्या बचता है। अपने विशेष लक्षणो से रहित वस्तु अवस्तु हो जायेगी।

बौद्ध मानते हैं कि जिस प्रकार तैल न रहने से दीपक बुझ जाता है। उसी प्रकार राग स्नेह के क्षय हो जाने से आत्मा के ज्ञान सन्तान का शान्त हो जाना मोक्ष है। इनकी यह प्रदीप निर्वाण की तरह आत्म निर्वाण की कल्पना भी उचित नही है। कारण आत्मा का अत्यन्त अभाव न हो सकता वह सत् पदार्थ है ।।४२।।

**सप्त तत्वानि चैतेऽर्थाः पुण्यपापद्वयं विना।**
**तज्जीवाजीवद्रव्यान्तर्भूत यन्नैगमनयात् ।।४३।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (पापपुण्यद्वय) पाप पुण्य के (विना) बिना (एते) ये (अर्था) पदार्थ (सप्ततत्वानि) सात तत्व है (तत्) वह (नैगमनयात्) नैगमनय की अपेक्षा से (जीवाजीवद्रव्यान्तर्भूत) जीव और अजीव इन दो द्रव्यो मे अन्तर्भूत हो जाते है।

**भावार्थ**—जीव, अजीव, आस्त्रव, वध, सवर, निर्जरा और मोक्ष यह सात तत्व पुण्य और पाप मिलाने से नौ पदार्थ हैं। यह सब जीव, अजीव दो द्रव्यो मे गर्भित होते हैं इसलिए नैगमनय की अपेक्षा जीव और अजीव यह दो ही तत्व है ।।४३।।

**"मूढता वर्णन"**

**लोकान्यदेवपाखडिवेदाद्यासादितादलम्।**
**मूढादपोढ सम्यक्त्वं बाढं दृढमिदंभवेत् ।।४४।।**

**अन्वयार्थ**—(लोकान्यदेवपाखडिवेदाद्यासादितादन) अन्यदेव, पाखडि, वेद आदि से उत्पन्न। (मूढात्) मूर्खता से (अपोढ) रहित (अल) निश्चय से (बाढ) अत्यन्त (इद) यह (सम्यक्त्व) सम्यक्त्व (दृढ) दृढ (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—लोक मूढता, देव मूढता, पाखड मूढता, वेद मूढता, आदि मे रहित होने से सम्यग्दर्शन अत्यन्त निर्मल और दृढ होता है ।।४४।।

**गेहभक्ताग्नि भूस्वर्णरत्नास्त्राद्युपकारकम्।**
**जनस्य वस्तु यत्तत्र वंद्यधीर्लोकमूढता ।।४५।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (जनस्य) मानव की (गेहभक्ताग्निभूस्वर्णरत्नास्त्राद्युपकारकम्) घर, भात, अग्नि,

भूमि, सोना, रत्न, शस्त्र आदि अपकारक (वस्तु) वस्तु है (तत्र) उस वस्तु मे (वद्यधी.) पूज्य बुद्धि होना (लोकमूढता) लोकमूढता है।

**भावार्थ**—घर, भात, अग्नि, सोना, रत्न, शस्त्रादि वस्तुयें जीवो की अपकारक है आर्त, रौद्र ध्यान का कारण है, ऐसी घर आदि वस्तु को पूजना लोकमूढता है। अथवा नदी मे स्नान करके अपने को पवित्र मानना, अग्नि मे जलकर धर्म मानना, लोकमूढता है। जिसमे हेयोपादेय का विचार नही होता और जो अन्धानुकरण किया जाता है वह सब लोकमूढता है ।।४५।।

**ब्रह्मोमापति गोविन्द शाक्येन्दुतपनादिषु ।**
**मोहकादम्बरीमत्तेष्वाप्तधीर्देवमूढ़ता ।।४६।।**

**अन्वयार्थ**—(मोहकादम्बरीमत्तेषु) मोहरूपी मदिरा से उन्मत्त (ब्रह्मोमापतिगोविन्दशाक्येन्दु तपनादिषु) ब्रह्मा, उमापति, गोविन्द, शाक्य, (बौद्ध) चन्द्र, सूर्य आदि मे (आप्तधी) देवबुद्धि होना (देवमूढता) देवमूढता है।

**भावार्थ**—अज्ञानता के कारण मोहरूपी मदिरा से मदोन्मत्त ब्रह्मा, महादेव, गोविन्द, बुद्ध, चन्द्रमा, सूर्य आदि को देव मानकर जो पूजा की जाती है वह देवमूढता है ।।४६।।

**पाखंडिमूढ़ता दंडपात्रामत्रदिसंगिषु ।**
**सन्मतिः स्वागमाभासभ्रान्तस्वान्तान्यलिंगिषु ।।४७।।**

**अन्वयार्थ**—(दडपात्रामत्रादिसगिषु) दडपात्र आदि अमर्यादित परिग्रह के धारी (स्वागमाभासभ्रान्तस्वान्तान्यलिंगिषु) अपने आगमाभास से भ्रान्त चित्त वाले अन्य कुलिगियो मे (सन्मति) सत्कार बुद्धि होना (पाखडिमूढता) पाखडि मूढता है।

**भावार्थ**—जो दण्डपात्र आदि अमर्यादित परिग्रह के धारी हैं और अपने आगमभास से मोहित हैं ऐसे पाखडि साधुओ का सत्कार करना पाखडि मूढता है ।।४७।।

**पापोपदेशवेदान्यपुराणादिषु सन्मतिः ।**
**स्याद्वेदमूढ़ता जतोः संसृतिभ्रान्तिकारणम् ।।४८।।**

**अन्वयार्थ**—(पापोपदेशवेदान्यपुराणादिषु) हिंसादि पाप के उपदेशक, वेद, अन्य पुराणादि मे (सन्मति.) जो सत्कार की बुद्धि है। वह (जतो) प्राणियो के (ससृतिभ्रान्तिकारणम्) ससार मे परिभ्रमण का कारण (वेदमूढता) वेद मूढता (स्यात्) है।

**भावार्थ**—जिनमे हिंसादि पापो का उपदेश है, ऐसे ऋग्वेद, सामवेद, आदि और अग्निपुराण, वायुपुराण, आदि पुराण जीवो को ससार मे भ्रमण कराने मे कारण हैं उनमे जो सत्कार, पूजा बुद्धि है वह वेद मूढता है ।।४८।।

"सम्यक्त्व के गुणो का वर्णन

**गुणाः प्रशमनिर्वेग संवेगास्तिकतादयः**
**स्वदोषगर्हानिन्दाद्याः सम्यक्त्वमणिरश्मयः ।।४९।।**

**अन्वयार्थ**—(प्रशमनिर्वेगसवेगास्तिकतादय ) प्रशम, निर्वेग, सवेग, आस्तिकता आदि (स्वदोषगर्हानिन्दाद्या.) अपने दोषो की निन्दागर्हा आदि (गुरणा , गुरण (सम्यक्त्वमरिणरश्मय·) सम्यक्त्वरूपी मरिण की किरणें हैं ।

**भावार्थ**—प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य से पहिचाना जाने वाला सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन है । रागादि दोषो के उपशम को प्रशम कहते हैं । विविध दुःखमय ससार से डरना सवेग है । प्राणी मात्र के दु ख दूर करने की इच्छा से चित्त का दयामय होना अनुकम्पा है । देव, शास्त्र, व्रत और तत्वो मे दृढ प्रतीति को आस्तिक्य कहते हैं । वीतराग सम्यग्दर्शन आत्म विशुद्धि रूप होता है ।

**अथवा**

सवेग=रत्नत्रय रूप धर्म, अभ्युदयनिश्रेयसादि प्राप्ति रूप धर्मफल,जिनेश्वर कथित तथा गणधरादि प्रणीत शास्त्र, परिग्रह रहित रत्नत्रयाराधक मुनिवर्ग इनमे जो स्थिर अनुराग उत्पन्न होता है । उसे सवेग कहते है ।

निर्वेग=रत्नत्रय रहित पुरुषो को उन्मत्तमित्र, पुत्र और स्त्री आदिक सर्व सामग्री मिथ्या कर्म के सयोग से प्राप्त होती है, सिर्फ रत्नत्रय ही आत्मा का स्वभाव है ऐसा चिन्तन करना निर्वेग है ।

निन्दा=जब आत्मा कषाय से व्याकुल होता है । तब वह सज्जननिन्द्य कार्य करता है, परन्तु जब कषाय का वेग कम होता है तब मैंने अयोग्य कार्य किया है, ऐसा जो मन मे अनुताप होता है उसे निन्दा कहते हैं । यह निन्दा नामक सम्यक्त्वगुरण निन्द्य पाप का नाश करने वाला है ।

गर्हा=रागद्वेषादि दोषो के अधीन होकर जब घोर पाप उत्पन्न होता है तब गुरु के आगे आलोचना करना, यह सम्यक्त्व का गर्हा नामक गुरण है । अपने दोषो का स्वय अनुताप करना निन्दा है तथा गुरु के आगे अपने दोपो का पश्चाताप पूर्वक वर्णन करना गर्हा है ।

प्रशम=कोई दुर्निवार तथा महान कालुषता का कारण उत्पन्न होने पर जिसका मन क्षुब्ध नही होता वह भव्य-जीव प्रशम गुरण का धारक होता है ।

भक्तिगुरण—दोप रहित जिनदेव, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकारूप चार प्रकार का सघ, रत्नत्रय धारक मुनि, तथा गर्भजन्मादि कल्याणो का महोत्सव इत्यादि प्रसगो मे सम्यग्दृष्टि अत करणपूर्वक इच्छा और कपट रहित जो आराधना करता है वह उसका भक्ति नामक गुरण कहा जाता है । वह गुरण भव्य के अर्थ की अर्थात् पुण्यफल रूप सपत्ति की प्राप्ति कराने वाला है । परिणामो की निर्मलता से जो देवादिकोपर अनुराग किया जाता है । उसे भक्ति कहते हैं ।

वात्सल्यगुरण—अन्न औषध आदि के द्वारा मन, वचन, काय से चार प्रकार के सघ की जो प्रशसनीय सेवा सुश्रुषा की जाती है उसको वात्सल्य गुरण कहते हैं ।

अनुकम्पा गुरण – असाता वेदनीय और अतरायादि अशुभ कर्मों के उदय से प्रकट हुए दारिद्र, रोग, चिन्ता वगैरह दु खो से पीडित हुये जीवो पर जो दयार्द्र भाव उत्पन्न होता है उसे जिनेश्वर अनुकम्पा भाव कहते हैं । पर पीड़ा को देखकर मानो वह पीडा अपने को ही हो रही है ऐसा समझ कर उसे दूर करना अनुकम्पागुरण है ।

ये आठ गुरण सम्यक्त्वरूपी मरिण की किरणे है । इन आठ गुरण रूपी अजन प्रयोग से सम्यग्दर्शनरूपी नेत्र जब निर्मल होता है तब वह जीव को अभिलाषित स्थान को प्राप्त करा देता है ।।४६।।

**"सम्यक्त्व के आठ अंग"**

निः शंकत्वमकांक्षत्वं नैर्जुगुप्स्सयममूढ़ता
उपगूहः स्थितिकारो वात्सल्य च प्रभावना ॥५०॥

इत्यष्टांगानि पुष्टानी सम्यक्त्वगुण
यद्वदंगानि सप्त स्युः प्राज्यसाम्राज्यसंपदे ॥५१॥

**अन्वयार्थ**—(निःशकत्वमकांक्षत्व नैर्जुगुप्स्यपममूढता) निशकत्व निकाक्षत्व, नैर्जुगुप्सयत्व, अमूढता (उपगूह) उपगूहन (स्थितिकार) स्थितिकरण (वात्सल्य) वात्सल्य (च) और (प्रभावना) प्रभावना (इति) इस प्रकार (पुष्टानि) पुष्ट करने वाले (अष्टागानि) आठ अग (सम्यक्त्वगुणसम्पदे) सम्यक्त्व गुण सम्पदाओ के लिए (स्यु) होते हैं (यद्वत्) जैसे (प्राज्यसाम्राज्यसपदे) उत्कृष्ट साम्राज्य सम्पदा के लिए (सप्त) सात (अगनि) अग (स्यु) होते हैं।

**भावार्थ**—जिस प्रकार साम्राज्य को पुष्ट करने के लिए सात प्रकार की सेना होती है। उसी प्रकार नि शकित नि.काक्षित( निर्जुगुप्सा, अमूढ दृष्टित्व, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अग सम्यक्त्व की वृद्धि के कारण हैं ॥५०,५१॥

हेतुद्वयोत्कार्यानुमेयेयं भवितव्यता।
दुर्लंघ्येति भयाऽभावो निःशंकत्वं भयोदये ॥५२॥

**अन्वयार्थ**—(भयोदये) भय का उदय होने पर (इय) यह (भावितव्यता) भवितव्यता (हेतुद्वयोत्कार्यानुमेया) दो हेतु से उत्पन्न कार्य के द्वारा अनुमेय है, (दुर्लंघ्या) दुर्लंघ्य है (इति) इस प्रकार (भयाभाव) भाव का अभाव होना (निशकितत्व) निशकित्व अग है।

**भावार्थ**—भय के कारणो के उपस्थित होने पर भी वस्तु के स्वरूप का विचार कर निर्भय रहना, आकुल व्याकुल नही होना निशकित अंग है ॥५२॥

भयमाकस्मिकं पारलौकिकं चेहलौकिकम्।
मृत्युगुप्तिरूजात्राणैः सजातमिति सप्तधा ॥५३॥

किं स्यात्सत्यमिदं नो वेत्याप्तोक्ते ससयोज्झिता।
मतिस्तत्त्वा चलप्रीति परा निःशकिता मता ॥५४॥

**अन्वयार्थ**—(आकस्मिक) आकस्मिक (पारलौकिक) पारलौकिक (इहलौकिक) इहलौकिक (मृत्युगुप्तिरुजात्राणै) मरणगुप्ति, रोग, अत्राण से (सजात) उत्पन्न (भय) भय (सप्त) सात प्रकार का है। (कि) क्या (इद) यह (सत्य) सत्य है (नवा) अथवा सत्य नही है (इति) इस प्रकार (आप्तोक्ते जिनेन्द्र भगवान के वचनो मे (सशयोज्झिता) सशय रहित (मति) बुद्धि तथा (तत्वाचलप्रीति) तत्व मे अचल प्रीति होना (पर) उत्कृष्ट (नि.शकिता) नि शकित अग (मता) माना गया है।

**भावार्थ** - इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, अगुप्ति भय, वेदना भय, आकस्मिकभय, अनरक्षभय यह सात प्रकार के भय है। वर्तमान पर्याय मे मुझे दु ख न हो इस प्रकार का भय करना इहलोक भय है। पर भव मे मेरी दुर्गति न

हो ऐसा भय होना परलोक भय है। मरण से भयभीत होना मरण भय है। शारीरिक रोगो से भयभीत होना वेदना भय है मेरे रहने का कोई गुप्त स्थान नही क्या करू कहा रहूँ ऐसी आकुलता अगुप्ति भय है। मेरा कोई रक्षक नही है ऐसा भय अरक्षक भय है।

अकस्मात यह घर गिर नही जाय, कोई चोर न आ जाय आदि की आशका होना आकस्मिक भय है। इन सात प्रकार के भयो का कारण उपस्थित होने पर भी उपादान और निमित्त इन दोनो कारणो से अनुभेय भवितव्यता अलध्य है उसको दूर करने के लिए कोई समर्थ नही है, तब आकुलता से क्या होने वाला है, ऐसा विचार कर निर्भय होना निशकित अग है।

अथवा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित तत्व सत्य है कि असत्य है इस प्रकार सशयवृत्ति रहित अचल तत्व की प्रतीति होना वा जिनेन्द्र भगवान के वचन सत्य ही है ऐसा दृढ विश्वास होना निशकित अग है ।।५३,५४।।

**वांछाऽभावोऽन्यद्दृग्ज्ञान वृत्तोत्कर्षेष्वाकांक्षता ।**
**अत्राऽमुत्र च जाते वाऽनश्वरेन्द्रियजे सुखे ।।५५।।**

**अन्वयार्थ**—(अन्यदृग्ज्ञानवृत्तोत्कर्षेषु) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के उत्कर्ष मे (वा) अथवा (अत्र) इस लोक (च) और (अमुत्र) परलोक मे (जाते) प्राप्त होने वाले (अनश्वरेन्द्रियजे) नाशवत इन्द्रियजन्य (सुखे) सुख मे (वाछा भाव,) वाँछा का अभाव होना (आकाक्षता) निष्काक्षित अग है ।।५५।।

**देवेन्द्रादिश्रियो यस्मिन्सत्यायान्ति स्वय सताम् ।**
**सम्यक्त्वेऽनुपमे तस्मिन् कि तथा परचिन्तया ।।५६।।**

**अन्वयार्थ**—(यस्मिन्) जिस (अनुपमे) अनुपम (सम्यक्त्वे) सम्यक्त्व के (सति) होने पर (सता) सज्जन पुरुषो को (देवेन्द्रादिश्रिय) इन्द्र आदि की सम्पदा (स्वय) स्वय (आयाति) आ जाती है (तस्मिन्) उस सासारिक सम्पदा के लिए (तथा) उस (परचित्तया) चिन्ता से (कि) क्या प्रयोजन है।

**भावार्थ** - इस लोक मे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का उत्कर्ष देखकर मिथ्याधर्म की भावना नही करना अथवा इस लोक मे मुझे सम्पदा प्राप्त हो जाय, वा परलोक मे चक्रवर्ती आदि पद की प्राप्ति हो जाय इस प्रकार की वाछा का अभाव निष्काक्षित अग है। इस प्रकार की चिन्ता से क्या प्रयोजन है, जिसके पास अमूल्य सम्यक्त्व रूपी रत्न है उसको सासारिक अभ्युदय स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं ।।५६।।

**तीव्र जैनतपस्तत्र निंद्य चामज्जनादिकम् ।**
**सम्यगन्यदिति स्वांतत्याग स्यान्निर्जुगुप्सता ।।५७।।**

**अन्वयार्थ**– (जैनतप) जैनतप (तीव्र) तीव्र है (च) और (तत्र) उस जैनतप मे (अमज्जनादिकम्) स्नानादि नही करना (निंद्य) निंदनीय है (अन्यत) अन्य सब क्रिया (सम्यग्) समीचीन है (इति) इस प्रकार के (स्वातत्याग) मानसिक भावना का त्याग करना (निर्जुगुप्सा) निर्जुगुप्सा (स्यात्) होती है।

**भावार्थ**—जिनेन्द्र कथित तप सर्वोत्कृष्ट है। इसमे और सब क्रिया तो उत्तम है, परन्तु स्नान नही करना यह योग्य नही है। इस प्रकार का विचार मन मे उत्पन्न नही होने देना ही निर्जुगुप्सा अग है ।।५७।।

रत्नत्रयपवित्राणां छर्दिलालद्यपोहने ।
विचिकित्सात्यो वा सा ज्ञात्वा गात्रापवित्रताम् ॥५८॥

**अन्वयार्थ**—(वा) अथवा (गात्रापवित्रताम्) शरीर की अपवित्रता को (ज्ञात्वा) जानकर (रत्नत्रय-पवित्राणा) रत्नत्रय धारियो के (छार्दिलालद्यापोहने) छर्दि (वमन) लार, कफ आदि को दूर करने मे (विचिकित्सात्य) ग्लानि का अभाव होना निर्जुगुप्सा अग है ।

**भावार्थ**—यह शरीर स्वभाव से अपवित्र है ऐसा विचार कर रत्नत्रय धारियो के मल, मूत्र, वमन आदि को दूर करने मे ग्लानि नही करना निर्विचिकित्सा अग है ॥५८॥

वहिराचारचारुणि सौगतादिमतान्यलम् ।
क्लेशादिमोहदान्येव स्युः किंपाकवदंगिनाम् ॥५९

**अन्वयार्थ**—(अगिनाम्) प्राणियो के (किंपाकवत्) किंपाक फल के समान (वहिराचारचारुणि) वाह्य के आचरण मे मनोज्ञ (सौगतादि मतानि) सुगतादि के धर्म (क्लेशमोहदानि) मोह क्लेश को देने वाले (एव) ही (स्यु.) है (अल) इसलिए इससे वया प्रयोजन है ।

**भावार्थ** - जिस प्रकार किंपाक फल दिखने मे मुन्दर दिखता है । परन्तु भक्षण करने के वाद प्राणो को हरण करने वाला है । उसी प्रकार वाह्य मे मनोज्ञ प्रतीत होने वाले सौगतादि गत धर्म अत मे मोह क्लेश को देने वाले हैं ॥५९॥

तदन्यज्ञानविज्ञानप्रशसाविस्मययोज्झिता ।
युक्तियुक्तजिनोक्ते या रुचि साऽमूढ़ता मता ॥६०॥

**अन्वयार्थ**—(तत्) इसलिए (अन्यज्ञानविज्ञानप्रशसाविस्मयोज्झिता) मिथ्यादृष्टियो के ज्ञान विज्ञान की प्रशसा व आश्चर्य को छोडना तथा (युक्तियुक्तजिनोक्ते) युक्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान के कथित धर्म मे (या) जो (रुचि) रुचि है (सा अमूढता) वह अमूढता है ।

**भावार्थ**—मिथ्यादृष्टियो के ज्ञानादि की प्रशसा को छोडकर अनुमान और प्रत्यक्ष ज्ञान से अवाधित जिनेन्द्र कथित धर्म मे रुचि होना अमूढ दृष्टि अग है ॥६०॥

यद्वत्पुत्रकृतं दोषं यत्नान्माता निगूहति ।
तद्वत्सद्धर्मदोषोपगूहः स्यादुपगूहनम् ॥६१॥

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जिस प्रकार (पुत्रकृत) पुत्र के द्वारा किये हुये (दोष) दोष को (माता) माता (यत्नात्) प्रयत्न पूर्वक (निगूहति) ढंक देती है (तद्वत्) उसी प्रकार (सद्धर्मदोषोपगूह) सद्धर्म के दोषो को ढकना (उपगूहनम्) उपगूहन अग (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—जैसे अपने पुत्र के द्वारा किये हुये दोषो को माता ढंक देती है वाहर प्रकट नही करती है । उसी प्रकार सद्धर्मी के दोषो को ढँकना, उन्हे वाहर प्रकट नही करना उपगूहन अग है ॥६१॥

**आत्मनोऽन्यस्य वा चेतो धर्मोद्विग्नं परीषहैः ।**
**संबोध्य तत्र तच्चित्तस्थापन स्यात्स्थितिक्रिया ॥६२॥**

**अन्वयार्थ**—(आत्मन ) अपना (वा) अथवा (अन्यस्य) दूसरे का (परीषहै ) परिषहो के द्वारा (धर्मोद्विग्न) धर्म से उद्विग्न हुये (चेत ) चित्त को (सबोध्य) सबोधन करके (तत्र) धर्म मे (तच्चित्तस्थापन) उस चित्त को स्थापन करना (स्थितिक्रिया) स्थितिकरण अग (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—क्षुधा पिपासादि परिषहो के द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप धर्म से उद्विग्न हुए अपने तथा साधर्मी के चित्त को पुन. सन्मार्ग मे स्थिर करना स्थितिकरण अग है ॥६२॥

**तन्नियोज्य यथाशक्ति धर्मे नूत्नेतरान्नरान् ।**
**धर्मोपबृंहणं कार्यं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥६३॥**

**अन्वयार्थ**—(नूत्नेतरान्) नूतन और पुरातन (नरान्) मानवो को (यथाशक्ति) शक्ति अनुसार (धर्मे) धर्म मे (नियोज्य) नियुक्त करके (धर्मोपबृहण) धर्मोपबृहण कार्य करना चाहिये । क्योकि (धार्मिकै) धर्मात्माओ के (विना) बिना (धर्म.) धर्म (न) नही है ।

**भावार्थ**—प्राचीन जिन धर्मावलम्बियो को वा अन्य नवीन मानवो को धर्म का उपदेश देकर नित्य धर्म मे सलग्न कर उपबृहण करना चाहिये । क्योकि धर्मात्माओ के बिना धर्म नही रहता है । यह भी उपबृहण रूप उपगूहन अग है ॥६३॥

**प्रीतिर्जिनागमे वत्सलत्वं सघे चतुर्विधे ।**
**प्रमोदितोपकरित्वं चोपकारानपेक्षया ॥६४॥**

**अन्वयार्थ**—(जिनागमे) जिनागम मे (चतुर्विधे सघे) चतुर्विध सघ मे (उपकारानपेक्षया) उपकार की अपेक्षा के बिना (प्रमोदिता) प्रमोदकारिणी -(प्रीति ) प्रीति (च) और (उपकारित्व) उपकारित्व होना (वत्सलत्व) वात्सल्य अग है ।

**भावार्थ**—जिन धर्म मे और चतुर्विध धर्म मे प्रमोदकारिणी प्रीति और उपकार की अपेक्षा के विना उपकार करना वात्सल्य अग है क्योकि साधर्मियो और शिव के कारण भूत अहिंसामय जिन धर्म मे परमप्रीति सम्यग्दर्शन को निर्मल करती है ॥६४॥

**जैनानापद्गतांस्तस्मादुपकुर्वन्तु सर्वथा ।**
**यः समर्थोऽप्युपेक्षेत सः कथ समयी भवेत् ॥६५॥**

**अन्वयार्थ**—(आपद्गतान्) आपत्ति को प्राप्त (जैनान्) जिन धर्मावलम्बियो का (सर्वथा) सर्वथा (उपकुर्वन्तु) उपकार करे (तस्मात्) क्योकि (य ) जो (समर्थ) समर्थ होता हुआ (अपि) भी (उपेक्षेत) उपेक्षा करता है (स ) वह (समयी) सम्यग्दृष्टि (कथ) कैसे (स्यात्) हो सकता है ।

**भावार्थ**—जो आपत्तिगत है ऐसे जैन धर्मावलम्बियो की प्रयत्न पूर्वक आन्तरिक अनुराग मे उपकार तथा

उनकी आपत्तियो को दूर करना चाहिये । क्योकि जो समर्थशाली होकर भी साधर्मियो की आपत्तियो को दूर नही करता है वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है । इसलिए अपनी शक्तिनुसार पुन उपकार की अपेक्षा नही करके धर्म और धर्मात्माओ की रक्षा करना भी वात्सल्य अग है । आतरिक वात्सल्य विना जिन धर्म की रक्षा नहीं हो सकती है ।।६५।।

**त्रिरत्नैरात्मनः सम्यग्भावनं स्यात्प्रभावना ।**
**सद्धर्मस्य प्रकाशो वा सम्यग्ज्ञानादिभिर्गुणैः ।।६६।।**

**अन्वयार्थ**—(त्रिरत्नै ) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्क्यचारित्र रूपी तीन रत्नो के द्वारा (आत्मन ) अपने आत्मा का (सम्यग्भावन) समीचीन भाव से उद्योत करना (वा) अथवा (सम्यग्ज्ञानादिभि ) सम्यग्ज्ञानादि (गुणै ) गुणो के द्वारा (सद्धर्मस्य) सद्धर्म का (प्रकाश ) प्रकाशन करना (प्रभावना) प्रभावना अग (स्यात्) होता है ।

**भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, सम्यक्यचारित्र के द्वारा अपनी आत्मा को उद्योतित करना प्रभावना अग है अथवा सम्यग्दर्शनादि गुणो के द्वारा जिन धर्म का उद्योत करना प्रभावना अग है ।।६६।।

**तेनज्ञानप्रभावेन महताऽनशनादिना ।**
**महापूजादिभिश्चोच्चैः कर्तव्या समयोन्नतिः ।।६७।।**

**अन्वयार्थ**—(तेन) उस (ज्ञानप्रभावेन) ज्ञान के प्रभाव से (महता) महान (अनशनादिना) अनशनादि (गुणै ) गुणो के द्वारा (च) और (महापूजादिभि ) महापूजादि के द्वारा (उच्चै ) ऊँचे रूप से (समयोन्नतिः) जिनधर्म की उन्नति (कर्तव्या) करनी चाहिए ।

**भावार्थ**—अज्ञान अधकार नाशक ज्ञान के द्वारा तथा अनशन आदि काय क्लेशो के द्वारा और इन्द्रध्वज, महामह, कल्पद्रुम आदि महापूजाओ के द्वारा जगत्पूज्य पवित्र जगद्ब धु, जिन धर्म की महान प्रभावना करनी चाहिये ।।६७।।

**जडात्मा शक्तियुक्तोऽपि यः सद्धर्मप्रकाशनम् ।**
**कुर्यान्न चेदसौ रिक्तो महीभारो नराधमः ।।६८।।**

**अन्वयार्थ**—(य ) जो (जडात्मा) मूर्ख (शक्तियुक्त ) शक्ति युक्त होता हुआ (अपि) भी (सद्धर्मप्रकाशनम्) सधर्म का प्रकाशन (न) नही (कुर्यात्) करता है (चेत्) तो (असौ) वह मानव (रिक्त ) सम्यग्दर्शन से रहित है (महीभार ) केवल पृथ्वी का भार स्वरूप है (नराधम ) अधम है ।

**भावार्थ**—जो अज्ञानी जन शक्ति सम्पन्न होता हुआ भी ज्ञान, दान, पूजा अनशन आदि के द्वारा जिन धर्म की प्रभावना नही करता है वह नराधर्म सम्यग्दर्शन से रहित है, केवल पृथ्वी का भार स्वरूप है ।।६८।।

**जिनविंबावलोकादिनिसर्गोऽल्पप्रयासतः ।**
**ज्ञेयश्चाधिगमस्तत्वविचारचतुरा मति· ।।६९।।**

**अन्वयार्थ**—(अल्पप्रयासतः) थोडे प्रयाम से (जिनविम्बावलोकादिनिसर्ग ) जिनविम्ब अवलोकनादि से निसर्ग सम्यक्त्व (च) और (तत्वविचारचतुरा) तत्व के विचार से चतुर (मति·) वुद्धि (अधिगम ) अधिगमन सम्यग्दर्शन (ज्ञेय) जानना चाहिये ।

**भावार्थ**—वह सम्यग्दर्शन निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का है। जिनबिम्ब आदि के दर्शन से वा गुरु के अल्प प्रयास से जो तत्व श्रद्धान होता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है और जिसमे गुरु को विशेष प्रयत्न करना पडता है वा शास्त्रादिके विशेष विचार से तत्वरूचि सम्पन्न होती है उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते है।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के जो कारण हैं इनमे धर्मोपदेश को छोडकर शेष कारणो से जो तत्वरूचि होती है वा धर्मोपदेश मे भी गुरुओ को विशेष प्रयत्न नही करना पड़ता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है ॥६९॥

**संज्ञिपर्याप्तभव्यस्य लब्धियुक्तस्य जागृतः।**
**ज्ञानोपयोगिनो हेतू सम्यक्त्वाप्तेर्मताविमौ ॥७०॥**

**अन्वयार्थ**—(सज्ञिपर्याप्तभव्यस्य) सज्ञि, पर्याप्त, भव्य (लब्धियुक्तस्य) पांच लब्धियुक्त (जागृत) जागृत अवस्था वाले (ज्ञानोपयोगिन.) साकार उपयोग के (सम्यक्त्वाप्ते) सम्यक्त्व के प्राप्ति के (इमौ) यह निसर्गज और अधिगमज (हेतु) कारण (मतौ) माने हैं।

**भावार्थ**—जो सज्ञी, पचेन्द्रिय, पर्याप्त हो, पाँच लब्धि जिसको हो गई हो, जो साकार उपयोगी है, जागृत अवस्था से युक्त है उसके सम्यक्त्व की प्राप्ति मे निसर्गज और अधिगमज कारण होते है ॥७०॥

**दृङ्मोहोपशमध्वंसक्षयोपशमकारणैः।**
**भवच्छेदनिदानाद्यं दर्शनं त्रिविधं विदुः ॥७१॥**

**अन्वयार्थ**—(दर्शनमोहोपशमध्वसक्षयोपशमकारणैं) दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम कारण के द्वारा (भवच्छेदनिदानाद्य) ससार सतति के छेदने का प्रथम कारण (दर्शन) सम्यग्दर्शन (त्रिविध) तीन प्रक र का (विदु) माना है।

**भावार्थ**- सम्यक्त्व तीन प्रकार का है उपशमसम्यक्त्व, क्षायिक और क्षायोपशमिक औपशमिक सम्यक्त्व-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, तथा सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृति के उपशम से जो सम्यक्त्व होता है। उसको औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। क्षायिकसम्यक्त्व—जो ऊपर कही हुई सात प्रकृतियो के क्षय से होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है। क्षायोपशमिक—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व इन सर्वधाति प्रकृतियो के वर्तमान काल मे उदय आने वाले निशेको का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते है। इसी का दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व ससार सतति के छेद का कारण है ॥७१॥

**दर्शने निर्मलावृतिर्ज्ञानचारित्रसंपदः।**
**पदे मुक्तिरमादर्श दर्शनाचार ईरित ॥७२॥**

**अन्वयार्थ**—(ज्ञानचारित्रसपद.) ज्ञान, चारित्र रूपी सम्पत्ति के (पदे) स्थान (मुक्तिरमादश) मुक्ति रूपी वनिता का दर्पण (दर्शने) ऐसे सम्यग्दर्शन मे (निर्मला) निरतिचार (वृत्ति) परिणति (दर्शनाचार) दर्शनाचार (ईरित) कहा है।

**भावार्थ**—सम्यग्ज्ञान और चारित्र की सम्पदा का कारण, मुक्ति रूपी स्त्री के मुख का अवलोकन करने मे

दर्पण के समान सम्यग्दर्शन मे निरतिचार प्रवृति करना दर्शनाचार है। अर्थात निरतिचार सम्यग्दर्शन का पालन करना दर्शनाचार है ॥७२॥

**एतद्देवनरेश्वरामृतपदश्रीवश्यकृद्दर्शनं।**
**किं चानंतभवान्तकृत्परमतत्पप्रोन्मेषपूतात्मनः॥**
**कांतासु त्रिषु भावनादिषु महीषट्के च वंशादिके।**
**नोत्पत्तिर्विकलेन्द्रियैककरणे बद्धायुषोऽप्यगिनं ॥७३॥**

**अन्वयार्थ**—(देवनरेश्वरामृतपदश्रीवश्यकृद्दर्शन) इन्द्र, चक्रवर्ती और मुक्ति पद की लक्ष्मी को करने वाला (एतत्) यह (दर्शन) सम्यग्दर्शन है (किं) विशेष वचन क्या कहे (अनतभवान्तकृत) अनत ससार का नाश करने वाला (परमतत्प्रोन्मेषपूतात्मन) उस सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति से पवित्र है, आत्मा जिसकी ऐसे (अगिन.) प्राणियो के (बद्धायुष) बद्धायुष्क होने पर (अपि) भी (कान्तासु) सर्व स्त्रियो और (त्रिषु) तीन (भवनादिषु) भवनवासी आदि मे (वशादिके) वशादिक (महीषट्के) छह नारकीय पृथ्वियो मे (विकलेन्द्रियैककरणे) विकलत्रय और एकेन्द्रिय मे (उत्पति) उत्पत्ति (न) नही होती है।

**भावार्थ**—बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव, नरक की द्वितीयादि छह पृथ्वियो मे, भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी, देवो मे, सर्व प्रकार की स्त्रियो मे, एक इन्द्रिय, द्वीइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी, पचेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते हैं। यदि मिथ्यात्व अवस्था मे पूर्व भव की आयु नही बाधी हो तो मानव और तिर्यच तो कल्पवासी देवो मे ही उत्पन्न होगे और देव, नारकी, मानव, पर्याय मे ही उत्पन्न होगे और पर्याय मे उत्पन्न नही होगे। जिन्होने मिथ्यात्व मे नरक और तिर्यच का बध किया है, वे प्रथम नरक और भोगभूमि तिर्यंचो मे उत्पन्न होते हैं। वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं उपशम और क्षायो-पशमिक सम्यक्त्व वाले नही होते। इस सम्यग्दर्शन की महिमा कहा तक कहे। एक बार अन्त मुहूर्त प्रमाण भी आत्मा के लिए सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाय, तो यह प्राणी अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल से अधिक ससार मे परिभ्रमण नही करता। अनन्त ससार नाशक सम्यग्दर्शन से पवित्रात्मा जीव इन्द्रपद, चक्रवर्ती पद, तीर्थंकर पद आदि के ससार सम्बन्धी उत्तमोत्तम इन्द्रिय जन्य सुखो को भोगकर निर्वाण पद प्राप्त करता है ॥७३॥

**ज्ञानं येन समस्तवस्तुविषयं चारित्रमेनोलता।**
**दात्रं येन पवित्रिता सुकृतिनो येनाऽस्तु तद्दर्शनम् ॥**
**मच्चेतः शरणप्रकाशनमणिर्यन्नूत्नचिन्तामणि-**
**र्भव्यानां यदचिन्तितामितफलैर्नित्यप्रमोदोदयम् ॥७४॥**

**अन्वयार्थ**—(येन) जिससे (समस्तवस्तुविपय) समस्त वस्तु का विषय करने वाला (ज्ञान) ज्ञान उत्पन्न होता है (येन) जिससे (एनोलतादात्र) पाप रूपी लता को भेदने के लिए दात्री समान ऐसा (चारित्र) चारित्र होता है (येन) जिससे (सुकृतिन) पुण्यात्माओ की (पवित्रिता) पवित्रता होती है (यत्) जो (मच्चेतशरणप्रकाशनमणि.) मेरे चित्त रूपी घर को प्रकाशित करने के लिए मणि है (तत्) वह (भव्याना) भव्यो की (यन्नूत्नचिन्तामणि.) नवीन चिन्तामणि (अचिन्तितामितफलं) अचिन्तित अप्रमित फल के द्वारा (नित्यप्रमोदोदयम्) नित्य हर्ष के उदयरूप (अस्तु) हो।

**भावार्थ** - जिनके होने पर ही समस्त पदार्थों का विषय करने वाला सम्यग्ज्ञान होता है अर्थात् जिसके होने पर ही पाच सम्यग्ज्ञान होते हैं। जिसके होने पर ही सम्यक्चारित्र होता है, जो चारित्र पाप रूपी लता उखाडने के लिए कुठार के समान है जिससे मानव पवित्र और पुण्यात्मा बनता है वह मेरे चित्तरूपी घर को प्रकाशित करने के लिए मणि,

भव्य जीवों की नूतन चिंतामणि सम्यग्दर्शन अचिंत्य और अप्रमित फल के द्वारा हमेशा उदित रहे अर्थात् हमेशा अचिंत्य फल को देता रहे ॥७४॥

श्रियं त्रिलोकीपतिपुष्पदन्तः
पुष्यादनन्तः प्रियमुक्तिकान्तः ।
दुरतमिथ्यात्वतमस्तमोरि
जिनो मनोजद्विरदद्विपारिः ॥७५॥

**अन्वयार्थ**—(प्रियमुक्तिकान्त) प्यारी मुक्ति रमा के पति (दुरतमिथ्यात्वतमस्तमोरिः) दुरन्त मिथ्यात्वरूपी अन्धकार के समूह का शत्रु (मनोजद्विरदद्विपारिः) कामरूपी हाथी के लिए सिंह (अनंत) परम ब्रह्म (त्रिलोकीपतिपुष्पदत) तीन लोक का पति श्री पुष्पदन्त (जिन.) जिनराज (श्रिय) लक्ष्मी को (पुष्यात्) दव ।

**भावार्थ**—परमसुखदायिनी, मुक्तिरमा के वल्लभ, दुरन्तमिथ्यात्वरूपी अन्धकार के नाशक, मनोजरूपी गज-राज के शत्रु, तीन लोक के पति, परमब्रह्म परमात्मा, श्री पुष्पदन्त भगवान मेरे लिए अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, और अनन्तवीर्य, रूप अन्तरग लक्ष्मी तथा समवशरण आदि बहिरग लक्ष्मी प्रदान करें ॥७५॥

इति श्रीमद्वीरनंदिसिद्धांतिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि
शास्त्रे दर्शनाचारवर्णनात्मकस्तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

# अथ चतुर्थाधिकारः

जयत्यनंताप्रतिभप्रबोध
प्रद्योतविद्योतितविश्वतत्त्वः ।
प्रत्यस्तकर्मोरुतमःप्रतानः
प्रोद्बुद्धभव्याब्जवनोऽजितेनः ॥१॥

**अन्वयार्थ**—(अनतप्रतिमप्रबोधप्रद्योतविद्योतितविश्वतत्व) अनत अप्रमित बोध के प्रकाश से प्रकाशित किया है विश्व के तत्व को जिसने (प्रत्यस्तकर्मोरुतम प्रतान) नष्ट कर दिया है कर्मरूपी महान अन्धकार के समूह को जिसने (प्रोद्बुद्धभव्याब्जवन) प्रबुद्ध किया है भव्यरूपी कमलवन को जिसने ऐसे (अजितेन) अजितनाथ भगवान रूपी सूर्य (जयति) जयवन्त रहे ।

**भावार्थ**—अप्रमित, अनन्त, केवलज्ञानरूपी किरणो के द्वारा तीन जगत के प्रकाशक, ज्ञानावरणी आदि कर्म रूपी महा अन्धकार के भेदक, भव्य कमलवन के प्रबोधक, श्री अजितनाथ भगवान रूपी सूर्य जयवत रहे ॥१॥

जानाति ज्ञास्यत्यज्ञासीदनेन "ज्ञ" इति स्मृतम् ।
ज्ञान स्यान्नूतनात्मार्थव्यवसायनिराकृतिः ॥२॥

**अन्वयार्थ**—(अनेन) इससे (जानाति) जानता है (ज्ञास्यति) जानेगा (अज्ञासीत्) जाना था (इति) इस प्रकार जिसे (ज्ञ) ज्ञाता (स्मृत) माना है (नूतनात्मार्थव्यवसायनिराकृति) नवीन आत्मार्थ के व्यवसाय का निराकरण करने वाला (ज्ञान) वह ज्ञान (स्यात्) है।

**भावार्थ**—इसके द्वारा वर्तमान मे जानता है, भविष्यत्काल मे जानेगा और भूतकाल मे जाना था इसलिए "ज्ञ" कहा जाता है। वह नूतन आत्मार्थ के व्यवसाय का निराकरण करने वाला ज्ञान कहलाता है ।।२।।

**ज्ञेय हि वस्तु सामान्यविशेषात्मकमत्र यत् ।**
**सामान्यमूर्ध्वता तिर्यक् चेति भेदद्वयं मतम् ।।३।।**

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इस लोक मे (हि) निश्चय से (ज्ञेय) ज्ञेय (वस्तु) वस्तु (सामान्यविशेषात्मक) सामान्य विशेषात्मक है (यत्) जो (सामान्यं) सामान्य है। (तत्) वह (उर्ध्वता) उर्ध्वता (च) और (तिर्यक) तिर्यक् (इति) इस प्रकार (भेदद्वय) दो भेद रूप (मत) माना है।

**भावार्थ**—इस लोक मे ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। उसमे उर्ध्वतासामान्य और तिर्यग सामान्य, ये सामान्य के दो भेद हैं ।।३।।

**यत्परापरपर्यायव्यापि द्रव्यं तदूर्ध्वता ।**
**मृद्यथा स्थासकोशादि विवर्तपरिवर्तिनी ।।४।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (परापरपर्यायव्यापि) परापरपर्यायव्यापि (द्रव्य) द्रव्य है (तत्) वह (उर्ध्वता) उर्ध्वता सामान्य है (यथा) जैसे (स्थासकोशादिविवर्तपरिवर्तिनी) स्थास, कोश आदि पर्यायो मे परिवर्तन होने वाली (मृत्) मिट्टी।

**भावार्थ**—पूर्व और उत्तर पर्याय मे रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं जैसे स्थास और कुशूल आदि पर्यायो मे मिट्टी रहती है। यहा यह मिट्टी ही ऊर्ध्वता सामान्य मानी जावेगी ।।४।।

**परिणामः समस्तिर्यग् खंडमुंडादिगोषु वा ।**
**गोत्वं विशेषः पर्यायव्यतिरेकद्विभेदवान् ।।५।।**

**अन्वयार्थ**—(सम) समान (वा) अथवा (परिणाम.) परिणाम (तिर्यग्) तिर्यक् सामान्य है जैसे (खंडमुंडादिगोषु) खंडी मुंडी आदि गायो मे (गोत्व) गायपना है (पर्यायव्यतिरेकद्विभेदर्यवान्) पर्यर्याय और व्यतिरेक से दो भेद वाला (विशेष) विशेप है।

**भावार्थ**-समान परिणमन को तिर्यक्सामान्य कहते हैं जैसे-खडी, मुण्डी और काली आदि गायो में गोत्व सदृशपरिणमन है। सब गायो का परिणमन समान होता है इसलिए सब ही को गोशब्द से व्यवहृत करते हैं। यहाँ गोत्व का अर्थ सदृश परिणाम लिया है और वह प्रत्येक गाय मे भिन्नता से रहता है। व्यक्तियो के समान ही सख्या वाला है परन्तु एक नही है। विशेप के दो भेद हैं, एक पर्याय और दूसरा व्यतिरेक ।।५।।

**एकस्य वस्तुनो भावाः पर्यायाः क्रमभाविनः ।**
**तोषरोषादयो भावा जीवे वा क्रमभाविनः ।।६।।**

**अन्वयार्थ**—(एकस्य) एक (वस्तुन.) वस्तु के (क्रमभाविनः) क्रम क्रम से होने वाले (भाव.) भाव (पर्यायाः) पर्याय है (वा) जैसे (जीवे) जीव मे (क्रमभाविन ) क्रम से होने वाले (तोषरोषादयः) तोष रोषादि (भावा.) भाव हैं।

**भावार्थ**—एक द्रव्य मे क्रम से होने वाले परिणामो को पर्याय कहते है जैसे-आत्मा मे हर्ष, विषाद ॥६॥

**व्यतिरेको भवेद्भावो वस्त्वंतरगतोऽसमः।**
**गोमहिष्यादिभावो यो यथा तद्व्यतिरेचकः ॥७॥**

**अन्वयार्थ**—(वस्त्वतरगत ) दूसरी वस्तु के अन्तर्गत (असम ) असमान (भावः) भाव (व्यतिरेकः) व्यतिरेक (भवेत्) होता है (यथा) जैसे (तद्व्यतिरेचकः) उनसे व्यतिरिक्त (गोमहिष्यादिभाव.) गौ, भैंस आदि भाव।

**भावार्थ**—एक पदार्थ की अपेक्षा दूसरे पदार्थ मे रहने वाले विसदृश परिणाम को व्यतिरेक कहते है जैसे गौ से महिष (भैंसा) मे एक विलक्षण (भिन्न) ही परिणमन होता है ॥७॥

**ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनपर्ययकेवलैः।**
**भिन्नहेतुस्वरूपार्थं भेदैः पंचविधं च तत् ॥८॥**

**अन्वयार्थ**—(भिन्नहेतुस्वरूपार्थं ) भिन्न हेतु, भिन्न स्वरूप और भिन्न अर्थ वाले (मतिश्रुतावधिमनपर्ययकेवलै ) मति, श्रुत, अवधि, मन. पर्यय और केवल (भेदै ) भेदो से (तत्) वह (ज्ञान) ज्ञान (पचविधं) पाँच प्रकार का है।

**भावार्थ**—स्वरूप, कारण और प्रयोजन भिन्न-भिन्न होने से ज्ञान के भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच भेद हैं ॥८॥

**स्वस्यार्थव्यंजनावग्रहेहनाऽवायधारणाः।**
**मननं मतिरर्थस्य यत्तदिन्द्रियमानसैः ॥९॥**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (इन्द्रियमानसै ) इन्द्रिय और मन के द्वारा (स्वस्य अर्थस्य) अपने पदार्थों का (मनन) मनन किया जाता है (तत्) वह मतिज्ञान (अर्थव्यजनावग्रहेहनावायधारणाः) अर्थावग्रह, व्यजनावग्रह ईहा, अवाय, धारणा है।

**भावार्थ**— मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के भेद से चार प्रकार का है। अर्थावग्रह और व्यजनावग्रह के भेद से अवग्रह दो प्रकार का हैं। ईहा, अवाय, धारणा केवल अर्थ की होती है। इन्द्रिय और मन के द्वारा स्व पदार्थों का मनन किया जाता है वह मति है मतिज्ञान स्वार्थ है। इसलिए इसे स्वार्थ कहा है ॥९॥

**व्यंजनावग्रहश्चक्षुर्मनसोर्नास्त्यवग्रहः।**
**विषयाक्षसन्निपातानंतराद्यग्रहः स्मृत. ॥१०॥**

**अन्वयार्थ**—(चक्षुर्मनस.) चक्षु और मन के (व्यजनावग्रह.) व्यजनावग्रह (नास्ति) नही है (विषयाक्षसन्निपातानतराद्यग्रह ) पदार्थ और इन्द्रियो के सन्निपातानन्तर आदि ग्रहण (अवग्रह ) अवग्रह (स्मृत ) माना गया है।

**भावार्थ**—विषय विषयी के सन्निपातानन्तर वस्तु का जो सामान्य अवलोकन रूप दर्शन होता है उससे घट

पटादि प्रतिभासित नही होते है । दर्शन के बाद कुछ वस्तु है ऐसा जो ज्ञान होता है उसे अवग्रह ज्ञान कहते हैं । अवग्रह दो प्रकार का है । व्यजनावग्रह और अर्थावग्रह । अन्य के अवग्रह को व्यजनावग्रह कहते हैं ॥१०॥

**प्राप्ताप्राप्तार्थबोर्वोधोवग्रहो व्यंजनार्थयोः ।**
**रसरूपपरिज्ञाने रसनानेत्रयोर्यथा ॥११॥**

**अन्वयार्थ**—(व्यजनार्थयो) व्यजन और अर्थ मे (प्राप्ताप्राप्तार्थबोध:) प्राप्तअर्थ और अप्राप्तअर्थ का ज्ञान (अवग्रह) अवग्रह है (यथा) जैसे (रसनानेत्रयो) रसना और नेत्र के (रपरूपपरिज्ञाने) रस और रूप का परिज्ञान ।

**भावार्थ**—व्यजनाग्रह प्राप्तअर्थ का बोधक है और अर्थावग्रह प्राप्तअर्थ और अप्राप्तअर्थ मे भी होता है। क्योकि अर्थावग्रह पाँचो इन्द्रिय और मन मे होता है और चक्षु मन अप्राप्त अर्थ ग्राहक हैं । तथा शेष चार इन्द्रिय प्राप्तार्थ ग्राहक हैं, इसलिए अर्थावग्रह प्राप्ताप्राप्त अर्थ ग्राहक है और व्यजनावग्रह चक्षु और मन से नही होता है इसलिए प्राप्तार्थ ग्राहक है ॥११॥

**अवग्रहगृहीतार्थविशेषे हीहन मतम् ।**
**संशयाशविनाशोद्यन्निर्णयावयवं यथा ॥१२॥**

**नरस्यावगृहीतस्य कर्णाटादिविशेषणैः ।**
**भवितव्यमनेनेति विज्ञानं निर्णयावधिः ॥१३॥ ।युग्मम्।**

**अन्वयार्थ**—(हि) निश्चय से (अवग्रहगृहीतार्थविशेषे) अवग्रह से गृहीतार्थ को विशेष जानने मे (ईहन) प्रयत्न होना (मतम्) ईहा ज्ञान है (सशयाशविनाशोद्यन्निर्णयावयव) यह सशय के अर्थ का निरसन करने के लिए प्रयत्न तथा निर्णय अवयव है । (यथा) जैसे (अवग्रहीतस्य) अवग्रही (नरस्य) मानव के (कर्णाटादि विशेषणैः) कर्णाटक भाषा आदि विशेषण द्वारा (अनेन) इसे ऐसा (भवितव्य) होना चाहिए (इति) इस प्रकार (निर्णयावधि) निर्णय पर्यन्त (ज्ञान) ज्ञान ईहा है ।

**भावार्थ**—जाने हुये अर्थ को विशेषण से जानने की इच्छा के बाद "ऐसा होना चाहिये" इस प्रकार भवितव्यता प्रत्ययरूप ज्ञान को ईहा कहते हैं । जैसे अवग्रहीत मानव को कर्णाटक आदि भाषा के द्वारा कि यह दक्षिण का मानव होना चाहिए यह निर्णय होता है ॥१२,१३॥

**ईहितार्थस्यलिंगैर्यस्तद्विशेषविनिश्चयः ।**
**अषायो लाट एवायमिति भाषादिभिर्यथा ॥१४॥**

**अन्वयार्थ**—(ईहितार्थस्यलिगै) ईहतार्यस्थ लिगो के द्वारा (य) जो (तद्विशेषनिश्चय) उसका विशेष निर्णय होता है वह (अवाय.) अवाय है (यथा) जैसे (भाषादिभि) भाषादि के द्वारा (अय) यह (लाट एव) लाट देश का ही है (इति) ऐसा निश्चय होता है ।

**भावार्थ** - ईहा से जाने हुए पदार्थों का भाषादि के द्वारा निर्णय कर लेना अवाय है जैसे किसी मानव को देखकर ऐसी शका उत्पन्न हुई थी कि यह कहाँ का है, दक्षिण का था उत्तर देश का । तव उसकी भाषा वेश भूषाओ द्वारा निश्चय होता है कि यह लाट देश का ही है इस निर्णय को अवाय ज्ञान कहते हैं ॥१४॥

कालान्तरे परिज्ञातवस्तुस्मरणकारकः ।
संस्कारो यस्तदुत्पत्तिकारणं धारणाह्वयम् ॥१५॥

**अन्वयार्थ**—(कालान्तरे) कालान्तर मे (परिज्ञातवस्तुस्मरणकारक) परिज्ञात वस्तु के स्मरण का कारक (य) जो (संस्कार) सस्कार है (तदुत्पत्तिकारण) उस सस्कार के उत्पत्ति का कारण (धारणाह्वय) धारणा नामक ज्ञान है।

**भावार्थ**—अवाय के द्वारा निर्णीत वस्तु के कालान्तर मे स्मृति का कारण धारणा नामक ज्ञान है। इसी ज्ञान के वल पर ज्ञान के द्वारा गृहीत वस्तु का कालान्तर मे स्मरण होता है। स्मृति ज्ञान का मूल भूत ज्ञान धारणा है ॥१५॥

ते बहुबहुविधक्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः ।
प्रत्येकं सेतराश्चेति द्वादशावग्रहादयः ॥१६॥

**अन्वयार्थ**—(बहुबहुविधक्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवा.) वहु, वहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव (च) और (प्रत्येक) प्रत्येक (सेतरा.) इतर सहित (इति) इस प्रकार (ते) वे (अवग्रहादय) अवग्रहादि (द्वादश) बारह प्रकार के हैं।

**भावार्थ**—वहु, वहुविध, क्षिप्र, अनि सृत, अनुक्त, और ध्रुव तथा इनसे उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, नि.सृत, उक्त और अध्रुव इन वारह प्रकार के अर्थों का अवग्रह आदि ज्ञान होता है ॥१६॥

बह्वेकव्यक्तिविज्ञानं बह्वेकं च क्रमाद्यथा ।
बहवस्तरव सूपो बहुश्चैकं वनं नर ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—(क्रमात्) क्रम से (बह्वेक व्यक्तिविज्ञान) बहु, एक, व्यक्ति ज्ञान (बह्वेक) बहु एक ज्ञान है (यथा) जैसे (बहव) वहुत से (तरव) वृक्ष (बहु) वहुत (सूपः) दाल (च) और (एक) एक (बन) वन (नर) एक मानव।

**भावार्थ**—एक ही प्रकार के वहुत पदार्थों का नाम बहु है। वह बहु शब्द सख्या और परिमाण को बताता है जैसे·—वहुत से वृक्ष इस वाक्य मे वहु शब्द दो से अधिक सख्या को बतलाता है और बहुत सूप "यह बहु शब्द परिमाण वाची है एक शब्द भी परिमाण और सख्यावाची है, जैसे "एक" 'वन' इसमे एक वचन सख्यावाची है और'नर' यह परिमाण वाची है ॥१७॥

बह्वेकजातिविज्ञानं स्याद्बह्वेकविधं यथा ।
वर्णा नृणां बहुविधा गौर्जात्यैकविधेति च ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—(बह्वेकजातिविज्ञान) बहु एक जाति विज्ञान (बह्वेकविध) बहु एक विध है (यथा) जैसे (नृणा) मनुष्यो के (वर्णाः) वर्ण (बहुविधा.) वहुत प्रकार के हैं (च) और (गौ) गाय (जात्या) जाति से (एकविधा) एक प्रकार (इति) की है।

**भावार्थ**—वहु जाति के विज्ञान को बहुविध कहते है। जैसे मनुष्यो के बहुत से वर्ण हैं और एक प्रकार के जाति के विज्ञान को एकविध कहते हैं जैसे गौ जाति एक प्रकार है ॥१८॥

आश्वर्थस्य ग्रह क्षिप्रं स्यादक्षिप्र शनैर्ग्रहः ।
मृत्पात्र यद्वदादत्ते नूत्नं चानूतन जलम् ॥१९॥

**अन्वयार्थ**- (अर्थस्य) अर्थ का (आशु) शीघ्र (ग्रह) ग्रहण होना (क्षिप्रं) क्षिप्र (स्यात्) है (शनैः) धीरे धीरे (ग्रह) ग्रहण करना (अक्षिप्र) अक्षिप है (यद्वत्) जैसे (नूत्न) नवीन (मृत्पात्र) मिट्टी का घडा (जल) जल को शीघ्र (आदत्ते) ग्रहण करता है (च) और (अनूतन) पुराना (मृत्पात्र) मिट्टी का घडा (शनैः) धीरे-धीरे ग्रहण करता है।

**भावार्थ**—जो पदार्थों को शीघ्र ग्रहण करता है वह क्षिप्रज्ञान है। जैसे नवीन घट पानी शीघ्र ग्रहण करता है। नवीन घट के पानी को शीघ्र शोषण करने की शक्ति है अर्थात् जो वस्तु को शीघ्र ग्रहण करता है वह क्षिप्र ज्ञान है। जो ज्ञान वस्तु को धीरे-धीरे ग्रहण करता है वह अक्षिप्र ज्ञान है, जैसे पुरातन घट पानी को धीरे-धीरे ग्रहण करता है ।।१६।।

**वस्त्वशाद्वस्तुनस्तस्य वस्त्वशाद्वस्तुनोऽथवा ।**
**तत्रासन्निहितान्यस्याऽनिसृत मनन यथा ।।२०।।**

**घटावर्ग्भागकन्यास्यगवयग्रहणक्षणे ।**
**स्फुटं घटेन्दुगोज्ञानमभ्याससमयान्विते ।।२१।।**

**अन्वयार्थ**—(वस्त्वशात्) वस्तु के एक अश के देखने से (तस्य) उस (वस्तुन) वस्तु का (अथवा) अथवा वस्त्वंशात्) वस्तु के अश से (वा) वा (वस्तुन) पूर्ण वस्तु के देखने से (तत्र) वहा पर (असन्निहितान्यस्य) असन्निहित दूसरी वस्तु का (मनन) ज्ञान (अनिसृत) अनिसृत है (यथा) जैसे (घटावर्ग्भागकन्यास्यगवयग्रहणक्षणे) घट के एक भाग, कन्या का मुख तथा गवय को देखकर पुन' उसी समय ग्रहण काल मे (स्फुट) स्पष्ट (घटेदुगोज्ञान) घट, चन्द्रमा और गाय का ज्ञान होना।

**भावार्थ**—वस्तु के एक देश को देखकर समस्त वस्तु का ज्ञान होना अथवा वस्तु के एक देश या पूर्ण वस्तु का ग्रहण करके उसके निमित्त से किसी दूसरी वस्तु के होने वाले ज्ञान को भी अनिसृत कहते हैं।

जैसे घट के एक भाग को देखकर पूर्ण घट का ज्ञान होना अथवा किसी कन्या के मुख को देखकर उस ही समय उससे भिन्न किन्तु उसके सदृश चन्द्रमा का ज्ञान होना, अथवा गवय को देखकर उसके सदृश गौ का ज्ञान होता है इनको अनिसृत ज्ञान कहते हैं ।।२०,२१।।

**वस्त्वेकदेशमात्रस्य विज्ञानं निसृतं मतम् ।**
**घटावर्ग्भागमात्रेऽपि क्वचिज्ज्ञान हि दृश्यते ।**

**अन्वयार्थ**—(वस्त्वेकदेशमात्रस्य) वस्तु के एक देश मात्र (ज्ञान) ज्ञान को (निसृत) निसृत (मतम्) माना है (हि) क्योकि (घटावर्ग्भागमात्रे) घट के समुख के भाग मात्र मे (अपि) भी (क्वचित्) कही (ज्ञान) ज्ञान (दृश्यते) देखा जाता है।

**भावार्थ**—वस्तु के एक देशमात्र का ज्ञान होना, अर्थात् प्रकट पदार्थों का होना निसृत है, जैसे घट के एक भाग को देखकर एक भाग का ज्ञान होना ।।२२।।

**प्रत्यक्षनियताऽन्याहृग्गुणार्थैकाक्षबोधनम् ।**
**अनुक्तमेकदेवोक्तं प्रत्यक्षनियतग्रह. ।।२३।।**

चक्षुषा दीपरूपावलोकावसर एव यत् ।
तदुष्णस्पर्शविज्ञान यथोक्तार्थ प्ररूप्यते ।।२४।।

**अन्वयार्थ**—[एकदा] एक काल मे [एव] ही [प्रत्यक्षनियतग्रह.] प्रत्यक्षनियत ग्रह [प्रत्यक्षनियतान्या-दृग्गुणार्थैकाक्षबोधन] प्रत्यक्षनियत अन्य के सदृश गुणो के अर्थ का इन्द्रियज्ञान [अनुक्त] अनुक्त [उक्त] कहा है [यथा] जैसे [चक्षुषा] चक्षु के द्वारा [रूपावलोकावसरे] रूप के देखने के समय मे [एव] ही [यत्] जो [तदुष्णस्पर्शविज्ञान] उसके उष्णता के स्पर्श का विज्ञान होता है। [उक्तार्थ] अब उक्तार्थ का [प्ररूप्यते] निरूपण किया जाता है।

**भावार्थ**—प्रत्यक्ष नियत अन्य के सदृश गुणो के अर्थ का इन्द्रिय ज्ञान है वह प्रत्यक्ष नियतग्रह अनुक्त है। जैसे चक्षु के द्वारा दीपक के रूप के अवलोकन के समय मे जो उस दीप के उष्ण स्पर्श का विज्ञान होता है वह अनुक्त है, अर्थात् किसी वस्तु को देखकर दूसरे के कहे बिना इशारे मात्र से ज्ञान हो जाना, अथवा प्रत्यक्ष इन्द्रियो के विषय का जो स्वयमेव ज्ञान होता है वह अनुक्त है। आगे उक्तार्थ का प्ररूपण करते हैं ।।२३,२४।।

स्पर्शनं रसन घ्राणं चक्षुः श्रोत्र मनश्च खम् ।
अर्थः स्पर्शा रसो गधा रूप शब्दः श्रुतादय ।।२५।।

**अन्वयार्थ**—[स्पर्शन] स्पर्श [रसन] रसना [घ्राण] घ्राण [चक्षु] चक्षु [श्रोत्र] कर्ण [च] और [मन] मन [एव] ये इन्द्रियाँ हैं और [स्पर्शा] स्पर्श [रस] रस [गधा] गध [रूप] रूप [शब्द] शब्द और [श्रुतादय] श्रुतादि [अर्थ] इनके विषय है।

**भावार्थ**—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण और मन का विषय स्पर्श, रस, गध, वर्ण, शब्द और श्रुत है। अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय का विषय स्पर्श है। रसना इन्द्रिय का विषय रस है। घ्राणेन्द्रिय का विषय गध है। चक्षुइन्द्रिय का विषय वर्ण है और कर्णइन्द्रिय का विषय शब्द है मन का विषय श्रुत है, उसमे पाँचो इन्द्रियो की प्रवृति अपने विषय मे अपने आप होती है वह अनुक्त है और जो दूसरे के कहने पर विषयो मे प्रवृत्ति होती है वह उक्त है ।।२५।।

स्यान्नित्यत्वविशिष्टस्य स्तभादेर्ग्रहणं ध्रुव ।
विद्युदादेरनित्यत्वेनान्वितस्याध्रुवो ग्रह ।।२६।।

**अन्वयार्थ**—[नित्यत्वविशिष्टस्य] नित्यत्व से विशिष्ट [स्तभादे] स्तभादिका [ग्रहण] ग्रहण [ध्रुव] ध्रुव है [अनित्यत्वेन] अनित्यत्व से [अन्वितस्य] अन्वित [विद्युदादे] विद्युत आदि का [अध्रुव] अध्रुव [ग्रह] ग्रहण है।

**भावार्थ**—नित्यत्व से विशिष्ट स्तभादि का ग्रहण ध्रुव ज्ञान है और अनित्यत्व से अन्वित विद्युत आदि का ज्ञान अध्रुव ज्ञान है ।।२६।।

लब्धि सदोपयोगश्च स्याद्भावेन्द्रियमात्मनः ।
निवृत्युपकरणे द्वे स्तो द्रव्येन्द्रियमत्र तु ।।२७।।

**अन्वयार्थ**—[आत्मन.] आत्मा की [सदा] सदाकाल रहने वाली [लब्धिः] लब्धि [च] और [उपयोग] उपयोग [भावेन्द्रिय] भावेन्द्रिय [स्यात्] है। [तु] और [अत्र] आत्मा मे [निवृत्युपकरणे] निवृति और उपकरण [द्वे] ये दोनो [द्रव्येन्द्रिय] द्रव्येन्द्रिय [स्त] है।

**भावार्थ**—निवृति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इनमे से प्रत्येक के अभ्यन्तर और वाह्य के भेद से दो भेद हैं। लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं। आत्मा मे ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाली अर्थ ग्रहण करने की शक्ति का नाम लब्धि है और तज्जन्य व्यापार का नाम उपयोग है ॥२७॥

**चित्रार्धेन्दुतिमुक्तकमसूरियवनालिकाः ।**
**अनुकुर्वती च वाह्या निवृति· स्पर्शनादिषु ॥२८॥**

**अन्वयार्थ**—(स्पर्शनादिषु) स्पर्शनादि इन्द्रियो मे (अनुकुर्वती) अनुकरण करने वाली (चित्रार्धेन्दुतिमुक्तकमसूरियवनालिका:) चित्र, अर्ध इन्दु, अतिमुक्तक, मसूरिका, यवनालिका (वाह्या) वाह्य (निवृति) निवृति है।

**भावार्थ**—स्पर्शन इन्द्रिय अनेक प्रकार की है, रसना अर्धचन्द्रमा के समान है, घ्राण इन्द्रिय अतिमुक्तक 'तिल के पुष्प) के समान, चक्षुइन्द्रिय मसूरिका के दाने के समान और कर्णइन्द्रिययवनालिका के समान है। यह इन्द्रियो की वाह्य निवृति आकार है ॥२८॥

**चतु शतानि चापानां चत· षष्टि. शत क्रमात् ।**
**योजनत्रिसहस्त्राणि षट्चत्वारिंशता विना ॥२९॥**

**धनुरष्टसहस्त्राणि क्षेत्रात्मा द्विगुणो वर: ।**
**एकेन्द्रियाद्यसञ्ज्यन्ते विषय स्पर्शनादिषु ॥३०॥ ।युग्मम्।**

**अन्वयार्थ**—(एकेन्द्रियाद्यसञ्ज्यन्ते) एकेन्द्रियादि से लेकर असज्ञि पर्यंत (स्पर्शनादिषु, स्पर्शनादि का (विषय) विषय (क्रमात) क्रम से (चापाना) धनुष का (चतु शतानि) चार सौ (चतु षष्टि) चौसठ धनुष (शत) सौ धनुष (षट्-चत्वारिंशता) छियालीस के (विना) विना (योजनत्रिसहस्त्राणि) तीन हजार योजन (अष्टसहस्त्राणि) आठ हजार (धनु) धनुष है (वर) उत्कृष्ट (क्षेत्रात्मा) क्षेत्र (द्विगुण) दुगुणा दुगुणा है ॥२९,३०॥

**योजनानि त्रिषु नव श्रेष्ठोऽकस्थानकक्रमात् ।**
**त्रिषट्द्विसप्तचत्वारि चासौ द्वादश सञ्ज्ञिषु ॥३१॥**

**अन्वयार्थ**—(सज्ञिषु) सज्ञी जीवो मे (असौ) यह (अकस्थानक्रमात्) अकस्थान क्रम से (त्रिषु) तीन इन्द्रियो मे (नव) नौ नौ योजन (च) और (त्रिषट्द्विसप्तचत्वारि) तीन, छह दो, सात और चार ४७२६३$\frac{7}{20}$ योजन (द्वादश) वारह (योजनानि) योजन (श्रेष्ठ) उत्कृष्ट हैं।

**भावार्थ**—एकेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चार सौ धनुष है और द्वीन्द्रियादि के वह दूना-दूना होता गया है। अर्थात् द्वीन्द्रिय के आठ सौ, त्रीन्द्रिय के सोलह सौ, चतुरिन्द्रिय के बत्तीस सौ असज्ञीपचेन्द्रिय के चौसठ सौ धनुष स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र है। द्वीन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चौंसठ धनुष है और वह भी त्रीन्द्रियादिक के स्पर्शनेन्द्रिय के विषय क्षेत्र की तरह दूना-दूना होता गया है। अर्थात् त्रीन्द्रिय के १२८ चतुरिन्द्रिय के २५६ और असज्ञीपचेन्द्रिय के रसना का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र ५१२ धनुष प्रमाण है। इसी प्रकार घ्राण, चक्षु और श्रोत्र का विषय क्षेत्र भी समझ लेना चाहिए। अर्थात् घ्राणेन्द्रिय का विषय क्षेत्र त्रीन्द्रिय के १००, चतुरिन्द्रिय के २०० और असज्ञीपचेन्द्रिय के ४०० धनुप प्रमाण है। चक्षुरिन्द्रिय का विषय क्षेत्र चतुरिन्द्रिय के २९५४ और असज्ञी पचेन्द्रिय के ५९०८ योजन है। असज्ञी पचेन्द्रिय के श्रोत्र का विषय ८००० धनुष है।

सज्ञी जीव के स्पर्शन, रसना घ्राण इन तीन इन्द्रियो मे से विषयभूत क्षेत्र नौ-नौ योजन है और श्रोत्रेन्द्रिय का

## एकेन्द्रिय आदि जीवों के पाई जाने वाली इन्द्रियों के उत्कृष्ट वषयादिका दर्शक यन्त्र

| इन्द्रिय | एकेन्द्रिय धनुष से | द्वीन्द्रिय धनुष वि क्षे | त्रीन्द्रिय धनुष वि क्षे | चतुरिन्द्रिय | | अस वि धनुष | प क्षे योजन | स. पचे योजन वि क्षे | विषय | योग्यता | आकृति |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | धनुष वि | योजन क्षे. | | | | | | |
| स्पर्शन | ४०० | ८०० | १६०० | ३२०० | ० | ६४०० | ० | ९ | ८ प्रकार का स्पर्श | अवद्ध स्पष्ट | अनेक अनियत |
| रसना | ० | ६४ | १२८ | २५६ | ० | ५१२ | ० | ९ | ५ विध रस | ,, | खुरपा |
| घ्राण | ० | ० | १०० | २०० | ० | ४०० | ० | ९ | द्विविध गध | ,, | तिलपुष्प |
| चक्षु | ० | ० | ० | ० | २९५४ | ० | ५९०८ | ४७२६३$\frac{7}{20}$ | पच प्रकार रूप | अस्पृष्ट | मसूर अन्न |
| श्रोत्र | ० | ० | ० | ० | ० | ८००० | ० | १२ | शब्द तथा ७ स्वर | स्पृष्ट | यवनाली |

उत्कृष्ट विषय क्षेत्र बारह योजन है। तथा चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन से कुछ अधिक है। एकेन्द्रिय से लेकर सञ्ज्ञीपचेन्द्रिय पर्यंत जीवो के पाई जाने वाली इन्द्रियो का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र कितना है, तथा प्रत्येक इन्द्रिय का नियत विषय, उसको ग्रहण करने की योग्यता तथा उनका आकार किस प्रकार का है यह आगे दिये गये यन्त्र द्वारा जाना जा सकता है ॥३१॥

**स्थूलवाग्गोचरानंतरार्थस्य स्थायिनश्चिरम् ।**
**प्रत्यक्षं नियतस्यैतद्बोधाभिनिबोधनम् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ**—(स्थायिन) स्थायी (नियतस्य) नियत (स्थूलवाग्गोचरानतरार्थस्य) स्थूल वचन के गोचर, अनन्तर अर्थ का (बोधात्) ज्ञान होने से (एतत्) यह (अभिनिबोधन) अभिनिबोध होता है।

**भावार्थ**—स्थूल, वर्त्तमान, योग्य क्षेत्र मे अवस्थित पदार्थ को अभिमुख कहते हैं। अथवा स्थायी, नियत, स्थूल, वचनगोचर, अनन्तर अर्थ के बोध को अभिनिबोध कहते हैं। मन और इन्द्रियो की सहायता से उत्पन्न अभिमुख और नियमित पदार्थ के ज्ञान को अभिनिबोधक ज्ञान कहते हैं ॥३२॥

**स्पर्शनादिमतिज्ञानावृत्तिवीर्यान्तराययो. ।**
**क्षयोपशमजं नाना भेदमेतदुदाहृतम् ॥३३॥**

**अन्वयार्थ**—(स्पर्शनादिमतिज्ञानावृत्तिवीर्यान्तराययो) स्पर्शनादि मतिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के (क्षयोपशमज) क्षयोपशम से उत्पन्न (एतत्) यह ज्ञान (नाना) नाना (भेद) भेद रूप (उदाहृत) कहा गया है।

**भावार्थ**—स्पर्शनादि मतिज्ञानावरणी और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न मतिज्ञान अनेक प्रकार का है ॥३३॥

**श्रुतं मतिगृहीतार्थशब्दैरन्यार्थबोधनम् ।**
**धूमादेः पापकादेर्वा बोधोऽग्नेरग्निशब्दतः ॥३४॥**

**अन्वयार्थ**—(मतिगृहीतार्थशब्दै) मतिज्ञान के द्वारा गृहीत अर्थ शब्दो के द्वारा (अन्यार्थबोधनम्) अन्य अर्थ का ज्ञान होना (श्रुत) श्रुतज्ञान है। (वा) अथवा (धूमादे) धूमादि से (पावकादे.) अग्नि आदिक (वा) अथवा (अग्निशब्दत:) अग्नि शब्द से (अग्ने) अग्नि का (बोध.) ज्ञान श्रुतज्ञान है।

**भावार्थ**—मतिज्ञान के द्वारा ग्रहीतार्थ शब्दो से अन्य पदार्थ का ज्ञान होना श्रुतज्ञान है। जैसे धूंए को देखकर अग्नि का ज्ञान वा अग्नि शब्द से अग्नि का ज्ञान होता है। अथवा मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान के द्वारा जाने हुये पदार्थ का अवलम्बन लेकर उससे भिन्न ही अर्थ का श्रुतज्ञान विषय करता है ॥३४॥

**तत्पर्यायाक्षरपदसंघातप्रतिपत्तिका ।**
**अनुयोगः प्राभृतप्राभृतं च प्राभृतं क्रमात् ॥३५॥**

**वस्तुपूर्वं समासाश्चामीषामिति समन्वितम् । १**
**श्रुतं विकल्पविंशत्या स्वान्तस्थान्यविकल्पया ॥३६॥**

१ पर्यायादीनां विंशतिभेदेन स्वस्वान्तः स्थिता अपरभेदा यस्या. सा तया ।

**अन्वयार्थ**—(तत्) वह श्रुतज्ञान (क्रमात्) क्रम से (पर्यायाक्षरपदसघातप्रतिपत्तिका) पर्याय, अक्षर, पद, सघात, प्रतिपत्तिका (अनुयोग) अनुयोग (प्राभृतप्राभृत) प्राभृतप्राभृत (च) और (प्राभृत) प्राभृत (वस्तुपूर्वे) वस्तु पूर्व (अभीषा) इनके (समासा) समास (इति) इस प्रकार (श्रुत) श्रुत (स्वातस्थान्यविकल्पया) स्वान्तस्थ अन्य विकल्प से (विकल्पविंशत्या) विकल्प विशति से (समन्वित) युक्त है ।

**भावार्थ**—वह श्रुतज्ञान क्रम से, पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, सघात, सघातसमास प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तु-समास, पूर्व, पूर्वसमास, इन २० भेद वाला है ।।३५,३६।।

**श्रुतावरणवीर्यान्तरायमन्दोदयाच्छ्रुतम्**
**स्यादसंख्यजगन्मात्रं पर्यायादिप्रभेदतः ।।३७।।**

**अन्वयार्थ**—(श्रुतावरणवीर्यान्तिरायमन्दोदयात्) श्रुतज्ञानावरणीय और वीर्यान्तिराय के मन्दोदय से (पर्यायादिप्रभेदत) पर्याय आदि के भेद से (श्रुत) श्रुतज्ञान (असख्यजगन्मात्र) असख्यात लोकप्रमाण है ।

**भावार्थ**—श्रुतज्ञानावरणी और वीर्यान्तिराय कर्म के मन्दोदय से श्रुतज्ञान होता है और उस श्रुतज्ञान के अवान्तर भेद असख्यात लोकप्रमाण हैं ।।३७।।

**मूर्तमथ मितं क्षेत्रकालभावैरवस्फुटम् ।**
**मितैर्दधात्यवधिर्बोधो भवगुणोद्भवः ।।३८।।**

**अन्वयार्थ**—(मितै) प्रमित (क्षेत्रकालभावै) क्षेत्र, काल, भाव के द्वारा (मित) प्रमित (मूर्त) मूर्त (अर्थ) अर्थ को (अवस्फुट) स्फुट रूप से (दधाति) धारण करता है, जानता है यह (अवधि) अवधि (बोध) ज्ञान (भवगुणोद्भवः) भव प्रत्यय और गुण प्रत्यय दो रूप है ।

**भावार्थ**—जो प्रमित (मर्यादित) द्रव्यक्षेत्रकालभाव से प्रमित मूर्तिक पदार्थ को स्फुट (प्रत्यक्ष) जानता है । उसको अवधिज्ञान कहते हैं और उस अवधिज्ञान के दो भेद हैं । गुणप्रत्यय अवधि और भवप्रत्यय अवधि ।।३८।।

**सुरनारकपर्याप्तभवजः प्रथमोऽपरः ।**
**मर्त्यतिर्यक्षु सम्यक्त्वगुणादीना विशेषजः ।।३९।।**

**अन्वयार्थ**—(सुरनारकपर्याप्तभवज) देवनारकियो के पर्याप्ति पूर्ण होने के वाद भव से उत्पन्न होने वाला अवधि (प्रथम) भवप्रत्यय है । (मर्त्यतिर्यक्षु) मनुष्य और तिर्यंचो मे (सम्यक्त्वगुणादीना) सम्यक्त्वादि गुणो के (विशेषज) विशेष से उत्पन्न होने वाला अवधि (अपर) गुणप्रत्यय है ।

**भावार्थ** - देव नारकियो के अवधि भवप्रत्यय है, क्योकि उनमे देव नारकी का भव कारण है । यद्यपि देव नारकियो मे भी अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ही अवधिज्ञान होता है तथापि उनमे भव विशेष कारण है । उस भव मे नियम से अवधिज्ञान होता है । मनुष्य और तिर्यचो मे सम्यक्त्वादि गुणो के निमित्त से होने वाला अवधिज्ञान गुणप्रत्यय है और उसमे गुणो की प्रधानता ही मुख्य कारण है ।।३९।।

**स्याद्देशपरमसर्वावधिभेदत्रयोऽवधिः ।**
**सामान्यस्तत्र देशावधिः स्याद्गुणभवोद्भवः ।।४०।।**

**अन्वयार्थ**—(देशपरमसर्वावधिभेदत्रय ) देशावधि, परमावधि, सर्वावधि के भेद से तीन प्रकार का (अवधि ) अवधिज्ञान (स्यात्) होता है। (तत्र) उनमे (सामान्य ) सामान्य (गुणभवोद्भव ) गुण और भव से उत्पन्न (देशावधि.) देशावधि है।

**भावार्थ**—देशावधि, परमावधि और सवावधि के भेद से अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। उसमे सामान्यत. गुणप्रत्यय और भवप्रत्यय अवधि देशावधि है अर्थात् भवप्रत्यय अवधिज्ञान तो देशावधि ही है, परन्तु गुणप्रत्यय अवधि के तीन भेद है ॥४०॥

**शेषौ चरमांगमुनेर्गुणजौ प्रतिपात्यपि।**
**तत्र देशावधिर्बोधो शेषावप्रतिपातिनौ ॥४१॥**

**अन्वयार्थ**—(शैषौ) शेष परमावधि और सर्वावधि (गुणजौ) गुण प्रत्यय है और (चरमागमुनेः) ये चरम शरीरी मुनि के ही होते हैं। (तत्र) उनमे (देशावधि ) देशावधि (बोध.) ज्ञान (प्रतिपात्यपि) प्रतिपाति "अपि" शब्द से अप्रतिपाति भी है। (शेषौ) शेष परमावधि, सर्वावधिज्ञान (अप्रतिपातिनौ) प्रतिपाति नही है।

**भावार्थ**—परमावधिज्ञान और सर्वावधिज्ञान गुणप्रत्यय ही हैं और चरम शरीरी मुनियो के ही होते हैं। देशावधि प्रतिपाति भी है और अप्रतिपाति भी है। प्रतिपाति अवधि छूट जाता है और केवलज्ञान पर्यंत नही भी छूटता है। परन्तु परमावधिज्ञान और सर्वावधि ज्ञान तो अप्रतिपाति ही हैं। नियम से इन ज्ञान वाले मुनिगण उसी भव मे मुक्ति श्री को प्राप्त करते हैं ॥४१॥

**वर्द्धमानानुगावस्थितेतरप्रविकल्पतः।**
**षट्प्रकारोऽप्यसंख्यातलोकमात्रो विशेषतः ॥४२॥**

**अन्वयार्थ**—(वर्द्धमानानुगावस्थितेतरप्रविकल्पत.) वर्द्धमान, अनुगामी, अवस्थित, इतर हीयमान, अननुगामी, अनवस्थित विकल्प से (षट्प्रकार.) छह प्रकार का अवधिज्ञान है (विशेषत.) विशेष से (असख्यातलोकमात्र ) असख्यात लोकप्रमाण अवधिज्ञान के भेद हैं।

**भावार्थ**—अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित, अनवस्थित विकल्प से छह प्रकार का अवधि ज्ञान है। विशेष रूप से असंख्यात लोकमात्र से अवधिज्ञान के भेद है। अनुगामी-जो अवधिज्ञान सूर्य के प्रकाश की तरह जीव के साथ जावे उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और उभयानुगामी। अननुगामी-जो अवधिज्ञान साथ न जावे उसे अननुगामी कहते हैं। इनके तीन भेद हैं क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी और उभयाननुगामी। वर्द्धमान-जो शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाओ की तरह बढता रहे उसको वर्द्धमान कहते हैं। हीयमान-जो कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की तरह घटता रहे उसे हीयमान कहते हैं। अवस्थित-जो अवधिज्ञान सदा एक सा रहे, न घटे न बढे उसे अवस्थित कहते हैं जैसे सूर्य तिल आदि के चिह्न। अनवस्थित-जो हवा से प्रेरित जल की तरङ्ग की तरह घटता बढता रहे एक सा न रहे, उसको अनवस्थित अवधिज्ञान कहते है ॥४२॥

**सुरनारकतीर्थेश्वरादौ सर्वांगसंभवः।**
**अन्येष्वंगप्रशस्ताप्रशस्तचिन्हभवोऽवधिः ॥४३॥**

**भावार्थ**—देव नारकी और तीर्थंकरो के अवधि ज्ञान सर्वांग और आदि शब्द से किसी सयमी जनो मे सर्वांग से उत्पन्न होता है। शेष तिर्यंच और मनुष्यो के शरीर मे होने वाले स्वस्तिकादि प्रशस्त और मेढक आदि अप्रशस्त चिह्नो से अवधिज्ञान उत्पन्न होता है ।।४३।।

**घर्मायां योजनं क्रोशार्द्धोनं तत्क्रमशोऽन्तिमा ।**
**यावत्पृथ्वी मतं क्षेत्रमवधिर्निरयेष्विति ।।४४।।**

**अन्वयार्थ**—(निरयेषु) नारकियो मे (धर्माया) प्रथम धर्मानामक नरक मे (योजन) एक योजन (क्षेत्र) क्षेत्र तक (अवधि:) अवधिज्ञान है (तत्क्रमश) उसके बाद क्रम से (यावत्) जब तक (अन्तिमा) अन्तिम (पृथ्वी) पृथ्वी तब तक (क्रोशार्धहीन) आधा-आधा कोश हीन (क्षेत्र) क्षेत्र (मत) माना है (इति) इस प्रकार आगमानुसार जानना चाहिये।

**भावार्थ**—प्रथम नरक मे नारकियो के एक योजन के क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञान है अर्थात् प्रथम नरक के नारकी अवधिज्ञान के द्वारा एक योजन के क्षेत्र को जान सकते है। उसके आगे क्रम से आधा आधा योजन कम है अर्थात् दूसरे नरक के नारकी साढे तीन कोश तक क्षेत्र की बात को जानते हैं। तीसरे नरक के नारकी तीन कोश तक की बात जानते हैं। चौथे नरक के नारकी ढाई कोश तक क्षेत्र को जानते हैं। पाचवें नरक के नारकी दो कोश की बात को जानते छट्ठे नरक के नारकी डेढ कोश तक क्षेत्र को जानते हैं। सातवें नरक के नारकी एक कोश के क्षेत्र को जानते हैं। इस प्रकार आगमानुसार नारकियो के अवधिज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को जानना चाहिये ।।४४।।

**तिर्यक्ष्वोघजघन्यादातेजोलंभान्मतोऽवधिः ।**
**नरेष्वोघविकल्पौघो यथायोग्यं भवेदयम् ।।४५।।**

**अन्वयार्थ**—(तिर्यक्षु) तिर्यञ्चो मे (अवधि) अवधि (ओघजघन्यात्) सामान्य अवधि के जघन्य से लेकर (तेजोलंभात्) तेजस्कधपर्यंत (मत) माना है। (नरेषु) मनुष्यो में (ओघविकल्पौध,) सामान्य के विकल्पो का समूह (अय) यह अवधि (यथायोग्य) यथायोग्य (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—तिर्यञ्चो मे अवधिज्ञान सामान्य जघन्य अवधि से लेकर तैजस शरीर के स्कधपर्यन्त जानता है। मनुष्यो मे सर्वजघन्य से लेकर उत्कृष्ट अवधिज्ञान पर्यन्त यथायोग्य जानना चाहिये ।।४५।।

**भौमभावनयोर्योजनानि स्युः पंचविंशतिः ।**
**जघन्यक्षेत्र ज्योतिष्के ततः सख्यातसगुणम् ।।४६।।**

**अन्वयार्थ**—(भौमभावनयो) भवनवासी और व्यतर देवो मे (जघन्यक्षेत्र) जघन्य अवधि का क्षेत्र (पच-विंशति) पच्चीस (योजनानि) योजन का है। (ज्योतिष्के) ज्योतिषी देवो मे जघन्य क्षेत्र (तत:) भवनवासी व्यतरो की अपेक्षा (सख्यातसगुण) सख्यात गुणा अधिक (स्यु) है।

**भावार्थ**—भवनवासी और व्यतर देवो मे जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र पच्चीस योजन है, अर्थात् वे अवधिज्ञान के द्वारा पच्चीस योजन तक के क्षेत्र को जानते हैं। ज्योतिष्को के अवधिज्ञान का क्षेत्र भवनवासी और व्यतरो से सख्यात गुणित क्रम है अर्थात् ज्योतिष्क देव सख्यात योजन क्षेत्र को जानते हैं ।।४६।।

**असुरेष्वसंख्यकोट्यः स्युरुत्कृष्टमपरेषु तु ।**
**ज्योतिष्कान्तेष्वसंख्यातसहस्त्राणि ततः क्रमात् ।।४७।।**

द्विद्विश्चतुश्चतुर्द्विर्द्विर्नवचतुर्दशस्वपि ।
कल्पेषु स्याद्विमानेषु कल्पातीतेषु चावधेः ।।४८।।

अधो धर्मादिलोकान्तादारभ्य त्रसनालिकम् ।
क्षेत्रमूर्ध्वं वरक्षेत्रं स्वस्वलोकान्तसंस्थितम् ।।४९।।

**अन्वयार्थ**—(असुरेषु) असुरो मे (उत्कृष्ट) उत्कृष्ट अवधि का क्षेत्र (असख्यकोट्य:) असंख्यात कोटि योजन है (तु) और (अपरेषु) नव भेद वाले नव प्रकार के भवनवासियो मे (ज्योतिष्कान्तेषु) ज्योतिषी देवो तक (असख्यात-सहस्त्राणि) असख्यात हजार योजन है (तत ) उसके आगे (क्रमात्) क्रम से (द्विद्विचतुश्चतुर्द्विर्द्विनवचतुर्दशसु) सौधर्म, ऐशान आदि २, २, ४, ४, २, २ (कल्पेषु) कल्पो मे (च) और (कल्पातीतेषु) कल्पातीत ६, ६, ५ (विमानेषु) विमानो मे (अवधे:) अवधिज्ञान का (वर) उत्कृष्ट (अध:) नीचे का क्षेत्र (धर्मादिलोकान्तात्) धर्मा पृथ्वी से लेकर (त्रसनालिक) त्रस नालीपर्यन्त है और (ऊर्ध्वं) ऊपर (वरक्षेत्र) उत्कृष्ट क्षेत्र (स्वस्वलोकातसस्थितम्) अपने अपने लोकातं तक है।

**भावार्थ**—असुरकुमारो की अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असख्यात कोटि योजन है। असुरो को छोडकर वाकी के ज्योतिषी देवो तक के सभी भवनत्रिक अर्थात् नौ प्रकार के भवनवासी तथा सम्पूर्ण व्यतर और ज्योतिषी इनकी अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असख्यात हजार योजन है। असुरकुमारो की अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी इनकी अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरो की अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से सख्यातवें भागमात्र है। सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देव अवधि के द्वारा प्रथम भूमिपर्यंत देखते हैं। सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग के देव दूसरी पृथ्वी तक देखते हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ स्वर्ग वाले देव तीसरी भूमि तक देखते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्त्रार स्वर्ग के देव चौथी भूमि तक देखते है। आणत, प्राणत, आरण, अच्युत स्वर्ग के देव पाचवी पृथ्वी तक और नव ग्रैवेयक विमानवासी देव छठी पृथ्वी तक देखते हैं। नव अनुदिश तथा पच अनुत्तरवासी देव सम्पूर्ण लोकनाली को अवधि द्वारा देखते हैं। ऊपर मे सर्व देव अपने अपने विमानो की ध्वजा तक के क्षेत्र को जानते हैं ।।४७,४८,४९।।

अथ स्यादवधिबोधावृतिवीर्यान्तराययोः ।
क्षयोपशमतो बोधोऽसंख्यलोकविकल्पकः ।।५०।।

**अन्वयार्थ**—(अवधिबोधावृतिवीर्यान्तराययो ) अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के (क्षयोपशमत ) क्षयोपशम से (अथ) यह (वोध ) अवधिज्ञान (असख्यातलोकविकल्पक.) असख्यातलोकविकल्प वाला (स्यात्) है।

**भावार्थ**—अवधिज्ञानावरण और वीर्यातराय कर्म के क्षयोपशम से यह अवधि ज्ञान होता है और इसके असंख्यात लोकप्रमाण विकल्प है ।।५०।।

स्यादेतत्त्रयमज्ञान मिथ्यानतानुबन्धिनाम् ।
उदयेनाऽऽशु कटु वा कट्वलाबुगत पय. ।।५१।।

**अन्वयार्थ**—(मिथ्यानतानुवन्धिनाम्) मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी के (उदयेन) उदय से (एतत्) यह (त्रय) तीनो ज्ञान (अज्ञान) अज्ञान (स्यात्) होते हैं (वा) जैसे (कट्वलावुगत) कड़वी तुम्बी मे (गत) गया हुआ (पय ) दूध (कटु) कडवा (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार कडवी तुम्बी मे गया हुआ दूध कडवा हो जाता है उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व के उदय से यह मति, श्रुत, और अवधिज्ञान विपरीत अर्थात् कुज्ञान हो जाते है ॥५१॥

**मनोदेशावधेर्ज्ञेय मध्यम चिन्तितादिकम् ।**
**परैः पर्येतितस्तत्मन.पर्ययबोधनम् ॥५२॥**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (परैः) दूसरो के द्वारा (चिन्तितादिकम्) चिन्तित, अर्धचिन्तित (देशावधे) देशावधि के (मध्यमम्) मध्यम (ज्ञेय) विषयो को (मनः) मन (पर्येति) जानता है (तत्) वह (मन. पर्ययबोधनम्) मनःपर्ययज्ञान है।

**भावार्थ**—अवधिज्ञान के द्वारा जाने हुए विषय के अनन्तवे भाग सूक्ष्म जो दूसरे के मन मे चिंतित अर्धचिंतित द्रव्य को जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है ॥५२॥

**ऋजुविपुलमती तद्भेदावाद्या त्रिभेदगा ।**
**ऋजुकायवाक्यचेतोगतार्थविषयत्वता ॥५३॥**

**अन्वयार्थ**—(ऋजुविपुलमती) ऋजुमति और विपुलमति (तद्भेदौ) उस मनः पययज्ञान के दो भेद है (आद्या) पहला ऋजुमतिज्ञान (ऋजुकायवाक्यचेतोगतार्थविषयत्वता) सरल काय, वचन और चित्तगत अर्थ का विषय करने वाला होने से (त्रिभेदगा) तीन भेद वाला है।

**भावार्थ**—मन पर्ययज्ञान के दो भेद हैं ऋजुमति और विपुलमति। उसमे ऋजुमती सरल काय, वचन और चित्तगत अर्थ का विषय करने वाला होने से तीन भेद वाला है।

**ऋज्वऋज्वदेहवाक्यस्वान्तस्वार्थविबोधनात् ।**
**विपुलमतिः षड्भेदाऽसख्यकल्पमिता च सा ॥५४॥**

**अन्वयार्थ**—(ऋग्वऋजुदेहवाक्यस्वान्तस्वार्थविबोधनात्) सरल और कुटिल काय,वचन, मनोगत, स्व अर्थ का विषय करने वाला होने से (विपुलमति) विपुलमति (षड्भेदा) छह प्रकार (च) और (असख्यकल्प) असख्य लोक प्रमाण (इता) मानी गई है।

**भावार्थ**—सरल और कुटिल चिंतित अर्धचिंतित दूसरे के मनवचनकाय मे स्थित पदार्थ का ज्ञान करने वाला विपुलमति मन पर्ययज्ञान है। उसके सरल मन, वचन, कायगत पदार्थ का, तथा कुटिल मन, वचन, कायगत पदार्थ का विषय करने से छह भेद हैं तथा असख्यात कल्प (समय) प्रमाण भेद हैं। कल्प शब्द से यहाँ उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोनो लेना चाहिये। तदुक्त लोकविभागे—लोक विभाग मे कहा है। कालो- एक अवसर्पिणी काल और दूसरा उत्सर्पिणी काल है। उन दोनो के मिलने से जितने समय होते हैं उतने विपुलमति मन पर्ययज्ञान के भेद है ॥५४॥

**मनः पर्ययविज्ञानावृतिवीर्यान्तराययो ।**
**जात मन्दोदयादेतत्क्षायोपशमिकं तत ॥५५॥**

**अन्वयार्थ**—(मन पर्ययविज्ञानावृतिवीर्यान्तराययो) क्योकि यह मन पर्यय ज्ञान, मन.पर्ययज्ञानावरणी और वीर्यान्तिराय कर्म के (मन्दोदयात्) मन्दोदय से (जात) उत्पन्न हुआ है (तत) इसलिए (एतत्) यह मन पर्ययज्ञान (क्षायोपशमिक) क्षायोपशमिक है, क्षायिक नही है।

**भावार्थ**—मनः पर्यय ज्ञानावरणी और वीर्यान्तराय कर्म के मन्द उदय से उत्पन्न होने वाला होने से मनःपर्यय-ज्ञान क्षायोपशमिक हैं ।।५५।।

**त्रिकालानन्तधर्मात्मानन्तवस्तुप्रकाशकम् ।**
**युगपत्केवलं ज्योतिः करणावरणातिगम् ।।५६।।**

**अन्वयार्थ**—(युगपत्) एक साथ (त्रिकालानन्तधर्मात्मानन्तवस्तुप्रकाशकम्) त्रिकाल सम्बन्धी, अनन्तधर्मात्मक अनन्त वस्तु का प्रकाशक (करणावरणातिगम्) इन्द्रिय और आवरण से रहित (केवल ज्योतिः) केवल ज्ञान है ।

**भावार्थ**—जो एक समय मे एक साथ त्रिकालवर्ती अनन्तधर्मात्मक सकल पदार्थों को जानता है वह अतीन्द्रिय निरावरण क्षायिक केवल ज्ञान है ।।५६।।

**क्षणं प्रत्यक्षरं ज्ञेयैः समं बिपरिवर्तते ।**
**तदेकमुपमातीतं परमानन्दमन्दिरम् ।।५७।।**

**अन्वयार्थ**—(ज्ञेयै) ज्ञेय के (सम) साथ (क्षण) क्षण (प्रत्यक्षर) प्रत्यक्ष (विपरिवर्त्तते) उन ज्ञेयो को अपने ज्ञान स्वरूप से जानता है (तत्) वह (उपमातीत) उपमातोत (परमानन्दमन्दिरम्) परमानन्द का मन्दिर केवलज्ञान है ।

**भावार्थ**—जो प्रतिक्षण समस्त ज्ञेयो को एक साथ जानता है । वह अक्षय, अनुपम, परमआनन्द का मन्दिर प्रत्यक्षज्ञान केवल ज्ञान है ।।५७।।

**परद्रव्येन्द्रियानेकप्रकाशादिवशीकृते ।**
**मतिश्रुते परोक्षे स्तः प्रत्यक्षमवधित्रयम् ।।५८।।**

**अन्वयार्थ**—(परद्रव्येन्द्रियानेकप्रकाशादिवशीकृते) पर पदार्थ, इन्द्रिय अनेक प्रकाशादि के वशीकृत (मतिश्रुते) मतिज्ञान और श्रुतज्ञान (परोक्षे) परोक्ष (स्त) हैं । (अवधित्रय) अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान ये तीन (प्रत्यक्ष) प्रत्यक्ष हैं ।

**भावार्थ**—परद्रव्य, इन्द्रिय, प्रकाशादि अनेक कारणो के आधीन होने से मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष हैं । तथैवोक्त श्लोकवार्तिके-इन्द्रिय और मन की प्रधानता से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष है । उपात्त इन्द्रिय और मन और अनुपात्त प्रकाशोपदेशादि की प्रधानता से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष है । जिस प्रकार शक्ति की विकलता होने से स्वयमेव चलने मे असमर्थ मानव को लाठी का अवलम्बन गमन का प्रधान कारण है, उसी प्रकार मतिश्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर भी स्वयमेव अर्थ के उपलब्द करने मे असमर्थ आत्मा के इन्द्रिय मन प्रकाशादि कारण की प्रधानता होने से ये परायत्त हैं इसलिए यह दोनो ज्ञान परोक्ष हैं । अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं ।।५८।।

**ज्ञानेनाक्ष्णोति व्याप्नोतीत्यक्ष आत्मा स्वगोचरम् ।**
**तमेवाक्षं प्रति गतं प्रत्यक्षमिति वर्ण्यते ।।५९।।**

**अन्वयार्थ**—(ज्ञानेन) ज्ञान से (अक्ष्णोति) जानता है (व्याप्नोति) व्याप्त है (इति) इस प्रकार (अक्ष) अक्ष (आत्मा) आत्मा है (त) उस (स्वगोचरम्) स्वानुभव गोचर (अक्ष) आत्मा के (प्रति) प्रति (गत) गत है (इति) इसलिए (प्रत्यक्ष) प्रत्यक्ष (उच्यते) कहा जाता है ।

**भावार्थ**—ज्ञान के द्वारा जानने वाला वा ज्ञान से व्याप्त होने से आत्मा को अक्ष कहते हैं। उस आत्मा से उत्पन्न "पर" इन्द्रिय प्रकाशादि जिसमे निमित्त नही है वह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ।।५६।।

**केवलं वा श्रुतं तत्राशेषवस्तुप्रकाशकम् ।**
**द्वादशांगांगबाह्यात्माऽस्पष्टं स्पष्टं तु केवलम् ।।६०।।**

**अन्वयार्थ**—(तत्र) उन मत्यादिज्ञानो मे (केवलम्) केवल ज्ञान (वा) और (श्रुत) श्रुतज्ञान (अशेषवस्तु-प्रकाशक) समस्त द्रव्यो का प्रकाशक है। (द्वादशागागवाह्यात्मास्पष्ट) द्वादशाग और अग, वाह्यात्मक श्रुतज्ञान अस्पष्ट परोक्ष है (तु) और (केवल) केवलज्ञान (स्पष्ट) प्रत्यक्ष है।

**भावार्थ** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सर्वद्रव्यो को जानते है परन्तु उनकी सर्व पर्यायो को नही जानते हैं। जो द्वादशांगात्मक सर्व शास्त्रो को जानता है परोक्षरूप से वह श्रुत केवली है और जो साक्षात् सर्व द्रव्य पर्यायो को जानता है वह केवली है ।।६०।।

**वाचना पृच्छना चानुप्रेक्षाऽम्नायो यथाविधि ।**
**धर्मोपदेश इत्यादि ज्ञानाचार' श्रुते मत ।।६१।।**

**अन्वयार्थ**—(वाचना) वाचना (पृच्छना) प्रच्छना (अनुप्रेक्षा) अनुप्रेक्षा (आम्नाय.) आम्नाय (च) और (यथाविधि) विधि के अनुसार (धर्मोपदेश ) धर्मोपदेश (इत्यादि) इत्यादि को (श्रुते) श्रुतज्ञान मे (ज्ञानाचार') ज्ञानाचार (मत ) माना है।

**भावार्थ**—वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और विधि के अनुसार धर्मोपदेश इत्यादिरूप श्रुत ज्ञान मे ज्ञानाचार है ।।६१।।

**यत्सूत्रार्थोभयाऽऽख्यान शिष्याणां विनयान्वितम् ।**
**मोक्षार्थं वाचना प्रोक्ता कृत्वा शुद्धिं चतुर्विधाम् ।।६२।।**

**अन्वयार्थ**—(शिष्याणा) शिष्यो के लिए (विनयान्वितम्) विनय से युक्त (मोक्षार्थं) मोक्ष के लिए (चतुर्विधाम्) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव स्वरूप चार प्रकार की (शुद्धि) शुद्धि (कृत्वा) करके (यत्) जो (सूत्रार्थोभयाख्यान) सूत्र, अर्थ और उभय का व्याख्यान करना है वह (वाचना) वाचना (प्रोक्ता) है।

**भावार्थ**—शिष्यो के लिए ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि पूर्वक जो सूत्र, अर्थ और उभय का व्याख्यान किया जाता है यह वाचना है।

**"द्रव्यशुद्धि का वर्णन"**

**स्वांगे ज्वराक्षिकुक्षादिवेदनापूयशोणित**
**स्त्रावविण्मूत्रलेपादेर्द्रव्यशुद्धिरसभवः ।।६३।।**

**अन्वयार्थ**—(स्वागे) अपने अग मे (ज्वराक्षिकुक्षादिवेदनापूयशोणितविण्मूत्रलेपादे) ज्वर, नेत्र, उदर आदि की वेदना, पीव और रक्त का निकलना तथा मल मूत्र के लेपादि के होते हुए (द्रव्यशुद्धि) द्रव्यशुद्धि (असभव) असभव है।

**भावार्थ**—जिसके शरीर मे ज्वर है, आँख, उदर आदि मे पीडा है, पूय रक्त आदि वह रहा है, मलमूत्र से लिप्त है, उसके द्रव्यशुद्धि नही होती है ।।६३।।

**सा भवेदन्नपानादे सुस्निग्धस्य सुगन्धिनः ।**
**मोदकापूपपृथुकप्रभृतेरप्यसेवनम् ।।६४।।**

**अन्वयार्थ**—(सा) वह द्रव्यशुद्धि (सुस्निग्धस्य) सुस्निग्ध (सुगन्धिन·) सुगन्धित (मोदकापूपंप्रथुकप्रभृते) मोदक पूवा, बडे-बडे लड्डू आदि (अन्नपानादे) अन्न पानी के (असेवन) सेवन नही करने से (अपि) भी (भवेत्) होती है।

**भावार्थ**—मोदक पूए आदि गरिष्ठ पदार्थों को सेवन नही करने से भी द्रव्यशुद्धि होती है ।।६४।।

**"क्षेत्र शुद्धि का वर्णन"**

**व्याख्यानस्थानकात्सर्वदिक्षु पचेन्द्रियांगिनाम् ।**
**शवार्द्रचर्ममांसास्थिशोणितादेरसगम· ।।६५।।**

**गतात्तृतीयस्वाध्यायादाराद्य स निगद्यते ।**
**क्षेत्रशुद्धिरिति क्षेत्रे द्वात्रिंशद्दण्डमात्रके ।६६।।**

**नृतिर्यक्शुष्कचर्मादेर्हस्तद्वयेकशते तदा ।**
**विण्मूत्रयो· क्रमाद्धस्तशतपचाशत्करायते ।।६७।।**

**अन्वयार्थ**—(गतात्तृतीयस्वाध्यायात्) पूर्व रात्रि के स्वाध्याय से (आरात्) अपर रात्रि की स्वाध्याय मे (व्याख्यानस्थानात्)व्याख्यान स्थान से (सर्वदिक्षु)सभी दिशाओ मे(द्वाविंशद्दण्डमात्रके)बत्तीस धनुष प्रमाण (क्षेत्रे)क्षेत्र मे (पचेन्द्रियागिना) पचेन्द्रिय प्राणियो का (शवार्द्रचर्ममासास्थिशोणितादे) मृत शरीर, आर्द्र चर्म, मास, अस्थि, शोणित आदि का (असगम·) सगम नही होना (तदा) उस स्वाध्याय काल मे (क्रमात्) क्रम से (हस्तद्वयेकशते) दो सौ हाथ, एक सौ हाथ प्रमाणक्षेत्र मे (नृतिर्यक्शुष्कचर्मादि:)मनुष्य का शुष्क चर्म और तिर्यंच का शुष्क चर्म आदि तथा (हस्तशतपचाशत् करायते)सौ हाथ पच्चास हाथ लम्बे क्षेत्र मे (विण्मूत्रयो) मलमूत्र का (असगम) सगम नही होना (स) वह (क्षेत्रशुद्धि·) क्षेत्रशुद्धि (इति) इस प्रकार (निगद्यते) कही जाती है।

**भावार्थ**—पूर्व रात्रि और अपर रात्रि मे जिस स्थान पर शास्त्र वाचना करते हैं उस स्थान से दशोदिशाओ मे बत्तीस धनुष प्रमाण क्षेत्र मे पचेन्द्रिय प्राणियो का शव (मृत शरीर) चर्म, मास, अस्थि, खून आदि नही होना चाहिये तथा दो सौ हाथ प्रमाण तक मनुष्य का शुष्कचर्म, खून, अस्थि, आदि एव एक सौ हाथ प्रमाण क्षेत्र मे तिर्यंचो का शुष्कचर्म आदि नही होना चाहिए। सौ हाथ प्रमाण क्षेत्र मे मल (मनुष्य की विष्ठा) और पच्चास हाथ प्रमाण क्षेत्र मे मूत्र नही होना चाहिए। यह रात्रिक स्वाध्याय की क्षेत्र शुद्धि है ।।६५,६६,६७।।

**पंचाक्षे विलश्यमानेऽर्था म्रियमाणे च कर्मसु ।**
**त्रसस्थावरघातेषु सत्स्वेकस्मिन्निवर्त्तते ।।६८।।**

**आसन्ने बालचाण्डालजलदीपाग्निलु चने ।**
**दवादिधूमे दुर्गन्धे वाति दूरान्न सा भवेत् ।।६९।।**

**अन्वयार्थ**—(अर्त्या) पीडा से (क्लिश्यमाने) क्लिश्यमान (पचाक्षे) पचेन्द्रिय प्राणियो के (म्रियमाणे) मर जाने पर (च) और (त्रयस्थावरघातेषु) त्रस, स्थावर, जीवो के घात (कर्मसु) कर्म के (सत्सु) होने पर (आसन्ने) निकट मे (बालचाण्डालजलदीपाग्निलु चने) बालक, चाण्डाल, जलदीप, अग्नि का लु चन होने पर (दवादिधूमे) दवाग्नि धूम होने पर (दुर्गन्धेवाति) दुर्गन्ध पवन के चलने पर (एकस्मिन्) इनमे से किसी एक के होने पर (सा) वह क्षेत्र शुद्धि (न) नही (भवेत्) होती है इसलिए (दूरात्) दूर से (निवर्तते) निवृत होना चाहिए ।

**भावार्थ**—जहा पर पीडा से दु खी होकर पचेन्द्रिय प्राणी मर रहा हो, त्रस, स्थावर मे किसी प्राणी का घात हो रहा हो, निकट मे बालक, चाडाल बैठा हो, दवाग्नि का धूम हो रहा हो कोई अग्नि, पानी दीपक आदि का बुझाना, जल का विडोलना आदि कर रहा हो, दुर्गन्ध हवा चल रहा हो, वहा पर क्षेत्र शुद्धि नही होती है । इसलिए उस क्षेत्र को दूर से ही छोड देना चाहिये ।।६८,६९।।

**"काल शुद्धि वर्णन"**

**नन्दीश्वरमहापूजाराध्यागमनयोजन**
**प्रमाणक्षेत्रसन्यासमहानशनवासरैः ।।७०।।**

**सर्वपर्वक्रियावश्यकक्रियावसरादिभिः ।**
**व्यपेतता भवेत्काले कालशुद्धिर्विशुद्धिदा ।।७१।।**

**अन्वयार्थ**—( नन्दीश्वरमहापूजाराध्यागमनयोजनप्रमाणक्षेत्रसन्यासमहानशनवासरै. ) नन्दीश्वरमहापूजा, आराध्य पुरुषो का आगमन, योजनप्रमाण क्षेत्र मे सन्यास, महान उपवास आदि दिनो से (सर्वपर्वक्रियावश्यकक्रियावसरा-दिभि.) सर्व पर्व की क्रिया, आवश्यक क्रियाओ के अवसर से (व्यपेतता) रहित (विशुद्धिदा) विशुद्धि को देने वाली (काले) शास्त्रोक्त काल मे शास्त्र पढना (कालशुद्धि ) कालशुद्धि (भवेत्) होती है ।

**भावार्थ**—नन्दीश्वरमहापूजा, आराध्य पुरुषो का आगमन, योजन प्रमाण क्षेत्र मे सन्यास, महान उपवासादि के दिनो मे, षट् आवश्यक क्रियाओ के समय मे, वाचना स्वाध्याय नही करना विशुद्धि को देने वाली कालशुद्धि है ।७०,७१।

**सप्तत्र्येकदिनान्यत्र स्वग्रामे योजनप्रमें ।**
**क्षेत्रे दूरे च वर्ज्यानि स्वर्गते श्रमणाधिपे ।।७२।।**

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इस वाचना स्वाध्याय मे (स्वग्रामे) अपने ग्राम मे (योजनप्रमे) योजन प्रमाण (दूरे) दूर (क्षेत्रे) क्षेत्र मे (श्रमणाधिपे) श्रमणाधिप के (स्वर्गते) स्वर्ग मे चले जाने पर (सप्तत्र्येकदिनानि) क्रम से सात दिन, तीन दिन और एक दिन (वर्ज्यानि) वर्जनीय है ।

**भावार्थ**—अपने ग्राम मे श्रमणाधिप के स्वर्गवास हो जाने पर सात दिन और एक योजन दूर प्रमाण क्षेत्र मे आचार्य का स्वर्गवास हो जाने पर तीन दिन और एक योजन से दूर क्षेत्र मे आचार्य का स्वर्गवास होने पर एक दिन वाचना स्वाध्याय वर्जनीय है । अर्थात् उतने दिन तक शास्त्र नही पढना चाहिए ।।७२।।

निष्ठाप्य पश्चिमश्यामास्वाध्यायं शुद्धभूस्थितः ।
व्युत्सर्गेणेन्द्रकीनाशप्रचेतोधनिनां दिशः ॥७३॥

नवार्यापाठकालेन प्रत्येकं शोधयेदयं ।
पूर्वाह्णवाचनाहेतोः कालशुद्धिविधिस्त्वयम् ॥७४॥

विद्युदिन्द्रधनुः क्षोणीकं पाशादाहसंगर
ग्रहणाकालवृष्टयभ्रगर्जनादिविवर्जितः ॥७५॥ ।त्रिकम्।

अन्वयार्थ—(पश्चिमश्यामास्वाध्याय) पश्चिम रात्रि के स्वाध्याय को (निष्ठाप्य) निष्ठापन करके (शुद्धिभूस्थित) शुद्ध भूमि मे स्थित होकर (व्युत्सर्गेण) कार्योत्सर्ग से (इन्द्रकीनाशप्रचेतोधनिना) इन्द्र, यमराज, वरुण और कुवेर की (दिश) दिशाओ की (प्रत्येक) प्रत्येक दिशा मे (नवार्यपाठकालेन) नवार्य पाठ (नौवार) णमोकार मन्त्र पाठ से (शोधयेत) शुद्धि करे (अय) यह नवार्यपाठ (पूर्वाह्णवाचनाहेतो) पूर्वाह्णकाल के स्वाध्याय ग्रहण की (कालशुद्धिविधि) कालशुद्धि विधि है (तु) परन्तु (विद्युदिन्द्रधनुक्षोणीकपाशादाहसगरग्रहणकालवृष्ट्यभ्रगर्जनादिविवर्जित.) यह विजली, इन्द्रधनुष, पृथ्वी का कम्पन, दिग्दाह, युद्ध, ग्रहणकाल, वृष्टि अभ्र गर्जन से रहित होना चाहिये ।

भावार्थ—पश्चिम रात्रि वाचना काल की समाप्ति और पूर्वाह्ण वाचना के ग्रहण काल मे नौ-नौ वार णमोकार मंत्र का जाप करे। परन्तु उत्पात से दिशा का अग्नि वर्ण (लाल) होना, तारा के आकार पुद्गल का पडना, विजली का चमकना, मेघो के सघट्ट से उत्पन्न बज्रपात, ओले वरसना, धनुष के आकार पच वर्ण पुद्गलो का दीखना, दुर्गंध लाल पीले वर्ण के आकार साझ का समय, वादलो से आच्छादित दिन, चन्द्रमा, ग्रह, सूर्य राहु के, विमानो का आपस मे टकराना, लडाई के वचन, लकडी आदि से झगडा, आकाश मे धुआ के आकार रेखा का दीखना, धरती कप, बादलो का गर्जना, महापवन का चलना अग्निदाह-इत्यादि बहुत से दोष स्वाध्याय मे वर्जित किये गये हैं अर्थात् ऐसे दोषो के होने पर नवीन पठन पाठन नही करना चाहिए ॥७३,७४,७५॥

पूर्वान्हेऽप्यपरान्हस्य वाचनार्थं विशोधयेत् ।
एवमांशाश्चतस्रस्तु सप्तार्यापाठकालतः ॥७६॥

अन्वयार्थ—(पूर्वाण्हे) पूर्वाण्ह काल के स्वाध्याय की समाप्ति मे (अपराह्णस्य) अपराण्ह की (वाचनार्थ) वाचना स्वाध्याय ग्रहण के लिए (एव) इस प्रकार (चतस्रस्तु) चारो (आशा) दिशाओ को (शोधयेत्) शुद्धि करे (तु) परन्तु मध्याह्न काल के स्वाध्याय मे (सप्तार्थपाठकालत.) सप्तार्थ पाठ काल से (विशोधयेत्) शुद्धि करे ।

भावार्थ—पूर्वाण्हकाल के स्वाध्याय की समाप्ति मे अपराह्ण वाचना स्वाध्याय ग्रहण के लिए इस प्रकार चारो दिशा की शुद्धि करे। परन्तु मध्याह्नकाल के स्वाध्याय मे सप्तार्थ पाठ काल से शुद्धि करे ॥७६॥

कृत्वैवमपराह्णेऽपि पंचार्यापाठकालतः ।
दिक्शुद्धि वाचनां पूर्वरात्रौ कुर्याद्द्विवं पुरा ॥७७॥

क्षेत्रशुद्धि विधायैतत्कारणोपायवर्जिते ।
निशायां पश्चिमश्यामावाचना नाऽस्ति संयते ॥७८॥

व्योमाचलकुलान्तस्थचारणावधिबोधिनाम् ।
वाचना पररात्रौ तु क्षेत्रशुद्ध्युपलमतः ।।७९।।

**अन्वयार्थ**—(एवं) इस प्रकार सप्तार्य गाथा से (अपराण्हे) अपराह्नकाल मे (कृत्वा) शुद्धि करके (पूर्वरात्रौ) पूर्व रात्रि मे (पचार्यपाठकालत) पचार्यपाठ काल से (दिक्शुद्धि) दिशा शुद्धि को करके (पुरा) पहिले की तरह (दिव) दिन को(क्षेत्रशुद्धि) क्षैत्र शुद्धि को करें (एतत्कारणोपायवर्जिते) इन कारण उपायो से रहित समय मे (वाचना) स्वाध्याय (कुर्यात्) करे परन्तु (सयते) साधारण मुनि के (निशाया) रात्रि मे (पश्चिमश्यामावाचना) पश्चिम रात्रि की वाचना (नास्ति) नही है (क्षैत्रशुद्ध्युपलभत) क्षैत्र शुद्धि के उपलभ से (व्योमाचलकुलान्तस्थचारणावधिबोधिना) आकाश, पर्वत के तटो पर रहने वाले चारणरिद्धि और अवधिज्ञानी मुनियो के (अपररात्रौ) अपर रात्रि मे (वाचना) वाचना है ।

**भावार्थ**—प्रात काल की स्वाध्याय के ग्रहण और समाप्ति और अपराण्ह काल की स्वाध्याय की समाप्ति और ग्रहण मे चारो दिशाओ मे नव-नव आर्य गाथा पढकर स्वाध्याय ग्रहण और समाप्त करनी चाहिए । मध्याह्नकाल की स्वाध्याय के ग्रहण मे सात आर्य गाथा पढकर चारो दिशाओ की शुद्धि करना चाहिए तथा सायकाल के स्वाध्याय ग्रहण मे पाँच आर्य गाथा पढकर चारो दिशाओ की शुद्धि करना चाहिए । सामान्य साधु को अपररात्रि मे स्वाध्याय का निषेध है । परन्तु जो गगन विहारी है, कुलाचल पर्वतो पर रहने वाले है, चारण ऋद्धिधारी हैं, अवधिज्ञानी हैं, वे क्षैत्र शुद्धि से पश्चिम रात्रि मे स्वाध्याय कर सकते है ।।७७,७८,७९।।

सर्वमासेषु जंघाया छाया सप्तपदी क्रमात् ।
वाचना ग्रहमोक्षेषु स्यात्पूर्वाण्वहापराण्हयोः ।।८०।।

**अन्वयार्थ**—(सर्वमासेषु) सर्व महीनो मे (पूर्वाण्हापराण्हयो ) पूर्वाण्ह और अपराण्ह काल मे (वाचनाग्रहमोक्षेसु) वाचना के प्रतिष्ठापन और निष्ठापन (क्रमात्) क्रम से (जघाया ) जघा की (छाया) छाया (सप्तपदी) सप्तपदी (स्यात्) होना चाहिए ।

**भावार्थ**—स्वाध्याय के आरम्भ करने मे सूर्य के उदय होने पर दोनो जाघो की छाया सात विलस्त प्रमाण जानना और सूर्य के अस्त होने के काल मे ही सात विलस्त छाया रहे तब स्वाध्याय समाप्त करना चाहिए ।।८०।।

आषाढ़कृष्णपक्षप्रतिप्येकपदी तु सा ।
स्वाध्यायमोक्षादानेषु स्यात्पूर्वाण्हापराह्णयोः ।।८१।।

**अन्वयार्थ**- (तु) और (आषाढकृष्णपक्षप्रतिप्येकपदी) आषाढकृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन (पूर्वाण्हापराण्हयो) पूर्वाण्ह अपराण्ह के (स्वाध्यायमोक्षादानेषु) स्वाध्यायग्रहण और निष्ठापन मे (सा) छाया (एकपदी) एक पदी (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—आषाढ महीने की कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन एकपाद छाया रहे तब पूर्वाण्ह काल की स्वाध्याय समाप्त करना चाहिए और एक पद छाया मे ही मध्याह्न काल की स्वाध्याय का आरभ करना चाहिए ।।८१।।

दिनं प्रत्यगुलस्यैति यत्पंचदशमांशाकः ।
वृद्धि तच्छ्रावणस्यादौ सा छाया द्व्यंगुलाधिका ।।८२।।

अंगुलिद्वयवृद्ध्यैवं प्रतिमासं पदद्वयं ।
पौषादौ स्यात्तत· पौषाज्ज्येष्ठांतं तु हीयते ।।८३।।

**अन्वयार्थ**—(दिन प्रांत) प्रतिदिन (अगुलस्य) अगुल के (पचदशमाशक') पचदशमाशक (वृद्धि) वृद्धि को (क्रमश.ऐति) प्राप्त होती है (सा) वह (छाया) छाया (श्रावणस्य) श्रावण के (आदौ) प्रथम दिन मे (द्वयंगुलाधिका) दो दो अगुल अधिक है। (एवं) इस प्रकार (प्रतिमासं) प्रत्येक महीने मे (अगुलि द्वयवृद्धया) दो दो अगुल की वृद्धि से (पौषादौ) पौष की आदि में (पदद्वय) दो पाद प्रमाण (स्यात्) होती है। (ततः) इसके बाद (पौषात्) पौष महीने से (ज्येष्ठातं) ज्येष्ठ मास पर्यन्त (हीयते) हीन होती है।

**भावार्थ**—तदनन्तर आषाढ कृष्ण प्रतिपदा से प्रत्येक दिन एक-एक अंगुल पंचदशाश (एक अगुल का पन्द्रहवा भाग) बढता है तथा श्रावणकृष्ण प्रतिपदा के दिन दो अगुल बढ जाता है। इस प्रकार प्रतिमास मे दो दो अंगुल की वृद्धि से पौष कृष्ण प्रतिपदा के दिन दो पाद छाया हो जाती है। तथा पौष मास से ज्येष्ठ मास पर्यन्त प्रतिमास मे दो दो अगुल की हीनता होती है।

विशेषार्थ—प्रत्येक महीने की प्रात काल की स्वाध्याय के आरम्भ काल सप्त पाद छाया होने पर होता है तथा संध्याकाल के स्वाध्याय का विसर्जन काल भी सप्त पाद छाया होने पर होता है। परन्तु पूर्वाण्ह काल की स्वाध्याय की समाप्ति आषाढ कृष्ण प्रतिपदा के दिन एक पदी छाया मे होती है और अपराण्ह काल की स्वाध्याय का आरभ भी एक पाद छाया मे होता है। तदनन्तर पौष मास पर्यन्त प्रतिमास मे दो दो अगुल छाया की वृद्धि करने पर पौष मास मे दो पाद छाया होती है और पौष मास से ज्येष्ठ मास पर्यन्त दा दा अगुल हान करना चाहिए। प्रतिदिन एक अगुल के पन्द्रहवा अश बढता है ।।८२,८३।।

"भाव शुद्धि वर्णन"

यशः पूजापुरस्कारनिःकांक्षा निर्मदा मतिः ।
श्रुतामृतकृतानंदा भावशुद्धिर्मुनेर्मता ।।८४।।

**अन्वयार्थ**—(यश·पूजापुरस्कारनि.कांक्षा) यश, पूजा, पुरस्कार की आकाक्षा से रहित (निर्मदा) मद रहित (श्रुतामृतकृतानदा) श्रुत रूपी अमृतकृत आनन्द रूप जो (मति ) मति है वह (मुने ) मुनि की (भावशुद्धि ) भाव शुद्धि है।

**भावार्थ**—यश, पूजा, सत्कार, पुरस्कार की आकाक्षा मे रहित श्रुतामृत मे लीन निर्मद जो मुनि की मति है वह भाव शुद्धि है ।।८४।।

एवं शुद्धिविधायात्महस्तपाद विशोध्य च ।
शुद्धदेशस्थितो भक्त्या क्रियां कृत्वा यथाविधि ।।८५।।

पल्यंकासनगः सूरिपाद नत्वा कृताञ्जलिः ।
सूत्रस्याध्ययनं कुर्यात् कक्षाद्य स्वांगमस्पृशन् ।।८६।।

**अन्वयार्थ**—(एवं) इस प्रकार (शुद्धि ) शुद्धि (विधाय) करके (च) और (आत्महस्तपाद) अपने हाथ पैरो को (विशोध्य) विशुद्ध करके (शुद्धदेशस्थित ) शुद्ध देश मे स्थित (भक्त्या) भक्ति से (यथाविधि) विधि के अनुसार (क्रिया) क्रिया को (कृत्वा) करके (पल्यकासनग ) पल्यक आसन गत होकर (कृताञ्जलि.) अञ्जलि पूर्वक (सूरिपाद) आचार्य के

चरणो को (नत्वा) नमस्कार करके (कक्षाद्य) कक्षादि (स्वाग) अपने अग को (अस्पृशन्) स्पर्श नही करते हुए (सूत्रस्य) सूत्र का (अध्ययम) अध्ययन (कुर्यात्) करना चाहिये ।।८५,८६।।

**यथाकालं ततो मुचेद्वाचनामीदृशो विधिः ।**
**पुराणाराधनापंचसंग्रहादिश्रु तौ न हि ।।८७।।**

**अन्वयार्थ**—(तत ) इसके बाद (यथाकाल) कालानुसार (वाचना) वाचना को (मु चेत्) छोड दे (ईदृश:) यह शास्त्र वाचना की (विधि ) विधि है। (हि) निश्चय से (पुराणाराधनापचसग्रहादिश्रु तौ) पुराण, आराधना पच सग्रह आदि शास्त्रो के पढने (सुनने) मे (ईदृश॰) ऐसी (विधि ) विधि (न) नही है।

**भावार्थ**—शास्त्रो की वाचना विधि और कालानुसार करे। अकाल मे तथा विधि रहित स्वाध्याय नही करे। परन्तु पुराण, आराधना, पचसग्रह आदि के पढने मे यह विधि नही है ।।८७।।

**गणेशोक्तं मत सूत्रमभिन्नदशपूर्विभिः ।**
**उक्तं प्रत्येकबुद्धैश्च श्रु तकेवलिभिः श्रु तम् ।।८८।।**

**अन्वयार्थ**—(गणेशोक्त) गणधर कथित (अभिन्नदशपूर्विभि ) अभिन्न दशपूर्वी के द्वारा (प्रत्येक बुद्धै:) प्रत्येक बुद्ध के द्वारा (च) और (श्रु तकेवलिभि ) श्रु त केवलि के द्वारा (उक्त) कथित श्रु त को (सूत्र) सूत्र (मत) माना गया है।

**भावार्थ**—गणधर, श्रु तकेवली,अभिन्नदशपूर्वी, और प्रत्येकबुद्ध के द्वारा कथित श्रु त सूत्र कहलाता है ।।८८।।

**विधिमेनमतिक्रम्य सूत्रं शुश्रूषुराप्नुयात् ।**
**रुजासमाधिस्वाध्यायभगार्तीन्निष्फलश्च सः ।।८९।।**

**अन्वयार्थ**—(एव) इस (विधि) विधि का (अतिक्रम्य) उल्लघन करके (सूत्र) सूत्र को (शुश्रूषु.) सुनने की इच्छा करने वाला सयमी (रुजासमाधिस्वाध्यायभगार्तीन्निष्फलश्च) रोग, असमाधि, स्वाध्याय का भग, आर्ति और निष्फलता को (आप्नुयात्) प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—जो सयमी वाचना की विधि का उल्लघन करके सूत्र को सुनना चाहता है, वह रोग, असमाधि, स्वाध्याय का भग, सक्लेश और निष्फलता को प्राप्त होता है ।।८९।।

**पृच्छना संशयोच्छित्यै प्रश्नः सप्रश्रयो मुनेः ।**
**स्वोन्नत्यख्यापनार्थं वा प्रहासोद्धर्षवर्जितः ।।९०।।**

**अन्वयार्थ**—(स्वोन्नत्यख्यापनार्थं) अपनी उन्नति के अख्यापनार्थ (वा) अथवा (प्रहासोद्धर्षवर्जित ) प्रहास और स्पर्द्धा से रहित (सशयोच्छित्यै) सशय का नाश करने के लिए (सप्रश्रय ) विनय पूर्वक (मुने ) मुनि का प्रश्न पूछना वह (प्रच्छना) प्रच्छना स्वाध्याय है।

**भावार्थ**—हास्य और स्पर्द्धा से रहित अपने सशय का छेदन करने के लिए जो मुनि का विनयपूर्वक प्रश्न होता है उसको प्रच्छना स्वाध्याय कहते हैं। स्वोन्नति के ख्यापनार्थ प्रच्छना नही की जाती है ।।९०।।

अनुप्रेक्षा परिज्ञाते भावना या मुहुर्मुहुः ।
परिवर्त्तनमाम्नायो घोषदोषविवर्जितम् ॥६१॥

द्वादशांगैकदेशोपदेशो धर्मोपदेशनम् ।
पंचप्रकार इत्येष ज्ञानाचार उपाहृतः ॥६२॥

**अन्वयार्थ**—(परिज्ञाते) जाने हुए शास्त्र मे (यत्) जो (मुहुर्मुहु ) वार-वार भावना करना(अनुप्रेक्षा) अनुप्रेक्षा है तथा परिज्ञात अर्थ मे (घोषदोषविवर्जित) उच्चारण दोष रहित (परिवर्त्तन) परिवर्तन है (आम्नाय.) वह आम्नाय है (द्वादशागैकदेशोपदेश ) द्वादशाग के एक देश का उपदेश देना (धर्मोपदेशन) धर्मोपदेश है । (इति) इस प्रकार (एष.) यह (पंचप्रकार ) पांच प्रकार का (ज्ञानाचार ) ज्ञानाचार (उपाहृत.) कहा गया है ।

**भावार्थ**—जाने हुये शास्त्र को वार-वार भावना अनुप्रेक्षा है । तथा परिज्ञात अर्थ मे उच्चारण दोष रहित परिवर्त्तन आम्नाय है । द्वादशाग के एक देश का उपदेश देना धर्मोपदेश है इस प्रकार यह पाच प्रकार का ज्ञानाचार कहा गया है ॥६१,६२॥

प्रज्ञोन्मेषः प्रशस्तान्तरंगता कर्मनिर्जरा ।
संख्यातीतगुणश्रेण्या चेत्यादि स्यादितो यतेः ॥६३॥

**अन्वयार्थ**—(इत ) ज्ञानाचार से (यते ) मुनि के (प्रज्ञोन्मेष ) बुद्धि का विकास होता है (च) और (प्रशस्तान्तरगता) शुभ परिणाम से (सख्यातीतगुणश्रेण्या) सख्यातीत गुण श्रेणी से (कर्मनिर्जरा) कर्मो की निर्जरा (इत्यादि) इत्यादि (स्यात्) होती है ।

**भावार्थ**—ज्ञानाचार से मुनियो के प्रज्ञा का विकास होता है और शुभ परिणामो से असख्यात गुणी कर्मो की निर्जरा होती है । शिष्य प्रतिशिष्य के द्वारा पूजादि की प्राप्ति होती है ॥६३॥

वन्दे श्रीजिनमजुलास्यकमलामोदं श्रुत विश्रुतं ।
चार्वी चारुचरित्रपात्रमुनिवृन्देन्दिन्दिरानन्दिनम् ॥
यत्पुष्णाति भवेभवेऽप्यमलिनं ज्ञानं समासेवितम् ।
कैवल्य च समस्तवस्तुविषय तद्विस्मृत यद्यपि ॥६४॥

**अन्वयार्थ**—(श्रीजिनमजुलास्यकमलामोद) श्री जिनेन्द्र भगवान के मुख रूपी कमल की सुगन्धि (चारुचरित्रपात्रमुनिवृन्देन्दिरानन्दिन) श्रेष्ठ चरित्र के पात्र मुनियो के समूह रूपा भ्रमर को आनन्ददायक (विश्रुत) विख्यात (चार्वी) श्रेष्ठ (श्रुत) श्रुतज्ञान को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हू । (यत्) इस (अमलिन) निर्मल (भवभवे) भव भव मे (समासेवितम्) आराधित (ज्ञान) ज्ञान को (यद्यपि) यद्यपि (तद्विस्मृत) जीव भूल जाते हैं तथापि (तत्) वह आराधित ज्ञान (समस्तवस्तुविषय) समस्त वस्तु का विषय करने वाले (कैवल्य) केवलज्ञान को (पुष्णाति) पुष्ट करता है ।

**भावार्थ**—जिनेन्द्र भगवान के मुख रूपी कमल से सुवासित उत्तम चारित्र धारी सयमीजनरूपी भ्रमर को सतोष दायक भव भव मे आराधित निर्मल, जगतप्रसिद्ध, श्रुतज्ञान यद्यपि विस्मृत हो जाता है अर्थात् दूसरे भव मे प्राणी उसको भूल जाते हैं तथापि सम्यग्दर्शन सहित यह श्रुतज्ञान समस्त वस्तु का विपय करने वाले केवल ज्ञान को उत्पन्न करता है ॥६४॥

गंभीर मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं ।
कठोष्ठादिवचोनिमित्तरहित नो वातरोधोद्गतम् ।
स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथक निःशेषभाषात्मकं
दूरासन्नसम निरुपमं जैनं वचः पातु वः ॥९५॥

अन्वयार्थ—(गभीर) गभीर (मधुर) कर्णप्रिय (मनोहरतरम्) मनोहरतर (दोषव्यपेत) दोष रहित (हित) हितकारी (कठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं) कठ ओर तालु आदि वचन के निमित्त से रहित (नोवातरोधोद्गतम्) वातरोधजनित नहीं है (स्पष्टम्) स्पष्ट है (तत्तदभीष्टवस्तुकथक) उन उस अभीष्ट वस्तु का कहने वाला है (नि शेषभाषात्मक) नि शेष भाषात्मक है (दूरासन्नसम) एक योजनान्तर मे स्थित दूर और निकट को समान श्रवण गोचर होने वाले (निरुपमम्) उपमातीत (जैन) जिनेन्द्र भगवान के (वचन) स्वरनाम कर्म वर्गणा जनित वचन (व·) तुम्हारी (पातु) रक्षा करें।

भावार्थ—यह जिनेन्द्र का वचन जो गभीर है, मीठा है अतिमनहरण करने वाला है, हितकारी है, कठ ओठ आदि वचन के कारणो से रहित है, पवन के रोकने से प्रकट है, स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थों का कहने वाला है, सर्व भाषामयी है दूर व निकट मे समान सुनाई देता है, व उपमा रहित है सो वह श्रुत हमारी रक्षा करे ॥९५॥

येनाऽज्ञानतमस्ततिर्विघटिता ज्ञेये हिते चाहिते ।
हानादानमुपेक्षरण च समभूत्तस्मिन्पुनः प्राणिनाम् ॥
येनेयं दृगुपैति तां परमतां वृतं च येनानिश ।
तज्ज्ञान मम मानसांबुजमुदे स्तात्सूर्यवर्योदयम् ॥९६॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसने (अज्ञानतमस्ततिर्विघटिता) अज्ञान रूपी अन्धकार की पक्ति का नाश किया है (च) और (येन) जिससे (हिते) हित (च) और (अहिते) अहित रूप (ज्ञेये) ज्ञेय मे (हानादान) त्याग ग्रहण (च) और (उपेक्षण) उपेक्षा (समभूत्) उत्पन्न हुई है (येन) जिससे (तस्मिन्) उस ज्ञान मे (पुन.) पुन. (प्राणिना) प्राणियो को (इय) यह (दृग्) सम्यग्दर्शन (च) और (वृत) चारित्र (अनिश) रात्रिदिन (ता) उस (परमता) उत्कृष्टता को (उपैति) प्राप्त होता है (तत्) वह (ज्ञान) ज्ञान (मम) मेरे (मानसाम्बुजमुदे) मन रूपी कमल को हर्षित करने के लिए (सूर्यवर्योदयम्) श्रेष्ठ सूर्य का उदय स्वरूप (स्यात्) होवे।

भावार्थ—जिससे अज्ञान अधकार का प्रसार दूर हो जाता है तथा जिससे जानने योग्य हितकारी और अहितकारी पदार्थों को जान लेने पर अहित का त्याग, हित का ग्रहण तथा परम वैराग्य भाव प्राप्त होता है। जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, परमत की श्रद्धा दूर हटती है व जिसके द्वारा रात्रिदिन मिथ्याचारित्र दूर रहता है ऐसे ज्ञान रूपी सूर्य का उदय मेरे मन रूपी कमल को विकसित करे ॥९६॥

ज्ञानं यदीयं विगतोपमान
सर्वं यदन्त परमाणुखर्वम् ।
पायात्स सर्वावृतिजादपाया
न्नाथस्त्रिलोक्या वरमल्लिनाथः ॥९७॥

**अन्वयार्थ**—(यदीयं) जिसका (ज्ञानं) ज्ञान (विगतोपमान) उपमा रहित है (यदन्त) जिसके अन्तर्गत (सर्वं) सारे तीन लोक (परमाणुखर्वम्) परमाणु के समान लघु हैं (स) वह (त्रिलोक्या)-तीन लोक के स्वामी (वरमल्लिनाथ) श्रेष्ठ मल्लिनाथ (सर्वावृतिजात्) सर्व आवरण से उत्पन्न (अपायात्) अपाय से मेरी (हमारी) (पायात्) रक्षा करे।

**भावार्थ**—जिसका ज्ञान उपमा रहित है जिसके अन्तर्गत सारे तीन लोक के पदार्थ परमाणु समान लघु है। वह तीन लोक के स्वामी श्रेष्ठ मल्लिनाथ भगवान सर्व आवरण से उत्पन्न अपाय से मेरी (हमारी) रक्षा करे ।।९७।।

**इति श्री वीरनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिते श्री आचारसार नाम्नि शास्त्रे ज्ञानाचारवर्णनात्मकश्चतुर्थोऽधिकारः**

# पंचमोऽधिकारः

**श्री संभवं भजत संचितपुण्यराशे**
**नु र्येन भीकरतरस्य भवांबुराशेः।**
**लीलासमुत्तरणकारणयानपात्रं**
**प्रोक्त गुणोत्करनिरास्रवणं चरित्रम् ।।१।।**

**अन्वयार्थ**—(येन) जिसने (संचितपुण्यराशे) संचित पुण्य राशि वाले (भवांबुराशे) संसार समुद्र से (भीकरतरस्य) भयभीत (नु) मानव के लिए (लीलासमुत्तरणकारणयानपात्रं) लीला मात्र से समुत्तरणकारणभूत यानपात्र (गुणोत्करनिराश्रवण) गुणोत्कर और निरास्रव (चारित्र) चारित्र (प्रोक्त) कहा है (श्रीसंभव) उस संभवनाथ को (भजत) भजो।

**भावार्थ**—जिसने पुण्यराशि का संचय किया है और जिसने संसार से भयभीत मानव को संसार समुद्र पार करने के लिए निश्छिद्र नौका के समान, गुणोत्कर, निरास्रव, चारित्र का वर्णन किया है। भव्यजन उस श्री संभवनाथ की सेवा करो। संचित पुण्यराशि का अर्थ है सम्यग्दृष्टि, क्योंकि सम्यग्दृष्टि ही सम्यग्चारित्र का पात्र होता है ।।१।।

**मनोवचनकायानां पापरूपक्रियात्ययात् ।**
**पंचप्रकारं चारित्रं स्वस्वरूपमुपैत्यलम् ।।२।।**

**अन्वयार्थ**—(मनोवचनकायानां) मन, वचन, काय की (पापरूपक्रियात्ययात्) पापरूपी क्रियाओं के नाश हो जाने से (अलं) शीघ्र ही (पंचप्रकारं) पंच प्रकार का (चारित्र) चारित्र (स्वरूपं) अपने स्वरूप को (उपैति) प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—पंचेन्द्रिय विषय वाचनाओं में कर्कश प्रवृत्ति मानसिक पापक्रिया है। कर्कश, सावद्य, निन्दनीय असत्य वचनों में प्रवृत्ति वाचनिक पापक्रिया है। जीवघात आदि में प्रवृत्ति कायिक पापक्रिया है। इन मन, वचन, काय की पाप क्रियाओं का नाश होना ही चारित्र है ।।२।।

तत्सामायिकं छेदोपस्थापनं तद्द्वयात्मिका ।
परिहारर्द्धिः स्यात्सूक्ष्मसांपरायश्च संयमः ॥३॥

यथाख्यातमितीदानीमेषां रूप निरुप्यते ।
संसारगरलोदारलतोन्मूलनकारिणाम् ॥४॥युग्मम्॥

**अन्वयार्थ**—(तत्) वह चारित्र (सामायिकं) सामायिक (तद्वयायित्मका) उन दोनो के साथ (परिहारर्द्धिः) परिहारविशुद्धि (सूक्ष्मसापराय.) सूक्ष्मसाम्परायिक (च) और (यथाख्यातं) यथाख्यात (इति) इस प्रकार पाच का (संयम) संयम है (इदानीं) इस समय (मंसारगरलोदारलतोन्मूलनकारिणाम्) संसार रूपी विष की लता को मूल से उखाडने मे कारण (एषा) इन चारित्रो का (रूपं) स्वरूप (निरूप्यते) कहा जाता है ।

**भावार्थ**—सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापराय और यथाख्यात यह पाच प्रकार का चारित्र है । उसमे परिहारविशुद्धिसयम, सामायिक छेदोपस्थापना के साथ ही होता है और सामायिक, छेदोपस्थापना ये दोनो संयम एक साथ रहते हैं । सूक्ष्म सापराय और यथाख्यात यह अकेले रहते हैं । यह पाचो प्रकार के संयम संसार रूपी विष की बेल को उखाडने के लिए समर्थ है अर्थात् संसार का नाश चारित्र से ही होता है । आगे चारित्र के स्वरूप का निरूपण करते हैं ॥३,४॥

समभेदेन त्यागेनोऽयोऽयनं मतेः ।
समयः स एव चारित्रं सामायिकमुत्तमम् ॥५॥

**अन्वयार्थ**—(अभेदेन सम्) अर्थात् अभेद रूप (त्यागेन) त्याग से (मते.) मति का (अयनं) गमन (अय) अय है (समय) समय (स) वह (एव) ही (उत्तमं) उत्तम (सामायिकं) सामायिक (चारित्रं) चारित्र है ।

**भावार्थ**—सम् का अर्थ है अभेद रूप अर्थात् जिसमे हिंसा, झूठ चोरी आदि भेद रूप त्याग नही है उसको सम् कहते हैं । अभेदरूप त्याग से अयनं प्रवृत्ति हो उसे समय कहते है और अभेदरूप से सर्व सावद्य योग का त्याग करना उत्तम सामायिक चारित्र है । अथवा सम्पूर्ण संयमो का जिसमे अन्तर्भाव होता है उसको सामायिक चारित्र कहते हैं । वह सामायिक दो प्रकार का है । नियतकाल और अनियतकाल । स्वाध्याय आदि नियतकाल सामायिक है और ईर्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक है । यह सामायिक चरित्र हीं सर्वोत्कृष्ट चारित्र है ॥५॥

व्रतसमितिगुप्तिगैः पंचपंचत्रिभिर्मतेः ।
छेदैर्भेदैरुपात्यर्थं स्थापनं स्वस्थितिक्रिया ॥६॥

छेदोपस्थापनं प्रोक्तं सर्वसावद्यवर्जने ।
व्रतं हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मसंगेष्वसंगमः ॥७॥

**अन्वयार्थ**—(पंचपंचत्रिभि) पाच, पाच, तीन (व्रतममितिगुप्तगै) व्रत, समिति गुप्तिगत (छेदैं) छेदो के द्वारा (स्वस्थितिक्रिया) स्वस्थितिक्रिया (अर्थ) अर्थ (स्थापन) स्थापना को (उपाति) प्राप्त होता है वह (छेदोपस्थान) छेदोपस्थापना है (हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मसंगेषु) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह मे (असगमः) सगम रहित (सर्वसावद्यवर्जने) सर्व सावद्य प्रवृति नही होना (व्रत) व्रत (प्रोक्त) कहा है ।

**भावार्थ**—प्रमाद के वश से अहिंसा आदि व्रतो मे दूषण लग जाने पर आगमोक्त विधि से उस दोष का प्रायश्चित करके पुन. व्रतो का ग्रहण करना छेदोपस्थापना चारित्र है। व्रतो मे दोष लग जाने पर पक्ष, मास आदि दीक्षा का छेद (नाश) करके पुन व्रतो मे स्थापना करना अथवा सङ्कल्प और विकल्पो का त्याग करना भी छेदोपस्थापना चारित्र है। हिंसा असत्य, चोरी, मैथुनसेवन और और परिग्रहाभिलाष इनसे विरक्त होना व्रत है ।।७,८।।

### "हिंसा अहिंसा का स्वरूप और फल"

**हिंसाया हिंस्यतां हिंस्त्रः प्राप्नोति बहुजन्मसु ।**
**प्राणिहिंसात्महिंसैव सातस्त्याज्या हितैषिणा ।।८।।**

**अन्वयार्थ**—(हिंस्त्र) हिंसकप्राणी (बहुजन्मसु) बहुत जन्मो से (हिंसाया.) हिंसा के (हिंस्यता) हिंस्यता को (प्राप्नोति) प्राप्त होता है (प्राणिहिंसा) प्राणियो का घात करना (आत्महिंसा एव) आत्म हिंसा ही है (अत) इसलिए (हितैषिणा) हितवाच्छक पुरुषो के द्वारा (सा) वह (त्याज्या) छोडने योग्य है।

**भावार्थ**—जो दूसरे प्राणियो का घात करता है वह घातक अनेक योनियो मे दूसरो के द्वारा मारा जाता है, अनेक दुखो को भोगता है। क्योकि पर प्राणियो की हिंसा करना आत्महिंसा है इसलिए दु खभीरू ज्ञानियो को हिंसा करना छोड देना चाहिये ।।८।।

**कषायपरिणामः स्यात्प्राणिप्राणवियोजकः ।**
**हिंसाहिंसकपापानुबंधबन्धादिकारणम् ।।९।।**

**अन्वयार्थ**—(प्राणिप्राणवियोजक) प्राणियो के प्राणो का वियोजक (कषायपरिणाम.) कषाय परिणाम (हिंसाहिंसकपापानुबधबन्धादिकारण) हिंसा, हिंसक पापानुबध बन्धादि कारण (स्यात्) है।

**भावार्थ**—प्राणियो के प्राण विघातक कषाय परिणाम ही हिंसा, हिंसक, पाप के अनुबन्ध का कारण हैं अर्थात् प्राणियो के द्रव्य प्राणो का घात हो अथवा नही हो, परन्तु हमारे मारने के परिणाम हैं, वही कर्म बध के कारण हैं ।। ९ ।।

### उक्तं च सिद्धान्ते

**स्वयं ह्यहिंसा स्वयमेव हिंसनं न तत्पराधीनमिह द्वयं भवेत् ।**
**प्रमादहीनोऽत्र भवत्यहिंसकः प्रमादयुक्तस्तु सदैव हिंसकः ।१०।**

**अन्वयार्थ**—(स्वय) स्वय ही (अहिंसा) अहिंसा है (स्वय) स्वय (एव) ही (हिंसन) हिंसा है (हि) क्योकि (इह) इस लोक मे (तत्) वह (द्वय) हिंसा अहिंसा दोनो (पराधीन) पराधीन (न) नही है (अत्र) इसमे (प्रमादहीन) प्रमादहीन (अहिंसक.) अहिंसक (भवति) होता है (तु) और (प्रमादयुक्त) प्रमादयुक्त (सदा) हमेशा (हिंसक) हिंसक (एव) ही है।

**भावार्थ** इस जगत मे हिंसा और अहिंसा पराधीन नही है। स्वय ही प्राणी अपने परिणामो से हिंसक बनता है और अपने परिणामो से ही अहिंसक बनता है। क्योकि जो राग द्वेषादि प्रमाद युक्त भावो से रहित है वह अहिंसक और जो कषाद्यावमायो से युक्त है वह सदैव हिंसक है अर्थात् रागद्वेष की उत्पत्ति होना ही हिंसा है, और रागद्वेष का उत्पन्न नही होना अहिंसा है ।।१०।।

संरंभसमारभारंभैः कायवाङ्मनोयोगैः।
कृतकारितानुमतिभिः क्रोधाद्यैश्च कारणैः ॥११॥

पूर्वपूर्वैर्युतैः सर्वैं प्रत्येकं सोत्तरोत्तरैं।
स्यादुपर्युपर्यन्योन्याभ्यासेऽष्टोत्तरं शतम् ॥१२॥ युग्मम्॥

**अन्वयार्थ**—(सरभसमारभारभैः) सरंभ, समारभ, आरभ (कायवाङ्मनोयोगैः) काय, वचन, मनयोग (कृतकारितानुमतिभिः) कृत, कारित, अनुमोदना (च) और (क्रोधाद्यैः) क्रोधादि चार (कारणैः) कारणो से (प्रत्येक) प्रत्येक (पूर्वपूर्वैं) पूर्व पूर्व से (युतैः) युक्त (सर्वैः) सर्व (सोत्तरोत्तरैः) उत्तरोत्तर के साथ (उपर्युपरि) ऊपर २ से (अन्योन्याभ्यासे) परस्पर गुणा कर देने पर (अष्टोत्तर शतम्) १०८ भेद (स्यात्) होते है।

**भावार्थ**—सरभ, समारभ और आरंभ को मन वचन काय से गुणा करने से नौ भेद होते हैं। उन नौ भेदो से कृत, कारित, और अनुमोदना से गुणा करने से सत्ताईस भेद होते हैं। तथा इन सत्ताईस भेदों से चार कषायो को गुणा करने से १०८ भेद होते हैं। संरभ, समारंभ और आरभ=३ मन, वचन, काय=३×३=९ कृत, कारित, अनुमोदना ९×३=२७ क्रोध, मान, माया, लोभ=२७×४=१०८ ॥११,१२॥

| | | | |
|---|---|---|---|
| सरंभ<br>१ | समारभ<br>२ | आरंभ<br>३ | |
| मन<br>० | वचन<br>३ | काय<br>६ | |
| कृत<br>० | कारित<br>९ | अनुमोदना<br>१८ | |
| क्रोध<br>० | मान<br>२७ | माया<br>५४ | लोभ<br>८१ |

संरभो हिंसनोक्तत्वं हिंसोपकरणार्जनम्।
समारंभोऽगिघातादिः स्यादारंभो दयोज्झितः ॥१३॥

**अन्वयार्थ**—(हिंसनोक्तत्व) हिंसक प्रयत्न (सरभ) सरभ है। (हिंसोपकरणार्जनम्) हिंसा के उपकरणो का अर्जन (समारभ) समारंभ है। (दयोज्झित) दया रहित (अगिघातादि) प्राणियो का घातादि (आरम्भः) आरंभ (स्यात्) है।

**भावार्थ**—हिसा करने का प्रयत्न करना सरभ है। हिसा के उपकरणो का अर्जन करना सभारभ है। हिंसा के कार्यों मे प्रवृत्ति करना आरभ है ।।१३।।

**कायवाङ्मनसां कर्मयोगः स्वेन कृतं कृतम् ।**
**स्वप्रयुक्तान्यनिष्पन्नं हिंसन कारित मतम् ।।१४।।**

**अनुमतमनुज्ञातं कषायः कषतीत्यसौ ।**
**क्रोधो मानश्च माया स्याल्लोभ संयमदर्शने ।।१५।।**

**अन्वयार्थ**—(कायवाङ्मनसां) काय, वचन, मन की (कर्मयोगः) क्रिया को योग कहते है। (स्वेन) अपने द्वारा (कृत) किये हुए को (कृत) कृत (मत) माना है। (स्वप्रयुक्तान्यनिष्पन्न) स्व के द्वारा प्रेरित अन्य के द्वारा किया हुआ (हिंसन) हिसन (कारित) कारित (मतं) माना है। (अनुज्ञात) अनुमोदित हिंसा को (अनुमत) अनुमत कहते हैं। (सयमदर्शने) सयम और दर्शन को (कषति) नाश करती है दूषित करती है (इति) इसलिए (क्रोध.) क्रोध (मानः) मान (माया) माया (लोभ.) लोभ (कषाय·) कषाय (स्यात्) हैं।

**भावार्थ**—मन, वचन, काय से स्वत घात करना कृत हिंसा है। दूसरो से करवाना कारित, और करने की अनुमोदना करना अनुमोदित हिसा है। जो सयम और सम्यक्त्व का घात करती है, दूषित करती है, वह कषाय है। कषाय के क्रोध, मान, माया और लोभ चार भेद हैं ।।१४,१५।।

**परोपघातकृच्चेतो युक्तायुक्तेक्षणक्षयम् ।**
**क्रोधोंगकंपदाहाक्षिरागवैवर्ण्यलक्षणः ।।१६।।**

**अन्वयार्थ**—(युक्तायुक्तेक्षणक्षयम्) युक्तायुक्त विचार से रहित (परोपघातकृच्चेत·) दूसरे के घात की वृत्ति वाला (अगकपदाहाक्षिरागवैवर्ण्यलक्षण.) शरीर मे कम्पन, दाह, नेत्रो मे लालिमा, मुख की विवर्णता, लक्षण क्रोध हैं।

**भावार्थ**—दूसरे के घात करने के परिणाम होना, युक्तायुक्त के विचार से शून्य हृदय होना, अगकम्प, दाह, नेत्र की लालिमा आदि क्रोध के चिन्ह है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न उचित, अनुचित कार्य का विवेक नष्ट कर देने वाला, प्रज्वलनरूप आत्मा का परिणाम क्रोध कहलाता है। क्रोध का आवेश होते ही शारीरिक स्थिति परिवर्तित हो जाती है। १६।

**परुषेर्ष्यो मनो मानो निर्दयः परमर्दनः ।**
**स्वोन्नतानत्यहंकारः परासहनलक्षणः ।।१७।।**

**अन्वयार्थ**—(मनः) मन की (परुषेर्ष्यं) कठोरता, ईर्ष्या (निर्दय.) दया का अभाव (परमर्दन) दूसरो के मर्दन के भाव (स्वोन्नतानत्यहकार) अपने से बडो को नमस्कार नही करना, अहकार (परासहनलक्षण) दूसरो की उन्नति को सहन नही करना लक्षण (मान) मान है

**भावार्थ**—कुल, वल, ऐश्वर्य, बुद्धि, जाति, ज्ञान आदि किसी विशेषता का घमण्ड करना मान है। अभिमानी मनुष्य अपनी अहवृत्ति का पोषण करता है, उसे अपने से वढकर या अपनी वरावरी का गुणी कोई दीखता नही। मान= अपने किसी गुण पर झूठी अहवृत्ति, मद=अहभाव मे तन्मयता, दर्प=उत्तेजनापूर्ण अहभाव, स्तम्भ=अविनम्रता,

गर्व=अहकार, अत्युत्क्रोश=अपने को दूसरो से श्रेष्ठ कहना, परपरिवाद=परनिन्दा, उत्कर्ष=अपनी उन्नति प्रकट करना, अपकर्ष=दूसरो की हीनता प्रकट करना, उन्नत=दूसरो को तुच्छ समझना, उन्नतनाम=गुणी के सामने न झुकना, दुर्नाम=यथोचित रूप से न झुकना । ये सब मान की विभिन्न अवस्थाए हैं ॥१७॥

**नानाप्रतारणोपायैर्वंचनाऽऽकुलिता मतिः :**
**माया विनयविश्वासाऽऽभासचेतोहराकृतिः ॥१८॥**

**अन्वयार्थ**—(नानाप्रतारणोपायै ) नाना प्रकार के प्रतारण के उपायो द्वारा (वंचनाऽऽकुलिता) ठगने के लिए आकुलित (मति·) मति और (विनयविश्वासाऽऽभासचेतोहरा.) विनय, विश्वासाभास से चित्त को हरण करने के लिए (आकृति.) आकृति (माया) माया है ।

**भावार्थ**—कपटाचार माया कषाय है। शास्त्र मे इसके पन्द्रह रूप गिनाये हैं जो इस प्रकार हैं। माया=कपटाचार, उपाधि=ठगे जाने योग्य व्यक्ति के समीप जाने का विचार, निकृति=छलने के अभिप्राय से अधिक सम्मान करना, वलय=वक्रतापूर्ण वचन, गहन=ठगने के विचार से अत्यन्त गूढभाषण करना, नूम=ठगाई के उद्देश्य से निकृष्टतम कार्य करना, कल्क=दूसरे को हिंसा के लिए उभारना, कुरूप=निन्दित व्यवहार, जिह्लता=ठगाई के लिए कार्य मन्द करना, किल्विषिक=भाडो की भाति कुचेष्टा करना, आदरणता=अनिच्छित कार्य भी अपनाना, गूहनता=अपनी करतूत को छिपाने का प्रयत्न करना, वचकता=ठगी, प्रतिकु चनता=किसी के सरल रूप से कहे गये वचनो का खडन करना, सातियोग=उत्तम वस्तु मे हीन वस्तु मिश्रित करना यह सब माया की ही विभिन्न अवस्थाए हैं ॥१८॥

**परिग्रहग्रहातीवलाल संमानसं स्मृतः ।**
**लोभो लाभातिमोदात्तरक्षणार्त्तोपलक्षित ॥१९॥**

**अन्वयार्थ**—(परिग्रहग्रहातीवलालस) परिग्रह के ग्रहण मे अतीव लालायित (मानस) मानसिक भावना । और (लाभातिमोदात्तरक्षणार्त्तोपलक्षित ) परिग्रह के लाभ से अतिप्रसन्नता, ग्रहण किये हुए परिग्रह का रक्षण से उत्पन्न हुए आर्त्त ध्यान से उपलक्षित भाव (लोभ ) लोभ (स्मृत ) कहा गया है ।

**भावार्थ**—मोहनीय कर्म के उदय से चित्त मे उत्पन्न होने वाली तृष्णा या लालसा लोभ कहलाती है । लोभ की निम्नलिखित सोलह अवस्थाए होती है । लोभ=सग्रह करने की वृत्ति, इच्छा=अभिलाषा मूर्छा=तीव्रतम सग्रह-वृत्ति, काक्षा=प्राप्त करने की आशा, गृद्धि=प्राप्त वस्तु मे आसक्त होना, तृष्णा=जोडने की इच्छा, वितरण की विरोधीवृत्ति, मिथ्या=विषयो का ध्यान, अभिध्या=निश्चय से डिग जाना, आशसना=इष्टप्राप्ति की इच्छा करना, प्रार्थना=अर्थ आदि की याचना, लालपनता=चाटुकारिता कामाशा=काम की इच्छा भोगाशा=भोग्य पदार्थों की इच्छा, जीविताशा=जीवन की कामना, मरणाशा=मरने की कामना, नन्दिराग=प्राप्त सम्पत्ति मे अनुराग ॥१९॥

**दयामृतरसास्वाद मानसं स्यादहिंसनम् ।**
**जनतात्यन्तविश्रम्भमैत्रीस्वर्मोक्षकारणम् ॥२०॥**

**अन्वयार्थ**—(जनतात्यन्तविश्रम्भमैत्रीस्वर्मोक्षकारण) प्राणियो का अत्यन्त विश्वास, मैत्री, स्वर्ग और मोक्ष का कारण (दयामृतरसास्वाद) दयामृतरस के आस्वादात्मक (मानस) मानसिक प्रवृत्ति (अहिंसनम्) अहिंसा (स्यात्) है ।
**भावार्थ**—प्राणियो के अत्यन्त विश्वास का कारण मैत्री भाव, कारक, स्वर्ग मोक्ष का देने वाला, दयामृत के रस का आस्वादक ऐसी मानसिक प्रवृत्ति अहिंसा है ॥२०॥

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपसमितीर्विदुः ।
युक्ताः शुद्धेक्षितान्नादिभुक्त्याऽहिंसनभावनाः ॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(शुद्धेक्षितान्नादिभुक्त्या) शुद्ध आलोकित अन्नादि से (युक्तः) युक्त (वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपसमितिः) वचन गुप्ति, मनगुप्ति, ईर्या समिति, आदाननिक्षेपसमिति (अहिंसाभावना) अहिंसा व्रत की भावना (विदु) कही है।

**भावार्थ**—वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपानभोजन ये अहिंसाव्रत की पाच भावनाए है। वचन को वश मे रखना वचनगुप्ति और मन को वश मे रखना मनोगुप्ति है। चार हाथ जमीन देखकर चलना ईर्यासमिति है। भूमि को देख और शोधकर किसी वस्तु को रखना या उठाना आदान निक्षेपण समिति है। सूर्य के प्रकाश मे देखकर खाना और पीना आलोकितपानभोजन है ॥२१॥

वच· सत्यमसत्यं वा स्मृतं जीवाहितोहितम् ।
जिह्वाच्छेदादिसर्वस्वहारैनोहेतुरात्मनः ॥२२॥

**अन्वयार्थ**—(आत्मनः) आत्मा के (जिह्वाच्छेदादिसर्वस्वहारैनोहेतु) जिह्वाच्छेदादि, सर्वस्वहरण और पाप कारणभूत (सत्य) सत्य (वा) अथवा (असत्य) असत्य (वच) वचन वह (जीवाहितेहितं) जीव को अहितकारी (स्मृत) कहा गया है।

**भावार्थ**—जो आत्मा के जिह्वाच्छेद, सर्वस्वहरण का कारण है, पाप का बीज है, वह सत्य वा असत्य वचन जीवो के अहितकारी कहे हैं। अर्थात् सत्य वचन भी सावद्य युक्त हो, आत्मा का अहितकारी हो तो असत्य ही है ॥२२॥

कृतं सत्यमसत्यं वा वचः प्राणिहितेहितम् ।
येन सन्मानविश्वासयशांसि लभते नरः ॥२३॥

**अन्वयार्थ**—(येन) जिस वचन से (नर) मानव (सन्मानविश्वासयशासि) सन्मान, विश्वास और यश को (लभते) प्राप्त करता है वह (सत्य) सत्य (वा) अथवा (असत्य) असत्य (वच) वचन (प्राणिहितोहितम्) प्राणियो के हित के लिए (कृतं) है।

**भावार्थ**—जिन वचनो से मानव सन्मान, विश्वास और यश को प्राप्त करता है। वह सत्य वा असत्य वचन प्राणियो के हितकारी कहे हैं। अर्थात् जो वचन आत्महितकारी है, रागद्वेष रहित है वह असत्यवचन भी सत्य हैं जैसे गुरुओ की धर्मानुराग से की हुई विशिष्ट स्तुति। अरतिकारण, वैर कलह का कारक सत्य वचन भी असत्य है। जैसे अंधे को अंधी कहना असत्य है ॥२३॥

तन्नामस्थापनारूपभावसंवृतिदेशगम् ।
संयोजनाजनपद प्रतीत्यसमयाश्रितम् ॥२४॥

सभावनोपमात्रं चेत्यादि सत्यमनेकधा ।
सोदाहरणमत्रैषां लक्षण वक्ष्यतेऽधुना ॥२५॥

**अन्वयार्थ**—(तत्) वह (सत्य) सत्य (नामस्थापनारूपभावसंवृतिदेशजम्) नाम, स्थापना, रूप, भाव, संवृति, देशज (संयोजनाजनपदप्रतीत्यसमयाश्रितम्) संयोजना, जनपद, प्रतीत्य, समय, आश्रित (संभावना) संभावना (च) और (उपमात्र) उपमा (इत्यादि) इत्यादि (सत्य) सत्य (अनेकधा) अनेक प्रकार का है। (अत्र) यहां पर (एषा) इन सत्यो का (सोदाहरण) उदाहरण सहित (लक्षण) लक्षण (अधुना) इस समय (वक्ष्यते) कहा जाता है।

**भावार्थ**—नामसत्य, स्थापनासत्य, रूपसत्य, भावसत्य संवृतिसत्य, देशजसत्य, संयोजनासत्य, जनपदसत्य, प्रतीत्यसत्य, समयसत्य, आश्रितसत्य, उपमासत्य इत्यादि अनेक प्रकार के सत्य के भेद हैं। यहाँ पर उन भेदो का वर्णन करते हैं।। २४-२५ ।।

**व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थमर्थाभावोऽपि लौकिकैः।**
**कृतं नाम मतं नामसत्यं चन्द्रादिवन्नृषु ।।२६।।**

**अन्वयार्थ**—(अर्थाभावोऽपि) अर्थ का अभाव होने पर भी (व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं) व्यवहार की प्रसिद्धि के लिये (लौकिकैः) लौकिक जनो के द्वारा (कृत) किया हुआ (नाम) नाम (नामसत्य) नामसत्य (मत) माना है (नृषु) मनुष्यो मे (चन्द्रादिवत्) चन्द्रादि नाम के समान।

**भावार्थ**—अर्थ का अभाव होने पर भी व्यवहार की सिद्धि के लिये लौकिक पुरुषो के द्वारा किया हुआ नाम नामसत्य है। जैसे किसी मनुष्य का नाम चन्द्रराज रख दिया। यद्यपि उसमे चन्द्रमा का गुण नही है, फिरभी नाम रूप से सत्य है। क्योकि चन्द्रराज नाम से लोकव्यवहार होता है यह नाम सत्य है। २६।

**धर्मोऽन्यवस्तुनः स्थाप्यतेऽन्यस्मिन्ननुरूपिणि।**
**अन्यस्मिन्वा यया मत्या स्थापना सा तया वचः ।।२७।।**

**सत्यं स्यात्स्थापनासत्य प्रतिविंबाक्षतादिषु।**
**चन्द्रप्रभजिनेन्द्रोऽयमित्यादि वचन यथा ।।२८।।**

**अन्वयार्थ**—(यया) जिस (मत्या) मति से (अन्यवस्तुनः) अन्यवस्तु का (धर्मः) धर्म (अनुरूपिणि) अनुरूपिणी (अन्यस्मिन्) अन्य वस्तु मे, (वा) अथवा (अन्यस्मिन्) अतदाकार वस्तु मे (स्थाप्येत) स्थापित किया जाता है (स.) वह (स्थापना) स्थापना है (तया) उस स्थापना के द्वारा (वच) वचन की (सत्य) सत्यता (स्थापनासत्यं) स्थापनासत्य (स्यात्) है (यथा) जैसे (प्रतिविंबाक्षतादिषु) प्रतिबिम्ब और अक्षतादि मे (अय) वह (चन्द्रप्रभजिनेन्द्र) चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र हैं (इत्यादि) इत्यादि (वचन) वचन है।

**भावार्थ**—जिस बुद्धि से किसी अन्य वस्तु का धर्म, तदाकार अथवा अतदाकार अन्य वस्तु मे आरोपण किया जाता है वह स्थापना सत्य है। अथवा किसी वस्तु मे उससे भिन्न वस्तु के साथ सम्बन्ध करने वाला स्थापना सत्य है। जैसे चन्द्रप्रभभगवान आदि की प्रतिमा मे यह चन्द्रप्रभ है यह तदाकार स्थापना सत्य हैं और अक्षत आदि मे यह चन्द्रप्रभ हैं, ऐसा कहना अतदाकार स्थापना सत्य है ।।२७-२८।।

**रूप्यते दृश्यते प्रायो यत्तद्रूपं तदर्पणम्।**
**रुपसत्यं वचः श्वेता बलाकेत्यादिकं यथा ।।२९।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (प्राय) प्राय (रूप्यते) बहुलता से (दृश्यते) देखा जाता है (तत्) वह (रूपं) रूप है

(तदर्पण) उसमे अर्पणकारी (वचः) वचन (रूपसत्यं) रूपसत्य हैं। (यथा) जैसे (श्वेता) श्वेत (बलाका) बलाका (इत्यादिक) इत्यादि शब्द।

**भावार्थ**—जो चक्षुइन्द्रिय के द्वारा देखा जाता है वह रूप सत्य है। जैसे बगुले श्वेत हैं ॥२९॥

**छद्मस्थज्ञानिनो वस्तुयाथाऽत्म्यादर्शनेऽप्यलम्।**
**दृष्टदोषोपहारेण गुणपोषणकृन्मनः ॥३०॥**

**भावस्तेन वचः सत्यं भावसत्यमिदं पयः।**
**प्रासुकं नेदमित्यादि वचो वा वृत्तिगोचरम् ॥३१॥ (युग्मं)**

**अन्वयार्थ**—(वस्तुयाथाऽत्म्यादर्शनेऽप्यलम्) वस्तु के याथात्म्य के अदर्शन मे (अपि) भी (छद्मस्थज्ञानिन) छद्मस्थज्ञानी के (दृष्टदोषोपहारेण) दृष्ट दोष के उपहार मे (गुणपोषणकृन्मन.) गुणो को पुष्ट करने वाला जो मन है वह (भावः) भाव है (तेन) उस भाव के द्वारा (वच) वचन की (सत्यं) सत्यता है (भावसत्यं) वह भाव सत्य है जैसे (इद) यह (पय.) दूध (प्रासुक) प्रासुक है (इद) यह (न) प्रासुक नही है (इत्यादि) इत्यादि (वृत्तिगोचरं) वृत्तिगोचर (वच) वचन भाव सत्य है ॥३०-३१॥

**भावार्थ**- आगमोक्त विधि निषेध के अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थो मे सकल्पित परिणामों को भाव कहते हैं। उसके आश्रित जो वचन हो उसको भावसत्य कहते हैं। जैसे शुष्क, पक्व, तप्त और नमक, मिर्च, खटाई आदि से अच्छी तरह मिलाया हुआ द्रव्य प्रासुक होता है। यहा पर यद्यपि सूक्ष्म जीवो को इन्द्रियो से देख नही सकते तथापि आगम प्रामाण्य से उसकी प्रासुकता का वर्णन किया जाता है। इसलिये इसही तरह के पापवर्जन वचन को भावसत्य कहते हैं ॥३०-३१॥

**या सा सर्वानुमत्या वाक् ख्याता संवृत्तिसत्यवाक्।**
**कारणान्तरजत्वेऽपि पंकेजमिति वाग्यथा ॥३२॥**

**अन्वयार्थ**-(या) जो (सर्वानुमत्या) सबकी अनुमति मे (वाक्) वचन (ख्याता) कहे जाते हैं (सा) वह (सवृतिसत्यवाक्) सवृतिसत्यवचन है (यथा) जैसे (कारणान्तरजत्वे) कारणान्तर से उत्पन्न होने पर (अपि) भी कमल को (पकज) पकज कहना।

**भावार्थ**—जो वचन सर्वसज्जनो की अनुमति से कहे जाते हैं वह संवृति सत्य वचन है जैसे अनेक कारणो से उत्पन्न होने पर भी कमल को "पंकज" कहना सवृति सत्य है ॥३२॥

**सर्वदेशैकवाग्देशसत्यमोदनपाकवाक्।**
**यथा वृत्यावृतो ग्राम इति ग्रामादिवर्णनम् ॥३३॥**

**अन्वयार्थ**—(सर्वदेशैकवक्) सर्वदेश के एक वचन (देशसत्य) देश सत्य है (यथा) जैसे (ओदनपाकवाक्) ओदन पाक वचन (वृत्यावृतग्राम.) वृत्यावृत ग्राम (इति) इस प्रकार (ग्रामादिवर्णनम्) ग्रामादि का वर्णन।

**भावार्थ**—जिस देश वासी मनुष्यो के व्यवहार मे जो शब्द रूढ हो रहा है, उसको देश सत्य कहते हैं। जैसे— भक्त, भात, भाटु, भेडु, चटक, कूकुर, कूर, चोर आदि भिन्न भिन्न शब्दो मे एक ही वस्तु कही जाती है, अथवा किसी देश में ग्राम को वृत्ति करते हैं, कोई वृत्या कहते हैं, यह सब जनपद सत्य हैं ॥३३॥

सेनौषधादिविन्यासविभागक्रमवर्णना।
वाणी संयोजना चक्रव्यूहैलाद्यादिवाग्यथा ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(सेनौषधादिविन्यासविभागक्रमवर्णना) सेना औषधि आदि विन्यास विभाग क्रम की वर्णन करने वाली (वाणी) वाणी (सयोजना) सयोजनासत्य है (यथा) जैसे (चक्रव्यूहैलाद्यादिवाग्यथा) चक्रव्यूह, एलादिचूर्ण आदि वचन।

**भावार्थ**—जो बहुत सी वस्तु का सयोग करने पर नाम होता है उसको संयोजना सत्य कहते है जैसे सेना के समूह की रचना को चक्रव्यूह कहते हैं। और इलायची आदि बहुत सी वस्तुओ का मिश्रण करके जो औषधि तैयार होती है, उसको एलादि चूर्ण कहते हैं यह सयोजना सत्य है ॥३४॥

नानाजनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु यद्वचः।
धर्मार्थकाममोक्षादिस्वरुपोपायदेशकम् ॥३५॥

प्रत्येकं नियतं सत्यं स्यात्तज्जनपदाश्रयम्।
धर्मोदयात्मका राजा राणेत्यादिवचो यथा ॥३६॥

**अन्वयार्थ**—(आर्यानार्यभेदेषु) आर्य, अनार्य भेद वाले (नानाजनपदेषु) नाना जनपदो मे (धर्मार्थकाममोक्षादिस्वरुपोपायदेशकम्) धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि स्वरूप के उपाय के उपदेशक (प्रत्येक) प्रत्येक मे (नियतं) नियत (यत्) जो (वच) वचन है (तत्) वह (जनपदाश्रय) जनपदाश्रय (सत्यं) सत्य (स्यात्) हैं। (यथा) जैसे (धर्मोदयात्मका) धर्मोदयात्मक (राजा) राजा (राणा) राणा (इत्यादिवच) इत्यादि वचन।

**भावार्थ**—अनार्य और आर्य के भेद से भाषा दो प्रकार की है। उसमे जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष पुरुषार्थ के उपदेशात्मक वचन प्रत्येक पदार्थ मे नियत हैं उसको जनपदाश्रय सत्य कहते हैं। जैसे धर्म, अधर्म, काल, आकाशादि वा राजा राणादि वचन जनपद सत्य हैं ॥३५-३६॥

कञ्चनार्थं प्रतीत्यान्यस्वरूपान्तरभाषणम्।
प्रतीत्यसत्यं वीरोऽयं ज्ञानीत्यादिवचो यथा ॥३७॥

**अन्वयार्थ**—(कंचनार्थ) किसी अर्थ की (प्रतीत्य) प्रतीति का (अन्यस्वरुपान्तरभाषण) अन्यस्वरूपान्तर मे भाषण करना (प्रतीत्यसत्य) प्रतीति सत्य है (यथा) जैसे (अयं) यह (वीरः) वीर है (ज्ञानी) ज्ञानी है (इत्यादि वच) इत्यादि वचन।

**भावार्थ**—किसी विवक्षित पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थ के स्वरूप का कथन करना प्रतीत्य सत्य है। जैसे किसी वीर की अपेक्षा से किसी को वीर वा ज्ञानी कहना। अथवा किसी छोटे वा पतले पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थो को बडा, लम्बा वा स्थूल कहना। इसका दूसरा नाम आपेक्षिक सत्य भी है ॥३७॥

सिद्धान्तः समयस्तेन प्रसिद्धान्तप्ररुपणम्।
वचः समयसत्यं स्यात्प्रमाणनयसंश्रयम् ॥३८॥

**अन्वयार्थ**—(सिद्धान्त.) सिद्धान्त (समय.) समय है (तेन) उस सिद्धान्त से (प्रमाणनयसंश्रयम्) प्रमाण

(तदर्पण) उसमे अर्पणकारी (वच:) वचन (रूपसत्यं) रूपसत्य हैं। (यथा) जैसे (श्वेता) श्वेत (वलाका) वलाका (इत्यादिक) इत्यादि शब्द।

**भावार्थ**—जो चक्षुइन्द्रिय के द्वारा देखा जाता है वह रूप सत्य है। जैसे बगुले श्वेत हैं ॥२९॥

**छद्मस्थज्ञानिनो वस्तुयाथाऽत्म्यादर्शनेऽप्यलम्।**
**दृष्टदोषोपहारेण गुणपोषणकृन्मनः ॥३०॥**

**भावस्तेन वचः सत्य भावसत्यमिदं पयः।**
**प्रासुकं नेदमित्यादि वचो वा वृत्तिगोचरम् ॥३१॥ (युग्मं)**

**अन्वयार्थ**—(वस्तुयाथाऽत्म्यादर्शनेऽप्यलम्) वस्तु के याथात्म्य के अदर्शन मे (अपि) भी (छद्मस्थज्ञानिन) छद्मस्थज्ञानी के (दृष्टदोषोपहारेण) दृष्ट दोष के उपहार मे (गुणपोषणकृन्मन) गुणो को पुष्ट करने वाला जो मन है वह (भाव) भाव है (तेन) उस भाव के द्वारा (वच:) वचन की (सत्यं) सत्यता है (भावसत्यं) वह भाव सत्य है जैसे (इद) यह (पय:) दूध (प्रासुक) प्रासुक है (इदं) यह (न) प्रासुक नही है (इत्यादि) इत्यादि (वृत्तिगोचरं) वृत्तिगोचर (वच) वचन भाव सत्य है ॥३०-३१॥

**भावार्थ**- आगमोक्त विधि निषेध के अनुसार अतीन्द्रिय पदार्थो मे सकल्पित परिणामों को भाव कहते हैं। उसके आश्रित जो वचन हो उसको भावसत्य कहते हैं। जैसे शुष्क, पक्व, तप्त और नमक, मिर्च, खटाई आदि से अच्छी तरह मिलाया हुआ द्रव्य प्रासुक होता है। यहा पर यद्यपि सूक्ष्म जीवो को इन्द्रियो से देख नही सकते तथापि आगम प्रामाण्य से उसकी प्रासुकता का वर्णन किया जाता है। इसलिये इसही तरह के पापवर्जन वचन को भावसत्य कहते हैं ॥३०-३१॥

**या सा सर्वानुमत्या वाक् ख्याता संवृत्तिसत्यवाक्।**
**कारणान्तरजत्वेऽपि पकेजमिति वाग्यथा ॥३२॥**

**अन्वयार्थ**-(या) जो (सर्वानुमत्या) सबकी अनुमति से (वाक्) वचन (ख्याता) कहे जाते हैं (सा) वह (सवृतिसत्यवाक्) सवृतिसत्यवचन है (यथा) जैसे (कारणान्तरजत्वे) कारणान्तर से उत्पन्न होने पर (अपि) भी कमल को (पकज) पकज कहना।

**भावार्थ**—जो वचन सर्वसज्जनो की अनुमति से कहे जाते हैं वह संवृति सत्य वचन है जैसे अनेक कारणो से उत्पन्न होने पर भी कमल को 'पकज" कहना सवृति सत्य है ॥३२॥

**सर्वदेशैकवाग्देशसत्यमोदनपाकवाक्।**
**यथा वृत्यावृतो ग्राम इति ग्रामादिवर्णनम् ॥३३॥**

**अन्वयार्थ**-(सर्वदेशैकवक्) सर्वदेश के एक वचन (देशसत्य) देश सत्य है (यथा) जैसे (ओदनपाकवाक्) ओदन पाक वचन (वृत्यावृतग्राम.) वृत्यावृत ग्राम (इति) इस प्रकार (ग्रामादिवर्णनम्) ग्रामादि का वर्णन।

**भावार्थ**—जिस देश वासी मनुष्यो के व्यवहार मे जो शब्द रूढ हो रहा है, उसको देश सत्य कहते हैं। जैसे—भक्त, भात, भाट्ट, भेट्ट, वटक, मूकुड, कूलू, चोरु आदि भिन्न भिन्न शब्दो से एक ही वस्तु कही जाती है, अथवा किसी देश मे ग्राम को वृति कहते हैं, कोई वृत्या कहते हैं, यह सब जनपद सत्य हैं ॥३३॥

सेनौषधादिविन्यासविभागक्रमवर्णना।
वाणी संयोजना चक्रव्यूहैलाद्यादिवाग्यथा ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(सेनौषधादिविन्यासविभागक्रमवर्णना) सेना औषधि आदि विन्यास विभाग क्रम की वर्णन करने वाली (वाणी) वाणी (सयोजना) सयोजनासत्य है (यथा) जैसे (चक्रव्यूहैलाद्यादिवाग्यथा) चक्रव्यूह, एलादिचूर्ण आदि वचन।

**भावार्थ**—जो बहुत सी वस्तु का सयोग करने पर नाम होता है उसको संयोजना सत्य कहते हैं जैसे सेना के समूह की रचना को चकव्यूह कहते हैं। और इलायची आदि बहुत सी वस्तुओं का मिश्रण करके जो औषधि तैयार होती है, उसको एलादि चूर्ण कहते हैं यह सयोजना सत्य है ॥३४॥

नानाजनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु यद्वचः।
धर्मार्थकाममोक्षादिस्वरुपोपायदेशकम् ॥३५॥

प्रत्येकं नियतं सत्यं स्यात्तज्जनपदाश्रयम्।
धर्मोदयात्मका राजा राणेत्यादिवचो यथा ॥३६॥

**अन्वयार्थ**—(आर्यानार्यभेदेषु) आर्य, अनार्य भेद वाले (नानाजनपदेषु) नाना जनपदो मे (धर्मार्थकाममोक्षादिस्वरुपोपायदेशकम्) धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि स्वरूप के उपाय के उपदेशक (प्रत्येक) प्रत्येक मे (नियतं) नियत (यत्) जो (वच) वचन है (तत्) वह (जनपदाश्रय) जनपदाश्रय (सत्यं) सत्य (स्यात्) हैं। (यथा) जैसे (धर्मोदयात्मका) धर्मोदयात्मक (राजा) राजा (राणा) राणा (इत्यादिवच) इत्यादि वचन।

**भावार्थ**—अनार्य और आर्य के भेद से भाषा दो प्रकार की है। उसमे जो धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष पुरुषार्थ के उपदेशात्मक वचन प्रत्येक पदार्थ मे नियत हैं उसको जनपदाश्रय सत्य कहते है। जैसे धर्म, अधर्म, काल, आकाशादि वा राजा राणादि वचन जनपद सत्य हैं ॥३५-३६॥

कञ्चनार्थं प्रतीत्यान्यस्वरूपान्तरभाषणम्।
प्रतीत्यसत्यं वीरोऽयं ज्ञानीत्यादिवचो यथा ॥३७॥

**अन्वयार्थ**—(कंचनार्थ) किसी अर्थ की (प्रतीत्य) प्रतीति का (अन्यस्वरुपान्तरभाषण) अन्यस्वरुपान्तर से भाषण करना (प्रतीत्यसत्य) प्रतीति सत्य है (यथा) जैसे (अय) यह (वीरः) वीर है (ज्ञानी) ज्ञानी है (इत्यादि वच.) इत्यादि वचन।

**भावार्थ**—किसी विवक्षित पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थ के स्वरूप का कथन करना प्रतीत्य सत्य है। जैसे किसी वीर की अपेक्षा से किसी को वीर वा ज्ञानी कहना। अथवा किसी छोटे वा पतले पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थों को बडा, लम्बा वा स्थूल कहना। इसका दूसरा नाम आपेक्षिक सत्य भी है ॥३७॥

सिद्धान्तः समयस्तेन प्रसिद्धान्तप्ररुपणम्।
वचः समयसत्यं स्यात्प्रमाणनयसंश्रयम् ॥३८॥

**अन्वयार्थ**—(सिद्धान्त.) सिद्धान्त (समय.) समय है (तेन) उस सिद्धान्त मे (प्रमाणनयसंश्रयम्) प्रमाण

और नय के आश्रित (प्रसिद्धान्तप्ररूपणम्) सिद्धान्त की प्ररूपणा करने वाले (वच.) वचन (समयसत्य) समय सत्य है।

**भावार्थ**—प्रमाण और नय के द्वारा सिद्धान्त की प्ररूपणा करना समय सत्य है। जैसे निश्चय नय की अपेक्षा आत्मा अजर अमर है, और व्यवहार नय की अपेक्षा मरता है जन्मता है - यह दोनो ही कथन नय विवक्षा से सत्य हैं क्योकि समय मे ऐसा कथन है इसलिए यह समय सत्य है ॥३८॥

**संभावनेति सोक्ता वाग्वस्तुसद्भावभावना।**
**शक्रः शक्नोति तर्जन्योद्धर्तुं मेरुमपीति वा ॥३९॥**

**अन्वयार्थ**—(वस्तुसद्भावभावना) वस्तु के सद्भाव की सभावना का जो (वाग्) वचन है (सा) उसको (सभावनेति) सभावना सत्य (उक्ता) कहा है (वा) जैसे (शक्रः) इन्द्र (तर्जन्या) अपनी तर्जनी अंगुली से (मेरु) मेरु को (अपि) भी (उद्धर्तुं) उठाने के लिए (शक्नोति) समर्थ है (इति) इत्यादि वचन।

**भावार्थ**—असभवता का परिहार करते हुए किसी वस्तु के किसी धर्म का निरूपण करने मे प्रवृत्त वचन को सभावना कहते हैं। जैसे इन्द्र अपनी तर्जनी अगुली से मेरु को उठाने मे समर्थ है। यद्यपि इन्द्र ने कभी भी मेरु को नही उठाया है तथापि उसकी शक्ति का संभावना की अपेक्षा ऐसा कहना सभावना सत्य है ॥३९॥

**उपमोपमयाऽगुण्यगुण्यादेः परिवर्णना।**
**आयुः पल्योपमं ग्रीष्मो वह्निरित्यादि वाग्यथा ॥४०॥**

**अन्वयार्थ**—(अगुण्यगुण्यादेः) अगुण्य गुण्यादि की (उपमया) उपमा के द्वारा (परिवर्णना) वर्णन करना (उपमा) उपमा सत्य है (यथा) जैसे (आयुः) आयु (पल्योपम) पल्योपम है (वह्नि) अग्नि (ग्रीष्मः) ग्रीष्म है (इत्यादि) इत्यादि (वाग्) वचन।

**भावार्थ**—दूसरे प्रसिद्ध वा सदृश पदार्थ को उपमा कहते हैं। उपमा के आश्रय से जो वचन बोला जाता है, उसको उपमा सत्य कहते हैं जैसे आयु पल्योपम है इसमे रोम खण्डो का आधारभूत गड्ढा पल्य अर्थात् खास के सदृश होता है इसलिये इसको पल्य कहते हैं। अग्नि ग्रीष्म ऋतु के समान उष्ण है इसलिये इसमे ग्रीष्म की उपमा दी जाती है यह उपमा सत्य है ॥४०॥

**क्रोधभयलोभहास्यत्यागाः सत्यस्य भावनाः।**
**अनुवीची वचश्चेदमागमोचितभाषणम् ॥४१॥**

**अन्वयार्थ**—(क्रोधभयलोभहास्यत्यागा सत्यस्य भावना.) क्रोध, भय, लोभ और हास्य का त्याग (आगमोचितभाषणम्) आगम के अनुसार भाषण (अनुवीची) अनुवीची (वच.) वचन है (इद) यह (सत्यस्य) सत्यव्रत की (भावना) भावना है।

**भावार्थ**—शास्त्र के अनुसार वचन बोलना अनुवीची भाषण है। क्रोधप्रत्याख्यान, लोभ प्रत्याख्यान भीरुप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान, अनुवीचिभाषण, ये सत्यव्रत की पाच भावना हैं ॥४१॥

**परैरदत्तस्याऽऽदाने मनः स्तेयं यदेनसाम्।**
**हेतुरत्राऽपि चौरस्य बधबन्धादिदुःखदम् ॥४२॥**

**अन्वयार्थ**—(परै ) दूसरो के द्वारा (अदत्तस्य) अदत्त के (आदाने) ग्रहण मे (यत्) जो (मनः) मानसिक भावना है (तत्) वह (एनसा) पाप का (हेतु ) कारण (स्तेय) स्तेय है। (अत्र) इस भव मे (अपि) भी (चौरस्य) चोर को (बधबन्धादिदुखद) बधबन्धनादि दुख को देने वाला है।

**भावार्थ**—दूसरे की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने के भाव को स्तेय (चोरी) कहते है यह स्तेय पाप का पाप का कारण है और इस भव मे चोर को बध बन्धनादि दुख को देने वाला है ।।४२।।

**स्तेयवर्जनमस्तेयं हेतुः स्वर्गापवर्गयोः ।**
**जनता येन विश्वासप्रीतिख्यातिसुखास्पदम् ।।४३।।**

**अन्वयार्थ**—(स्तेयवर्जन) स्तेय का त्याग करना (स्वर्गापवर्गयो ) स्वर्ग और मोक्ष का (हेतु) कारण (अस्तेय) अस्तेय है (येन) जिससे (जनता) जनता (विश्वासप्रीतिख्यातिसुखास्पदं) विश्वास, प्रीति, ख्याति और सुखका भाजन होती है।

**भावार्थ**—चोरी का त्याग करना स्वर्गमोक्ष का कारण अचौर्य व्रत है। यह अचौर्यव्रत जनता के विश्वास, प्रीति, ख्याति और सुख का कारण हैं ।।४३ ।।

**याञ्चाऽनुज्ञापना पत्युरात्तानात्मीयभावनाः ।**
**योग्याऽन्याऽग्राह्यस्यादानमविवादः सधर्मिभिः ।।४४।।**

**इत्यस्तेयव्रते पच भावनाः कन्दरादिषु ।**
**स्वभावशून्येष्वावासो मुक्तामोचितसद्मसु ।।४५।।**

**परोपरोधाकरणं भैक्ष्यशुद्धिः सधर्मिभिः ।**
**सहाविवाद इत्येवमथ वा पच भावना ।।४६।। (त्रिकम्)**

**अन्वयार्थ**—(पत्युः) स्वामी से (याचा) याचना करके लेना (अनुज्ञापना) अनुज्ञापन करके लेना (आत्तानात्मीयभावना) स्वीकृत वस्तु मे आत्मीय भावना का अभाव (योग्यान्याग्राह्यस्य) योग्य दूसरे के अग्राह्य पदार्थ का (आदान) ग्रहण करना (सधर्मिभि ) साधर्मियो के साथ (अविवाद ) विवाद नही करना इति) इस प्रकार (अस्तेयव्रते) अस्तेयव्रत की (पचभावना ) पाँच भावना हैं। (अथवा) अथवा (स्वभावशून्येषु) स्वभाव से शून्य (कन्दरादि) कन्दरा आदि मे (मुक्तामोचित-सद्मसु) मुक्त और मोचित घरो मे (आवास ) आवास करना (परोपरोधाकरण) दूसरो को वाधा नही करना (भैक्ष्यशुद्धि ) भिक्षा की शुद्धि (सधर्मिभि ) साधर्मियो के (सह) साथ (अविवाद ) विवाद नही करना (इति, इस प्रकार (पचभावना ) ये अचौर्यव्रत की पाँच भावना हैं।

**भावार्थ**—स्वामी से याचना कर लेना, अनुज्ञापालन कर लेना, स्वीकृत वस्तु मे आत्मीय भावना का अभाव, दूसरे के योग्य अग्राह्य को ग्रहण करना, साधर्मियो के साथ विवाद नही करना, इस प्रकार अस्तेयव्रत की पांच भावना हैं। अथवा पर्वत, गुफा, वृक्षकोटर, नदीतट आदि निर्जन स्थानो मे निवास करना, शून्यागारावास है। दूसरो के द्वारा छोडे हुये स्थानो मे रहना विमोचितावास है। दूसरो का उपरोध नही करना अर्थात् अपने स्थान मे ठहरने से नही रोकना परोपरोधाकरण है। आचारशास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि करना भैक्ष्य शुद्धि है और सहधर्मी भाइयो से कलह नही करना सधर्मा विसंवाद है। इस प्रकार अचौर्यव्रत की ये पाँच भावना है ।।४४-४५-४६।।

**वेदतीव्रोदयात्कर्म मैथुनं मिथुनस्य यत् ।**
**तदब्रह्मापदामेकं पदं सद्‌गुणलोपनम् ।।४७।।**

**अन्वयार्थ**—(वेदतीव्रोदयात्) वेदकर्म के तीव्र उदय से (यत्) जो (मियुनस्य) मिथुन का (कर्म) कर्म (मैथुनं) मैथुन है (तत्) वह (आपदा) आपत्तियो का (एक) एक (पदं) स्थान (सद्‌गुणलोपन) सद्‌गुणो का घातक (अब्रह्म) अब्रह्म है ।

**भावार्थ**—तीव्र वेदकर्म के उदय से जो मिथुन का कर्म है वह मैथुन है। उसको ही अब्रह्म कहते हैं। वह अब्रह्म (कुशील) सद्‌गुणो का घातक और आपत्तियो का स्थान है ।।४७।।

**येन बद्धा महादेहा रदिनो मदिनोऽप्यलम् ।**
**करेणुवशगाः क्लेशमाप्नुवन्त्यवशा नरैः ।।४८।।**

**अन्वयार्थ**—(येन) जिस अब्रह्म से (मदिनः) मद करने वाले (महादेहा) महान शरीर के धारी (रदिन) हाथी (करेणुवशगाः) हथिनी के वशीभूत होकर (बद्धा) बन्धते हैं और (अवशा.) पराधीन होकर (नरैः) मनुष्यो के द्वारा (क्लेश) क्लेश को (आप्नुवन्ति) प्राप्त होते हैं ।

**भावार्थ**—जगत मे मैथुन के प्रभाव से मदोन्मत्त, स्वच्छन्द विचरने वाले, महाशरीर धारी, हाथी भी हथिनी के वशीभूत होकर गढ्ढे मे गिर जाते हैं, और परवश होकर क्लेश भोगते हैं ।।४८।।

**यच्चैवं जनतामान्यबलिनां गुणशालिनाम् ।**
**निदानं मानहान्यादिक्लेशानामिह देहिनाम् ।।४९।।**

**अन्वयार्थ**—(च) और (एवं) इस प्रकार (यत्) जो (इह) इसलोक मे (जनतामान्यबलिनां) जनता मे मान्य बलशाली (गुणशालिना) गुणशाली (देहिना) प्राणियो के (मानहान्यादिक्लेशाना) मानहानि आदि क्लेशो का (निदान) कारण है ।

**भावार्थ**—यह अब्रह्म इस लोक मे महानगुणशाली बलवान और मानी पुरुषो के भी मानहानि आदि क्लेशो का कारण है ।।४९।।

**जिह्मान्तकरणो ब्रह्मा निजपुत्रीमपत्रपः ।**
**जगाम किल येनार्द्धनारीत्वं च महेश्वरः ।।५०।।**

**गोविन्दो मन्दधीः प्रीत्या गोपपत्न्या गृहं गतः ।**
**तयाऽपि च किलात्यन्तं चतुरोक्त्या प्रतारितः ।।५१।।**

**अन्वयार्थ**—(येन) जिसके कारण (जिह्मान्तकरण) कुटिल है अन्त करण जिसका ऐसा ब्रह्मा (अपत्रप.) निर्लज्ज होकर (निजपुत्री) अपनी पुत्री को (जगाम) प्राप्त हुआ, सेवन किया (च) और (किल) निश्चय से (महेश्वरः) महेश्वर (अर्द्धनारी व) अर्द्धनारीत्व को (जगाम) प्राप्त हुआ (मन्दधी) मन्दबुद्धि (गोविन्द) गोविन्द (प्रीत्या) प्रीति से (गोपपत्न्या.) ग्वालिन के (गृह) घर (गत) गया (च) और (तया) उस गोपालिन की (चतुरोक्त्या) चतुरोक्ति के द्वारा (प्रतारित.) ठगा गया ।

**भावार्थ**—जिस काम के वशीभूत हुये निर्लज्ज ब्रह्मा ने अपनी पुत्री का सेवन किया, महेश्वर अर्धनारीश्वर हुआ अर्थात् अपने आधे अंग मे दिनरात स्त्री को लिपटाये रहता था, मन्दबुद्धि नारायण प्रीति से गोपपत्नी के घर गया और उनके हास मिश्रित वचनो के वशीभूत होतर ग्वालिनियो द्वारा सेवन किया गया था ।।५०-५१।।

**ब्रह्मा जिह्मितसन्मतिर्बहुमुखः काष्ठेक्षणाद्भीतितः ।**
**पार्वत्यास्तनुसंप्रवेशविवशश्चार्द्धांगनारी हरः ।।५२।।**

**विष्णुर्वारिधिमध्यगो गतधृतिस्तद्दीर्घनिद्रोऽभवत् ।**
**त्रैलोक्योन्मथनोत्थमन्मथविभोर्मन्ये शराद् दुर्धरात् ।।५३।।**

**अन्वयार्थ**—(त्रैलोक्योन्मथनोत्थमन्मथविभो ) तीन लोक का मथन करने वाले कामदेव के (दुर्धरात्) दुर्द्धर (शरात्) बाणो से (काष्ठेक्षणात्) दिशाओ के देखने से (भीतित ) भयभीत हुआ (जिह्मितसन्मतिः) नष्ट हो गई है सन्मति जिसकी ऐसा (ब्रह्मा) ब्रह्मा (बहुमुख ) बहुमुखी (च) और (हर ) महादेव (पार्वत्या) पार्वती के (तनुप्रवेशविवश ) शरीर मे प्रवेश करने के लिए विवश अर्धनारीश्वर बना (वारिधिमध्यग ) वारिधि के मध्य मे गया हुआ (गतधृति.) जिसका धैर्य नष्ट हो गया है ऐसा (विष्णु ) विष्णु (तद्दीर्घनिद्र ) दीर्घनिद्रा वाला (अभवत्) हुआ था (मन्ये) मैं ऐसा मानता हूँ ।

**भावार्थ**—मैं ऐसा मानता हूँ कि, त्रिलोक विजयी काम के दुर्धरबाणो से दिशाओ के देखने से भयभीत कुटिल-मति ब्रह्मा बहुमुख वाला हुआ था । कामबाण से पीडित महादेव पार्वती के शरीर मे प्रवेश के वशीभूत होकर अर्धनारीश्वर हुआ था । मन्मथ की परवशता से ही विष्णु धैर्यहीन होकर समुद्र के मध्य मे दीर्घनिद्रा को प्राप्त हुआ था ।।५२।।

**मारापराभिधानेनाब्रह्मणाऽन्येऽपि तादृशाः ।**
**जाता विडम्बनापात्रमिदं चित्रं हि नो यतः ।।५३।।**

**कादम्बरीरसोन्माद वा हिताहितमोहितम् ।**
**त्रिवेदोदीरणाभ्रान्तस्वान्तं तद्वदिदं जगत् ।।५४।।**

**अन्वयार्थ**—(मारापराभिधानेन) मार है दूसरा नाम जिसका ऐसे (अब्रह्मणा) अब्रह्म से (अन्ये) और (अपि) भी (तादृशा ) ऐसे (विडम्बनापात्र) विडम्बनापात्र (जाता ) हुये हैं (इद) यह (चित्र) आश्चर्य (न) नही है (हि) क्योकि (यत ) जिससे (त्रिवेदोदीरणाभ्रान्तस्वान्त) तीन वेद की उदीरणा से भ्रान्त है मन जिसका ऐसा (हिताहितमोहित) हिताहित के विषय से मोहित (इद) यह (जगत्) ससार (कादम्बरीरसोन्माद) कादम्बरी के रस से उन्मत (तद्वत्) के समान होता है

**भावार्थ**—काम का दूसरा नाम मार है । इस मार की चोट से घायल हुये प्राणी मदिरापान से उन्मत्त हुये प्राणी के समान विवेक से शून्य होकर विडम्बना के पात्र होते हैं इसमे कोई आश्चर्य नही है ।।५४।।

**श्रुत्वाऽऽलोक्य न सीधु माद्यति जनः स्पृष्ट्वा च माद्यत्यदः ।**
**पीत्वैव श्रवणेक्षणानुभवनैः कान्ताजनानां पुनः ।।**

**लोको मुह्यति चित्रमत्र तु पर प्रभ्रष्टदृष्टिश्रुति-**
**स्त्यक्त्वा सत्वगुणं नयं च विनयं स्याद् दुर्मतिर्दुर्गतिः ।।५५।।**

**अन्वयार्थ**—(सीधु) मदिरा को (आलोक्य) देखकर (च) और (स्पृष्ट्वा) स्पर्श करके (जन ) जन (न) नही

(माद्यति) मदोन्मत होते हैं (अद.) उस मदिरा को (पीत्वा) पीकरके (एव) ही (माद्यति) मदोन्मत्त होते हैं (पुन) पुन. (तु) परन्तु (अत्र) इसमे (पर) महान (चित्र) आश्चर्य है कि (कान्ताजनाना) स्त्रियो के (श्रवणेक्षणानुभवनैः) श्रवण, दर्शन और मनन के द्वारा (लोक ) लोक (मुह्यति) मोहित होते हैं (प्रभ्रष्टदृष्टिश्रुति ) प्रभ्रष्ट है श्रवण और नेत्र जिसके ऐसा वह (दुर्मति ) दुर्मति (सत्वगुण) सत्वगुण (विनय) विनय (च) और (नय) नय को (त्यक्त्वा) छोडकर (दुर्गति ) दुर्गति (स्यात्) होता है-अर्थात् दुर्गति मे जाता है।

**भावार्थ**—मदिरा को देखकर स्पर्शकर और उसका चिंतवन करके मानव मोहित नही होता है, केवल मदिरा को पीकर के ही मोहित होता है। परन्तु वनिताजनो को देखकर, उनके वचनो को सुनकर और उनको चिंतवन से मोहित होकर दुर्मति मनुष्य सत्वगुणो, गुरुओ के विनय और नय को छोडकर दुर्गति मे जाता है। इसलिये वनिताजन की सगति मदिरा से भी अधिक हानिकारक है ॥५५॥

**वेदाऽतुच्छोदयादिच्छा पुंस्त्रीतद्द्वयसंश्रया ।**
**स्त्रीपुंनपुंसकानां स्यादब्रह्मैकाकिनामपि ॥५६॥**

**अन्वयार्थ**—(वेदातुच्छोदयात्) वेद के तीव्र उदय से (एकाकिना) अकेले (अपि) भी (स्त्रीपुसनपुसकानां) स्त्री, पुरुष, नपुंसको के (पुसस्त्रीतद्द्वयसश्रया) पुरुष स्त्री और उन दोनो के सश्रय (इच्छा) इच्छा (अब्रह्म) अब्रह्म (स्यात्) हैं।

**भावार्थ**—वेद कर्म के तीव्र उदय से एकाकी स्त्री, पुरुष, नपुसको के स्त्री, पुरुष और दोनो की सेवन की जो अभिलाषा है उसका नाम अब्रह्म हैं ॥५६॥

**तेनानुन्मथितं चेतो यत्तद् ब्रह्मव्रत स्मृतम् ।**
**व्रतव्रातलतामूल मूलं स्वर्गापवर्गयोः ॥५७॥**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (तेन) उस अब्रह्म के द्वारा (अनुन्मथित) मथन रहित (चेत.) चित्त है (तत्) उसको व्रतव्रातलतामूल) व्रतो का समूहरूपी लता का मूल (स्वर्गापवर्गयो ) स्वर्ग और मोक्ष का कारण (ब्रह्मव्रत) ब्रह्मव्रत (स्मृत) माना है।

**भावार्थ**—जिनका चित काम बाणो से पीडित नही है वही अहिंसादि व्रतो का मूल स्वर्गमोक्ष का कारण ब्रह्मचर्य व्रत है ॥५७॥

**यन्माहात्म्यान्महाविद्या सेवोद्या वा वसन्त्यलम् ।**
**जनेऽप्यसंयते यच्च नाम्ना देवव्रत मतम् ॥५८॥**

**अन्वयार्थ**—(यन्माहात्म्यात्) जिसके माहात्म्य से (असयते) असयत (जने) मनुष्य मे (अपि) भी (महाविद्या ) महाविद्या (सेवोद्या) सेवादि करने मे उद्युक्त (वा) अथवा (वसंति) रहती हैं (च) और (यत्) जिसे (नाम्ना) नाम से (देवव्रत) देवव्रत (मत) कहा गया है वह ब्रह्मचर्य व्रत है।

**भावार्थ**—जिस महान व्रत के माहात्म्य से असयमी जनो मे भी महाविद्या प्राप्त होती है अथवा गुरुओ की सेवादि की भावना और आज्ञा का पालन आदि इसी व्रत से होता है अत. यह व्रत नाम से देवव्रत है ॥५८॥

**स्त्रीणां रागकथांगावलोकनादरयोः स्मृतिः ।**
**त्यागाः पूर्वं रतस्योच्चैर्वृष्येष्टस्य रसस्य च ॥५९॥**

**स्त्रीसंसक्तवसत्यंगसस्कारपरिवर्जनम् ।**
**चेति पंच वदन्त्यार्यास्तुरीयव्रतभावनाः ॥६०॥युग्मम्॥**

**अन्वयार्थ**—(स्त्रीणा) स्त्रियो की (रागकथा) रागकथा (अगावलोकनादरयोः) अगो का अवलोकन, आदर का (पूर्वरसस्य) पूर्वानुभूत रस के (स्मृति ) स्मरण (च) और (उच्चं ) उच्च (वृष्येष्टस्य) गरिष्ठ (रसस्य) रस का (त्यागाः) त्याग करना (स्त्रीससक्तवसत्यगसस्कारपरिवर्जनम्) स्त्रियो से ससक्त वसति और अग के सस्कार का त्याग (इति) इस प्रकार आर्याः) आचार्य (पच) पाँच (तुरीयव्रतभावना') चौथेव्रत की भावना (वदन्ति) कहते है ।

**भावार्थ**—स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, तन्मनोहरागनिरीक्षणत्याग, पूर्वरतानुस्मरणत्याग, वृष्येष्टरसत्याग और स्वशरीरसंस्कारत्याग ये ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनाएँ हैं । स्त्रियो मे राग उत्पन्न करने वाली कथाओ के सुनने का त्याग, स्त्री रागकथाश्रवणत्याग है। स्त्रियो के मनोहर अगो को देखने का त्याग तन्मनोहरागनिरीक्षणत्याग हैं । पूर्वकाल मे भोगे हुये विषयो का स्मरण नही करना पूर्वरतानुस्मरण त्याग है, कामवर्धक, वाजीकरण और मन तथा रसना को अच्छे लगने वाले रसो को नही खाना वृष्येष्टरस त्याग है । अपने शरीर का किसी प्रकार का सस्कार नही करना स्वशरीरसस्कारत्याग है । ये चतुर्थव्रत की पाँच भावनाएँ है । इनसे ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा होती है ॥५९-५०॥

**"बाह्यान्तरंगसंगेषु मूर्छाशक्तिः परिग्रहः ।**
**हिंसाद्यवद्यमूलं स्यात्पापापायैककारणम्" ॥१**

**अन्वयार्थ**—(बाह्यान्तरंगसगेषु) बाह्याभ्यंतर परिग्रह मे (मूर्छासक्ति ) मूर्च्छा और आसक्ति (परिग्रह ) परिग्रह है (हिंसावद्यवद्यमूल) वह हिंसा आदि सावद्यका मूल (पापापायैककारण) पाप के आगमन का प्रमुख कारण (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—बाह्य और आभ्यतर परिग्रहो मे मूर्छा और आसक्ति परिग्रह है । यह परिग्रह हिंसादि दोषो का मूल और सम्पूर्ण पापो के आस्त्रव का कारण है ।

**क्षेत्रं वास्तु धन धान्यं द्विपदोंगो चतुःपदः ।**
**यानं शय्याऽऽसनं कुप्यं भांड चेति बहिर्दश ॥६१॥**

**अन्वयार्थ**—(क्षेत्र) क्षेत्र (वास्तु) वास्तु (धन) धन (धान्य) धान्य (द्विपदोगी) दुपद [दासीदास] (चतुष्पद ) चतुष्पद पशु (यान) यान (शय्याऽसन) शय्या-आसन (कुप्य) कुप्य (च) और (भाड) भाड (इति) इस प्रकार (वहि.) वहिरग परिग्रह (दश) दश प्रकार है ।

**भावार्थ**—क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद (दासीसास) चतुष्पद (हाथी घोडा आदि चार पैर वाले पशु) यान (वाहन रथादि) शय्या-आसन, कुप्य वस्त्रादि और भाँड ये दश प्रकार के बहिरंग परिग्रह हैं ॥६१॥

**मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयम् ।**
**रागद्वेषौ च संगाः स्युरन्तरङ्गाश्चतुर्दश ॥६२॥**

**अन्वयार्थ**—(मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयम्) मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा आदि (षट्कषाय) क्रोध, मान, माया, लोभ (कषाय) चतुष्टय (च) और (रागद्वेषौ) रागद्वेष (चतुर्दश) ये चौदह (अतरगा ) अतरग (सगा ) परिग्रह हैं ।

१ यह श्लोक एक प्रति मे अधिक है ।

**भावार्थ**—मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन वेद, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय ये चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह हैं ।।६२।।

**सचित्ताचित्तरुपैतत्संगसंगिपराः परैः ।**
**मानासुहान्यतिक्लेशानाप्नुवन्त्यवशाशयाः ।।६३।।**

**अन्वयार्थ**—(सचित्ताचित्तरुपैतत्संगिपरा.) सचित्त, अचित्त रूप इस परिग्रह के ग्रहण मे तत्पर मानव (परैः) दूसरो के द्वारा (मानासुहान्यतिक्लेशान्) अपमान, प्राणहानि, आदि अतिसंक्लेशो को (प्राप्नुवंति) प्राप्त होते हैं ।

**भावार्थ**—चेतन स्त्री, दासी, दास, आदि, अचेतन घर, भूषण, वसनादि परिग्रह मे आसक्त चित्तवाले मानव दूसरे प्राणियो के द्वारा वध बन्धन मानहानि आदि अनेक क्लेशो को प्राप्त होते हैं ।।६३।।

**या मूर्च्छाच्छेदिनी सगे चेतोवृत्तिरसंगता ।**
**यया सा आत्यन्तिकी मुक्तिश्रीरुपैति यतिस्वयम् ।।६४।।**

**अन्वयार्थ**—(सगे) परिग्रह मे (या) जो (मूर्च्छाच्छेदिनी) मूर्च्छा की नाशक (चेतोवृत्ति) चित्त की वृत्ति (या) वह (असंगता) अपरिग्रहता है (यया) जिसके द्वारा (आत्यन्तिकी) अविनाशिक (मुक्तिश्रीः) मुक्तिरूपी लक्ष्मी (यति) यतिराज को (स्वय) स्वमेव (उपैति) प्राप्त होती है ।

**भावार्थ**—बाह्य चेतन, अचेतन पदार्थों मे मूर्छा का अभाव होना, वा परिग्रह मे चित्त की आसक्ति नही होना ही अपरिग्रह है । इस अपरिग्रह महाव्रत के प्रभाव से अविनाशी, आत्यन्तिकी मुक्तिरूपी लक्ष्मी अपरिग्रही मुनिराज को स्वयमेव प्राप्त हो जाती है ।।६४।।

**स्वात्माऽभ्यन्तररागाद्या यदि त्याज्याः परिग्रहाः ।**
**बाह्यास्तन्वादयः किं नासातासन्ततिकारिणः ।।६५।।**

**अन्वयार्थ**—(यदि) यदि (स्वात्माऽभ्यन्तररागाद्या) अपनी आत्मा के अभ्यन्तर मे होने वाले रागादि (परिग्रहा) परिग्रह (त्याज्या.) छोडने योग्य हैं तो (असातासन्ततिकारिण) असाता वेदनीय कर्म के संतति के कारणभूत (तन्वादय.) शरीरादि (बाह्या) बाह्य परिग्रह (किं) क्या (न त्याज्या.) त्याज्य नही है अपितु त्याज्य ही है ।

**भावार्थ**—यदि रागद्वेषादि आत्मा के अभ्यन्तर परिग्रह छोडने योग्य हैं तो क्या असातावेदनीय का कारण भूत, बाह्य शरीर आदि परिग्रह छोडने योग्य नही है अर्थात् बाह्य परिग्रह भी समाधि और ध्यान के बाधक हैं-इसलिये इनको भी छोडना चाहिये ।।६५।।

**सेवातन्द्राः सुरेन्द्राद्याः क्रूरो मारश्च किंकरः ।**
**यस्यामद्भुतमाहात्म्यसंगताऽसंगता ततः ।।६६।।**

**अन्वयार्थ**—(यस्या) जिस असंगता के होने पर (सुरेन्द्राद्या.) इन्द्र आदि (सेवातन्द्रा.) सेवा करने मे निरा आलसी होते हैं (च) और (क्रूर) क्रूर (मारः) कामदेव राक्षस आदि (किंकर) किंकर हो जाते हैं (तत) इसलिये (असगता) अपरिग्रह व्रत अद्भुतमाहात्म्यसंगता) आश्चर्यकारी माहात्म्य सगत है ।

**भावार्थ**—अपरिग्रह महाव्रतधारी के चरणो की निरालसी होकर इन्द्र निरन्तर सेवा करता है। क्रूर, व्यन्तर देव, राक्षस आदि किंकर हो जाते हैं। हिंसक प्राणी शात हो जाते हैं। इस अपरिग्रह महाव्रत का माहात्म्य आश्चर्यकारी है ॥६६॥

**परिग्रहग्रहोन्मुक्तेरभ्रान्ता स्वांतसंततिः।**
**निजानन्दामृतामन्दस्यन्दिनी कैर्न वर्ण्यते ॥६७॥**

**अन्वयार्थ**—(परिग्रहग्रहोन्मुक्ते) परिगहरूपीपिशाच से उन्मुक्त मानव के (अभ्रान्ता) भ्राति रहित निजानन्दामृतामन्दस्यन्दिनी) निज आनन्दरूपी अमृत के अमन्द प्रवाह को बहाने वाली (स्वातसतति) मनकी सतति (कैर्न) किसके द्वारा (वर्ण्यते) वर्णन की जाती है।

**भावार्थ**—जो परिग्रहरूपी पिशाच से उन्मुक्त है, उस मानव के अभ्रात निजानन्दरूपी अमृत के अमन्द प्रवाह वाली चित्त सतति का वर्णन करने के लिये कौन समर्थ है। अर्थात् आर्त्त, रौद्र ध्यान का कारण भूत परिग्रह के त्याग करने से जो निजानन्द रस से मानव सुखी होता है-वह निजानन्द चैतन्य विलास का सुख अचिंत्य और वचनातीत है ॥६७॥

**स्यान्मनोज्ञामनोज्ञाक्षपञ्चकार्येषु वर्जनम्।**
**भावनापञ्चकं रागद्वेषयोरपरिग्रहे ॥६८॥**

**अन्वयार्थ**—(मनोज्ञामनोज्ञाक्षपचकार्येषु) मनोज्ञ और अमनोज्ञ पंचेन्द्रियो के विषयो मे (रागद्वेषयो.) रागद्वेष का (वर्जन) त्याग करना (अपरिग्रहे) अपरिग्रह महाव्रतकी (भावनापचक) पाँच भावना हैं।

**भावार्थ**—स्पर्शनादि पचेन्द्रियो के मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयो मे रागद्वेष का त्याग करना अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावना हैं ॥६८॥

**महान्तमर्थंमोक्षं यत् साधयन्ति महान्तितत्।**
**व्रतान्याचारितानीति वा महद्भिःसुधीधनैः ॥६९॥**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (महान्त) महान (अर्थं) अर्थ (मोक्ष) मोक्ष को (साधयति) सिद्ध करते हैं। (वा) अथवा (महद्भि) महान (सुधीधनै) सुबुद्धिरूपी धन वालो के द्वारा (आचरितानि) आचरण किये जाते हैं (इति) इस प्रकार (महान्ति) महान (व्रतानि) महाव्रत (स्यु) होते हैं।

**भावार्थ**—महान बुद्धिमान ज्ञानी सम्यग्दृष्टि महापुरुषो के द्वारा आचरण किये जाते हैं इसलिये महाव्रत है अथवा इनसे महान अर्थ मोक्ष की सिद्धि की जाती है इसलिये इनको महाव्रत कहते हैं ॥६९॥

**व्रतत्राणाय कर्त्तव्यं रात्रिभोजनवर्जनम्।**
**सर्वथान्नान्निवृत्तिस्तत्प्रोक्तं षष्ठमणुव्रतम् ॥७०॥**

**अन्वयार्थ**—(व्रतत्राणाय) व्रतो की रक्षा करने के लिये (रात्रिभोजनवर्जन) रात्रि भोजन का त्याग (कर्त्तव्य) करना चाहिए (सवथा) सम्पूर्णरूप से (अन्नान्निवृत्ति) अन्न की निवृत्ति नही होती है इसलिये इसे (षष्ठ) षष्ठम (अणुव्रत) अणुव्रत (प्रोक्त) कहा है।

**भावार्थ**—अहिंसादि व्रतो की रक्षा करने के लिये रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिये। सर्वथा आहार मात्र का त्याग नही करना है परन्तु रात्रि मे भोजन नही करना है, इसलिये एकदेश आहार त्याग होने से रात्रि भोजन त्याग व्रत षष्ठम अणुव्रत कहलाता है।

**रात्रिभुक्तौ व्रतानां स्यान्नाशः शंका च तत्क्षये।**
**प्राणितस्याऽऽत्मनो हानिरंगयङ्गविषसगमात् ॥७१॥**

**अन्वयार्थ**—(रात्रिभुक्तौ) रात्रि मे भोजन करने मे (व्रताना) व्रतो का (नाश·) नाश (तत्क्षये) व्रतो के क्षय (शका) शका (च) और (अग्यगविषसगपात्) प्राणियो के अग के विष के संयोग से (प्राणितस्य) जीव के (आत्मनोहानि) आत्महानि (स्यात्) होगी।

**भावार्थ**—रात्रि मे भोजन करने से व्रतो का नाश होता है। व्रतो के नाश होने की शका रहती है तथा रात्रि मे भोजन करने से विषैले जीव भोजन मे मिल जाते हैं इसलिये प्राणो का नाश भी सभव है ॥७१॥

**'पाँच समितियों का वर्णन'**

**ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गकर्मसु।**
**सयत्नादितयः पञ्चवृत्तयः समितिप्रथाः ॥७२॥**

**अन्वयार्थ**—(ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गकर्मसु) गमन, भाषण, आहार, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग क्रियाओ मे (संयत्नात्) भले यत्न से (इतय) प्रवृत्ति करना (पञ्चवृत्तय) ये पाच प्रकार की वृत्ति (समितिप्रथा:) समिति प्रसिद्ध हैं।

**भावार्थ**—"सं" का अर्थ है यत्नपूर्वक। इति का अर्थ है प्रवृत्ति। "स इति" समिति। अर्थात् गमन मे, वचन मे, भिक्षा मे, आदान निक्षेपण मे मलमूत्रक्षेपण मे सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना समिति है। यह समिति पाँच प्रकार की है ॥७२॥

**'ईर्यासमिति'**

**सार्द्रां कर्दमशेवालजलपुष्पफलाविलाम्।**
**इलां त्यक्तांकुरानीकप्राणिबीजव्रजाकुलाम् ॥७३॥**

**काष्ठेष्टकाश्मलोष्ठादिकृतवर्त्माऽसम चलम्।**
**त्यक्त्वा संशयितं चात्मपातासयमहेतुकम् ॥७४॥**

**मार्गे रथाश्वगोयूथनरादिचरणाहतिः।**
**प्रासुकेऽपगताऽऽयातप्राणिप्रालेयजालके ॥७५॥**

**प्रभाकरकरव्रातस्पष्टज्ञेयार्थसार्थिनी।**
**योगिनस्तीर्थयात्रात्मगुरुकार्यादिभागिनः ॥७६॥**

स्थित्वा कार्यवशान्मन्दं मृगवद्दिग्विलोकिनः ।
पुरो युगान्तरे प्राणिवीक्षणार्पितचेतसः ॥७७॥

मन्दं न्यस्तपदापास्तद्रुतातीवविलंविनः ।
द्विपेन्द्रमन्दयानस्य स्यादीर्यासमितिर्गतिः ॥७८॥षटकम्॥

**अन्वयार्थ**—(सार्द्रां) गीलापन सहित (कर्दमशेवालजलपुष्पफलाविलाम्) कीचड, शेवाल, जल, पुष्प, फल से व्याप्त (अकुरानीकप्राणिवीजव्रजाकुलाम्) अंकुर अनेक प्राणी और बीज के समूह से युक्त (इला) पृथ्वी को (त्यक्त्वा) छोडकर (असमं) असम (चलं) चलायमान (च) और (आत्मपातासयमहेतुक) अपने गिरने और असयम का कारण भूत (सशयितं) सशयित (काष्ठेष्टकाष्मलोष्ठादिकृतवर्त्म) काष्ट, ईंट, पत्थर, लोष्ठ आदि के बने हुये मार्ग को (त्यक्त्वा) छोडकर रथाश्वगोयूथनरादिचरणाहति) रथ, घोडे, गायो का समूह, मनुष्यादि के चरणो से (अपगताऽऽयातप्राणिप्रालेयजालके) नष्ट हो गई है गमनागमन करने वाले प्राणियो से प्रालेय [हिम] का समूह जिसमे (प्रभाकरकरव्रातस्पष्टज्ञेयार्थसार्थिनी) सूर्य की किरणो के समूह से स्पष्ट है ज्ञेयपदार्थो का समूह जिसमे ऐसे (प्रासुके) प्रासुक (मार्गे) मार्ग मे (तीर्थयात्रात्मगुरुकार्यादिभागिनम्) तीर्थयात्रा, अपने गुरु के कार्यादि (कार्यवशात्) किसी कारण से (मन्द) मन्द २ (स्थित्वा) खडे होकर (मृगवद्दिग्विलोकिनः) मृग के समान दिशा का अवलोकन करने वाले (पुरः) सामने (युगान्तरे) चार हाथ प्रमाण (प्राणिवीक्षणचेतसः) प्राणियो के देखने मे अर्पित है चित्त जिसका (मन्दं) मन्द-मन्द (न्यस्तपदापास्तद्रुतातीवविलविन.) रखे हुये चरणो से दूर किया है द्रुतगमन और अतीव विलम्ब (गमन) जिसने ऐसे (योगिनः) योगीकी (द्विपेन्द्रमन्दयानस्य) द्विपेन्द्र के समान (गति) गति (ईर्यासमिति) ईर्यासमिति (स्यात्) होती है ।

**भावार्थ**—जो आर्द्र हो, कीचड, शेवाल, जल, पुष्प आदि से युक्त हो, जिसमे अंकुर, बीज, जीवजन्तु भरे हो उसभूमि पर नही चलना चाहिये । असम, चलाचल, आत्मपात और असंयम का कारणभूत ऐसे काष्ठ और ईंट, पत्थर, लोष्ठ आदि के बने हुये मार्ग मे नही चलना चाहिये । और जो मार्ग, रथ, घोडा, गायो का समूह, मनुष्य आदि के चरणो से मर्दित हो, जिस मार्ग मे प्राणियो का समूह आदि नही हो, जहा सूर्य की किरणो से पदार्थ स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्रासुक है, ऐसे मार्ग मे चार हाथ प्रमाण आगे भूमि का अवलोकन करके गुरु के दर्शन, तीर्थ यात्रादि के निमित्त कार्य के वशीभूत होकर हिरण के समान दशो दिशाओ का अवलोकन करके हाथी के समान जो योगी का मन्द-२ गमन करना है वह ईर्यासमिति है ॥७४-७५-७६-७७-७८॥

"भाषासमिति"

सत्यमोषोभयासत्यमोषभेदा चतुर्विधा ।
भाषाद्यां सत्यबोधार्थवाग्घटे घटवाग्यथा ॥७९॥

मोषभाषा विपर्यासव्यवसायार्थगोचरा ।
यथा मरीचिकाचक्रे वार्वाक्साऽनेकभेदगा ॥८०॥

धर्मैर्विवक्षितैः सत्यऽसत्ये चार्थविवक्षतैः ।
वाक् प्रवृत्तोभयाख्या सा भाषेतीहेष्यते यथा ॥८१॥

घटाकृत्तिव्यपेताया धारणाद्भूरिवारिणः ।
कुंडिकाया घटाख्यैव वहुभेदमिदं वचः ॥८२॥

**अन्वयार्थ**—(सत्यमोषोभयासत्यमोषभेदा) सत्य, असत्य, उभय, सत्यमोष के भेद से (भाषा) भाषा (चतुर्विधा) चार प्रकार की है। (सत्यवोधार्थवाग्) सत्य वोधार्थवचन (आद्याभाषा) प्रथम सत्य भाषा है (यथा) जैसे (घटे) घट मे (घटवाग्) घटवचन। (विपर्यासव्यवसायार्थगोचरा) विपर्यासव्यवसायात्मक पदार्थ गोचर (मोषभाषा) असत्य वचन है (यथा) जैसे (मरीचिकाचक्रे) मरीचिका के समूह मे (वार्वाक्) पानी का वचन (सा) वह असत्यभाषा (अनेकभेदगा) अनेक भेद वाली है। (विवक्षिते) विवक्षित (धर्मे) धम के द्वारा (च) और (अर्थविवक्षितेः) अर्थ की विवक्षा से (सत्ये) सत्य (असत्ये) असत्य मे (प्रवृता) प्रवृत हुये (वाक्) वचन है (सा) वह (उभयाख्या) उभयनाम की (भाषा) भाषा है (यथा) जैसे (इह) इस लोक मे (भूरिवारिण) भूरिजल के (धारणात्) धारण से (घटाकृतिव्यपेताया.) घटाकार से रहित भी (कुडिकायाः) कुडिका में (घटाख्या) घटनाम (एव) इस प्रकार (इद) यह (वच') वचन (अनेकभेदं) अनेक प्रकार का है।

**भावार्थ**—सत्य असत्य उभय और अनुभय के भेद से भाषा चार प्रकार की हैं। सत्यज्ञान का विषय रूप वस्तु का कथन करने वाली भाषा असत्य है। जैसे घट को घट कहना। विपरीत वस्तु का कथन करने वाली भाषा असत्य है जैसे मरीचिका के समूह को जल कहना। यह असत्य भाषा अनेक प्रकार की हैं। अर्थ की अविवक्षा और धर्म की विवक्षा से जो वचन की प्रवृत्ति होती है वह उभयभाषा है जैसे कुडिका को घट कहना। क्योकि कुडिका मे जलधारण क्रिया होती है, इसलिये इसको घट कहना सत्य है और घटाकृति से रहित है इसलिये उसको घट कहना असत्य है। इसलिये यह भाषा सत्यासत्य हैं ॥७९-८०-८१-८२॥

**आमंत्रणमाज्ञापनं याञ्चावाक् प्रच्छनावच ।**
**प्रज्ञापनावचः प्रत्याख्यानसशयभाषणम् ॥८३॥**

**इच्छानुलोमवचनमनक्षरमयं वचः ।**
**इत्येवमादय सत्यमोषभेदाः सहस्त्रशः ॥८४॥**

**अन्वयार्थ**—(आमत्रण) आमत्रण (आज्ञापनं) आज्ञापन (याञ्चावाक्) याचना वचन (प्रच्छनावच) प्रच्छनावचन (प्रज्ञापनावचः) प्रज्ञापनावचन (प्रत्याख्यानसशयभाषण) प्रत्याख्यान और सशय वचन (इच्छानुलोभनवचन) इच्छानुकूल वचन (इत्येव) इस प्रकार (सत्यामोषभेदाः) अनुभय वचन (सहस्त्र) हजारो प्रकार का है।

**भावार्थ**—आमंत्रण, आज्ञापन, याचनावचन, प्रच्छनावचन, प्रज्ञापनावचन, प्रत्याख्यान और संशयवचन, इच्छानुकूलवचन इसप्रकार अनुभय वचन हजारों प्रकार का है ॥८३-८४॥

**तत्रामंत्रणमन्यस्य परत्राऽऽसक्तचेतसः ।**
**आभिमुख्यकरं हहो नरेन्द्रेत्यादिक वचः ॥८५॥**

**आज्ञापन प्रभुत्वेनाऽऽदेशो यः स्वोक्तकारिणा ।**
**तत्किंचिदाशु कर्त्तव्यं यन्मया दिश्यते तव ॥८६॥**

**याञ्चा मयाऽर्थितं किंचिद्यत्तद्देयमिति त्वया ।**
**कथ्यतां यन्मया पृष्टं तदित्यप्रच्छना वचः ॥८७॥**

**मत्पृष्टं यत्तदादेश्यमिति प्रज्ञापना गुरौ ।**
**प्रत्याख्यानमहं किंचित्त्यजामीति निवृत्तिवाक् ॥८८॥**

संशीत्यैयातिकमित्यादि वचः सशयवाङ्मता ।
तवेष्टं पुष्टं कुर्वेहमित्याद्येच्छानुलोमवाक् ॥८६॥

बालादिसंज्ञ्यसंज्ञ्यंगिवागनक्षरवागिमाः ।
न सत्यं स्पष्टताऽभावान्नसत्यं वाच्यसंभवात् ॥९०॥

**अन्वयार्थ**—(तत्र) उसमे (परत्राऽऽसक्तचेतस॰) दूसरी जगह मे आसक्त चित्त वाले (अन्यस्य) अन्य को (आभिमुख्यकर) सन्मुख करना (आमंत्रण) आमत्रण है (हहो) हे (नरेन्द्र) नरेन्द्र (इत्यादिक) इत्यादिक (वच:) वचन । (प्रभुत्वेन) प्रभुत्व से (य) जो (तव) तेरे लिये (आदेश.) आदेश (दिश्यते) दिया जाता है (तत्) वह (स्वोक्तकारिणा) स्वोक्त करने वाला (मया) मुझे (आशु) शीघ्र ही (कर्त्तव्य) करना चाहिये (तत्) वह (आज्ञापन) आज्ञापन हैं । (यत्) जो (किंचित्; कुछ (मया) मैंने (अर्थित) प्रार्थना की है (त्वया) तेरे द्वारा (तत्) वह (देय) देने योग्य है (इति) इस प्रकार वचन (याञ्चा) याचना है । (यत्) जो (मया) मैंने (पृष्ट) पूछा है (तत्) उसको (कथ्यता) कहो वा उसका उत्तर दो (इति) इस प्रकार (आप्रच्छनावच.) आप्रच्छनावचन हैं । (यत्) जो (मत्पृष्टं) मैंने पूछा है (तदादेश्य) वह आदेश देने योग्य है (इति) इस प्रकार (गुरौ) गुरु मे (प्रज्ञापना) प्रज्ञापना है । (अह) मैं (किंचित्) कुछ (त्यजामि) छोडता हूँ (इति) इस प्रकार (निवृत्तिवाक्) निवृत्ति के वचन (प्रत्याख्यान) प्रत्याख्यान है । (स्यात्) यह (किं) क्या है (इत्यादि) इत्यादि (सशीति) सशय के (वच.) वचन (सशयवाक्) संशयवचन (मता) माने है । (तव) तेरे (इष्ट) इष्ट को (अह) मैं (कुर्वे) करता हूँ (इत्यादि) इत्यादि (इच्छानुलोभवाक्) इच्छानुलोभवचन है । (बालादिसज्ञ्यसज्ञ्यगिवाग्) बालक को आदि लेकर सज्ञि असज्ञि के आदि के वचन (अनक्षरवाग्) अनक्षरवचन है (इमाः) यह आमंत्रण आदि दश प्रकार के वचन (स्पष्टताभावात्) स्पष्टता का अभाव होने से (सत्य) सत्य नही हैं और (वाच्यसंभवात्) वाच्य की सभावना होने से (असत्य) असत्य भी (न) नही हैं ।

**भावार्थ**—हे देवदत्त ! यहाँ आओ इस तरह के बुलाने वाले के वचनो को आमत्रणी भाषा कहते है । यह काम करो, इस तरह के आज्ञा वचनो को आज्ञापनी भाषा कहते है । 'यह मुझे दो' इस तरह के प्रार्थना वचनो को याचनी भाषा कहते हैं । 'यह क्या है' इसतरह के प्रश्न वचनो को आप्रच्छनी भाषा कहते हैं । 'मैं क्या करू' इस तरह के सूचना वाक्यो को प्रज्ञापना भाषा कहते हैं । 'इसको छोडता हूँ' इस तरह के छोडने वाले वाक्यों को प्रत्याख्यानी भाषा कहते है । 'यह बलाका है' या पताका इसतरह के संदिग्ध वचनो को संशय वचनी भाषा कहते हैं । 'मुझको भी ऐसा ही होना चाहिये' ऐसे इच्छा को प्रगट करने वाले वचनो को इच्छानुलोभी भाषा कहते हैं । बालक को आदि लेकर सज्ञी असज्ञी आदि जीवो के अनक्षर वचन हैं वह सब, अनुभय वचन हैं । क्योकि इनमे स्पष्टता का अभाव है इसलिये सत्य भी नही है, और इन वचनो मे वाच्य की सभवता है, इसलिये असत्य भी नही हैं इसलिये यह भाषा अनुभय है ॥८५-८६-८७-८८-८९-९०॥

मितसत्यहितस्योक्तिर्मनः सन्देहभेदिनः ।
वचसोऽनुभयस्यापि भाषासमितिरिष्यते ॥९१॥

**अन्वयार्थ**—(मन) मन के (सन्देहभेदिन) सन्देह मे भेदने वाले (मितसत्यहितस्य) मित, हित और सत्य (वचस.) वचनो की (अनुभयस्य) अनुभय (वचस) वचन की (उक्ति) वचन (भाषासमिति) भाषासमिति (इष्यते) कही जाती है ।

**भावार्थ**—मन के सशय का नाशक, हित, मित, प्रिय अनुभय वचन बोलना भाषा समिति है ॥९१॥

"एषणासमिति"

अपवित्रमिदं गात्रं विण्मूत्रादिमलाविलम् ।
क्षयि न्यक्षोग्ररोगादिपीड़ानीड़ं जडात्मकम् ॥९२॥

**अन्वयार्थ**—(इदं) यह (गात्रं) शरीर (अपवित्रं) अपवित्र हैं (विण्मूत्रादिमलाविल) मूत्रादि मल का स्थान है (क्षयि) नाशवत हैं (न्यक्षोग्ररोमादिपीडानीड़ं) न्यक्ष, उग्र रोगादि पीडा का घोसला है (जडात्मकं) जडात्मक है।

**भावार्थ**—यह शरीर अपवित्र है मलमूत्रादि अमेध्य वस्तु का स्थान है। जलोदरादि उग्र रोगो का घोसला है। विनाशीक और जडात्मक है ।।९२।।

**साहचर्यमनेनाऽऽर्यः कथं कुर्याद्दुरात्मनः ।**
**अन्यः स्वान्यपरिज्ञानापेतचेतोहतात्मनः ।।९३ ।।**

**अन्वयार्थ**—(स्वान्यपरिज्ञानापेतचेतोहतात्मनः) स्वपर के परिज्ञान से रहित चित्त से नष्ट हुई है आत्मा जिसकी ऐसे (दुरात्मन.) दुरात्मा से (अन्य) अन्य (आर्यः) श्रेष्ठ पुरुष (अनेन) इस शरीर के साथ (साहचर्य) सहचरता (कथं) कैसे (कुर्यात्) करे।

**भावार्थ**—स्वपर के विज्ञान से रहित अज्ञानी वहिरात्मा को छोडकर दूसरा कौन ज्ञानी इस जडात्मक नाशवंत शरीर के साथ मित्रता करेगा अर्थात् कोई नही करेगा ।।९३।।

**मिताशनादिदानेन नेयः कायस्तथाप्ययम् ।**
**यथा रथोऽक्षसंम्रक्षणेन स्तंभैः कुटुंबिनाम् ।।९४।।**

**अन्वयार्थ**—(तथापि) नाशवत जडात्मक शरीर है तो भी (अयं) यह (काय.) काय (मिताशनादिदानेन) योग्य और अल्प आहारादि दान के द्वारा (नेय·) रक्षा करने योग्य है (यथा) जैसे (कुटुम्बिनाम्) कुटुम्बियो के (स्तम्भैः) समूह के द्वारा (अक्षरसम्रक्षणेन) ओगण के द्वारा (रथः) रथ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार गाडीवान अपने धन के इष्ट स्थान पर ले जाने के लिये तेल आदि लगाकर अपनी गाड़ी आदि की रक्षा करता है। उसी प्रकार यह अशुचि शरीर रत्नत्रय का साधन है, इसलिये प्रासुक और अल्प आहार देकर शरीर की रक्षा करना चाहिये ।।९४।।

**अप्राप्तावसरेणैषा रक्षणीयो मुमुक्षुणा ।**
**कायो वहहि नो लोकः किं मूर्ध्ना दग्धुमिन्धनम् ।।९५।।**

**अन्वयार्थ**—(अप्राप्तावसरेण) नही प्राप्त है अवसर जिसको ऐसे (मुमुक्षुणा) मुमुक्षु के द्वारा (एषा) यह (काय.) काय (रक्षणीय.) रक्षा करने योग्य है (किं) क्या (दग्धुम्) जलाने के लिये (इन्धनं) इन्धन को (लोक) लोक (मूर्ध्ना) मस्तक के द्वारा (नो) नही (वहति) धारण करते हैं।

**भावार्थ**—जिस प्रकार जलाने के लिये लाये हुये इन्धन को लोग मस्तक पर धारण करते हैं। उसी प्रकार यह शरीर भी जलाने योग्य है, परन्तु व्रत के परिपालन का साधन है, इसलिये जवतक समाधि का अवसर नही प्राप्त हो तबतक मुमुक्षुओ को इसकी योग्य आहार पानी के द्वारा रक्षा करनी चाहिये ।।९५।।

**एतद्रत्नत्रयीपात्रं नांगत्यंगं विनाऽशनम् ।**
**पुष्यात्ततेन सिद्धयर्थं स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ।।९६।।**

**अन्वयार्थ**—(एतत्) यह (अगं) शरीर (रत्नत्रयीपात्रं) रत्नत्रय का पात्र है (अशनं) आहार के (विना) विना

(न) नही (गच्छति) चलता है (तेन) इसलिये (स्वसिद्ध्यर्थं) अपनी सिद्धि करने के लिये (तत.) उस शरीर का (पुष्यात्) पोषण करे, (हि) क्योकि (स्वार्थभ्र श ) स्वप्रयोजन का नाश करना (मूर्खता) मूर्खता है।

**भावार्थ**—यद्यपि यह शरीर अपवित्र है तथापि रत्नत्रय का पात्र है। आहार के बिना इसकी स्थिति नही है, इसलिये स्वरूप प्राप्ति रूप अपनी सिद्धि के लिये प्रयत्नपूर्वक योग्य शास्त्रोक्त प्रासुक आहारादि से इस शरीर की रक्षा करना चाहिये। क्योकि स्वप्रयोजन का नाशकरना ही मूर्खता है ॥९६॥

### "आहारकाल की योग्यता"

**मत्वेति द्रव्यदेशात्मदेहप्रकृतिनिश्चितः।**
**कालं गवेषणस्यैषणस्य ज्ञात्वाऽर्कचारतः ॥९७॥**

**पूर्णोदरचरत्तोकैरगारबलिकर्मणा।**
**छायया मुशलध्वानधूमशान्त्यादिकैरपि ॥९८॥**

**शुद्धकायः पुरीषादिमलोत्सर्गविधानतः।**
**परिमृष्टात्मपूर्वापरांगभागो विलोक्य च ॥९९॥**

**ततः पञ्च गुरुन्नत्वा भूत्वैकाग्रमतिर्यतिः।**
**कुर्याच्चिर्या नगर्यादावदीनाननमानसः ॥१००॥**

**अन्वयार्थ**—(इति) आहार के बिना शरीर की स्थिति नही हैं। इसप्रकार (मत्वा) जानकर (द्रव्यदेशात्मदेहप्रकृतिनिश्चित ) द्रव्य, क्षैत्र, निज शरीर की प्रकृति के परिज्ञान से (अर्कचारत:) सूर्य के चार से (पूर्णोदरत्तोकै:) पेट भर के खेलते हुये बालको के द्वारा (अगारबलिकर्मणा) गृहस्थियो के बलिकर्म के द्वारा (छायया) छाया के द्वारा (मूशालध्वानधूमशान्त्यादिकै.) मूशल की आवाज, धूम आदि की शाति के द्वारा (अपि) भी (एषणस्य) एषणा (गवेषणस्य) अन्वेषण के (काल) काल को (ज्ञात्वा) जानकर (पुरीषादिमलोत्सर्गविधानत ) पुरीषादिमलोत्सर्ग आदि के विधान से (शुद्धकाय ) शुद्धकाय वाला होकर (परिमृष्टात्मपूर्वापरागभाग ) स्पर्श किया है अपनेपूर्व अपर शरीर के भाग जिसने (च) और अपने शरीर को (विलोक्य) देखकर (तत•) इसके बाद (पंचगुरुन्) पचपरमेष्ठी को (नत्वा) नमस्कार करके (एकाग्रमति ) एकाग्रचित्त (भूत्वा) होकर (अदीनाननमानस ) दीनतारहित मुख और मनवाला (यति.) मुनि (नगर्यादौ) नगर आदि मे (चर्या) चर्या को (कुर्यात्) करे।

**भावार्थ**—इस पवित्र शरीर से रत्नत्रय की साधना होती है और शरीर की स्थिति आहार के बिना नही है, ऐसा जानकर यतिगण द्रव्य, क्षेत्र और अपने शरीर की प्रकृति को जानकर प्रथम सूर्य के गमन से, अथवा पूर्णोदर (भोजन करके) बालको को खेलते हुये देखकर वा गृहस्थियो के बलिकर्म पूर्ण हुआ है उससे वा उनके घरो मे धुंआ या मूशलादि की आवाज शात हो गयी हो, उससे भिक्षा का समय जान ले। तत्पश्चात् ग्राम के बाहर मलमूत्र करके अपने शरीर की शुद्धि करें। एव अपने शरीर के पूर्वापर भाग को देखकर सम्यक् प्रकार से शरीर को पोछकर, पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर, एकाग्रचित्त होकर अत्यन्त धैर्य के साथ अदीन होता हुआ अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से नगर ग्राम गली आदि मे चर्या के लिये भ्रमण करें ॥९७-९८-९९-१००॥

वर्येर्यासमितिर्भीतिभ्रान्तिप्रीत्यादिर्दाजतः ।
भटकुक्कुटॅडिभस्त्रीयुद्धनृत्यादिवीक्षणे ॥१०१॥

विहायोल्लंघनं जानुदेशादुन्नतवस्तुनः ।
नाभिनीचं च संकीर्णद्वारं मार्गं च दुर्गमम् ॥१०२॥

परिहृत्य च दूरेण कासराद्युग्रशृङ्गिणः ।
कुञ्जरोष्ट्रतुरंगाग्नींश्चोन्मत्तश्च नृपोत्रिणः ॥१०३॥

कुलं तलारकारुणां सूनामैरेयकारिणाम् ।
त्यक्त्वा प्रसूतिकावन्दिवादित्रत्रयजीविनाम् ॥१०४॥

प्रपापण्याङ्गनाऽनाथाऽव्रतिकाऽभक्तमन्दिरम् ।
वार्यमाणं विवाहादिमंगलं लोकनिन्दितम् ॥१०५॥

यज्ञभोजनशालां च कदर्यमृतकालयम् ।
बद्धं गेह कवाटादिस्थगितादिकमीदृशम् ॥१०६॥

अतिप्रसंगसंक्लेशावज्ञादुःकीर्त्यसंयमः ।
श्रुतलोकविरोधाद्या यत्स्युस्तद्गेहसश्रयात् ॥१०७॥

क्रमेण योग्यागारालिं पर्यटन्प्रांगणं मितम् ।
विशेन्मौनी विकारांगसंज्ञायाच्ञ्योज्झितो यतिः ॥१०८॥

**अन्वयार्थ**—(भटकुक्कुटॅडिभस्त्रीयुद्धनृत्यादिवीक्षणे) योद्धा, मुर्गा, बत्तख और स्त्रियो के युद्ध नृत्य आदि के देखने मे (भीतिभ्रान्तिप्रीत्यादिर्यजित.) भय, भ्रान्ति और प्रीति आदि से रहित (वर्या) श्रेष्ठ (ईर्यासमिति) ईर्यासमिति से युक्त (जानुदेशात्) जानु देश से (उन्नतवस्तुत.) उन्नतवस्तु का (उल्लंघनं) उल्लघन को (च) और (नाभिनीच) नाभि से नीचे वाले स्थान को (संकीर्णद्वार) संकीर्ण दरवाजे को (च) और (दुर्गम) दुर्गम (मार्गं) मार्ग (च) और (कासराद्युग्रशृंगिण) भैंसादि उग्र सीगवालो को (कुञ्जरोष्ट्रतुरंगाग्नीन्) हाथी, ऊँट, घोडा और अग्नि को (उन्मत.) उन्मत्त को (च) और (नृपोत्रिण) सूअर को (दूरेण) दूर से (परिहृत्य) छोडकर (तलारकारूणा) तलार आदि कारु शूद्रो के (सूनामैरेयकारिणाम्) पचसूना, मदिरा आदि का काम करने वालो के (प्रसूतिकावन्दिवादित्रत्रयजीविनाम्) प्रसूतिका, वन्दी, वादित्र इन तीन की आजीविका करने वालो के (कुल) कुल को तथा (प्रपापण्याङ्गनाऽनाथाऽव्रतिकाऽभक्तमन्दिरम्) प्रपा, वेश्या, अनाथ, अव्रती (पाखण्डी) और अभक्त लोगो के घर को (वार्यमाणं) जिसमे जाना निषिद्ध हो (विवाहादिमगलं) जिसमे विवाहादि मगल कार्य हो रहे हो (लोकनिन्दित) लोकनिन्दित हो ऐसे घरो को (च) और (यज्ञभोजनशाला) यज्ञ, भोजनशाला को (कवाटादिस्थगितादिक) कपाटादि से स्थगितादि (कदर्यमृतकालयम्) खोटा स्वामी और मृतकालय (ईदृश) ऐसे (बद्ध) बन्द किये हुये घर को और (तद्गेहसश्रयात्) उस घर के सश्रय से (अतिप्रसगसक्लेशावज्ञादु कीर्त्यसंयम) अतिप्रसग, संक्लेश, अवज्ञा, अयशस्कीर्ति, असयम (श्रुतलोकविरोधाद्या) श्रुत और लोक विरोधादि (स्यु.) होवें (तत्) उस (गेह) घर को (त्यक्त्वा) छोड़कर (विकारागसज्ञायाच्ञ्योज्झित) विकार, शरीर का सकेत याचना, आदि से रहित (यति.) साधु (मौनी)

मौनपूर्वक (क्रमेण) क्रम से (योग्यागारालिं) योग्य घरो की पक्ति मे (पर्यटन्) भ्रमण करता हुआ (मितं) प्रमित (प्रागण) आंगन मे (वशेत्) प्रवेश करे।

**भावार्थ**—आहार के लिये जाते समय साधु मार्ग मे स्त्रियो के नृत्यगान, योद्धाओ का युद्ध, पशुओ के खेलो मे हर्ष विषाद नही करता हुआ उत्कृष्ट ईर्यासमिति से गमन करे। जानु प्रदेश से उन्नत स्थान का उल्लघन नही करे। नाभि से नीचे प्रदेश मे संकीर्णद्वार मे प्रवेश नही करें। सीग वाले भेस, गाय आदि से अवरुद्ध, हाथी, घोडा, ऊँट, अग्नि, मदोन्मत मानव, सुअर आदि से व्याप्त, मार्ग को दूर से छोड देवे। भिक्षा के लिये गमन के समय तलार, कारुलोग, मदिरा आदि के व्यापार करने वाले, प्रसूतिका, वादित्र आदि की आजीविका करने वाले, वेश्या, हीन, दीन, अनाथ, अव्रती, पाखण्डी, अभक्त के घरो मे प्रवेश नही करना चाहिये। तथा जो यज्ञशाला हो, जिस घर मे विवाहादि उत्सव हो रहा हो, जो घर लोक निन्दित हैं, जिसमे सार्वजनिक भोजनशाला है, जिस घर के कपाट बन्द हो, जिस घर मे कोई मरा हुआ हो, जिस घर का स्वामी कृपण हो, तथा जिस मे प्रवेश करने से सक्लेश परिणाम, तिरस्कार, अपयश और संयम की विराधना होती हो, उस घर मे साधु आहार के लिये प्रवेश नही करते है। अर्थात् ऐसे घरो को छोडकर याचना और अगविकार से रहित साधु योग्य घरो की पक्ति मे भ्रमण करता हुआ शास्त्रोक्त विधि से श्रावक के आगन मे प्रवेश करे ॥१०१-१०२-१०३-१०४ १०५-१०६-१०७-१०८॥

**इन्दोर्वन्द्या गतिर्यद्वन्नसत्रक्षेत्रचारिणः।**
**तद्वन्मुनेश्च पुण्यानुग्राह्यगेहानुसारिणः ॥१०९॥**

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जिस प्रकार (नक्षत्रक्षेत्रचारिण) नक्षत्रक्षेत्र मे गमन करने वाले (इन्दो) चन्द्रमा की (गति.) गति (वन्द्या) वन्दनीय है (तद्वत्) उसी प्रकार (पुण्यानुग्राह्यगेहानुसारिण) अपने किये हुये पुण्य की अनुकूलता से गृहस्थों के घर मे अनुसरण करने वाले (मुने) मुनि की गति (गमन) वन्दनीय है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार नक्षत्र क्षेत्र मे गमन करने वाले चन्द्रमा की गति वन्दनीय होती है। उसी प्रकार अपने पुण्य के अनुकूल गृहस्थो के घर मे सचार करने वाले दिगम्बर साधुओ की गति वन्दनीय होती है ॥१०९॥

**यथा वाऽदीनता रत्नदर्शकव्यवहारिणः।**
**गात्रदर्शनमात्राल्पकांक्षाभिक्षोस्तथैवसा ॥११०॥**

**अन्वयार्थ**—(वा) अथवा (यथा) जैसे (रत्नदर्शकव्यवहारिण) रत्नो के दिखाने का व्यवहार करने वाले के (अदीनता) अदीनता होती है (तथैव) उसी प्रकार (गात्रदर्शनमात्राल्पकाक्षाभिक्षो) शरीर के दिखाने मात्र अल्पकाक्षा भिक्षु के (सा) वह अदीनता होती हैं।

**भावार्थ**—जिस प्रकार रत्नो का व्यापारी अदीनतापूर्वक अपने रत्नो को दिखाना है लेशमात्र भी उसके मुखपर दीनता नही रहती है, उसी प्रकार आहार को जाते समय दिगम्बर साधु के मुखपर लेशमात्र भी दीनता या मलीनता नही होती है। श्रावक के घर द्वार पर अपने शरीर को दिखाकर दिगम्बर साधु शीघ्र आगे बढ जाता है ॥११०॥

**अदीनजैनमार्गस्थ प्राप्त्यप्राप्तिसमाशय।**
**क· किं कुत्र कथं मह्यं दास्यतीतीहनोज्झित· ॥१११॥**

**अन्वयार्थ**—(अदीनजैनमार्गस्थ) दीनतारहित जैन मार्ग मे स्थित (प्राप्त्यप्राप्तिसमाशय) प्राप्ति और अप्राप्ति मे समान आशयवाला साधु (क.) कौन (कुत्र) कहां पर (मह्यम्) मेरे लिये (किं) क्या (दास्यति) देगा (इति) इसप्रकार की

(ईहनोज्झित') ईहा से रहित होता है ।

**भावार्थ**—जैन मार्ग मे स्थित मुनिगण अदीन होते है । लाभ और अलाभ मे समभाव वाले होते हैं। मुझे कहाँ पर कैसा आहार मिलेगा आदि के विचार से रहित होते हैं ।।१११।।

**अस्थापितो निवर्त्तेत प्रविष्टं मन्दिरादिकम् ।**
**पुनर्न प्रविशेदन्यग्रामादींश्चाऽशनाशया ।।११२।।**

**अन्वयार्थ**—(प्रविष्टं) प्रविष्ट हुये (मन्दिरादिक) गृहस्थ के घर मे (अस्थापितः) यदि कोई स्थापित नही करे तो (निवर्त्तेत) वहा से निकल जाय (च) और (अशनाशया) आहार की इच्छा से (पुन.) फिर (अन्यग्रामादीन्) अन्यग्रामादि में (न) नही (प्रविशेत्) प्रवेश करे ।

**भावार्थ**—दिगम्बर मुनि किसी के घर मे आहार के लिये प्रवेश करता है और गृहस्थ उसका आदर नही करे तो वह उस घर से शीघ्र निकल जाता है और आहार की इच्छा से पुनः दूसरे ग्राम घर आदि मे प्रवेश नही करता है ।।११२।।

**धारयेन्नैव विण्मूत्रवेगं निर्गत्य तं वहिः ।**
**व्युत्सर्जेन्न विशेत्पश्चात्स्वस्थानं धीरधीर्व्रजेत् ।।११३।।**

**अन्वयार्थ**—(धीरधी) बुद्धिमान (विण्मूत्रवेग) मलमूत्र के वेग को (न) नही (धारयेत्) रोके (वहि) वाहर (निर्गत्य) जाकर (त) मलमूत्र को (व्युत्सृजेत्) विसर्जन करे। (पश्चात्) पुन आहार के लिये (न) नही (विशेत्) प्रवेश नही करे (स्वस्थान) अपने स्थान को (व्रजेत्) जावे ।

**भावार्थ**—गोचरी के समय जाते समय यदि मलमूत्र की वाधा हो जाय तो उसके को रोकना नही चाहिये। ग्राम के वाहर जाकर मलमूत्र करके आना चाहिये । पुन. आहार के लिये नही जाना चाहिये । धीर वीर साधु को मलमूत्र करके अपने स्थान पर चला जाना चाहिये ।।११३।।

**कुलं विषण्णव्यग्रोग्रतार्कुकादिकुलाकुलम् ।**
**सन्मार्जनाद्यवद्यं च वन्द्यमानोऽपि नो विशेत् ।।११४।।**

**शृंगारनृत्यचित्रादिशालामुद्यानमिन्द्रिय-**
**द्विपेन्द्रक्रीडनस्थानं स्थानमन्यच्च तादृशम् ।।११५।।**

**अन्वयार्थ**—(विपण्णव्यग्रोग्रतार्कुकादिकुलाकुल) विपादी, व्याकुल, क्रूर, वन्दी आदि के समूह से युक्त (कुल) कुल मे (सन्मार्जनाद्यवद्यं) झाडू आदि मे सावद्य जिसमे हो रहे हो ऐसे घर मे, (शृंगारनृत्यचित्रादिशाला) शृंगार, नृत्य, चित्र आदि शाला मे (इन्द्रियद्विपेन्द्रक्रीडनस्थान) इन्द्रियरूपी हाथी के क्रीडा करने का स्थान ऐसे (उद्यान) उद्यान में (च) और (अन्यत्) दूसरे भी (तादृशं) वैसे (स्थान) स्थान मे (वद्यमानं) वन्दना करने पर (अपि) भी साधु (नो) नहीं (विशेत्) प्रवेश करे ।

**भावार्थ**—जिस कुल मे किसी कारण से विपाद हो रहा है, जहाँ मानव आकुल है, जो क्रूरता से युक्त है, वन्दी आदि का घर है, जहाँ पर झाडू देना, चक्की पीसना आदि सावद्य कार्य हो रहे हैं, जहा शृंगार नृत्यादि हो रहे हैं, ऐसे घरो मे तथा जो इन्द्रियरूपी हाथी को मदोन्मत्त करने वाला हो, ऐसे उद्यान आदि मे और भी शास्त्रविरुद्ध कुल या स्थान मे वन्दना सत्कार करने पर भी साधु प्रवेश नही करे अर्थात् ऐसे स्थान दिगम्बर साधुओं के आहार के योग्य नहीं है ।।११४-११५।।

प्रतिग्रहप्रणामाभ्यां स्थापितो योग्यदातृभिः ।
तर्णकैलकवालादीननुल्लंघ्य विशेद्गृहम् ।।११६।।

**अन्वयार्थ**—(योग्यदातृभिः) योग्य दाताओ के द्वारा (प्रतिग्रहप्रणामाभ्या) पडगाहन, नमस्कार आदि के द्वारा (स्थापित) ठहराया हुआ साधु (तर्णकैलकवालादीन्) गाय, भैंस तथा बकरी आदि के छोटे बच्चो को (अनुल्लंघ्य) उल्लघन नही करके (गृहं) घर मे (विशेत्) प्रवेश करे ।

**भावार्थ**—योग्य दाता के द्वारा भक्तिपूर्वक पडगाहन और नमस्कार करके ठहराया हुआ साधु बालक, छोटा बच्चा, गाय, मेष, भैंस आदि के बच्चो को उल्लंघन करके घर मे प्रवेश नही करे ।।११६।।

प्रकाशजनसंचारवत्यशुच्यङ्गिवर्जिते ।
विस्तीर्णे संवृते शस्ते सम्मते तत्र संवृतः ।।११७।।

आत्मोचिताऽऽसनाऽऽसीनो दातृप्रक्षालितक्रमः ।
ऊर्ध्वाधःपार्श्वदिक्कोणनिक्षेपाद्यनिरीक्षणः ।।११८।।

वर्णी पूर्णप्रतिज्ञोऽथ सिद्धभक्ति विधाय तत् ।
प्रत्याख्यानं विनिष्ठाप्य प्रेरितो भक्तदातृभिः ।।११९।।

समांगुलचतुष्कांतरांघ्रिः स्थित्वा समुद्धृते ।
पात्रात्पिडे करद्वन्द्वमानाभेर्धौतमुत्क्षिपेत् ।।१२०।।

**अन्वयार्थ**—(प्रकाशजनसंचारवति) प्रकाशयुक्तजनसंचारवाले (अशुच्यंगिवर्जिते) अपवित्र वस्तु और प्राणी से रहित (विस्तीर्णे) विस्तृत (संवृते) आच्छादन सहित (शस्ते) प्रशसनीय (सम्मते) अभीष्ट (तत्र) उस घर मे (संवृत) संकुचित (आत्मोचिताऽऽसनाऽऽसीने) अपने उचित आसन पर बैठा हुआ (दातृप्रक्षालितक्रम) दाता के द्वारा प्रक्षालित है चरण जिसके (ऊर्ध्वाध पार्श्वदिक्कोणनिक्षेपाद्यनिरीक्षण) ऊपर नीचे पसवाडे मे दिशा के कोणादि मे रखी हुई वस्तु का किया है निरीक्षण जिसने ऐसा (पूर्णप्रतिज्ञ) पूर्ण हो गई है प्रतिज्ञा जिसकी ऐसा (वर्णी) साधु (अथ) इसके बाद (सिद्धभक्ति) सिद्ध भक्ति को (विधाय) करके (तत्) उस (प्रत्याख्यान) प्रत्याख्यान का (विनिष्ठाप्य) निष्ठापन करके (भक्तदातृभि) भक्त दाता के द्वारा (प्रेरित) प्रेरित हुआ (समांगुलचतुष्कांतरांघ्रि) सम अगुल चतुष्क के अन्तर के चरणो से (स्थित्वा) खड़े होकर (पात्रात्) पात्र से (पिंडे) पिंड के (समुद्धृते) ग्रहण करने पर (धौत) धोये हुये (करद्वन्द्व) दोनो हाथो को (आनाभे) नाभि के ऊपर (उत्क्षिपेत्) रखे ।

**भावार्थ**—जो घर प्रकाश के संचार युक्त है, अशुचि द्रव्य से रहित है, विस्तृत है, आच्छादन आदि से युक्त है, प्रशसनीय है, ऐसे घर मे अपने उचित आसन पर बैठ जाय। तदनन्तर दाता के द्वारा जिसके चरणो का प्रक्षालन और पूजन की गई है ऐसा साधु ऊपर, नीचे आदि चारो तरफ की दिशाओका अवलोकन करे कि कोई अशुचि वस्तु तो यहा पर नही है। तदनन्तर जिसकी पूर्व दिन मे ग्रहीत प्रतिज्ञापूर्ण हो चुकी है, ऐसा सयमी दाता के द्वारा प्रेरणा करने पर हे स्वामिन्! आहार जल शुद्ध है, भोजन ग्रहण करो इत्यादि वचनो से प्रेरित होकर सिद्ध भक्ति करके प्रत्याख्यान का निष्ठापन करे तथा हाथों को धोकर चार अगुल प्रमाण दोनो चरणो के अन्तर से खडा होकर पात्र से आहार पिंड ग्रहण करते समय दोनो हाथो को नाभि के ऊपर रखे ।।११७-११८-११९-१२०।।

**पुटं पाण्योरभित्वाऽन्यक्षिप्तं भुंजीत तं मतम् ।**
**विना विकारवेगार्त्तिमांद्याऽऽसक्तिस्वनादिभिः ॥१२१॥**

**अन्वयार्थ**—(पाण्यो ) दोनो हाथो के (पुटं) पुट को (अभित्वा) भेद नही करके (अन्यक्षिप्तं) दूसरे के द्वारा दिये हुये (मत) शास्त्रोक्त (त) उस आहार पिंड को (विकारवेगार्तिमाद्याऽऽसक्तिस्वनादिभिः) विकार, शीघ्रता, वेदना मदोन्मतता, आसक्ति के शब्दादि के (बिना) बिना (भु जीत) आहार करे ।

**भावार्थ**—आहार करते समय दोनो हाथो की अजुलि बाँधे अंजुलि नही छोडे । विकार, शीघ्रता, दुःख, शोक, मदोन्मतता, आसक्ति और चुर-२ आदि शब्द से रहित होकर दूसरे के द्वारा दिये हुये आहार पिंड को शात भावो से भक्षण करें ॥१२१॥

**यावदस्ति वलं स्थातुं मिलत्येतत्करद्वयम् ।**
**तावद्भुंजे त्यजाम्यन्यथेति संधा यतेर्यतः ॥१२२॥**

**अन्वयार्थ**—(यावत्) जबतक (स्थातुं) खडे रहने की (बल) शक्ति (अस्ति) है (एतत्) यह (करद्वय) दोनो हाथ (मिलति) परस्पर अजुलि वद्ध होते हैं (तावत्) तबतक (भु जे) आहार करूंगा (अन्यथा) ऐसा नही हुआ तो (त्यजामि) आहार छोडता हूँ (यतः) क्योकि (इति) इस प्रकार की (यतेः) यति की (सधा) प्रतिज्ञा होती है ।

**भावार्थ**—यतिराज के इस प्रकार की प्रतिज्ञा होती है, कि जबतक मेरे पैरो मे खडे रहने की शक्ति है, तथा मेरे हाथो मे परस्पर मिलने की ,अजुलि जुडने की शक्ति है, तबतक ही मैं आहार ग्रहण करूंगा । इस शक्ति के अभाव मे आहार पानी का त्याग है ॥१२२॥

**पुरा रत्नसुवर्णादिनानाभाजनभाजिनः ।**
**दीनता सज्यते तेभ्यो हीनभाजनभोजने ॥१२३॥**

**अन्वयार्थ**—(पुरा) पहिले गृहस्थावस्था मे (रत्नसुवर्णादिनानाभोजनभाजिनः) रत्न, सुवर्ण आदि नाना प्रकार के भाजनों मे भोजन करने वाले के (तेभ्य ) उन भाजनो से 'हीनभाजनभोजने) भाजन मे भोजन करने पर (दीनता) दीनता (सज्यते) प्रकट होती हैं ।

**भावार्थ**—पूर्व मे अनेक प्रकार के नानारत्न सुवर्ण आदि मे भोजन करने वाले के उनपात्रो से हीनपात्रो मे भोजन करने पर दीनता प्रगट होती है, इसलिये दिगम्बर साधु पाणिपात्र मे भोजन करते है ॥१२३॥

**तत्सन्नविश्वगेहाप्यं तद्गृहक्षालनादिना ।**
**यत्संगाऽसंयमो च स्तस्तस्मात्पाणिपुटाशनम् ॥१२४॥**

**अन्वयार्थ**—(सत्) समीचीन (तत्) वह भाजन (विश्वगेहाप्य) समस्त देश मे प्राप्य (न) नही है (तद्ग्रह-क्षालनादिना) उस वर्तन के ग्रहण मे प्रक्षालनादि के द्वारा (यत्सगाऽसयमौ) जिसके परिग्रहण से दो प्रकार का असयम (स्तः) होता है (तस्मात्) इसलिये (पाणिपुटाशनं) साधुगण हाथ मे भोजन करते हैं ।

**भावार्थ**—समीचीन भाजन समस्त घरो से प्राप्त नही होते हैं और उसको पास मे रखने से उसके प्रक्षालन रक्षणादि से भाव और द्रव्य दोनो प्रकार का असयम होता है । इसलिये साधुगण अपने हाथो में भोजन करते है ॥१२४॥

**कान्तातारुण्यलावण्यलीलालोकनजल्पन- ।**
**स्मेरास्याब्जपदन्यासविलासाद्यनिरीक्षणः ।।१२५ ।।**

**गौर्यथाऽत्ति तृणव्रात क्षिप्तं भुंजीत यत्नतः ।**
**तथाऽऽन्नाद्यमनास्वाद्यगोचरज्ञोयथोचितम् ।।१२६।।**

**अन्वयार्थ**—(कान्तातारुण्यलावण्यलीलालोकनस्मेरास्याब्जपदन्यासविलासाद्यनिरीक्षण ) स्त्रियो के तारुण्य, लावण्य, लीला को देखना, बात करना, हंसीयुक्त मुखरूपी कमल का तथा पदन्यास हाव भाव आदि को नही देखती हुयी (यथा) जैसे (गौ.) गाय (तृणव्रात) घास के समूह को (अत्ति) खाती है (तथा) उसी प्रकार (गोचरज्ञ ) गोचरी जाननेवाला साधु (यथोचित) उचित (क्षिप्त) हस्तपुट मे रखे हुये (अन्नाद्य) अन्नादि को (अनास्वाद्य) स्वाद नही लेकर (यत्नत ) यत्नपूर्वक (भु जीत) भोजन करे ।

**भावार्थ**—स्त्रियो के तारुण्य, लावण्य, लीला को देखना, बात करना, हंसीयुक्त मुखरूपी कमल तथा हाव भाव विलास विभ्रम आदि को नही देखती हुयी जैसे गाय घास के समूह को खाती है, उसी प्रकार साधु स्त्रियो की तरुणता, लावण्य, हाव[1] भाव[2] विलास[3] विभ्रम[4] को नही देखता हुआ यथोचित श्रावक के द्वारा हस्तपुट मे रखे हुये आहार का स्वाद नही लेता हुआ समता भाव से खाता है, वह गोचरी वृत्ति कहलाती है ।।१२५-१२६।।

**भृङ्गः पुष्पासवं यद्वत् गृह्णात्येकगृहेऽशनम् ।**
**गृहिबाधां विना तद्वद्भुञ्जीत भ्रमराशनः ।।१२७।।**

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (भृङ्ग ) भ्रमर (पुष्पासप) पुष्प के रस को (ग्रह्णाति) ग्रहण करता है (तद्वत्) उसीप्रकार (भ्रमराशन ) भ्रामरीवृत्ति से आहार लेने वाला साधु (गृहवाधा) गृहस्थ की बाधा के (विना) बिना (एकगृहे) एक घर मे (अशन) अशनं (भुञ्जीत) खाते हैं ।

**भावार्थ**—जिसप्रकार पुष्प को बाधा न देकर भ्रमर पुष्प की पराग का आस्वादन करता है उसीप्रकार गृहस्थियो को बाधा न देकर एक घर मे साधु आहार करते हैं, उसको भ्रामरीवृत्ति कहते हैं ।।१२७।।

**यथालब्धेन भक्तेन कुर्यादुदरपूरणम् ।**
**यद्वन्मृदादिना लोकैः क्रियते श्वभ्रपूरणम् ।।१२८।।**

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (लोकैः) लोगो के द्वारा (मृदादिना) मिट्टी आदि से (श्वभ्रपूरणम्) गढ्ढे का पूरण (क्रियते) किया जाता है उसीप्रकार (यथालब्धेन) जैसे रूखा सूखा अन्न प्राप्त हुआ है उस (भक्तेन) अन्नसे (उदरपूरण) साधु उदर पूर्ति (कुर्यात्) करें यह गर्तपूरणवृत्ति है ।

**भावार्थ**—जिसप्रकार मानव के द्वारा मिट्टी आदि से गड्ढा भराजाता है उसीप्रकार साधुगण प्रासुक रूखा सूखा जैसा अन्न प्राप्त हुआ है उससे उदररूपी गर्त को भरता है उसको गर्तपूरणवृत्ति कहते हैं ।।१२८।।

---

१ मुख विकार का नाम हाव है ।
२ चित्त मे उत्पन्न विकार भाव है ।
३ नेत्र जन्य विकार विलास है ।
४ भ्रू युगान्त होने वाली विकृति विभ्रम है ।

तोषरोषव्यपेतस्य ज्ञानध्यानप्रसिद्धये ।
इत्येषा यत्नतो भुक्तिरेषणासमितिर्मता ।।१२९।।

**अन्वयार्थ**—(ज्ञानध्यानप्रसिद्धये) ज्ञान और ध्यान की प्रसिद्धि के लिये (यत्नत.) यत्नपूर्वक (तोषरोषव्यपेतस्य) हर्ष विषाद रहित साधु की (इति) इस प्रकार (भुक्ति) आहार है (एषा) यह (एषणासमिति.) एषणासमिति (मता) मानी है ।

**भावार्थ**—इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से हर्ष विषाद रहित साधु का यत्नपूर्वक आहार है वह एषणा समिति है ।।१२९।।

"आदान निक्षेपण समिति"

विहायाऽऽदाननिक्षेपौ सहसाऽनवलोक्य च ।
दुःप्रमार्जनमप्रत्यवेक्षणं चाद्र मानसः ।।१३०।।

विधायोपधितद्देशवीक्षणं प्रतिलेखनैः ।
लब्धस्वेदरजः सूक्ष्मलतातिमृदुभिः पुनः ।।१३१।।

तौ प्रमृज्योपधेर्यत्नान्निक्षेपाऽऽदानयोः कृतिः ।
यतेरादाननिक्षेपणसमितिः परिकीर्त्तिता ।।१३२।।त्रिकम्।।

**अन्वयार्थ**—(दुष्प्रमार्जन) सम्यकप्रकार से मार्जन नही करके (अप्रत्यवेक्षण) वार वार नही देखकर (अनवलोक्य) वहाँ के स्थान का अवलोकन नही करके (आदाननिक्षेपौ) आदान निक्षेप को (विहाय) छोडकर (उपधितद्देशवीक्षण) उपधि और उस देश का निरीक्षण (विधाय) करके (पुन ) फिर (लब्धस्वेदरज ) पसीना और रेत को हटाने वाली (सूक्ष्मलतातिमृदुभि:) सूक्ष्मलता आदि से कोमल (प्रतिलेखनै ) पिच्छिका के द्वारा (तौ) उपाधि और क्षेत्र को (प्रमृज्य) स्वच्छकरके (यत्नात्) यत्नपूर्वक (उपधे ) उपाधि का (निक्षेपादानयो ) निक्षेप और ग्रहण करने को (कृति ) पुण्य (यते.) यतिकी (आदाननिक्षेपणसमिति.) आदाननिक्षेपणसमिति (परीकीर्त्तिता) कही है ।

**भावार्थ**—सम्यक्प्रकार से भूमि को देखकर, वार वार भूमिका निरीक्षण करके, कोमल पिच्छिका से भूमिका का मार्जन करके यत्नपूर्वक कमण्डलु पुस्तकादिका का रखना, उठाना आदान निक्षेपण समिति है ।।१३०-१३१-१३२।।

"व्युत्सर्ग समिति"

कृष्टप्लुष्टादिदेशेऽगिच्छिद्रहीने घने च यः ।
व्युत्सर्गोऽङ्गमलादे स्याद्व्युत्सर्गसमितिर्यतेः ।।१३३।।

**अन्वयार्थ**—(अगिच्छिद्रहीने) प्राणियो के छिद्र से रहित (घने) घन (कृष्टप्लुष्टादिदेशे) हल से जोते हुये क्षेत्र मे (अगमलादे ) शरीर के मलादि का (य·) जो (व्युत्सर्ग·) त्याग करना है वह (यते.) यति की (व्युत्सर्गसमिति ) व्युत्सर्गसमिति है ।

**भावार्थ**—प्राणियो के छिद्र से रहित, कठिन, हलादि से उकेरित, क्षेत्र मे शरीर के मलादि का क्षेपण करना व्युत्सर्गसमिति है ।।१३३।।

**वीक्षितेऽस्मिन्दिने हस्तबाह्यस्पर्शपरीक्षिते ।**
**रात्रौ सत्यंगिनो नो वेत्यगिहीने तमुत्सृजेत् ॥१३४॥**

**सोंऽग्याढ्यश्चेद्द्वितीयेऽत्र तृतीये वांगिसंगते ।**
**विवशो विमृजेदल्पप्रायश्चितो यतिस्ततः ॥१३५॥**

**अन्वयार्थ**–(रात्रौ) रात्रि के (सति) होने पर (अस्मिन्) इसी पूर्वोक्त (दिने) दिन मे (वीक्षिते) देखे हुए (हस्तबाह्यस्पर्शपरीक्षिते) हाथ के बाह्य भाग के स्पर्श से परिरक्षित क्षेत्र मे (अंगिन) प्राणी (नो) नही है (इति) इसप्रकार (अगित्रहोने) प्राणिरहित क्षेत्र मे (त) मलमूत्र को (उत्सृजेत्) छोडे (स·) वह क्षेत्र (चेत्) यदि (अंगाढ्य:) प्राणियो से व्याप्त हो तो (द्वितीये) दूसरे क्षेत्र मे (अत्र) यहा पर (अंगिसगते) प्राणियो का सग हो तो (तृतीये) तीसरे क्षेत्र मे (यदि) यदि (विवश:) विवश होकर (विमृजेत्) मलमूत्र करे तो (यति·) यति (अल्पप्रायश्चित:) अल्पप्रायश्चित का भागी होता है।

**भावार्थ**—यदि एक क्षेत्र प्राणियो से व्याप्त हो तो दूसरे क्षेत्र को देखे, यदि दूसरा क्षेत्र भी प्राणियो से व्याप्त हो तो तीसरे क्षेत्र को देखे यदि वह भी जीवो से व्याप्त हो और विवश होकर साधु को रात्रि मे मलमूत्र करना पडे तो स्वल्प प्रायश्चित ग्रहण करना पडता है ।।१३४-१३५।।

**यद्वद्वज्रतनुत्राणः शराऽऽसाराऽपराजितः ।**
**यतिः समितिगात्रत्रस्तद्वत्पापेषु दुर्जयः ॥१३६॥**

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (वज्रतनुत्राण) वज्र के कवच वाला (शराऽऽसारापराजित:) वाणों की वर्षा से पराजित नही होता है (तद्वत्) उसी प्रकार (समितिगात्रत्र) समिति से रक्षित शरीर वाला (यति) यति (पापेषु) पापो मे (दुर्जय) दुर्जयी होता है ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार वज्र का कवच धारण करने वाला योद्धा रण मे वाणो की वर्षा होने पर भी अभेद्य होता है । उसी प्रकार समितिरूपी कवचधारी सयमी महीतल पर विहार करता हुआ भी पापो से लिप्त नही होता है।१३६।

**दोषेभ्यो गोपनं रक्षाव्रतानां गुप्तिरिष्यते ।**
**सा मानसवचः कायदंडत्रितयदंडनी ॥१३७॥**

**अन्वयार्थ**—(दोषेभ्य) दोषो से (व्रताना) व्रतो का (गोपन) गोपनं (रक्षा) रक्षा करना (गुप्ति:) गुप्ति (इष्यते) कही जाती है (मानसवच कायदण्डत्रितयदडनी) मन वचन काय दण्ड तीनो का विरोध (सा) वह गुप्ति है ।

**भावार्थ**—व्रतो की रक्षा का नाम गुप्ति है । व्रतो के घातक मन, वचन और काय हैं, इन तीनो का विरोध मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति है ।।१३७।।

**मनः पंचेन्द्रियेभेन्द्र स्वैराचारनिवारिणी ।**
**स्वगोचरे मनोगुप्तिर्ज्ञानध्यानरतामतिः ॥१३८॥**

**अन्वयार्थ**—(स्वगोचरे) अपने विषयो मे (मन पंचेन्द्रियेभेन्द्रस्वैरचारनिवारिणी) मन और पचेन्द्रियरूपी गज की स्वगोचर प्रवृत्ति रोकना अथवा ज्ञानध्यान मे लीन होना (मनोगुप्ति.) मनोगुप्ति है ।

**भावार्थ**—मनोगुप्ति दो प्रकार की है। अपने-२ विषयो मे प्रवृत्ति करने वाले पंचेन्द्रिय और मन को रोकना मनोगुप्ति है। तथा ज्ञानध्यान मे लीन होना मनोगुप्ति हैं ।।१३८।।

तथैवोक्तमाशाधरैः रागादि का त्याग करना तथा शास्त्रो का अध्ययन करना मनोगुप्ति हैं। पचेन्द्रिय के विषय रागद्वेप सकल्प विकल्प आदि समस्त बाह्य वस्तुओ मे जाते हुये मन को विशुद्धि के द्वारा रोककर सद्ध्यान और अध्ययन से मन को स्थिर करना मनोगुप्ति हैं।

जिस प्रकार लोह निर्मित कवच को धारण किया हुआ योद्धा युद्ध मे वाणो से छिदता भिदता नही है। उसी प्रकार मनोगुप्तिरूप कवच को धारण करनेवाला सयमी असयम के वाणो से भेदित नही होता है।

अतुल सुख की खान स्वर्गमोक्ष की माता, जिन गणधर द्वारा सेवनीय, समस्त कर्मों की नाशक, सकल व्रतो के निर्मबनानेवाली मनोगुप्ति को निरन्तर योगशुद्धि के लिये योगी लोग प्रयत्नपूर्वक सेवन करें।

**गजाश्वशस्त्रशास्त्रादिव्याख्यायाः क्लेशकारिणः।**
**सत्यस्याऽपि निवृत्तिर्वाग्गुप्तिर्वाचंयमोऽथ वा ।।१३९।।**

**कायावद्यक्रियात्यागः कायगुप्तिर्मताऽथ वा।**
**कायोत्सर्गः समुत्सर्गः सगस्य द्विविधस्य यः ।।१४०।।**

**अन्वयार्थ**—(गजाश्वशस्त्रशास्त्रादिव्याख्याया ) गज, अश्व, शस्त्र, शास्त्रादि व्याख्या से तथा (सक्लेशकारिण ) सक्लेशकारी (सत्यस्य) सत्य की (अपि) भी (निवृत्ति ) निवृत्ति (वाग्गुप्ति·) वचनगुप्ति है (अथवा) अथवा (वाचयम ) वचन बोलने का त्याग करना वचनगुप्ति है (कायावद्यक्रियात्याग ) कायजनित पाप क्रियाओ का त्याग करना (कायगुप्तिर्मताऽथ) कायगुप्ति है (अथवा) अथवा, (द्विविधस्य) दो प्रकार के (संगस्य) परिग्रह का (समुत्सर्ग ) भले प्रकार त्याग करना, (कायोत्सर्ग.) कायोत्सर्ग करना (कायगुप्ति.) यह कायगुप्ति (मता) कही है।

**भावार्थ**—गज, अश्व, शस्त्र शास्त्रादि व्याख्या से तथा सक्लेशकारी सत्य की निवृत्ति वचनगुप्ति है। अथवा वचन बोलने का त्याग करना वचनगुप्ति है। काय सम्बन्धी सावद्य क्रियाओ का त्याग करना काय गुप्ति है। अथवा बाह्याभ्यन्तर उपधि का त्याग रूप कायोत्सर्ग कायगुप्ति है।

**पुरस्य परिखा रक्षा क्षेत्रस्य च वृत्तिर्यथा।**
**तथा व्रतानामेतास्तु गुप्तयो गुप्तयः स्मृताः ।।१४१।।**

**अन्वयार्थ**—(यथा) जिसप्रकार (पुरस्य) पुर की (रक्षा) रक्षा (परिखा) खाई (च) और (क्षेत्रस्य) क्षेत्र की (रक्षा) रक्षा (वृत्तिः) वाढ हैं (तथा) उसीप्रकार (व्रताना) व्रतो की (गुप्तय·) रक्षिका (एता) ये (गुप्तय ) गुप्तिया (स्मृताः) मानी हैं।

**भावार्थ**—जिस प्रकार नगर की रक्षा करने वाली खाति का है, खेत की रक्षिका वाढ है उसीप्रकार व्रतो की रक्षिका गुप्तियां हैं ।।१४१।।

**"परिहारविशुद्धि चारित्र का लक्षण"**

**परिहारेण दोषाणां शुद्धिर्यस्मिन्स सयमः।**
**परिहारविशुद्धिः स्यादृद्धिरोहृग्विधस्य सा ।।१४२।।**

भुक्त्वा प्रोज्झितभोगस्य त्रिंशद्वर्षस्य जन्मनः ।
प्रत्याख्यानाख्यपूर्वाम्बुराशिपारगयोगिनः ॥१४३॥

समापृथक्त्वं तीर्थेशपादपार्श्वनिवासिनः ।
व्यक्त्वा सन्ध्यात्रयं नित्यं गव्यूतिद्वयगामिनः ॥१४४॥त्रिकम्।

**अन्वयार्थ**—(यस्मिन्) जिस चारित्र मे (परिहारेण) परिहार से (दोषाणां) दोषो की (शुद्धिः) शुद्धि है (स) वह (सयम) सयम (परिहारविशुद्धि) परिहार विशुद्धि है (सा) वह (परिहारविशुद्धिः) परिहार विशुद्धि (जन्मनः) जन्म से (त्रिंशद्वर्षस्य) तीस वर्ष तक (भुक्त्वा) भोगो को भोगकर (प्रोज्झितभोगस्य) छोड दिया है भोगों को जिसने (समापृथक्त्वं) सात आठ वर्ष तक (तीर्थेशपादपार्श्वनिवासिन) तीर्थंकर के चरणकमलो मे निवास करने वाला (सन्ध्यात्रयं) सध्यातीन को (व्यक्त्वा) छोडकर (नित्यं) नित्य (गव्यूतिद्वयगामिन.) दो कोश पर्यन्त गमन करने वाले (ईदृग्विधस्य) ऐसे (प्रत्याख्यानाख्यपूर्वाम्बुराशिपारगयोगिन) प्रत्याख्यान पूर्व नामक सागर के पारगामी साधु के (ऋद्धिः) ऋद्धि है ।

**भावार्थ**—जिस चारित्र मे दोषो के परिहार से शुद्धि होती है वह परिहार विशुद्धि सयम है । वह परिहार विशुद्धि सयम जन्म से लेकर तीस वर्ष की आयु पर्यन्त गृहस्थावस्था के उत्कृष्ट भोगो को भोगकर तदनंतर सासारिक भोगो, का त्यागकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर आठ वर्ष पर्यन्त तीर्थकर के चरणमूल मे प्रत्याख्यान नामक पूर्व को पढ़ा है तथा तीनो सध्या काल को छोडकर प्रतिदिन दो कोश नियमित रूप से विहार करता है ऐसे सयमी के परिहारविशुद्धि नामक ऋद्धि उत्पन्न होती है ॥१४२,१४३,१४४॥

जीवराशौ चरंश्चैष पापालेपो यथांभसि ।
वसत्सरोजिनीपत्रं पयोलेपविवर्जितम् ॥१४५॥

**अन्वयार्थ**—(एष.) यह परिहार विशुद्धि वाला (जीवराशौ) जीव राशि पर (चरन्) भ्रमण करता हुआ भी (पापालेप) पाप से लिप्त नही होता है (यथा) जिस प्रकार (अम्बसि) पानी मे (वसत्) रहने वाला (सरोजिनीपत्र) कमल पत्र (पयोलेपविवर्जित) पानी के लेप से रहित होता है ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार पानी मे रहता हुआ भी कमलपत्र पानी से लिप्त नही होता है, उसी प्रकार परिहार विशुद्धि वाला जीवो के समूह मे विहार करता हुआ भी पाप समूह से लिप्त नही होता है । परिहार विशुद्धि वाला मुनि रात्रि मे गमन नही करता है । इसके चातुर्मास मे एक स्थान मे रहने का नियम नही है ॥१४५॥

**सूक्ष्मसाम्परायिक संयम का लक्षण**

सूक्ष्मोऽल्पः सांपरायः कषायोऽस्मिन्निति सयमः ।
स्यात्सूक्ष्मसांपरायसामायिकद्वितयात्मकः ॥१४६॥

**अन्वयार्थ**—(अस्मिन्) इस चारित्र मे (सूक्ष्म) सूक्ष्म (अल्प.) थोडी (साम्पराय कषाय) साम्पराय कषाय है (इति) इसप्रकार (सूक्ष्मसापरायः) सूक्ष्मसापराय संयम (स्यात्) होता है (सामायिकद्वितयात्मक) इसके सामायिक और छेदोपस्थापनासयम दो रूप हैं ।

**भावार्थ**—जिस चारित्र मे सूक्ष्म सापराय (कषाय) हो उसको सूक्ष्म सापरायिक चारित्र कहते हैं वह सामायिक छेदोपस्थापना सयम दो रूप है ॥१४६॥

"यथाख्यात चारित्र का लक्षण"

यथा विरागं स्वं रूपं तथैवाऽऽख्यात इत्ययम् ।
यथाख्यातो मतोऽघौघघनसंघप्रभंजनः ॥१४७॥

**अन्वयार्थ**—(यथा) जैसे (विराग) वीतराग (स्वं) आत्मा का (स्वरूप) स्वरूप है (तथैव) उसका उसी प्रकार (आख्यातः) होना (इति) इसप्रकार (अय) यह (अघौघनसघप्रभंजन·) पाप के समूह रूपी बादलो के समूह का नाश करने के लिए वायु समान (यथाख्यात ) यथाख्यातचारित्र (मत ) माना है ।

**भावार्थ**—आत्मा का जैसा वीतराग स्वरूप है वैसा ही होना विकारी नही होना, यथाख्यात चारित्र है और यह चारित्र पाप समूह रूपी बादलो के नाश करने के लिये वायु सदृश हैं ॥१४७॥

सं सम्यग्दर्शनज्ञानपावनः पापघातन. ।
यो द्वन्द्वद्वितयस्य स्याद्यमस्त्याग स संयमः ॥१४८॥

**अन्वयार्थ**—(स) स का अर्थ (सम्यग्दर्शनज्ञानपावन ) सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पवित्रता (पापघातन ) पाप का घातक (यः) जो (द्वन्द्वद्वितयस्य) अतरग परिग्रह का (यम) यम (त्याग.) त्याग है (स ) वह (सयम ) संयम (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—सयम "स" अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से पवित्र "यम" अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग, पाप नाशक सयम कहलाता है ॥१४८॥

सम्यग्दृग्बोधमूलं व्रतसमितितितिस्कन्धशाखानुबन्धं ।
शीलस्तोमप्रवालं गुणकुसुमगणं सत्सुखालीफलाविम् ॥
गुप्तिव्राताऽऽलवालाऽमृतपरिकलितं सत्वसंतापनोदं ।
सम्यक्चारित्रकल्पद्रुममहमतुलं संश्रितोऽस्मीष्टपुष्टवै ।१४९।

**अन्वयार्थ**—(सम्यग्दृग्बोधमूल) सम्यग्दर्शन ज्ञान जिसकी जड़ हैं (व्रतसमिततितिस्कन्धशाखानुबंध) व्रत और समितियो का समूह स्कध और शाखा का अनुकरण करने वाला है (शीलस्तोमप्रवालं) शील व्रत जिसका महान प्रवाल हैं (गुणकुसुमगण) मूल उत्तर गुणादि पुष्पो का समूह है (सतसुखालीफलाविम्) समीचीन सुखो के समूह फलो की पक्ति हैं (गुप्तिव्राता) गुप्तियो का समूह (आलवाला) क्यारी है (अमृतपरिकलित) अमृत से व्याप्त है (सत्वसतापनोदं) ससारी प्राणियो के सताप को दूर करने वाला है ऐसे (अतुल) अतुल्य (सम्क्त्वचारित्रकल्पद्रुमं) सम्यक्त्वचारित्र रूपी कल्पवृक्ष के (अहं) मैं (अभीष्टपुष्ट्यै) अभीष्ट की सिद्धि के लिए (संश्रितोऽस्मि) आश्रित हुआ हूँ ।

**भावार्थ**—सम्यग्दर्शन व ज्ञान जिसकी जड है, व्रत और समितियो का समूह स्कध और शाखा का अनुकरण करने वाला है, शील व्रत जिसकी महान प्रवाल है, मूल उत्तर गुणादि पुष्पो का समूह है, समीचीन सुखो के समूह फलो की पक्ति हैं, गुप्तियो का समूहरूप अमृत से व्याप्त है। ससारी प्राणियो के सताप को दूर करने वाला है ऐसे अतुल सम्यक्त्व-चारित्ररूपी कल्पवृक्ष को मैं अपनी अभीष्ट की सिद्धि के लिए आश्रित हुआ हू ॥१४९॥

मोहोद्दामतमोघटाविघटनः स्फारैर्विशेषोत्करै ।
दुर्वारापरदु कृतोत्पलकुलप्लोषी जगद्वन्दित. ॥

प्रोन्मीलन्नवकेवलादिकमल: सन्मार्गसन्मंडन· ।
स्तान्मच्चित्तनभःस्थले स्थिरतमश्चारित्रचण्डधुति ।।१५०।।

**अन्वयार्थ**—(स्फारै,) तीक्ष्ण (विशेषोत्करै) स्वभाव भेद से उद्दत किरणो के द्वारा (मोहोद्दामतमोघटा-विघटनः) मोहरूपी निविड अन्धकार का नाशक (दुर्वारापरदु कृतोत्पलकुलप्लोषी) दुर्वार अवशिष्ट पाप कर्मरूपीरात्रि विकासी कमलो को दाहक (जगद्वन्दितः) तीन जगत मे पूज्यनीय (प्रोन्मीलन्नवकेवलादिकमल) विकसित किया है नव केवल लब्धि रूपी कमल को जिसने (सन्मार्गसन्मडन) सन्मार्ग का मन्डन करने वाला। सूर्य पक्षे "सत्" नक्षत्र मार्ग का मडन करने वाला वह (स्थिरतम) स्थिरतम (चारित्रचण्डधुति) चारित्ररूपी सूर्य (मच्चितनभ स्थले) मेरे चित्त रूपी नभस्थल मे (स्तात्) वास करें।

**भावार्थ**—स्वपर भेद विज्ञानरूपी किरणो के द्वारा मोहरूपी निविड अन्धकार का नाशक, दुर्वारपापरूपी रात्रि विकासी कमलो का दाहक, तीन जगत मे वन्दनीय, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिकवीर्य स्वरूप, नव लब्धिरूपी कमल का विकाशक, सन्मार्ग का भूषण ऐसा स्थिरतर चारित्र रूपी सूर्य मेरे चित्तरूपी नभस्थल मे वास करे ।।१५०।।

नमिर्वरश्रीः प्रणयैकभूमि
जिन स न· पातु दयानिधानः ।
अलं गलत्यर्जित कर्मजाल
यस्येक्षणान्मक्षु महोदयस्य ।।१५१।।

**अन्वयार्थ**—(यस्य) जिस (महोदयस्य) महोदय के (ईक्षणात्) दर्शन करने से (अर्जितकर्मजालं) उपार्जित कर्मों का जाल (मक्षु) शीघ्र ही (गलति) नष्ट हो जाता है (स) वह (प्रणयैकभूमि) पुण्य की अद्वितीय भूमि (दयानिधान.) दया का निधान (वरश्री.) उत्कृष्ट लक्ष्मी का धारक (नमिः) नमि (जिन) जिनेश्वर हमारी (अल) अत्यन्त (पातु) रक्षा करे।

**भावार्थ**—जिस महोदय के दर्शन करने से उपार्जित कर्मो का समूह शीघ्र ही नाश हो जाता है, वह पुण्य की अद्वितीय भूमि, दया का निधान, उत्कृष्ट लक्ष्मी का धारक, नमि जिनेश्वर हमारी रक्षा करे ।।१५१।।

इति श्री वीरनन्दिसिद्धान्तिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि ग्रन्थे
चारित्राचारवर्णनात्मकः पचमोऽधिकारः ।।५।।

## अथ षष्ठोऽधिकारः

बन्दे मुदा श्रीशजिनाभिनदनं
शश्वत्प्रदानप्रसुखाभिनन्दनम् ।
तपःस्फुरद्वन्हिनिमग्न मन्मथ
विनेयसन्दर्शित मुक्ति सत्पथम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(शश्वत्पदानम्रसुखाभिनन्दन) निरतर चरणो मे नम्रो के सुख का अभिवर्द्धक (तप स्फुरद्वह्नि-निमग्नमन्मथ) तपरूपी स्फुराय मान अग्नि मे निमग्न किया है कामदेव को जिसने (विनेयसन्दर्शितमुक्तिसत्पथम्) शिष्य जनो को दिखाया है मुक्ति रूपी सन्मार्ग जिसने ऐसे (श्रीशजिनाभिनन्दन) श्री जिनेन्द्र अभिनन्दन भगवान को (मुदा) हर्ष पूर्वक (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिन्होने तप रूपी स्फुरायमान अग्नि के द्वारा कामदेव को भस्म कर दिया है, जो भक्त जनो के सुख का वर्द्धक है, शिष्य गणो को मुक्ति पथ के दर्शक उस अभिनन्दन भगवान को मैं मुदित हृदय से नमस्कार करता हूँ ।।१।।

**तपः पोतेन येनासौ संसारोरुसरित्पतिः ।**
**तीर्यते त्वरयेदानीं तत्तपः प्रतिपाद्यते ।।२।।**

अन्वयार्थ—(येन) जिस (तप पोतेन) तपरूपी नोका से (त्वरया) शीघ्र ही (संसारोरुसरित्पति) ससाररूपी विशाल समुद्र (तीर्यते) पार किया जाता है (इदानी) इस समय (तत्तपः) उस तप को (प्रतिपाद्यते) प्रतिपादन किया जाता है।

भावार्थ—जिसकी सहायता से भव्य प्राणी संसार समुद्र को पार करते हैं। अर्थात् जो ससार समुद्र से तिरने के लिए नौका के समान है आचार्य उस तपाचार का इस समय वर्णन करते हैं ।।२।।

**तपः प्राहुरनुष्ठानं मानसाक्षनियामकम् ।**
**बाह्याभ्यन्तरभेदं तत्प्रत्येकं षड्विधं मतम् ।।३।।**

अन्वयार्थ—(मानसाक्षनियामक) मन और इन्द्रियो का निरोध करने वाले (अनुष्ठान) अनुष्ठान को (तप) तप (प्राहु) कहा है (तत्) वह तप (वाह्याभ्यतरभेद) बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार है। और उनमे (प्रत्येक) प्रत्येक (षड्विध) छह प्रकार का (मतं) माना गया है।

भावार्थ—इन्द्रिय और मन का निरोध करना तप है। अथवा अपनी इच्छाओ का रोकना तप है। वह तप बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। तथा दोनो प्रकार के तपो मे प्रत्येक तप के छह छह भेद होते हैं ।।३।।

### बाह्य तप के भेद

**अनशनावमौदर्यं वृत्तिसंख्या रसोज्झिती ।**
**विविक्तशयनासनं कायक्लेशो बहिस्तपः ।।४।।**

अन्वयार्थ—(अनशनावमोदर्ये) अनशन, अवमोदर्य (वृत्तिपरिसख्यान रसोज्झिती) व्रत परिसंख्यान और रस परित्याग (विविक्तशयनासन) विविक्तशयनासन (कायक्लेश.) काय क्लेश (वहि) ये वहिरग (तप) तप हैं।

भावार्थ—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसख्यान, रस परित्याग, विविक्त शयनासन और कायक्लेश ये छह प्रकार के वहिरग तप हैं ।।५।।

### अनशन तप का स्वरूप

**अशनत्यागोऽनशनं साकांक्षाकांक्षभेदगम् ।**
**तदाद्यमेकद्वित्र्यादिषण्मासानशनान्तगम् ।।५।।**

अन्वयार्थ—(अशनत्याग) भोजन का त्याग करना (साकाक्षाकाक्षभेद) साकाक्षा और अनाकाक्षा भेद वाला (अनशनं) अनशन तप है (तदाद्य) उसमे प्रथम साकाक्षा अनशन (एकद्वित्र्यादिषण्मासानशनान्तगम्) एक मास दो मास, तीन मास आदि से लेकर छह मास तक होता है।

भावार्थ—चार प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन है। वह अनशन (उपवास) साकाक्षा और अनाकाक्षा के भेद से दो प्रकार का है। साकाक्षा अनशन एक मास दो महीना, तीन महीना, चार महीना, पाच महीना, छह महीना आदि अनेक भेद वाला है। जहा एक दो दिन आदि से लेकर छह महीना पर्यंत मर्यादित भोजन का त्याग किया जाता है, वह साकाक्षा नामक अनशन है। यावज्जीव आहार का त्याग करना अनाकाक्षा अनशन है ।।५।।

## साकांक्षा अनशन के भेद

**साकार सर्वतोभद्रसिंह निष्क्रीडितादयः ।**
**साकांक्षस्योपवासस्य भेदाश्चैकांतरोदयः ॥६॥**

अन्वयार्थ—(साकाक्षस्य) साकाक्षा (उपवासस्य) उपवास के (साकारसर्वतोभद्रसिंहनिष्क्रीडितादय) साकार सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीडित आदि (च) और (एकान्तरोदय) एकातरोदय आदि (भेदा) अनेक भेद है।

भावार्थ—साकार, सर्वतोभद्र, सिंह निष्क्रीडित, एकान्तर, आदि साकाक्षा उपवास के अनेक भेद है।

विशेषार्थ—नन्दीश्वरपक्ति, चारित्रशुद्धि, दु खहरण, सुखकरण, लक्षण पक्ति, सिंहनिष्क्रीडित भद्रावसन्त, त्रिलोकसार, श्रुतस्कध, विमानपंक्ति, मुरजमध्य, मृदगमध्य, शातकुम्भ, श्रुतज्ञान, द्वादशव्रत, त्रिपन्चाशतव्रत, घातिक्षयव्रत, रत्नत्रय, षोडशकारण, आष्टाह्निक, दशलक्षण, पंचकल्याणक, महापचकल्याणक, जिनेन्द्र माहात्म्य, ध्यानपंक्ति, प्रमाद परिहार, सम्प्रप्ति संयमपक्ति, प्रतिष्ठाकरण महोत्सव, सन्यासमहोत्सव, जिनगुणसम्पत्ति, आदि अनेक रूप जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित व्रत हैं। वह सब साकाक्षा अनशन तप है। इन सब व्रतो मे कुछ व्रतो की विधि हरिवंश पुराण मे उद्यापनसार मे तथा व्रततिथि निर्णय मे लिखी है तथा कुछ व्रतो की विधि तो प्राप्य भी नही है ।।६।।

## निकांक्ष अनशन का लक्षण

**निःकांक्षोऽसौ भवेद्भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीमृतिः ।**
**प्रायोपगमनेष्वायुरन्तसन्यासकर्मसु ॥७॥**

अन्वयार्थ—(आयुरन्तसन्यासकर्मसु) आयु के अन्त मे समाधि मरण के समय (प्रायोपगमनेषु) प्रायोपगमन मे (भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीमृति) भक्त प्रत्याख्यान और इगिनीमरण करना (असौ) यह (नि काक्ष) निष्काक्षा नामक अनशन तप है।

भावार्थ—मरण पर्यन्त चतुर्विध आहार का त्याग करना निराकाक्षा अनशन तप है। इस व्रत के मुख्य तीन भेद हैं। भक्तप्रत्याख्यान मरण, इंगिनीमरण, प्रायोपगमनमरण। आयु के अन्त समय मे जो चारो प्रकार का आहार का त्याग किया जाता है वह भक्त प्रत्याख्यान मरण है, उसका उत्कृष्ट काल १२ वर्ष है, जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है मध्यम के अनेक भेद हैं इस मरण मे क्षपक की वैय्यावृत्ति दूसरे साधु कर सकते हैं और आप भी अपनी वैयावृत्ति करता है। इसमे अन्त समय मे चतुर्विध आहार के त्याग की मुख्यता है।

इंगिनीमरण—अन्त समय मे चारो प्रकार के आहार का त्याग करके अपनी वैयावृत्ति दूसरे से नही कराता है। अपनी शरीर परिचर्या अपने हाथो से ही करता है वह इगिनी मरण है। जिसमे क्षपक अपनी वैयावृत्ति आप भी नही करता

है और दूसरे से भी नही कराता है वह प्रायोपगमन मरण है ।।७।।

**देहदर्पविनाशाय सयमद्वयसिद्धये ।**
**कुर्यादनशन लाभसत्काराद्यनपेक्षया ।।८।।**

**अन्वयार्थ**—(लाभसत्काराद्यनपेक्षया) क्षपक लाभ सत्कार आदि की अपेक्षा न करके (देहदर्पविनाशाय) शरीर के दर्प (ममत्व) का विनाश करने के लिए (संयमसिद्धये) और सयम की सिद्धि करने के लिए (अनशन) उपवास (कुर्यात्) करे ।

**भावार्थ**—अनशन व्रत से सयम की सिद्धि होती है, शरीर का ममत्व छूटता है इसलिए ख्याति, पूजा, लाभ की इच्छा न करके अपनी शक्ति अनुसार अनशन नामक तप को अवश्य करना चाहिए ।।८।।

### अवमौदर्य तप का लक्षण

**ग्रासहीन निजाहाराद्यूनाहाराशनंव्रतम् ।**
**तपः स्यादवमौदर्यमक्षकक्षदवानलः ।।९।।**

**अन्वयार्थ**—(ग्रासहीननिजाहाराद्यूनाहाराशनव्रत) ग्रासहीन अपने आहार से कम भोजन व्रत (अक्षकक्ष-दावानल ) इन्द्रियरूपी आटवी को जलाने के लिए दवानल (अवमौदर्यं) अवमौदर्य (तप ) तप (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—पुरुष का स्वाभाविक आहार बत्तीस ग्रास प्रमाण है । उनमे से एक ग्रास आदि हीन करके लेना अवमौदर्य तप है । यह अवमौदर्य तप इन्द्रिय रूपी अग्नि को जलाने के लिए दावानल है अर्थात् अवमौदर्य व्रत मे इन्द्रियो का निरोध होता है ।।९।।

**उपवासोऽतिमात्राशनोत्पन्नश्रमदोषहृत् ।**
**ध्यानस्वाध्यायनिद्रार्त्तिजयाद्यर्थमिदं मतम् ।।१०।।**

**अन्वयार्थ**—(अतिमात्राशनोत्पन्न श्रमदोषहृत्) अतिमात्र भोजन करने से उत्पन्न हुये श्रम दोष का नाश करने वाला (उपवास ) उपवास है । और (ध्यानस्वाध्यायनिद्रार्तिजयाद्यर्थं) ध्यान, स्वाध्याय के लिए, निद्रा अर्त्ति को जीतने के लिए (इद) यह अवमौदर्य व्रत (मत) माना है ।

**भावार्थ**—अतिमात्रा मे भोजन करने से अजीर्णादि रोग उत्पन्न होते हैं उन रोगो का नाशक उपवास है । तथा ध्यान स्वाध्याय की वृद्धि के लिए निद्रा और इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने के लिए अवमौदर्य व्रत करना चाहिए । क्योकि उदर भरकर नही खाने से आलस्य प्रमाद नही होता है, परिणामो की विशुद्धि होती है । निद्रा पर विजय होती है । इन्द्रियाँ भी शिथिल हो जाती हैं इसलिए ध्यान और स्वाध्याय की वृद्धि होती है । तथा भूख से कम खाने पर अजीर्णादि रोग भी उत्पन्न नही होते हैं । यह अवमौदर्य तप इन्द्रियो के स्वेच्छाचार को रोकता है, परिणामो को निर्मल करता है । और इससे प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समता, वन्दना, स्तुति और कायोत्सर्ग इन षट् आवश्यको की वृद्धि होती है ।।१०।।

### वृत्ति परिसंख्यान तप का लक्षण

**वृत्तिर्वाटगृहाऽऽहारपात्रदातृषुवर्त्तनम् ।**
**संख्या तन्नियमोवृत्तिपरिसख्या निजेच्छया ।।११।।**

**अन्वयार्थ**—(वाटगृहाहारपात्रदातृषु) गली, घर, आहार, पात्र, दाता मे (वृत्तिः) वृत्ति (वर्त्तनं) वर्त्तना

रना (सख्यान) सख्या करना (निजेच्छया) अपनी इच्छा से (तन्नियम्) उनका नियम करना (वृत्तिपरिसख्या) वृत्तिपरिस्या है।

**भावार्थ**—आज इस मोहल्ला मे आहार मिलेगा तो आहार करेंगे नही मिलेगा तो नही करेंगे यह वाट परिस्यान है। इस गली मे इस घर मे या इतने घर मे आहार मिलेगा तो आहार करूँगा यह गृह परिसंख्यान है।

सर्व प्रथम थाली मे दाल, भात, दही, लड्डू आदि किसी वस्तु के विशेष का नियम लेना आहार परिसख्यान है। ाज सुवर्ण, कासी, पीतल, चादी, मिट्टी के वर्तन मे आहार लू गा ऐसे पात्र विशेष का नियम लेना भाजन परिस्यान है। वृद्ध, युवा, कुमार, कुमारिका या दो स्त्रिया, पुरुष विशेष का नियम लेना दातृ विशेष परिसख्यान है। इस कार अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करने के लिए, कषायों का दमन करने के लिए, शरीर के ममत्व को दूर करने के लिए वं जिन धर्म की प्रभावना के लिए गृह, दाता, आहार विशेष का नियम करना वृत्ति परिसंख्यान तप है ॥११॥

**इयंमाशा निराशायादीनताभावनाप्तये।**
**गात्रयात्रानिमित्तान्नमात्रकांक्षस्य योगिनः ॥१२॥**

**अन्वयार्थ**—(गात्रयात्रानिमित्तान्नमात्रकाक्षस्य) शरीर यात्रा के निमित्तमात्र अन्न की आकाक्षा करने वाले योगिन·) योगी के (आशानिराशाय) तृष्णा का छेद करने के लिए (अदीनताभावनाप्तये) अदीनता भावना की प्राप्ति के लिए (इयं) यह वृत्ति परिसंख्यान होता है।

**भावार्थ**—शरीर की रक्षा करने के लिए साधु लोग आहार करते हैं। उसमे भी तृष्णा को नाश करने के लिए अदोनताओ की प्राप्ति के लिए यह वृत्ति परिसख्यान तप किया जाता है ॥१२॥

**रस परित्याग तप का लक्षण**

**दधिक्षीराऽऽज्यतैलादेः परिहारो रसस्य यः।**
**तपो रस परित्यागो मधुरादिरसस्य वा ॥१३॥**

**कायकातिमदाक्षेभक्षोभवारणकारणं।**
**परिहारो रसस्याय स्याज्जितेन्द्रिययोगिनः ॥१४॥**

**अन्वयार्थ**—(दधिक्षीराज्यतैलादे) दधि, दूध, घृत, तेलादि (वा) और (मधुरादिरसस्य) गुड, चीनी आदि मधुर रस का (परिहार) परिहार (रस परित्यागः) रस परित्याग (तप.) तप है (अय) यह (रसस्य) रस का (परिहार.) परित्याग (जितेन्द्रिययोगिन) जितेन्द्रिय योगी के (कायकातिमदाक्षेभक्षोभवारणकारणं) काय काति प्रद मद और इन्द्रिय रूपी हाथियो के क्षोभ के वारण मे वारण (स्यात्) है।

**भावार्थ**—दधि, घृत, दूध, तैल मधुर आदि रसो का त्याग करना रस परित्याग नामक तप है और यह रस परित्याग जितेन्द्रिय योगियो के काय काति प्रद मद और इन्द्रिय रूपी हाथियो के क्षोभ का निराकरण करने मे कारण है ॥१३,१४॥

**विविक्त शयनासन तप**

**विविक्तेऽध्ययनध्यानबाधवोत्करवर्जिते।**
**शयनं वाऽसनं यत्तद्विविक्तशयनासनम् ॥१५॥**

तरुकोटरशून्यागाराऽऽरामोर्वीधरादयः ।
विविक्ताः कामिनीषण्ढपशुक्षुद्रांगिवर्जिताः ॥१६॥

**अन्वयार्थ**—(अध्ययनध्यानबाधौत्करवर्जिते) अध्ययन और ध्यान के बाधाओं के समूह से रहित (विविक्ते) एकात स्थान मे (यत्) जो (शयनं) शयन करना (आसन) बैठना है (तत्) वह (विविक्तशयनासन) विविक्त शयनासन है (तरुकोटरशून्यागारारामोर्वीधरादय) तरुकोटर, शून्यागार, उपवन की पृथ्वी पर्वतादि (कामिनो षण्ढ पशु क्षुद्रांगिवर्जिता) कामिनी, पशु, नपु सक और क्षुद्रप्राणियो से रहित (विविक्ता) विविक्तता होती है।

**भावार्थ**—कामिनी, नपु सक, पशु, क्षुद्र प्राणियो से रहित, तरुकोटर, शून्यागार, उपवन की भूमि पर्वत आदि विविक्त स्थान हैं।। उस अध्ययन और ध्यान की बाधा के समूह से रहित विविक्त (एकात) स्थान मे शयन करना, बैठना शयनासन तप है ॥१५,१६॥

### कायक्लेश तप का लक्षण

सुखोपलालित कायो नालं सद्ध्यानसिद्धये ।
तद्देहदमनं काय क्लेशः क्लेशैर्मतोचितैः ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—(सुखोपलालित.) सुखपूर्वक उपलालित (काय) शरीर (सद्ध्यानसिद्धये) सद्ध्यान की सिद्धि के लिए (अल) समर्थ (न) नही हैं इसलिए (मतोचितै) जिन धर्म मे उचित (क्लेशै) काय क्लेशो के द्वारा (तद्देहदमनं) उस देह का दमन करना (कायक्लेश) कायक्लेश तप है।

**भावार्थ**—सुखपूर्वक लालन पोषण किया हुआ शरीर, सद्ध्यान की सिद्धि के लिए समर्थ नही होता है इसलिए जिनेन्द्र कथित उचित क्लेश के द्वारा उस शरीर का दमन करना, अपने आधीन करना, काय क्लेश तप है। यद्वा तद्वा कारणो के द्वारा शरीर का दमन करना काय क्लेश तो है परन्तु तप नही है। जिस काय क्लेश मे शरीर के ममत्व के नाश के साथ कषायो का दमन होता है, वही कायक्लेश तप है। कषाय के आवेश मे आकर शरीर का घात किया जाता है वह तप नही है, इसको बताने के लिए आचार्य ने मतोचित कहा है ॥१७॥

निर्दयं मर्दनीयोऽयं कायः क्लेशकरः पुरा ।
चिरं रिपुरितोवैषः काय क्लेशरतो यतिः ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—(अय) यह (काय) काय (पुरा) पूर्व मे (चिर) चिरकाल तक (रिपु) शत्रु के (इव) समान (क्लेशकर) क्लेश करने वाला है (इति) इसलिए (एष) यह (कायक्लेशरत:) कायक्लेश मे रत (यति.) साधु के द्वारा (निर्दय) निर्दय होकर (मर्दनीय) मर्दन करना चाहिए।

**भावार्थ**—यह शरीर अनादिकाल का शत्रु है इसने पूर्व मे मुझे बहुत दु ख दिये है, इसलिए यह मर्दनीय है। ऐसा विचार कर काय क्लेश मे रत योगी घोर तपश्चरण के द्वारा काय क्लेश तप करते हैं ॥१८॥

वीरस्वस्तिकवज्राब्जहस्तिशुण्डाशनादयः ।
व्युत्सर्ग शवगोदंडचापशय्यादयश्च ते ॥१९॥

**अन्वयार्थ**—(वीरस्वस्तिकवज्राब्जहस्तिशुण्डासनादय.) वीर, स्वस्तिक, वज्र, कमल, हस्ति शुण्डासन आदि (च) और (शव गोदंडचापशय्यादयः) मृतक, गो, दंड, चाप, शय्यादि हैं (ते) वह (व्युत्सर्ग) व्युत्सर्ग हैं।

**भावार्थ**—वीरासन, स्वस्तिकासन, वज्रासन, कमलासन, हस्ति शुण्डासन, मृतकशय्या, गवासन, दडशय्या और धनु:शय्यादि से शरीर को क्लेश देना वा इन आसनो से ध्यान करना व्युत्सर्ग रूप कायक्लेश तप है।

**तपो बाह्यमिदं बाह्यलोकानन्दैकमन्दिरम् ।**
**आभ्यन्तरतपःक्षीरसागरेन्दुं नमाम्यहम् ॥२०॥**

**अन्वयार्थ**—(बाह्यलोकानन्दैकमन्दिरम्) बाह्य लोको के आनन्द का एक मन्दिर (इदं) यह (बाह्य) बाह्य (तपः) तप है (क्षीरसागरेन्दुं) क्षीर सागर और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल (आभ्यन्तर तप) आभ्यन्तर तप को (अहं) मैं (नमामि) नमस्कार करता हूँ।

**भावार्थ**—अनशनादि बाह्य, तप बाह्य लोगो के आनन्द का स्थान है। धर्म प्रभावना का कारण है, उसका वर्णन किया। अब क्षीर समुद्र और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल आभ्यन्तर तप को मैं नमस्कार करता हूँ। आन्तरिक मन का नियमन (वशीकरण) होने से और बाह्य जनो के प्रत्यक्ष न होने वाले तप को आभ्यन्तर तप कहते है ॥२०॥

**तत्प्रायश्चित्तं विनयो वैयावृत्त्यं जगन्नुतम् ।**
**स्वाध्यायो भवेद्व्युत्सर्गो ध्यानं चाभ्यान्तर तपः ॥२१॥**

**अन्वयार्थ**—(प्रायश्चित) प्रायश्चित (विनय) विनय (वैयावृत्य) वैयावृत्य (स्वाध्याय) स्वाध्याय (व्युत्सर्ग) व्युत्सर्ग (च) और (ध्यान) ध्यान (तत्) वह (जगन्नुत) जगत् के द्वारा नमस्कृत (आभ्यतर) आभ्यन्तर (तपः) तप (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, और ध्यान, यह तीन जगत मे पूज्यनीय आभ्यतर तप हैं ॥२१॥

## प्रायश्चित्त तप का वर्णन

**येनागो गलति प्रत्न प्रायश्चितं तदुच्यते ।**
**कर्म प्रायोजनस्तस्य चित्तं चैतोहरं यतः ॥२२॥**

**अन्वयार्थ**—(येन) जिसके द्वारा (प्रत्न) पुरातन (अग) पाप (गलति) नष्ट होता है (तत्) वह (प्रायश्चित) प्रायश्चित (उच्यते) कहा जाता है अथवा (जन) जन (प्राय) प्राय है (तस्य) उन जिनका (चित्त) मन है (यत) क्योंकि (तस्य) उस जन के (चैतोहर) चित्त को हरण करने वाला (कर्म) कार्य प्रायश्चित कहा जाता है।

**भावार्थ**—प्रमाद अथवा अज्ञान जन्य दोषो के निराकरण करने का नाम प्रायश्चित है। उत्कृष्ट चारित्रधारी वा मानवो को "प्राय." कहते हैं। और मन को चित कहते हैं। अतः मन की शुद्धि करने वाले कार्य को प्रायश्चित कहते हैं। अथवा पुरातन कर्मो का क्षेपण, निर्जरा, शोधन, धावन, निराकरण, उत्क्षेपण, छेदन, यह सब प्रायश्चित के नाम है ॥२२॥

**आलोचना प्रतिक्रमणोभयानि विवेचनम् ।**
**व्युत्सर्गस्तपच्छेद मूलपरिहारदर्शनम् ॥२३॥**

**प्रायश्चित्तस्य भेदाः स्युर्दशैव तत्रसंश्रये ।**
**दोषाणां यत्प्रमादाद्यैराद्यं तेषा निवेदनं ॥२४॥**

**अन्वयार्थ**—(आलोचनप्रतिक्रमणोभयानि) आलोचन, प्रतिक्रमण. उभय (विवेचन) विवेक (व्युत्सर्गः) व्युत्सर्ग (तप) तप (छेदमूलपरिहारदर्शन) छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान (एव) इस प्रकार (प्रायश्चित्तस्य) प्रायश्चित के (दश) दश (भेदा) भेद (स्युः) भेद है (यत्) जो (तत्र) उसमे (प्रमादाद्यैः) प्रमाद आदि के द्वारा (तेषा) उन (दोषाणा) दोषो के (सश्रये) सश्रय होने पर (निवेदन) निवेदन करना (आद्य) आलोचना प्रायश्चित है।

**भावार्थ**—आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद मूल परिहार, और श्रद्धान यह दश प्रायश्चित के भेद हैं। प्रमादादि के द्वारा उत्पन्न दोषो का गुरु के समक्ष निवेदन करना आलोचना है ॥२३,२४॥

## गुरु को दोषों के निवेदन करने की विधि

**ज्ञात श्रु तरहस्याय प्रशांतस्वांतवृत्तये।**
**अपरिस्त्राविणे शस्तैकान्तस्थायैव सूरये ॥२५॥**

**विनयेनोपसृत्योपविश्य पार्श्वे कृतांजुलेः।**
**वालवद्गर्हतोऽवक्रमित्येतत्स्याद्विशुद्धये ॥२६॥**

**अन्वयार्थ**—(विनयेन) विनय से (उपसृत्य) गुरु के समीप जाकर (पार्श्वे) उसके पार्श्व भाग मे (उपविश्य) बैठकर (ज्ञातश्रु तरहस्याय) ज्ञात है श्रु त का रहस्य जिसको (प्रशातस्वातवृत्तये) प्रशात है मानसिक वृत्ति जिसकी ऐसे (अपरिस्त्राविणे) अपरिस्त्रावी (शस्तैकान्तस्थाय) प्रशस्त, एकात स्थान मे स्थित (सूरये) आचार्य के लिए (कृताजुलेः) की है अजुलि जिसने ऐसा (विशुद्धये) विशुद्धि के लिए (बालवत्) बालक के समान (अवक्र) वक्रता रहित (गर्हतः) गर्हा करने वाले मुनि के (एतत्) यह आलोचना (स्यात्) होती है।

**भावार्थ**—जो श्रु त के रहस्य को जानता है, जिसका मन अत्यन्त प्रशात है जो अपरिस्रावी है, ऐसे एकात मे स्थित आचार्य वर्य के समीप मे जाकर उसके बाम पार्श्व मे बैठकर अपने दोषो की शुद्धि करने के लिए मायाचार वक्रता का त्याग कर विनय से बालकवत् अपने दोषो की गर्हा करने वाले शिष्य के आलोचना होती है ॥२५,२६॥

## आलोचना के दश दोष

**आकंपितानुमापितदृष्टवादरसूक्ष्मणम्।**
**छन्न शब्दाकुलं बहूव्यक्ततत्सेवितान्यपि ॥२७॥**

**दशेत्यालोचनागासि त्याज्यान्यात्महितैषिणा।**
**सदा हि साधयन्त्यार्याः परलोकममायया ॥२८॥**

**अन्वयार्थ**—(आकपितानुमापितदृष्टवादरसूक्ष्मणं) आकपित, अनुमापित, दृष्ट, वादर, सूक्ष्म गत (छन्न) छन्न (शब्दाकुल) शब्दाकुल (अपि) और (बहूव्यक्ततत्सेवितानि) बहु, अव्यक्त, तत्सेवित (इति) इस प्रकार (दश) दश (आलोचनागासि) आलोचना के दोषो को (आत्महितैषिणा) आत्म कल्याण के इच्छुक को (त्याज्यानि) छोड देना चाहिए (हि) क्योकि (सदा) हमेशा (अमायया) निश्छलता से (आर्या) सज्जन लोग (परलोक) परलोक को (साधयन्ति) सिद्ध करते है।

**भावार्थ**—आकपित दोष, अनुमापित दोष, दृष्ट दोष, वादर दोष, सूक्ष्म दोष, छन्न दोष, शब्दाकुल दोष, बहुदोष, अव्यक्त दोष, तत्सेवी दोष यह दश आलोचना के दोष हैं। आत्महितैषी, मानव इन दोषो को दूर से छोड़ देवे क्योकि माया रहित आलोचना करने से ही परलोक की सिद्धि होती है ॥२७,२८॥

**ददात्यल्प मम प्रायश्चित्तं भीत्येति सूरये ।**
**पुरोपकरणानां यद्दानमाकंपित मतम् ॥२९॥**

**अन्वयार्थ**—(मम) मुझे (अल्प) अल्प (प्रायश्चित्त) प्रायश्चित (ददाति) देवें (इति) इस प्रकार के (भीत्या) भय से (सूरये) आचार्य के लिए (पुरा) पहिले (यत्) जो (उपकरणाना) उपकरणो को (दान) देना (तत्) वह (आकपित) आकम्पित दोष (मत) माना है ।

**भावार्थ**—गुरु मुझे अल्प प्रायश्चित देवें, इसलिए महत् प्रायश्चित के भय से गुरु को पूर्व मे उपकरण आदि देकर अनुकम्पा उत्पन्न कराना आकपित दोष है ॥२९॥

**ग्लानः क्लेशासहोऽस्म्यल्पं प्रायश्चित्तं ममार्प्यते ।**
**चेद्दोषाख्यां करिष्याभीत्यादिः स्यादनुमापितम् ॥३०॥**

**अन्वयार्थ**—मैं (ग्लान) रोगी (क्लेशासह) क्लेश सहन करने मे असमर्थ (अस्मि) हूँ (चेत्) यदि (मम) मेरे को (अल्प) अल्प (प्रायश्चित) प्रायश्चित (अर्प्यते) दिया जाय तो (दोषाख्या) दोषो की आलोचना (करिष्यामि) करूँगा (इत्यादि.) इत्यादि (अनुमापित) अनुमापित दोष (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—मैं रुग्ण हूँ, क्लेश को सहन करने मे असमर्थ हूँ, यदि आचार्य मुझे अल्प प्रायश्चित देंगे तो मैं अपने दोषो की आलोचना करूँगा, इत्यादि वचनो से अनुमान करके आलोचना करना अनुमापित दोष है ॥३०॥

**परेक्षितागः संकीर्त्तिः स्याद्दृष्ट बादरं स्मृतम् ।**
**स्थूलानामेव दोषाणामालस्याद्यैर्निवेदनम् ॥३१॥**

**अन्वयार्थ**—(परेक्षिताग) दूसरो के द्वारा दृष्ट दोषो का (सकीर्ति) कथन करना (दृष्ट) दृष्ट दोष (स्यात्) है । और (आलस्याद्यै) आलस्य आदि से (स्थूलाना) स्थूल (दोषाणा) दोषो का (एव) ही (निवेदनं) निवेदन करना (बादरं) बादर दोष (स्मृत) कहा है ।

**भावार्थ**—लोगो ने जिन दोषो को देख लिया है, उसी की आलोचना करना दृष्ट दोष है । प्रमाद के वशीभूत होकर किये हुए स्थूल दोषो की आलोचना करना स्थूल दोष है ॥३१॥

**सूक्ष्मागः कीर्त्तन सूक्ष्म दोषस्यापि विशोधकः ।**
**इति ख्यात्यादि हेतोः स्यात्सूक्ष्म स्थूलोपगूहनम् ॥३२॥**

**अन्वयार्थ**—(सूक्ष्मदोषस्य) सूक्ष्म दोष का (अपि) भी (विशोधक) विशोधक है (इति) इसप्रकार की (ख्यात्यादिहेतो) ख्याति आदि के लिए (सूक्ष्माग) सूक्ष्म दोष का (कीर्त्तनं) कथन (स्थलोपगूहनं) स्थूल का उपगूहक (सूक्ष्मं) सूक्ष्म दोष (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—यह साधु सूक्ष्म दोषो को भी कहने वाला है, इसप्रकार की ख्याति पूजा की इच्छा से अल्प वा सूक्ष्म दोषो की आलोचना करना यह स्थूल का उपगूहन करने वाला सूक्ष्म दोष है ॥३२॥

**दोषे सतीदृशे देय किं प्रायश्चित्तमित्यलम् ।**
**प्रश्नः स्वच्छादनेन स्याच्छन्नं लज्जाभयादिभि ॥३३॥**

**अन्वयार्थ**—(ईदृशे) ऐसा (दोषेसति) दोष हो जाने पर (किं) क्या (प्रायश्चित्त) प्रायश्चित (देय) देना चाहिए (इति) इस प्रकार (लज्जभयादिभि) लज्जा भय आदि से (स्वच्छादनेन) अपने दोषो का छादन करते हुये (प्रश्न) पूछना (छन्न) छन्न दोष (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—ऐसा दोष हो जाने पर क्या प्रायश्चित देना चाहिए, इसप्रकार लज्जादि के वशीभूत होकर अपने दोषो को आच्छादन करना छन्न दोष है। किसी के द्वारा अपने दोष प्रकाशित करने पर ऐसा दोष मेरे मे भी है ऐसा विचार कर गुप्त रूप से प्रायश्चित लेना, प्रच्छन्न दोष है ॥३३॥

**व्रतिव्रातघनध्वाने स्वदोषपरिकीर्त्तनम्।**
**लज्जाद्यैः पाक्षिकादौ यत्तच्छब्दाकुलितं मतम् ॥३४॥**

**अन्वयार्थ**—(लज्जाद्यै) लज्जादिक के कारण (व्रतिव्रातघनध्वाने) व्रतियो के समूह से आकुल शब्द से युक्त (पाक्षिकादौ) पाक्षिकादि मे (यत्) जो (स्वदोषपरिकीर्त्तनं) अपने दोषो का कथन करना (तत्) वह (शब्दाकुलितं) शब्दा कुलित दोष (मत) माना है।

**भावार्थ**—जिस स्थान मे बहुत व्रतियो का कोलाहल हो रहा है ऐसे पाक्षिकादि प्रतिक्रमण के समय मे लज्जादि के वशीभूत होकर अपने दोषो का कथन करना, जिससे आचार्य स्पष्ट रूप से सुन नही सके, इसको शब्दाकुलित दोष कहते हैं ॥३४॥

**प्रायश्चित्तमिदं युक्तं न वेत्यल्पतदाशया।**
**बहुसूरिपरिप्रश्नो, यावदल्पं स बह्विति ॥३५॥**

**अन्वयार्थ**—(इद) यह (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित (युक्त) युक्त है (नवा) वा नही है (इति) इसप्रकार (अल्पतदाशया) अल्प प्रायश्चित की आशा से (बहुसूरिपरिप्रश्न.) बहुत से आचार्यों से पूछना (यावत्) जब तक (अल्प) अल्प प्रायश्चित हो (स) वह (बहु) बहु दोष है।

**भावार्थ**—अल्प प्रायश्चित की आशा से बहुत से आचार्यो से पूछना यह बहुजन दोष है ॥३५॥

**स्वसमानज्ञानतपोबालस्यालोचनं भवेत्।**
**अव्यक्त ह्रीभयप्रायश्चित्तभीत्यादिहेतुत. ॥३६॥**

**अन्वयार्थ**—(ह्रीभय प्रायश्चितभीत्यादिहेतुतः) लज्जा, भय, प्रायश्चित्त की भीति आदि कारणो से (स्वसमानज्ञानतपोबालस्य) अपने समान ज्ञान, तप, बालक के समक्ष (आलोचनं) आलोचना करना (अव्यक्त) अव्यक्त दोष (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—लज्जा, भय प्रायश्चित्तादि के भय से अपने समान ज्ञान तप वाले के समक्ष दोषो की आलोचना करना अव्यक्त दोष है ॥३६॥

**मादृशो वेत्यसावेव ममागोऽस्मै यदर्पितम्।**
**तन्ममेति स्वदोषोक्तिरस्मै तत्सेवितं मतम् ॥३७॥**

**अन्वयार्थ**—(असौ) यह (मादृश:) मेरे जैसा (एव) ही है (मम) मेरे (आग:) अपराध (अस्मै) इसके लिए (यत्) जो (अर्पित) अर्पण किया है (तत्) वह (मम) मेरे है (इति) इसलिए (अस्मै) इसके लिए (स्वदोषोक्ति) अपने दोषो को कहना (तत्सेवित) तत्सेवी दोष (मत) माना है।

**भावार्थ**—ऐसे गुरु के पास जाकर अपने दोषो की आलोचना करना जो अपने समान अपराधी है यह तत्सेवी दोष है। अथवा मेरे दोष इसके अपराध के समान है, इसे यह भी जानता है। इसे जो प्रायश्चित मिलेगा वह मुझे भी युक्त है इसप्रकार अपने दोषो को छिपाना तत्सेवी दोष है ।।३७।।

साऽऽमांगसगत यद्वन्नौषध व्याधिबाधकम् ।
तथाऽनालोचनाशुद्ध नैनोनाशकर तप ।।३८।।

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (सामागसगत) आम सहित अग को सगत हुई (औषधं) औषधि (व्याधिबाधक) व्यधिबाधक (न) नही है (तथा) उसी प्रकार (आलोचनाशुद्ध) आलोचना से अशुद्ध (तप:) तप (एनोनाशकर) पापो का नाशक (न) नही है।

**भावार्थ**—जिसप्रकार आम सहित शरीर को प्राप्त हुई औषधि रोग नाशक नही है, अर्थात् जो औषधि अपक्व है वह रोग नाशक नही है। उसीप्रकार आलोचना से अशुद्ध तप पापो का नाशक नही है। निर्दोष तप ही पापो का नाशक है ।।३८।।

द्वयाश्रय सयतानां स्यादार्यिकाणां त्रिगोचरम् ।
सप्रकाशप्रदेशे तु तच्चारित्रविभूषणम् ।।३९।।

**अन्वयार्थ**—(तत्) वह आलोचना (सयताना) सयतो की (द्वयाश्रय) दो के आश्रय होती है (तु) और (आर्यिकाणा) आर्यिकाओ की (चारित्रविभूषण) चारित्र की भूषण आलोचना (सप्रकाशप्रदेशे) सप्रकाश प्रदेश मे (त्रिगोचर) तीन के गोचर होती है।

**भावार्थ**—मुनियो की आलोचना (दोपो का कथन) दो के आश्रय होती है। अर्थात् यदि मुनि अपने दोषो की आलोचना एकात मे गुरु और शिष्य दो हो, तब करे। तीसरा समीप नही होना चाहिये। आर्यिकाओ की आलोचना आचार्य गणिनी, और आलोचना करने वाली आर्यिका; इन तीन के आश्रित होती हैं। अर्थात् अकेली आर्यिका एकाकी आचार्य के पास आलोचना नही करती है। आर्यिका सूर्य से प्रकाशित प्रदेश मे आलोचना करती है। अन्धकारित प्रदेश मे नही करती है। यह आलोचना चारित्र का भूषण है ।।३९।।

आलोच्यार्पित प्रायश्चित्त वृत्तिविवर्जित ।
सन्मत्रनिश्चयेऽप्युद्योगोनवत्फलवर्जित ।।४०।।

**अन्वयार्थ**—(आलोच्य) आलोचना करके भी जो (अर्पितप्रायश्चितवृत्तिविवर्जित) अर्पण किये हुये प्रायश्चित के आचरण से रहित है। वह (सन्मत्रनिश्चये) सन्मन्त्र का निश्चय होने पर (अपि) भी (उद्योगोनवत्) उद्योग से रहित के समान (फलवर्जित) फल से रहित है।

**भावार्थ**—जो मुनि आलोचना करके भी आचार्य के द्वारा अर्पित प्रायश्चित का आचरण नही करता है। वह सन्मत्र का निश्चय करके भी उद्योग नही करने वाले के समान फल रहित होता है। जैसे मत्र को जान करके भी जो मत्र

की विधि का आचरण नही करता है उसको मत्र के फल की प्राप्ति नही होतो, उसी प्रकार आलोचना करके भी आचार्य कथित प्रायश्चित को पालन नही करने वाला निर्दोष नही होता है ।।४०।।

**मिथ्यामदाऽऽगोऽस्त्वित्याद्यैर्यद्दोषेभ्यो निवर्तनम् ।**
**प्रतिक्रमणमल्पापराधस्यैकाकिनो मुनेः ।।४१।।**

**अन्वयार्थ**—(मदाग ) मेरे अपराध (मिथ्या) मिथ्या (अस्तु) होवे (इत्याद्यैः) इत्यादि वचनो के द्वारा (यत्) जो (दोषेभ्य ) दोषो से (निवर्त्तन) निवर्त्तन है वह (अल्पापराधस्य) अल्प अपराधी (एकाकिन.) एकाकी (मुनेः) मुनियो के (प्रतिक्रमण) प्रतिक्रमण है ।

**भावार्थ**—मेरे अपराध मिथ्या हो इत्यादि वचनो के द्वारा दोपो का निवर्त्तन करना अल्प अपराधी मुनि के प्रतिक्रमण होता है ।।४१।।

**स्यात्तदुभयमालोचनाप्रतिक्रमणद्वय ।**
**दुःस्वप्नदुष्टचिंतादिमहादोषसमाश्रयम् ।।४२।।**

**अन्वयार्थ**—(आलोचनाप्रतिक्रमणद्वय) आलोचना प्रतिक्रमण दोनो (उभयं) उभय (स्यात्) है यह (दु स्वप्नदुष्टचितादिमहादोषसमाश्रय) दु स्वप्न, दुष्टचिंता आदि महादोष के आश्रय हैं ।

**भावार्थ**—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो किये जाते है, वह उभय नामक प्रायश्चित है । मुनिराज दु स्वप्न मानसिक दुष्ट विचार, चितादि महादोष उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण और आलोचना दोनो करते हैं ।।४२।।

**परिहर्त्तुमशक्तस्य दोषं द्रव्यादि संश्रयम् ।**
**तद्द्रव्यादिपरित्यागोविवेकः कथितोऽथवा ।।४३।।**

**अप्रासुकस्य सेवायां त्यक्तस्य प्रासुकस्य च ।**
**प्रमादेन पुनः स्मृत्वा स तदा तद्विसर्जनम् ।।४४।।**

**अन्वयार्थ**—(द्रव्यादिसश्रय) द्रव्यादि से सश्रित (दोप) दोप को (परिहर्तुं) छोडने मे (अशक्तस्य) अशक्त के (तद्द्रव्यादिपरित्याग.) उस द्रव्यादि का परित्याग करना (विवेक ) विवेक (कथित ) कहा है (अथवा) अथवा (प्रमादेन) प्रमाद से (अप्रासुकस्य अप्रासुकका (च) और (त्यक्तस्य) त्याग किये हुये (प्रासुकस्य) प्रासुक द्रव्य का (सेवाया) सेवन करने पर (पुन ) पुन (स्मृत्वा) स्मरण करके (तद्विसर्जन) उसका त्याग कर देता है (तदा) तब (स ) वह विवेक नामक प्रायश्चित होता है ।।४३-४४।।

**भावार्थ**—जो वस्तु अप्रासुक वा अभक्ष्य है अथवा जो छोडी हुई है, प्रमाद से वा विस्मरण से उम वस्तु का सेवन कर लिया हो तो तदनन्तर स्मरण होने पर उसको छोड देना विवेकनामक प्रायश्चित है । अथवा जिस वस्तु के सेवन करने मे काम क्रोधादिविकृति उत्पन्न होती है, उस वस्तु का त्याग करना विवेक नामक प्रायश्चित है । अथवा जिस वस्तु मे अभक्ष्य या छोडी हुई वस्तु मिली है, उसको पृथक् करना शक्य नही है उस वस्तु का त्याग करना भी विवेक है ।।४३-४४।।

**व्युत्सर्गोन्तर्मुहूर्त्तादिकालं कायविसर्जनम् ।**
**सद्ध्यान तन्मलोत्सर्गनद्याद्युत्तरणादिषु ।।४५।।**

**अन्वयार्थ**—(मलोत्सर्गनद्याद्युत्तरणादिषु) मलोत्सर्ग, नदी आदि के उत्तरण आदि मे (अन्तर्मुहूर्तादिकाल) अन्तर्मुहूर्तादिकालपर्यन्त (कायविसर्जनं) काय का विसर्जन (सद्ध्यान) सद्ध्यान (व्युत्सर्गः) व्युत्सर्ग है।

**भावार्थ**—मल, मूत्र आदि का त्याग करने के बाद, नदी आदि से पार होने के बाद अन्तर्मुहूर्तादिकाल पर्यन्त शरीर के ममत्व का त्याग करके सद्ध्यान करना व्युत्सर्ग है ।।४५।।

**तपः स्यादुपवासैक स्थानादि व्यसनादिभिः ।**
**व्रतातिचारे सत्येतत्प्रायश्चित्तं तु षड्विधम् ।।४६।।**

**अन्वयार्थ**—(व्यसनादिभि ) व्यसन आदि के द्वारा (व्रतातिचारे) व्रतो मे अतिचार (सति) होजानेपर (उपवासैकस्थानादि.) उपवास, एकभुक्ति आदि (षड्विध) छह प्रकार के (तप ) वहिरग तप करना (एतत्) यह (प्रायश्चित्तस्यात्) तपनामक प्रायश्चित है।

**भावार्थ**—अहिंसा आदि व्रतो मे अतिचार लग जाने पर अनशनादि छह प्रकार के वहिरंग तप के द्वारा आत्मशुद्धि करना तप नामक प्रायश्चित है ।।४६।।

**दिवसादि तपच्छेदश्छेदसयमपर्यये ।**
**सदर्पकृतदोषस्य चिरदीक्षाहितैषिणः ।।४७।।**

**अन्वयार्थ**—(सदर्पकृतदोषस्य) अभिमान मे आकर किया है दोष जिसने ऐसे (चिरदीक्षाहितैषिण॰) चिरकाल की दीक्षा हितैषी के (सयमपर्यये) सयम की पर्याय मे (दिवासादितपच्छेदः) दिवस आदि तप का छेद करना (छेद ) छेद नामक प्रायश्चित है।

**भावार्थ**—चिरकाल का दीक्षित साधु अभिमानी होकर अपने व्रतो मे दूषण लगाता है, तव उसकी पक्ष, मास, दिवसादि, की दीक्षा का छेदकर देना छेद नामक प्रायश्चित है ।।४७।।

**पुनर्दीक्षाग्रहोमूल सर्वां पूर्वांतपस्थितिम् ।**
**छित्वोन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेत्विदम् ।।४८।।**

**अन्वयार्थ**—(सर्वां) सारी (पूर्वा) पूर्व की (तपस्थितिं) तपस्थिति को (छित्वा) नष्टकर (पुनः) पुन (दीक्षाग्रह ) दीक्षा का ग्रहण करना (मूल) मूलनामक प्रायश्चित है (इद) यह प्रायश्चित (उन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेपु) उन्मार्गगामी, पार्श्वस्थ, प्रभृति महादोपी श्रमणो मे होता है।

**भावार्थ**—पूर्व की सम्पूर्ण तपस्थिति का छेद करके पुन दीक्षा देना मूल नामक प्रायश्चित है। यह प्रायश्चित उन्मार्गगामी, पार्श्वस्थ आदि महादोषी श्रमणो को ही दिया जाता है ।।४८।।

### पार्श्वस्थ आदि मुनियो के भेद

**सच्चारित्रामृतापात्र स्युः पार्श्वस्थःकुशीलकः ।**
**संसक्तोऽप्यवसन्नश्च मृगचारीति पंचते ।।४९।।**

**अन्वयार्थ**—(पार्श्वस्थ ) पार्श्वस्थ (कुशीलक ) कुशील (ससक्त ) संसक्त (अवसन्नः) अवसन्न (च) और

(मृगचारी) मृगचारी (इति) इसप्रकार (ते) वे (पच) पांच प्रकार के मुनि (सच्चारित्रामृतापात्र) सम्यक् चारित्ररूपी अमृत के पात्र नही (स्यु ) हैं।

**भावार्थ**—पार्श्वस्थ, कुशील, ससक्त, अवसन्न और मृगचारी ये पाँच प्रकार के मुनि सम्यक्चारित्र के पात्र नही हैं ।।४६।।

**वसत्युपधिसंगस्थः पार्श्वस्थः स्यात्कुशीलकः ।**
**संघाहितकरस्तीव्रकषायो व्रतवर्जितः ।।५०।।**

**अन्वयार्थ**—(वसत्युपधिसंगस्थ.) वसतिका, उपाधि और परिग्रह मे लीन साधु (पार्श्वस्थ) पार्श्वस्थ है सघाहितकर ) संघ का अहितकरनेवाला (तीव्रकषाय ) तीव्रकषायी (व्रतवर्जित ) व्रतो से रहित (कुशीलकः) कुशील (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—जो वसतिका, उपाधि और परिग्रह मे स्थित हैं--वह मुनि पार्श्वस्थ कहलाता है। जो सर्व सघ का अहितकर है, तीव्रकषायी है, व्रतो से रहित है, वह साधु कुशील कहलाता है ।।५०।।

**संसक्तो वैद्यमन्त्रावनीशसेवनादिजीवनः ।**
**ज्ञानचारित्रहीनोऽवसन्नः स्यात्करणालसः ।।५१।।**

**अन्वयार्थ**—(वैद्यमन्त्रावनीशसेवनादिजीवन.) विद्या, मन्त्र, राजा आदि की सेवा से आजीविका करने वाला (ससक्तः) संसक्त है (ज्ञानचारित्रहीन ) ज्ञान और चारित्र से हीन (करणालस·) क्रिया करने मे आलसी (अवसन्न ) अवसन्न (स्यात्) हैं।

**भावार्थ**—जो लोभकषाय के वशीभूत होकर औषधि, मन्त्र, तन्त्रादि बताकर आजीविका करता है और राजा आदि की सेवा करता है वह साधु संसक्त कहलाता है। जो ज्ञान चारित्र से रहित है। साधु की दैनिक क्रियाओ मे आलसी है वह अवसन्न कहलाता है ।।५१।।

**स्वच्छंदो यो गणं त्यक्तु चरत्येकाक्यसंवृत· ।**
**भृगाचारीत्यमी जैनधर्माऽकीर्त्तिकरानराः ।।५२।।**

**अन्वयार्थ**—(य.) जो (गण) गणको (त्यक्तु त्यक्त्वा) छोडकर (एकाकी) अकेला (स्वच्छन्द ) स्वच्छन्द (असंवृत्त.) असवृत्त (चरति) भ्रमण करता है। वह भृगचारी साधु है। (अमो) ये (मानवा.) नर (जैनधर्माकीर्तिकरा ) जैन धर्म को मलीन करने वाले होते हैं।

**भावार्थ**—जो साधु स्वच्छन्द है, अर्थात् आचार्य की आज्ञा विराधक है, संघ को छोडकर एकाकी असवृत्त होकर भ्रमण करता है वह जैन धर्म को मलीन करने वाला साधु भृगचारी है।

### परिहार उपस्थापना प्रायश्चित के भेद और लक्षण

**परिहारोऽनुपस्थापनपारंत्रिकभेदभाक् ।**
**निजान्य गणभेद तत्राद्यं तत्राद्यमुत्तमम् ।।५३।।**

**अन्वयार्थ**—(अनुपस्थापनपारश्चिकभेदभाक्) अनुपस्थापन और पारश्चिक के भेद को धारण करने वाला

(परिहारः) परिहार है (तत्र) उसमे (आद्य) प्रथम (निजान्यगणभेद) स्वगण और परगण भेद वाला है (तत्र) उसमे (आद्य) प्रथम (स्वगणभेद) (उत्तम) उत्तम है।

**भावार्थ**—अनुपस्थापन और पारत्रिक के भेद से परिहार दो प्रकार का है। उसमे अनुपस्थापन, निजगण अनुपस्थान और अन्यगण अनुपस्थापन के भेद से दो प्रकार का है उसमे निजगण अनुपस्थापन उत्तम मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार का है ।।५३।।

**द्वादशाब्देशु षण्मासषण्मासानशनं मतम् ।**
**जघन्य पंच पंचोपवास मध्यन्तु मध्यमम् ।।५४।।**

**अन्वयार्थ**—(द्वादशाब्देषु) बारह वर्षों मे (षण्मासषण्मासान्) छह महीने छह महीने का (अनशन) उपवास करना (उत्तम) उत्तम है (पचपंचोपवासं) बारह वर्ष तक पाच पाच उपवास करना (जघन्य) जघन्य है (तु) और (मध्य) मध्य (मध्यम) मध्यम है।

**भावार्थ**—बारह वर्ष तक छह महीने का छह महीने उपवास करना उत्तम है-पाच पाच उपवास करना जघन्य है। और मध्य के मध्यम भेद हैं ।।५४।।

**द्वात्रिंशद्दण्डदूरालयस्थेन वसतेर्यतीन् ।**
**सर्वान् प्रणमताऽपेतप्रतिबन्दनसाधुना ।।५५।।**

**स्वदोष ख्यातये पिच्छं विभ्राणेन पराङ्मुख ।**
**सूरीतरैः सहोपात्तमौनेनैतद्विधीयते ।।५६।।**

**अन्वयार्थ**- (वसते) वसतिका के (द्वत्रिंशद्दण्डदूरालयस्थेन) बत्तीस धनुष दूर ग्रह मे बैठा हुआ (सर्वान्) सम्पूर्ण (यतीन) यतियो को (प्रणमता) नमस्कार करते हुये (अपेतप्रतिबन्दनसाधुना) साधुओ की प्रतिवन्दना से रहित (स्वदोषख्यातये) अपने दोषो की विख्याति के लिए (पराङमुखं) पराङमुख (पिच्छ) पिच्छिका को (विभ्रमाणेन) धारण करते हुये (सूरीतरै) आचार्य को छोडकर दूसरे साधुओ के (सह) साथ (मौनेन) मौन से (तत्) यह प्रायश्चित (विधियते) किया जाता है।

**भावार्थ**—जो आचार्य वा संघ की बसतिका से बत्तीस धनुष दूर स्थान मे रहता है और सर्व मुनियो को नमस्कार करता है, परन्तु उसको कोई मुनि प्रति नमस्कार नही करते हैं। जो आचार्य के साथ वार्तालाप करता है, शेष मुनियो और श्रावको के साथ नही बोलता है, मौन रखता है। अपने दोषो की विख्याति (प्रगटता) के लिए पिच्छिका को पराङमुखी रखता है, छह महीना, पाच महीना आदि का उपवास करता है यह स्वगण अनुपस्थापन नामक प्रायश्चित है ।।५५,५६।।

**स्वगण अनुपस्थापन प्रायश्चित देने के कारण**

**प्रमादेनान्यपाखंडिगृहस्थयतिसश्रितं ।**
**वस्तुस्तेनयतः किंचिच्चेतना चेतनात्मकम् ।।५७।।**

यतीन्प्रहरतोऽन्यस्त्रीहरणादींश्च कुर्वतः ।
दश नव पूर्वज्ञस्य त्र्याद्य संहननस्य यत् ॥५८॥युग्मम।

**अन्वयार्थ**—(प्रमादेन) प्रमाद के कारण (अन्यपाखंडिनहस्थयतिसश्रित) अन्य पाखंडी गृहस्थ और यतियो से संश्रित (चेतनाचेतनात्मकम्) चेतन-अचेतनात्मक (किंचित्) किंचित् (वस्तु) वस्तु को (स्तेनयत,) चोरी करने वाले (यतीन्) यति को (प्रहरतः) मारने वाले (अन्यस्त्रीहरणादीन्) पर स्त्री हरण आदि पाप (कुर्वत.) करने वाले को (दश नवपूर्वज्ञस्य) नव और दश पूर्व के पाठी तथा (त्र्याद्यसहननस्य) आदि वज्रवृषभ, वज्र और नाराच वाले को (तत्) वह ऊपरिकथित स्वगणानुपस्थापनप्रायश्चित दिया जाता है ॥५७,५८॥

करोति यदि दर्पेण दोषान् पूर्वभाषितान् ।
सोयमन्यगणानुपस्थापनेन विशुद्धयति ॥५९॥

**अन्वयार्थ**—(यदि) यदि (अय) यह मुनि (पूर्वभाषितान्) पूर्वकथित (दोषान्) हिंसादि दोषो को (दर्पेण) दर्प [घमण्ड] से (करोति) करता है (स ) वह (अन्यगणानुपस्थापनेन्) अनुपस्थापन नामक प्रायश्चित से (विशुद्ध यति) विशुद्ध करता है ।

**भावार्थ**—जो यति नव या दश पूर्व का पाठी हो, आदि के तीन सहनन (वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच नाराच) से युक्त हो-परन्तु प्रमाद के वशीभूत होकर पाखण्डो, यति, गृहस्थादि की चेतना चेतनात्मक वस्तु की चोरी की है । क्रोध मे आकर किसी यति का घात किया है, तथा पर स्त्री का सेवन किया है, तो वह मुनि स्वगणानुपस्थापन नामक प्रायश्चित का भागी होता है । हीनसहनन वाले को यह प्रायश्चित नही दिया जाता है ॥५९॥

जो यति पूर्वोक्त हिंसादिदोष को अभिमान मे आकर करता है तो वह साधु अन्यगणानुपस्थापन नामक प्रायश्चित के द्वारा शुद्ध होता है ॥५९॥

### अन्यगणानुपस्थापन नामक प्रायश्चित्त का लक्षण

प्रायश्चित्तं तदेवात्र किन्तुस्वगणसूरिणा ।
आलोच्य प्रेषित सप्तसूरिपार्श्वमनुक्रमात् ॥६०॥

आलोच्य तैस्तैरप्राप्त प्रायश्चित्तोऽन्त्य सूरिणा ।
तमाद्यं प्रापितस्तेन दत्तं चरति पूर्ववत् ॥६१॥ युग्मम्

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इस प्रायश्चित मे (तदेव) वही (प्रायश्चित्त) प्रायश्चित है (किन्तु) परन्तु (स्वगणसूरिणा) अपने आचार्य के द्वारा (आलोच्य) आलोचना करके (अनुक्रमात्) अनुक्रमसे (सप्तसूरिपार्श्वं) सात आचार्य के समीप भेजा गया (आलोच्य) आलोचना करके (तैं. तैः) उन उन आचार्यो के द्वारा (अप्राप्तप्रायश्चित ) नही प्राप्त हुआ है प्रायश्चित जिसको ऐसा वह (अन्त्यसूरिणा) अन्तके सूरिके द्वारा (त) उस (आद्य ) प्रथम आचार्य को (प्रापित.) प्राप्त कराया जाता है (तैं ) उस आचार्य के द्वारा (पूर्ववत्) पूर्व के समान (दत्त) दिये हुये प्रायश्चित का (चरति) आचरण करता है ।

**भावार्थ**—अन्यगणानुपस्थापन नाम प्रायश्चितकी विधि स्वगुण अनुपस्थापन के समान ही है। परन्तु यह विशेपता है । अभिमानपूर्वक अपराध करने वाला साधु अपने दोषो की आचार्य के समक्ष आलोचना करता है। तदनन्तर

उसकी आलोचना को सुनकर आचार्य उसको दूसरे आचार्य के समीप भेजता है। वह साधु दूसरे आचार्य के समीप जाकर अपने दोषो की आलोचना करता है, वह आचार्य भी उसकी आलोचना सुनकर तीसरे आचार्य के समीप भेजता है। इस-प्रकार सात आचार्य के समीप जाकर आलोचना करता है उसको कोई भी आचार्य प्रायश्चित नही देते हैं। पुन क्रम से सात आचार्यो के पास जाकर अपने आचार्य के समीप आता है। तब आचार्य उसको स्वगणानुस्थापन विधि के अनुसार प्रायश्चित देते हैं। यह अन्यगणानुस्थापन नामक प्रायश्चित है। स्वगणानुपस्थापन का अर्थ है—अपने गण से बहिष्कृत करना। अपने सघ की वसतिका से ३२ धनुष दूर रखना। अन्यगणानुपस्थापन का अर्थ है—दूसरे आचार्य के सघ मे जाकर आलोचना करने परभी प्रायश्चित देकर वे आचार्य साधु को अपने गण मे नही रखते हैं इसलिये यह अन्यगणानुपस्थापन है ॥६०-६१॥

## पारंचिक प्रायश्चित्त की विधि

**स्वधर्मरहिते क्षेत्रे प्रायश्चिते पुरोदिते।**
**चारः पारंचिकं जैनधर्मात्यन्तरतेर्मतम् ॥६२॥**

**सघोर्वीशविरोधांतः पुरस्त्रीगमनादिषु।**
**दोषेष्ववंद्यः पाप्येष पातकीति बहिः कृत ॥६३॥**

**चतुर्विधेन संघेन देशान्निष्कासितोप्यदः।**
**चरत्येवार्य वैराग्यसत्त्वज्ञानबलो व्रती ॥६४॥**

**अन्वयार्थ**—(स्वधर्मरहिते) अपने धर्म से रहित (क्षेत्रे) क्षेत्र मे (पुरोदिते) पूर्व मे कहे हुये (प्रायश्चिते) प्रायश्चित मे (जैनधर्मात्यन्तरते) जैन धर्म मे अत्यन्त लीन मुनि का (चार) बिहार (पारंचिक) पारंचिक नामक प्रायश्चित (मत) माना है (सघोर्वीशविरोधात पुरस्त्रीगमनादिषु) सघ का राजा का विरोध, अत पुर की स्त्री गमनादि (दोषेषु) दोष हो जाने पर (एष) यह (अवद्य) अवदनीय है (पापी) पापी है (पातकी) पातकी है (इति) इसप्रकार (बहिस्कृतः) बहिस्कृत तथा (चतुर्विधसघेन) चतुर्विध सघ के द्वारा (देशात्) देश से (निष्कासित) निकाला हुआ (अपि) भी (अद) यह (आर्यवराग्यसत्त्वज्ञानबल) श्रेष्ठ वैराग्य, सत्व ज्ञान रूपी बल (शक्ति) से युक्त (व्रती) साधु (चरति) आचरण करता है।

**भावार्थ**—इस प्रायश्चित मे उपवासादि विधि तो अनुपस्थापन प्रायश्चित के समान है परन्तु कुछ विशेषता है। जब कोई साधु सघ का, राजा का विरोधी होकर अत पुर की स्त्रियो के साथ दुराचार करता है तब अनेक महापराध करने पर चातुर्वर्ण्य श्रमण सब से यह महापापी है, जिनमत से बाह्य है 'इसको वन्दना मत करो' ऐसी घोषणा देकर अनु-पस्थापना नाम प्रायश्चित देकर देश से निकाल देते हैं। वह मुनि भी स्वधर्म सहित क्षेत्र मे जाकर ज्ञान, वैराग्य, सत्व, बल से युक्त होकर, आचार्य के द्वारा दिये हुए प्रायश्चित का पालन करता हुआ विहार करता है यह पारंचिक नामक प्रायश्चित है ॥६२,६३,६४॥

**दर्शन यत्पुनस्तत्वश्रद्धानं तन्महाव्रतैः।**
**सार्द्धं यते स्थितस्येत्वा मिथ्यात्वं तदुदीरितं ॥६५॥**

**अन्वयार्थ**—(मिथ्यात्व) मिथ्यात्व को (इत्वा) प्राप्त होकर (पुन.) पुन (तन्महाव्रतै) उन महाव्रतो के

(सार्द्ध) साथ (यत्) जो (तत्वश्रद्धान) तत्वश्रद्धान मे (स्थितस्य) स्थित (यते) मुनि के (दर्शन) दर्शन नामक प्रायश्चित (उदीरत) कहा है ।

**भावार्थ**—किसी कारण से मिथ्यात्व अवस्था को प्राप्त हुआ मुनि पुन तत्वश्रद्धान को प्राप्त होता है-वह दर्शन नामक प्रायश्चित है ।।६५।।

**देशं कालं बलं ज्ञात्वा गणी वैद्यवदगिनाम् ।**
**अल्पानल्पेषु दोषेषु कुर्यात्तद्विशोधनं ।।६६।।**

**अन्वयार्थ**—(गणी) आचार्य (वैद्यवत्) वैद्य के समान (अगिना) प्राणियो के (अल्पानल्पेषु) अल्प और अनल्प (दोषेषु) दोषो मे (देश) देश (काल)-काल (बलं) बल को (ज्ञात्वा) जानकर (तद्विशोधन) उसकी शुद्धि (कुर्यात्) करे ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार वैद्य रोगी के रोग शक्ति आदि को जानकर उसके रोग को दूर करने के लिए औषधि देता है उसी प्रकार आचार्य साधु के अल्प अनल्प दोषो मे देश, काल, शक्ति को जानकर प्रायश्चित देकर उसके दोषो की शुद्धि करते हैं ।।६६।।

**कृतागसैव कर्त्तव्य प्रायश्चित्त त्रिशुद्धितः ।**
**ग्लानस्यैव प्रयत्नेन युक्त मौषध सेवन ।।६७।।**

**अन्वयार्थ**—जिसप्रकार (ग्लानस्य) रोगी को (प्रयत्नेन) प्रयत्न पूर्वक (युक्त) युत्त (औषधसेवन) औषधि सेवन (कर्त्तव्य) करना चाहिए उसी प्रकार (कृतागसा) किया है अपराध जिसने ऐसे साधु को (त्रिशुद्धित.) मन वचन काय से (प्रयत्नेन) प्रयत्नपूर्वक (युक्त) युक्त (प्रायश्चित)-प्रायश्चित कर्त्तव्यएव) करना ही चाहिये ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार रोगी मानव योग्य औषधि सेवन करके रोग दूर करता है । उसी प्रकार अपराध रूपी रोगो को दूर करने के लिए मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक प्रयत्नशील मुनि को अपने दोषो को गुरु के समक्ष आलोचना करके प्रायश्चित ग्रहण करना चाहिये । औषधि सेवन किये बिना रोगो का निष्कासन नही होता उसी प्रकार प्रायश्चित के बिना पापो का प्रक्षालन नही होता है ।।६७।।

**दोषव्युदासनैः शल्यमर्यादा संयमस्थितिः ।**
**स्वांतप्रशांतिसम्पत्तिप्रमुखार्थमिद मतम् ।।६८।।**

**अन्वयार्थ**—(दोषव्युदासनै) दोषो के दूर करने के द्वारा (शल्यमर्यादा) शल्य मर्यादा (सयमस्थिति) सयम की स्थिति (स्वातप्रशातिसम्पत्तिप्रमुखार्थं) चित्त की शाति की सम्पत्ति प्रमुखार्थ (इदं) यह प्रायश्चित नामक तप (मतम्) माना है ।

**भावार्थ**—प्रायश्चित नामक तप के द्वारा शल्य का नाश होता है । मर्यादा और सयम की स्थिति होती है । चित्त की शाति और दोष कृत पापो का प्रक्षालन होता है । इसलिए प्रायश्चित नामक तप का वर्णन किया है ।।६८।।

विनय तप का वर्णन

**विनयं स्याद्विनयनं कषायेन्द्रिय मर्दनं ।**
**स नीचैर्वृत्ति रथवा विनयार्हे यथोचितम् ।।६९।।**

**अन्वयार्थ**—(विनयन) विनम्रता होना (कषायेन्द्रियमर्दन) कषाय और इन्द्रियो का मर्दन करना (विनय) विनय (स्यात्) है (अथवा) अथवा (विनयार्हे) विनय के योग्य मे (यथोचित्) यथोचित् (नीचैर्वृत्ति) नम्रता होना (स·) वह विनय तप है।

**भावार्थ**—विनयते इति विनयनं, विनयन किया जाता है कषाय का और इन्द्रियो का दमन किया जाता है, अथवा पूज्य पुरुषो मे यथा योग्य नम्रता होती है उसको विनय कहते है ॥६९॥

**सद्दृग्ज्ञानतपश्चारित्रोपचार प्रपंचकः।**
**तत्रदृग्विनयस्त्यागः शंकादीनाममीचते ॥७०॥**

**अन्वयार्थ**—(सद्दृग्ज्ञानतपश्चारित्रोपचारप्रपंचकः) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र सम्यक्तप और उपचार प्रपचक (अमी) ये ५ प्रकार का विनय है (च) और (तत्र) इनमे (शंकादीना) शकादि दोषो का (त्याग) छोडना (दृग्विनयः) दर्शन विनय है।

**भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, विनय, सम्यग्ज्ञान विनय, सम्यक्चारित्र विनय, तपो विनय और उपचार विनय के भेद से पाच प्रकार का विनय है। उसमे शकादि दोषो को परिहार करना सम्यग्दर्शन विनय है ॥७०॥

**शंकाऽऽकांक्षा जुगुप्साऽन्यदृक्प्रशंसनसंस्तवाः।**
**नाम्ना ज्ञेयास्त्रयोन्त्यौ तु मनोवाग्विषये स्तुतौ ॥७१॥**

**अन्वयार्थ**—(शकाकाक्षाऽऽजुगुप्सान्यदृक्प्रशंसनसस्तवा) शका, काक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा, अन्य दृष्टि संस्तव ये पाच सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं (त्रय) आदि के तीन (नम्ना) नाम से (ज्ञेया) जानने योग्य है (तु) और (अन्त्यदौ) अन्त के दो (मनोवाग्विषये) मन और वचन के विषय मे (स्तुती) स्तुति रूप है।

**भावार्थ**—शका—जिनेन्द्र कथित तत्त्व मे सशय करना शंका है। ससारिक भोगो की वाँछा, काक्षा है, रत्नत्रय धारी दिगम्बर तपस्वियो के शरीर को देखकर ग्लानि करना अथवा भूख प्यास से पीडित होकर जैन तपश्चरण से निर्विघ्न होना जुगुप्सा है। मन के द्वारा मिथ्यादृष्टियो की स्तुति करना सस्तव है। ये पाँच सम्यदर्शन के अतिचार हैं। इनसे सम्यदर्शन मलीन होता है-इसलिये इनका त्याग करना चाहिये। इन अतिचारो का त्याग करना सम्यदर्शन का विनय है ॥७१॥

**द्रव्यादि शोधनं वस्तु प्रमाणावग्रहादिकं।**
**बहुमानः श्रुतज्ञेषु श्रुतान्नासादनोज्झनं ॥७२॥**

**वयः शीलश्रुतोनाधिकाद्युपाध्यायकीर्त्तन।**
**चानिन्हवेन येनायंज्ञानावरणकारण ॥७३॥**

**स्वराक्षरपदग्रन्थार्थाहीनाध्ययनादिकं।**
**स्याज्ज्ञान विनय· सम्यग्ज्ञानस्वर्मोक्षकारणम् ॥७४। त्रिकं।**

**अन्वयार्थ**—(द्रव्यादिशोधन) द्रव्यादि का शोधन (वस्तुप्रमाणावग्रहादिक) वस्तु की मन्यादिका अवग्रहादि (श्रुतज्ञेषु) श्रुतज्ञानियो मे (बहुमान·) बहुमान (श्रुतज्ञासादनोज्झनं) श्रुतज्ञानियो के आसादन का त्याग (अनिन्हवेन) निन्हव-

१ माया, मिथ्यात्व और निदान यह तीन शल्य है।

रहित (वयःशीलश्रुतोनाधिकाध्युपाध्यायकीर्तन) वय मे न्यून और शील श्रुतमे अधिक उपाध्याय आदिका कीर्तन (येन) जिस कारण से (अय) यह निन्हव (ज्ञानावरणकारण) ज्ञानावरणकर्मकारण है (स्वराक्षरपदग्रन्थार्थहीनाध्ययनादिक) स्वर, अक्षर, पद, ग्रन्थ, अर्थ को हीनाधिक नही पढना (अय) यह (सम्यग्ज्ञानस्वर्मोक्षकारण) सम्यग्ज्ञान स्वर्ग और मोक्ष का का कारणभूत (ज्ञानविनय) ज्ञान विनय (स्यात्) है।

**भावार्थ**—ज्ञानाचार अधिकार मे कथित द्रव्य क्षेत्रकाल और भाव की शुद्धि से शास्त्र पढना, वस्तुप्रमाणादि का अवग्रह करना, श्रुतज्ञानियो मे वर्तमान होना, श्रुतज्ञानियो की आसादना नही करना, उम्र मे हीन होते हुये भी जो शील और श्रुत मे अधिक उपाध्याय आदि के गुणो का उत्कीर्तन करना जिस गुरु से ज्ञानार्जन किया है वह श्रुत आदि मे हीन हो तो भी उसका नाम बताना, ज्ञानावरणादि कर्मो के कारणभूत निन्हव का त्याग करना, अर्थात् अपने श्रुतज्ञान को नही छिपाना, शब्द शुद्ध पढना, अर्थ शुद्ध पढना, और दोनो शुद्ध पढना, यह ज्ञान के विनय है ।।७२-७३-७४।।

**आवश्यकक्रियाशक्तिर्नानोत्तरगुणोन्नतिः ।**
**तपस्तद्वत्प्रमोदश्च स्यात्तपोविनयो मुनेः ।।७५।।**

**अन्वयार्थ**—(आवश्यकक्रियाशक्ति) आवश्यक क्रियाओ मे आशक्ति (नानोत्तरगुणोन्नति) नाना उत्तर गुणों की उन्नति (तप) तप (च) और (तद्वत्) तपवालो मे (प्रमोद) प्रमोद होना (यत.) जिससे (तपोविनय) तपोविनय (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—निर्दोष आवश्यक क्रियाओ का पालन करना, नाना प्रकार के उत्तर गुणो की वृद्धि करना, बारह प्रकार के तपश्चरण मे और तपस्वियो मे प्रमाद भाव रखना तपोविनय है ।।७५।।

**भक्तिश्चारित्रवत्स्वन्यवृत्ताऽनिन्दनमुद्यम ।**
**परीषहजयादौ च चारित्रविनयोमुनेः ।।७६।।**

**अन्वयार्थ**—(चारित्रवत्सु) चारित्रवान मुनीश्वरो मे (भक्ति) भक्ति (अन्यवृत्तानिन्दनम्) दूसरो के चारित्र की निन्दा नही करना (च) और (परीषहजयादौ) परीषहजय आदि मे (उद्यम) तत्परता रखना (मुनेः) मुनिका (चारित्र-विनय) चारित्रविनय है।

**भावार्थ**—चारित्र शाली मुनिहंसो के प्रति भक्ति करना अन्य व्रतियो अर्थात् जघन्य चारित्र वाले की निन्दा नही करना परीषह आने पर उनपर विजय प्राप्त करने के लिए तत्पर रहना यह चारित्र विनय है ।।७६।।

**उपोपसृत्य यश्चार "उपचारो" यथोचितः ।**
**स प्रत्यक्षपरोक्षात्मा तत्राद्यः प्रतिपाद्यते ।।७७।।**

**अन्वयार्थ**—(यथोचित) यथोचित (उपोपसृत्य) समीप जाकर (य) जो (चार) आचरण (क्रिया) की जाती है। (सः) वह (उपचार) उपचार है। वह उपचार (प्रत्यक्षपरोक्षात्मा) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है (तत्र) उसमे (आद्य) प्रथम प्रत्यक्ष का (प्रतिपाद्यते) प्रतिपादन किया जाता है।

**भावार्थ**—समीप मे जाकर जो यथोचित सत्कार किया जाता है वह उपचार विनय है। वह उपचार विनय प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है। इसमे सर्व प्रथम प्रत्यक्ष विनय का वर्णन करते हैं ।।७७।।

**अभ्युत्थानं नतिः सूरावागच्छति सति स्थिते ।**
**स्थानं नीचैर्निविष्टेऽपि शयनोच्चासनोज्झनम् ।।७८।।**

गच्छत्यनुगमो वक्तर्यनुकूलं वचो मन ।
प्रमोदीत्यादिकं चैव पाठकादि चतुष्टये ।।७९।। (युग्मं)

**अन्वयार्थ**—(सूरौ) आचार्य के (आगच्छतिसति) आने पर (अभ्युत्थान) उठकर खडे होना (नति) उनको नमस्कार करना (स्थिते) खडे रहने पर (नीच) नीचे (स्थान) खडे रहना (निविष्टे) बैठने पर (अपि) भी (शयनोच्चासनोज्झन) उनके समक्ष शयन न करना, उनसे उच्चासन पर बैठने का त्याग करना (गच्छति) चलने पर (अनुगम) उसके पीछे पीछे चलना (वक्तरि) आचार्य के बोलने पर (अनुकूल) अनुकूल (वच.) वचन बोलना (मन) उनके प्रति चित्त की (प्रमोदी) प्रसन्नता (इत्यादिक) इत्यादि क्रिया प्रत्यक्ष विनय है (च) और (एव) इस प्रकार (पाठकादिचतुष्टये) उपाध्याय, स्थविर, गणधर और प्रवर्तक मे भी इसी प्रकार विनय करना चाहिये।

**भावार्थ**—आचार्य के आने पर शीघ्र ही आसन से उठकर खडे होना चाहिये तथा भक्ति पूर्वक उनको नमस्कार करना चाहिये। आचार्य के बैठ जाने पर आचार्य से नीचे स्थान पर बैठना चाहिये। आचार्य के सामने शयन और उच्चासन को छोडना चाहिये। आचार्य के गमन करने पर उनके पीछे पीछे चलना चाहिये। आचार्य के बोलने पर अनुकूल वचन बोलना चाहिये तथा आचार्य के प्रति मन मे प्रमोदभाव, उनके गुणो मे अनुराग होना चाहिये। आचार्य के समान ही उपाध्याय, गणधर, स्थविर और प्रवर्त्तक का विनय करना चाहिये ।।७९।।

आचार्यादिष्वसत्स्वेवं स्थविरस्य मुने गणे ।
प्रतिरूपकालयोग्या क्रिया चान्येषु साधुषु ।।८०।।

**अन्वयार्थ**—(आचार्यादिषु) आचार्यादि के (असत्सु) नही होने पर (स्थविरस्य) स्थविर (मुने) मुनि के (गणे) गणधर मे (च) और (अन्येषु) अन्य (साधुषु) साधुओ मे (एव) इसप्रकार (प्रतिरूपकालयोग्या) प्रतिरूप काल के योग्य (क्रिया) क्रिया करना चाहिये।

**भावार्थ**—आचार्य की अनुपस्थिति मे स्थविर, गणधर और अन्य आधुओ मे प्रतिरूप काल योग्य क्रिया नही करना चाहिये ।।८०।।

आर्यादेशयमाऽसयतादि षूचितसत्क्रिया ।
कर्त्तव्या चेत्यद प्रत्यक्षोपचारलक्षणम् ।।८१।।

**अन्वयार्थ**—(च) और (आर्यदेशयमासयतादिषु) आर्यिका, देशसयम और असंयतादि मे (उचितसत्क्रिया) उचित सत्कार (कर्त्तव्या) करना चाहिये (इति) इसप्रकार (अद) यह (प्रत्यक्षोपचारोपलक्षणं) प्रत्यक्ष उपचार विनय का लक्षण है।

**भावार्थ**—आर्यिका, देशसयमी और असयतादि मे उचित सत्कार करना चाहिये। यह प्रत्यक्ष उपचार लक्षण विनय है ।।८१।।

ज्ञानविज्ञान सत्कीर्तिर्नतिराज्ञानुवर्त्तन ।
परोक्षे गणनाथानां परोक्षप्रश्रय परः ।।८२।।

**अन्वयार्थ**—(गणनाथाना) आचार्य के (परोक्षे) परोक्ष मे (ज्ञानविज्ञानसत्कीर्त्ति) उनके ज्ञान,विज्ञान,सत्कीर्त्ति

(नतिः) नमस्कार (आज्ञानुवर्त्तन) आज्ञा का पालन करना (पर) दूसरा (परोक्षप्रश्रय) परोक्ष विनय है।

**भावार्थ**—परोक्ष मे आचार्य के ज्ञान विज्ञान का सत्कीर्त्तन, आज्ञा का पालन और नमस्कार यह परोक्ष विनय है ॥८२॥

**विनयेन विहीनस्य भिक्षोः शिक्षामृतश्रियः।**
**संश्रयाय निदानं नो तथा चाभ्युदय श्रियः ॥८३॥**

**अन्वयार्थ**—(विनयेन) विनय से (विहीनस्य) रहित (भिक्षो.) भिक्षु की (शिक्षा) शिक्षा (अमृतश्रियः) मोक्ष लक्ष्मी का (तथाच) और (अभ्युदयश्रिय) स्वर्ग लक्ष्मी के (सश्रयाय) सश्रय के लिए (निदान) कारण (न) नही है।

**भावार्थ**—जो तपस्वी विनयहीन है अर्थात् गुरुजनो का विनय नही करता है उसका शास्त्राध्ययनादि मुक्ति की प्राप्ति तथा स्वर्ग श्री का कारण नही है ॥८३॥

**जिनाज्ञावर्त्तनं कीर्त्ति मैत्री मानापनोदनम्।**
**गुणानुरागिता संघसम्मदाद्याश्च तद्गुणाः ॥८४॥**

**अन्वयार्थ**—(जिनाज्ञावर्त्तनं) जिनेश्वर की आज्ञा का पालन (कीर्त्ति) कीर्त्ति (मैत्री) मित्रता (मानापनोदन) मान कषाय की हानि (गुणानुरागिता) गुणो मे अनुराग (च) और (संघसम्मदाद्या) चतुर्विध सघ को सन्तोषादि (तद्गुणा) विनय के गुण हैं।

**भावार्थ**—विनय से जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन होता है, जगत मे निर्मल सत्कीर्त्ति रूपी लता विस्तरित होती है, सर्वजनो के मैत्री भाव प्रगट होता है, मान कषाय का नाश होता है तथा चतुर्विध सघ विनयशील मानव पर सन्तुष्ट होते हैं इत्यादि अनेक विनय के गुण हैं ॥८४॥

**किमत्र बहुनोक्तेन पदं सर्वेष्ट सम्पदाम्।**
**रत्नत्रयीविभूषायां येन मुक्ति निबन्धनं ॥८५॥**

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इसमे (बहुना) विशेष (उक्तेन) कथन से (किं) क्या प्रयोजन है (येन) जिससे (रत्नत्रयी विभूषाया) रत्नत्रय की विभूषा मे (सर्वेष्टसम्पदा) सर्व इष्ट सम्पदाओ का (पद) स्थान है और (मुक्तिनिबन्धन) मुक्ति का कारण है।

**भावार्थ**—विशेष कहने से क्या प्रयोजन है। विनय सर्व इष्ट सम्पदाओ का स्थान है, रत्नत्रय का भूषण है और मुक्ति का कारण है ॥८५॥

**व्यापत्प्रतिक्रिया वैयावृत्यं स्यात्सूरिपाठके।**
**तपस्विशैक्ष्यग्लानेषु गणे संघे कुले यतौ ॥८६॥**

**मनोज्ञे च तपस्व्येषु नानाऽनशनवर्त्तनः।**
**शैक्षो ज्ञानादिसंशिक्षो ग्लानो नानागदार्त्तितः ॥८७॥**

गणः स्थविरसन्ताश्चातुर्वर्ण्यकदम्बकम् ।
संघः स्याद्दीक्षकाचार्यशिष्याम्नायः कुलं मतम् ॥८८॥

चिरप्रव्रजितः साधुर्यतिः शेषो हि संयमी ।
दीक्षोन्मुखो मनोज्ञाख्योऽसंयतो वा सुदर्शनः ॥८९॥

विद्याजात्यादिविख्यातो मिथ्यादृग्वाऽस्य संग्रहः ।
जिन प्रवचनस्याय लोके गौरवकारकः ॥९०॥

**अन्वयार्थ**—(सूरिपाठके) आचार्य, उपाध्याय मे (तपस्विशैक्ष्यग्लानेपु) तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान मे (गणे) गण मे (संघे) सघ मे (कुले) कुल मे (यतौ) यति मे (मनोज्ञे) मनोज्ञ मे (व्यापत्प्रतिक्रिया) आपत्ति को दूर करना (वैयावृत्य) वैयावृत्ति (स्यात्) है। (एषु) इनमे (नानाशनवर्त्तन) नाना प्रकार के उपवास करने वाला (तपस्वी) तपस्वी है (ज्ञानादि-सशिक्ष·) ज्ञानादि का शिक्षण करने वाला (शैक्ष,) शैक्ष्य है। (नानागदार्दित) नाना प्रकार के रोगो से कदर्थित (ग्लान) ग्लान है (स्थविरसन्तान) स्थविर की सतान (गण) गण है (चातुर्वर्ण्यकदम्बक) चार प्रकार के मुनियो के समूह (सघ) सघ (स्यात्) है (दीक्षकाचार्यशिष्याम्नाय) दीक्षा आचार्य के शिष्य की आम्नाय (कुल) कुल है (चिरप्रव्रजित) चिरकाल से दीक्षित (साधु) साधु है (हि) निश्चय से (शेषः) शेष (सयमी) सयमी (यति) यति (मतं) है(दीक्षोन्मुख.) दीक्षा के सन्मुख है वह (मनोज्ञाख्य.) मनोज्ञ नामक साधु है (वा) अथवा (सुदर्शन) सुदर्शन (विद्याजात्यादिविख्यात) विद्या, जाति आदि मे विख्यात (असयत) असंयत भी मनोज्ञ है (वा) अथवा (लोके) लोक मे (जिनप्रवचनस्य) जिनेश्वर के प्रवचन का (गौरवकारक.) गौरव कारक है (अय) यह (मिथ्यादृग्) मिथ्यादृष्टि है (अस्य) इसका (सग्रह) सग्रह है।

**भावार्थ**—सम्यग्दर्शनादि गुणो के आधारभूत महापुरुषो से भव्य जीव स्वर्ग स्वर्ग मोक्ष सुखदायक व्रतो को धारण कर आचरण करते हैं वे आचार्य है। जिन व्रतशील भावना शाली महानुभाव के समीप जाकर भव्यजन विनयपूर्वक श्रुत का अध्ययन करते हैं वे उपाध्याय हैं। मासोपवास आदि नाना तपो को तपने वाले तपस्वी है। श्रुतज्ञान के शिक्षण मे तत्पर और सतत व्रत भावना मे निपुण शैक्ष है। जिनका शरीर रोगो से आक्रात है वे ग्लान है। स्थविरो की सन्तान गण है। दीक्षा देने वाले आचार्य की शिष्य परम्परा कुल है। चतुर्वर्ण श्रमणो के समूह को सघ कहते हैं। चिरकाल के दीक्षित पुराने साधक साधु है। अभिरूप को मनोज्ञ कहते हैं अथवा लोक मे जो विद्वान है वाग्मी है महाकुलीन आदि जाति से प्रसिद्ध है। जिनका सघ मे रहना प्रवचन गौरव का कारण है उनको मनोज्ञ कहते है। अथवा जो सस्कार सहित सुसस्कृत असयत सम्यदृष्टि है वह भी मनोज्ञ है। इस ग्रन्थ मे विद्या जाति आदि से विख्यात जिन धर्म की प्रभावना करने वाले भद्र परिणामी मिथ्यादृष्टि को भी मनोज्ञ मे ग्रहण किया है। इनकी आपत्ति दूर करना वैयावृत्ति है ॥८६,८७,८८,८९,९०॥

परीषह समाश्लेषेऽमीषां यच्छेमुषीमुदः ।
संपादनं त्रिरत्नाप्त्यैः वैयावृत्यं त्रिशुद्धितः ॥९१॥

आवासाशन पानाद्यैः प्रासुकैः क्लेशनाशिभिः ।
तदभावे स्वकायेन स्वोपकारानपेक्षया ॥९२॥

विण्मूत्रश्लेष्म सिंघाणकादेर्देहादपोहनात् ।
यत्नेनोत्क्षेपनिक्षेपपरिवर्त्तक्रियादिभिः ॥९३॥

**अन्वयार्थ**—(अमीषा) इन दश प्रकार के सयमी जनो के (परीषहसमाश्लेषे) परीषह आदि के आ जाने पर (यत्) जो (शेमुषीमुदः) चित्त के हर्ष से (त्रिरत्नाप्तये) तीन रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए (त्रिशुद्धितः) मन, वचन, काय की शुद्धि से (प्रासुकैः) प्रासुक (क्लेशनाशिभि.) क्लेश नाशक (आवासाशनपानाद्यैः) वसतिका आहार, पानी, औषधि, आदि के द्वारा (वैयावृत्य) वैयावृति (सम्पादन) करना चाहिए (तदभावे) औषधि आदि के अभाव मे (स्वकायेन) अपनी काय से (स्वोपकारानपेक्षया) अपने प्रति उपकार की अपेक्षा न करते हुए (देहात्) शरीर से (विण्मूत्रश्लेष्मसिंघाणकादे) मल, मूत्र, खकार, नासिकामल (सिंघाण) आदि का (अपोहनात्) दूर करने से तथा (यत्नेन) यत्नपूर्वक (उत्क्षेपनिक्षेपपरिवर्तक्रिया-दिभि) उठाना, बिठाना, परिवर्त्तन करना आदि क्रियाओ के द्वारा (वैयावृत्यं) वैयावृत्ति करना चाहिये।

**भावार्थ**—इन मुनियो पर, व्याधि, परीषह, आदि उपद्रव होने पर उनका प्रासुक औषधि, आहार, पान, आश्रय आसन, आवास धर्मोपकरण आदि से प्रतीकार करना तथा सयम, सम्यक्त्वादि से च्युत होने पर उनको सयम और सम्यक्त्व मार्ग मे दृढ करना वैयावृत्य है। औषधि आदि के अभाव मे प्रति उपकार की अपेक्षा नही करके अपने हाथो से मल मूत्र, खंकार तथा नाकादि के भीतरी मल को दूर करना, उनको यत्नपूर्वक उठाना, बिठाना, परिवर्त्तन कराना, आदि भी वैया-वृत्ति है ॥९१,९२,९३॥

**अस्मिन्निर्विचिकित्सत्व वत्सलत्व सनाथता।**
**यशोऽभ्युदयनि श्रेयसुखाप्तिप्रमुखा गुणाः ॥९४॥**

**अन्वयार्थ**—(अस्मिन्) इस वैयावृत्ति मे (निर्विचिकित्सत्ववत्सलत्वसनाथता) निर्विचिकित्सत्व, वत्सलत्व, सनाथता (पवित्रता) और (यशोऽभ्युदयनि श्रेयसुखाप्तिप्रमुखा) यश, अभ्युदय और नि श्रेय सुख प्राप्ति आदि प्रमुख (गुणा.) गुण है।

**भावार्थ**—वैयावृत्ति करने वाले मानव को निर्विचिकित्सत्ता, वात्सल्यत्व सनाथता, यशाभ्युदय, निश्रेय सुख की प्राप्ति आदि अनेक गुणो की प्राप्ति होती है। अर्थात् वैयावृत्ति करने वाले मे निर्जुगुप्सा गुण होता है क्योकि निर्जुगुप्सा के बिना वयावृत्ति नही होती है। वात्सल्य भाव प्रगट होता है। वात्सल्य के अभाव मे वैयावृत्ति कर नही सकते तथा वैया-वृत्ति कारक पवित्र यश ससार मे फैलता है और वैयावृत्ति का फल स्वर्ग सम्पदा एव मुक्ति पद प्राप्त होता है ॥९४॥

**स्वस्मै योऽसौ हितोऽध्यायः स्वाध्यायो वाचनादिकः।**
**तपो वर्यमतो नान्यत्तपःसु द्वादशस्वपि ॥९५॥**

**अन्वयार्थ**—(य) जो (स्वस्मै) अपने लिए (हित) हितकारी है (असौ) वह (वाचनादिक) वाचनादि (अध्याय) अध्याय (स्वाध्याय.) स्वाध्याय है (अपि) और (द्वादशसु) बारह प्रकार के (तप सु) तपो मे (अत) इस स्वाध्याय तप से (अन्यत्) दूसरा (वर्यं) श्रेष्ठ (तप.) तप (न) नही है।

**भावार्थ**—जो आत्मीय हितकारी शास्त्र वाचनादिक अध्ययन है वह स्वाध्याय है। और बारह प्रकार के तपो मे स्वाध्याय के समान दूसरा कोई तप नही है ॥९५॥

**नोर्ध्वमन्तर्मुहूर्तात्सद्ध्यानमध्ययनं पुनः।**
**सदैनो निर्जराकारि किन्तु न स्यात्कृतात्मनाम् ॥९६॥**

**अन्वयार्थ**—(अन्तर्मुहूर्तात्) अन्तर्मुहूर्त के (ऊर्ध्व) ऊर्ध्व (सद्ध्यान) सद्ध्यान (न) नही है (किन्तु) परन्तु (पुनः) पुन (कृतात्मना) पुण्यात्माओ के (एन) पाप का (निर्जराकारी) निर्जराकारी (अध्ययन) स्वाध्याय (सदा) निरन्तर (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—ध्यान अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही हो सकता है, परन्तु स्वाध्याय तो निरन्तर कर सकते हैं। जो पुण्यात्माओ के पाप की निर्जरा का कारणभूत है ।।९६।।

**मनः सदर्थे वाक्पाठे वर्णेऽक्ष्णी तच्छ्रुतौ श्रुती।**
**प्रसक्ते निष्क्रियेऽक्षेऽन्ये तदैकाग्रय मिहाप्यलम् ।।९७।।**

**अन्वयार्थ**—(मनः) मन (सदर्थे) समीचीन अर्थ मे (वाक्) वचन (पाठे) पठन मे (अक्ष्णी) आँख (वर्णे) वर्ण मे (प्रसक्ते) लीन हो जाने पर (अन्ये) अन्य (अक्षे) इन्द्रियो के (निष्क्रिये) निष्क्रिय हो जाने पर (इह) स्वाध्याय मे (अपि) भी (तत्) वह (एकाग्रय) एकाग्रता है (अल) विशेष क्या कहे।

**भावार्थ**—स्वाध्याय परम ध्यान है क्योकि स्वाध्याय करते समय मन समीचीन अर्थ के विचार करने मे लग जाता है, वचन पाठ करने मे नेत्र वर्णों को देखने मे और कर्ण शब्दो के सुनने मे लीन हो जाते हैं तथा सर्व इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं इसलिए स्वाध्याय मे पूर्ण एकाग्रता होती है अत एव स्वाध्याय परम तप है ।।९७।।

**अस्मात्तत्त्वपराभ्यासः प्रशमश्च विरागता।**
**भवेत् प्रभावनैकांतवादिमानप्रमर्दनं ।।९८।।**

**अन्वयार्थ**—(अस्मात्) इस स्वाध्याय से (तत्त्वपराभ्यास) तत्त्व का उत्कृष्ट अभ्यास (प्रशम.) प्रशम भाव (विरागता) वैराग्य (प्रभावना) प्रभावना (च) और (एकातवादिमानप्रमर्दन) एकात वादियो के मान का मर्दन (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—स्वाध्याय से तत्त्वो का अभ्यास होता है, प्रशम भाव वैराग्य की उत्पत्ति होती है, स्वाध्याय के बल से एकात वादियो के मान के मर्दन करने की शक्ति प्राप्त होती है तथा धर्म की प्रभावना भी होती है ।।९८।।

### व्युत्सर्ग का लक्षण

**शरीरान्तर्बहिः संग सग व्युत्सर्जनं मुनेः।**
**व्युत्सर्गः स्यात्समीचीनध्यानसंसिद्धिकारणम् ।।९९।।**

**अन्वयार्थ**—(शरीरान्तर्बहिः सगसगव्युत्सर्जन) शरीरादि अतरग बहिरग परिग्रह का त्याग (मुने) मुनि के (समीचीनध्यान संसिद्धिकारण) समीचीन ध्यान की सिद्धि का कारण (व्युत्सर्ग) व्युत्सर्ग (स्यात्) है।

**भावार्थ**—अंतरग और बहिरंग के भेद से परिग्रह दो प्रकार का है। उनमे अंतरग शरीर का ममत्व क्रोधादि कषायो का त्याग करना अभ्यन्तर व्युत्सर्ग है और क्षेत्र, वस्तु, आदि बहिरग परिग्रह का त्याग करना बहिरग व्युत्सर्ग है। तथा यह व्युत्सर्ग मुनियों के ध्यान की सिद्धि का कारण है ।।९९।।

### ध्यान का लक्षण

**ध्यानं तपः पर चित्तैकार्थलीन प्रवर्त्तनं।**
**कीर्त्यन्तेऽन्तर्मुहूर्त्तावस्थान स्वर्ग मोक्ष साधनं ।।१००।।**

**अन्वयार्थ**—(अन्तर्मुहूर्त्तावस्थानं) अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त अवस्थान जिसका ऐसा (चित्तैकार्थलीनप्रवर्त्तन) चित्त का एकार्थ मे लीन होकर प्रवर्त्त होना (स्वर्मोक्षसाधन) स्वर्ग मोक्ष का साधन (ध्यान) ध्यान नामक (पर) सर्वोत्कृष्ट (तप.) तप (कीर्त्यन्ते) कहा जाता है।

भावार्थ—अन्तर्मुहूर्त पर्यंत चित्त का एकाग्र होना ध्यान है। यह ध्यान स्वर्ग मोक्ष का साधन है। यही उत्कृष्ट तप है ॥१००॥

विशिष्टमिष्टं घटत्युदार
　　दूरस्थितं वस्त्वति दुर्लभं च।
जैनं तपः किं बहुनोदितेन
　　स्वर्गश्रियं चाक्षयमोक्षलक्ष्मीं ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(जैनं) जिनेन्द्र कथित (तप) तप (दुरस्थित) दुरस्थित (अतिदुर्लभ) अत्यन्त दुर्लभ (विशिष्ट) विशिष्ट (इष्ट) इष्ट (च) और (उदार) उदार (वस्तु) वस्तु (घटयति) घटित करता है (बहुना) बहुत (उदितेन) कथन करने से (किं) क्या प्रयोजन है (स्वर्गश्रिय) स्वर्ग श्री (च) और (अक्षयमोक्षलक्ष्मी) अविनाशी मोक्ष लक्ष्मी तप से प्राप्त होती है।

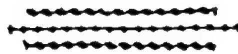
भावार्थ—जैन तप के प्रभाव से, अतिदूरस्थ, अतिदुर्लभ, इष्ट विशिष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। और तो क्या स्वर्ग और मोक्ष का प्राप्ति भी जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित तप के प्रभाव से होती है ॥१०१॥

नमोस्तु तस्मै मुनिसुव्रताय
　　साक्षात्कृतन्यक्षचराचरो यः॥
व्रतानि सत्त्वैकहितानि यस्य
　　सन्ति क्रमप्रह्वजगत्त्रयस्य ॥१०२॥

अन्वयार्थ—(य) जो (साक्षात्कृतन्यक्षचराचर) साक्षात किया है समस्त चराचर पदार्थ जिसने (क्रमप्रह्वजगत्त्रयस्य) चरणो मे नत है तीन जगत वाले (यस्य) जिसके (सत्वैकहितानि) प्राणियो के अद्वितीय हितकारी (व्रतानि) व्रत (सन्ति) है (तस्मै) उस (मुनिसुव्रताय) मुनिसुव्रत भगवान के लिए (नमोस्तु) नमस्कार है।

भावार्थ—जिसके ज्ञान मे तीन लोक के सकल चराचर पदार्थ साक्षात प्रतिफलित होते हैं, तीन जगत प्राणी जिसके चरणो मे नत मस्तक हो रहे हैं, जिसके द्वारा कथित व्रत सर्व जगत का हित करने वाले है ऐसे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र के लिए मेरा नमस्कार हो ॥१०२॥

इति श्रीमद्वीर नन्दिसिद्धांतिचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसार नाम्नि ग्रन्थे तप आचार वर्णनात्मकः षष्ठोऽधिकारः।



# अथ सप्तमोऽधिकारः

॥ परीषहाधिकार ॥

सद्वृत्तिः सुमतिः पति स्त्रिजगतां नेता विमुक्तेः सृतेः[1]
　　यस्यात्यद्भुत चित्तशक्तिहुतभुग्ज्वालाकलापे रतं।

तन्[1]मार्गानुगमार्गबन्धनमहासंघातिनिर्बन्धिनः
प्लु[3]ष्टोदुष्टपरीषहोद्भटभटः सोयं जिनः पातु नः ॥१॥

**अन्वयार्थ**—(यस्य) जिसके (अत्यद्भुतचित्तशक्तिहुतभुग्ज्वालाकलापैः) अति अद्भुत चित्त शक्ति रूपी अग्नि के ज्वालाओ के समूह के द्वारा (तन्मार्गानुगमार्गबन्धनमहासघातिनिर्बन्धिन) मोक्षमार्ग के अनुग मार्ग के बन्धन करने वाले महासघाति के निर्बन्धी (दुष्टपरीषहोद्भटभट ) दुष्ट परीषह रूपी उद्भटभटो को (प्लुष्टः) जला दिया है जो (विमुक्ते.) मुक्ति के (सृते ) मार्ग के (नेता) नेता है (त्रिजगता) तीन जगत के (पति ) पति हैं (सद्वृत्ति ) सद्वृत्ति (स ) वह (अयं) यह (सुमति ) सुमति (जिन ) जिनेन्द्र (न ) हमारी (पातु ) रक्षा करे (अल) पादपूर्ण ।

**भावार्थ**—जिसकी अत्यन्त अद्भुत चैतन्यशक्ति रूप अग्नि की ज्वाला ने मोक्ष मार्ग के अनुगम मार्ग के वन्धन महासघात के निर्बन्धी दुष्ट परीषह रूपी उद्भट योद्धाओ को जला दिया है, जो तीन जगत के स्वामी हैं वे समीचीन व्रत के धारी सुमति जिनेन्द्र हमारी रक्षा करो ॥१॥

## परीषहों के नाम

क्षुत्तृट् शीतमलोष्णदंशमशकेर्या रोगशय्यातृण-
स्पर्शक्लेशबधानलाभमरतिं निर्दर्शनं स्त्रीक्लमम् ।
प्रज्ञाज्ञानभवौ सनाग्न्यशयनान्सत्कारयाच्ञानिष-
द्योद्भूतांश्च परीषहान् विजयते यो वीर्यचर्यो[4]यतिः ।२।

**अन्वयार्थ**—(क्षुत्तृट्) भूख, प्यास (शीतमलोष्णदंशमशकेर्यारोगशय्यातृणस्पर्शक्लेशबधान्) शीत,मल, उष्ण दशमशक, ईर्या, (चर्या) रोग, शय्या, तृण स्पर्शक्लेश, बध (अलाभं) अलाभ (अरतिं) अरति (निर्दर्शन) अदर्शन (स्त्रीक्लम) स्त्री परीषह (प्रज्ञाज्ञानभवौ) प्रज्ञा और अज्ञान से उत्पन्न प्रज्ञा और अज्ञान परीषह (नाग्न्यशयनान्) नाग्न्य शयन (आक्रोश) (सत्कारयाचानिषद्योद्भूतान) सत्कार, याचना, निषधा से उत्पन्न (परीषहान्) परीषहों को (य ) जो (जयते) जीतता है (स ) वह (यति ) मुनि (वीर्यचर्य ) वीर्याचारवान् है ।

**भावार्थ**—भूख १ प्यास २ शीत ३ उष्ण ४ दशमशक ५ नाग्न्य ६ अरति ७ स्त्री ८ चर्या ९ निषद्या १० शय्या ११ आक्रोश १२ वध १३ याचना १४ अलाभ १५ रोग १६ तृणस्पर्श १७ मल १८ सत्कार पुरस्कार १९ प्रज्ञा २० अज्ञान २१ और अदर्शन २२ इन कारणो से उत्पन्न परीषहो को जो जीतता है वह यतिराज वीर्याचारवान है ।

## क्षुधा परीषह

क्षुत्तीक्ष्णानशनादिजाक्षतिकरं स्वज्ञेय[1] वीक्षाक्षमं
स्वान्तं भ्रान्ततरं करोति बल[2]वत्प्राणान्प्रयाणोन्मुखान् ।
याऽदीनमजनेऽफलाऽति सफला त्या[3]गात्तपः पुष्टये
तस्या धृत्यमृताशनेन शमनं कुर्वन्व्रती क्षुज्जयः ॥३॥

**अन्वयार्थ**—(तीक्ष्णा) तीक्ष्ण (अनशनादिजा) अनशनादि से उत्पन्न (क्षुत) क्षुधा (अक्षनिकर) इन्द्रियो का

१ मार्गस्य २ तन्मोक्षवर्त्मबन्धविषये महा प्रतिज्ञाया अतीवा ग्रहवत, ३ दग्धः दर्पित ४ वीर्याचारवान् ।

समूह को (स्वज्ञेयवीक्षाक्षमं) अपने ज्ञेय विषय को जानने मे असमर्थ (स्वान्त) मन को (भ्रान्ततरं) भ्रान्तर (वलवत्प्राणान्) बलवत् प्राणो को (प्रयाणोन्मुखान्) प्रयाण करने के सन्मुख (करोति) करती है (या) जो (अन्नाधीनजने) अन्न के आधीन जनो मे (अफला) निष्फल है (त्यागात्) आहार निवृत्ति से (तपः पुष्ट्ये) तप की पुष्टि के लिए (अतिसफला) अत्यन्त सफल है (तस्या.) उस क्षुधा का (धृत्यमृताशनेन) धैर्य रूपी अमृत के अशन (भोजन) से (शमन) शमन (कुर्बन्) करता हुआ (व्रती) मुनि (क्षुज्जय.) क्षुधा परीषह को जीतने वाला होता है।

भावार्थ—अत्यन्त तीक्ष्ण उपवास आदि से उत्पन्न क्षुधा इन्द्रियो के समूह को अपने ज्ञेय विषय के जानने मे असमर्थ कर देती है। चित्त को भ्रान्त कर देती है। बलवन्प्राणो को प्रयाण के सन्मुख कर देती है। अर्थात् क्षुधा से व्याकुल मानव की इन्द्रियां अपने कार्य से विमुख हो जाती हैं। मनः आकुल व्याकुल हो जाता है। मृत्यु सन्मुख आ जाती है। इस क्षुधा को अन्न के आधीन रहने वाले मानव जीत नही सकते हैं। उस क्षुधा को जो आहार का त्याग कर धृति रूपी अमृत के अशन से शमन करते हैं वही साधु क्षुधा परीषह जयी होते हैं ।।३।।

## तृषा परीषह

**चंडश्चंडकरः स्थलस्थितपयः संचारिणः प्राणिनः**
**भ्रष्टप्लुष्ट तनु स्तनोति नितरां यस्मिस्त पे तापने।**
**तस्मिन् स्निग्ध विरुद्धभोजनरुजाऽऽतापादि पुष्यत्तृषां**
**त्यक्ते निःस्पृहतामृतेन कृतधीमु ष्णाति तृष्णाजयः ।४।**

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिस (तपे) ग्रीष्म काल के (तापने) तप्राय मान हो जाने पर (चंड) तीक्ष्ण (चंडकरः) सूर्य (स्थलस्थितपयः संचारिण.) स्थल स्थित और जल मे सचार करने वाले (प्राणिन) प्राणियो को (भ्रष्ट-प्लुष्टतनून्) भ्रष्टदग्ध शरीर वाले (तनोति) कर देता है (तस्मिन्) उस ग्रीष्म ऋतु मे (स्निग्धविरुद्धभोजनरुजाऽऽतापादि-पुष्यतृषा) स्निग्ध प्रकृति विरुद्ध भोजन, रोग आतापादि से उत्पन्न तृषा को (तृष्णाजय.) तृष्णा परीषहजयी (कृतधी.) पुण्य बुद्धि वाला यतिराज (त्यक्ते) परित्यक्त वस्तु मे (निस्पृहतामृतेन) निस्पृहता रूपी अमृत से (मुष्णाति) नष्ट करता है।

भावार्थ—जिस ग्रीष्म काल मे तीक्ष्ण सूर्य की किरणो से तालाब नदी शुष्क हो जाते हैं, जलचर, स्थलचर, नभश्चर, जीवो का शरीर दग्ध हो जाता है, उस ग्रीष्म ऋतु मे स्निग्ध, रूक्ष, प्रकृति विरुद्ध, आहारासे वा रोगादि से उत्पन्न प्यास को पुण्यात्मा, पवित्र बुद्धि के धारक यतीश्वर परित्यक्त वस्तु मे स्पृहा का त्याग कर समतामृत के पान से बुझाते हैं वे तृषा परीषहजयी होते हैं ।।४।।

## शीत परीषह

**प्रोत्कम्पा हिमभीमशीतपवनस्पर्श प्रभि न्नांगिनो**
**य स्मिन्यान्त्यति शीतखेदमवशाः प्रालेयकालेऽगिनः।**
**तस्मिन्नस्मरतः पुरा प्रियतमाश्लेशादि जात सुखं**
**योगागारनिरस्तशीत विकृते निर्वास सस्त ज्जयः ।।५।।**

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिस (प्रालेयकाले) शीत काल मे (प्रोत्कम्पाहिम भीमशीतपवनस्पर्शप्रभिन्नागिन.) प्रोत्कम्प शीत हिम से भयंकर शीतल पवन के स्पर्श से स्फुटित शरीर के अवयव जिन्हो के ऐसे (अंगिन) प्राणी (अवशा)

१ स्वीयरूपादीक ज्ञातुम समर्थ २ वलधी प्राणान् ३ आहार निवृत्ते. ४ शीत परीषह जय।

पर वश होकर (अतिशीतखेद) अत्यन्त शीत के खेद को (याति) प्राप्त होते हैं (तस्मिन्) उस शीतकाल मे (पुरा) पूर्वकाल मे (प्रियतमाश्लेषादि जात) प्रियतमा के आश्लेष (आलिगिन) से उत्पन्न (सुखं) सुख का (अस्मरत) स्मरण नही करते हुये (योगागारनिरस्त शीतविकृते.) योगाभ्यास रूपी घर के निवास से दूर किया है शीत की बाधा को जिसने ऐसे (निर्वासस) दिगम्बर साधु के (तज्जय) शीत परीषह जय होती है।

**भावार्थ**—जिस शीतकाल मे शरीर मे कम्पन उत्पन्न करने वाली शीतल वायु के स्पर्श से शरीर के अवयव फट जाते हैं, तथापि पूर्वकाल मे अनुभूत वनिता जन्य सुखो को स्मरण नही करते हुये दिगम्बर साधु धीर वीर होकर शुभ ध्यान रूपी घर मे निवास करके शीत की बाधा का निवारण करते हैं अर्थात् शीत बाधा से आकुलित नही होते हैं, वे शीत परीषह जयी होते है ।।५।।

### मल परीषह

**प्रा[5]णाघात विभीतितस्तनुरतित्यागाच्च भोगा[6]स्पृहः**
**स्नानोद्वर्त्तनलेपनादिविगमात् प्रस्वे[7]द पासूदितं ।**
**लोकानिष्टमनिष्टमात्मवपुषः पामादिमूलं मलं**
**गात्र[1]त्राणमिवादधाति वृजिनं[2]जेतु मलक्लेश[3] जित् ।।६।।**

**अन्वयार्थ**—(भोगास्पृह) भोगो मे जिसकी इच्छा नही है ऐसा साधु (प्राणाघातविभीतित) प्राणियो के विघात के भय से (च) और (तनुरतित्यागात्) शरीर सम्बन्धी ममत्व के त्याग से (स्नानोद्वर्त्तनलेपनादिविगमात्) स्नान, उद्वर्त्तन, लेपन, आदि के नही करने से (प्रस्वेदपासूदित) पसीना और धूलि से उत्पन्न (लोकानिष्टं) लोगो को अप्रिय (आत्म-वपुष) अपने शरीर को भी (अनिष्ट) अनिष्ट (पामादिमूलं) खुजली आदि का मूल ऐसे (मल) मल को (वृजिनं) पाप को (जेतु) जीतने के लिए (गात्रत्राणं) कवच के (इव) समान (आदधाति) धारण करता है, वह (मलक्लेशजित्) मल परीषह को जीतने वाला होता है।

**भावार्थ**—जो सयमी प्राणियो के विघात से भयभीत है, जिसका शरीर के प्रति ममत्व नही है, इसलिए प्राणियो के विघातक स्नान, विलेपन नही करने वाले साधु के शरीर मे पसीना व धूलि से मल उत्पन्न हो जाता है, जिससे शरीर मे खुजाल उत्पन्न होती है, लौकिक जन को जो अनिष्ट है, देखने मे अमनोज्ञ है ऐसे मल को पापभीरू साधु पापपु ज को नाश करने के लिए शरीर रक्षक कवच के समान धारण करता है वह मल परीषह जयी कहलाता है ।।६।।

### उष्ण परीषह

**ग्रीष्मे शुष्यदशेष देहिनिकरे मार्तण्डचंडांशुभिः**
**संतप्तात्मतनुस्तृषानशनरुक्क्लेशादिजातोष्णनम् ।**
**शो[4]षस्वेदविदाहखेदमवशे[5]नाप्तं पुराऽपिस्मरन्**
**तन्मुक्त्यै निजभावभावनरतिः स्यादुष्णजिष्णुर्व्रती ।७।**

**अन्वयार्थ**—(शुष्यदशेषदेहिनिकरे) शुष्क है समस्त प्राणियो का समूह जिसमे ऐसे (ग्रीष्मे) ग्रीष्मकाल मे

१ ग्रीष्म २ परित्यक्त वस्तुनि ३ कृते पुण्ये धी यस्य स

१ स्फुटितावयवा २ शिशिरकाले ३ निर्गन्थस्य ४ शीत परिषहजय ५ प्राणिहिंसा ६भोगे अस्पृहा यस्य स. भोगास्पृह. ७ घर्म धूलि जात ।

१ कवच २ पाप ३ मल परीषह जित ४ तालु शोष ५ परवशेन ।

(मार्तण्डचडाशुभि) सूर्य की तीक्ष्ण किरणो के द्वारा (सतप्तात्मतनु·) सतप्तमान है शरीर जिसका (तृषानशनरूक्क्लेशादि· जातोष्णज) प्यास, उपवास, रोग, क्लेश आदि से उत्पन्न उष्ण जात (अवशेन) परवश से (आप्त) प्राप्त (शोषस्वेद विदाह खेद) तालु शोष स्वेद विदाह खेद को (पुरापि) पूर्व मे किये कर्मों का (स्मरन्) स्मरण करता हुआ (तन्मुक्त्यै) उन कर्मों का नाश करने के लिए (निजभावभावनरति) अपने भावो को भावन मे लीन (व्रती) व्रती (उष्णजिष्णु.) उष्णपरीषह जयी (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—प्राणियो के शरीर को ग्रीष्म काल मे कृश करने वाले सारे प्राणी तीक्ष्ण सूर्य के किरणो से सतप्त हो रहे हैं, तृषा, उपवास, विहार, रोग, क्लेशादि से उत्पन्न उष्णता से तालु शुष्क हो रहा है, सारे शरीर मे पसीना निकल रहा है, शरीर मे दाह उत्पन्न हो रहा तो भी व्रती साधु खेद खिन्नता को प्राप्त नही होकर आत्म भावना मे लीन रहता है। वह उष्ण परीषह जयी होता है ।।७।।

## दंश मशक परीषह

**शून्यागारदरीगुहादिशुचिनि स्थाने विविक्ते स्थितः**
**तीक्ष्णैर्मत्कुणकीटदंशमशकाद्यैश्चंडतुन्डैः कृताः।**
**स्वांगार्ति परदेहजार्त्तिमिवतां यो मन्यमानोमुनिः**
**निःसंगः स सुखी च दंशमशकक्लेशं क्षमी त नुम ।।८।।**

**अन्वयार्थ**—(शून्यागारदरीगुहादिशुचिनि) शून्य घर, कन्दरा, गुफा आदि पवित्र (विविक्ते) एकात (स्थाने) स्थान मे (स्थित) स्थित (मुनि·) मुनि (तीक्ष्णै.) तीक्ष्ण (मत्कुणकीटदशमशकाद्यै) खटमल, कीट, मच्छर, डास आदि के द्वारा (चंडतुडै) तीक्ष्ण चोच वाले पक्षी आदि के द्वारा (कृता) की हुई (स्वागार्ति) अपने शरीर के पीडा को (परदेहजार्ति) दूसरे के शरीर मे उत्पन्न हुई पीडा के (इव) समान (ता) उस पीडा को (य) जो (मन्यमान) मानता है (स) वह (निःसंग) निःसग (सुखी) सुखी (दशमशकक्लेश) दश मशक क्लेश को (क्षमी) सहन करने वाला है (तं) उसको (नुम) हम नमस्कार करते हैं।

**भावार्थ**—जो शून्य गृह पर्वत की कन्दरा, गुफा, वृक्ष के कोटर मे रहकर तीक्ष्ण खटमल, कीट, मच्छर, दश मशकादिका के द्वारा उत्पन्न हुई अपने शरीर के पीडा को दूसरे के शरीर मे उत्पन्न हुई पीडा के समान समझता है वह निस्परिग्रही, सुखी दिगम्बर साधु दंशमशक परीषहजयी कहलाता है। उसको मैं नमस्कार करता हूँ ।।८।।

## चर्या परीषह

**शार्दूलैर्मिलितेच्छ[1]भल्लभुजगामोगेभयैकास्पदे**
**गन्धान्धद्विरदोत्करे करिरिपु क्रीडे[2] कनीडे बने।**
**स्वैर कण्टक कर्करादि[3]परुषेऽप्यत्राण[4]पादश्चरन्**
**एकः सिंह इवार्त्तिभीतिविजयी व्रज्यार्त्तिजित्सयमी ।।९।।**

**अन्वयार्थ**—(शार्दूलै.) शार्दूलो से (मिलिते) मिलित (अच्छभल्लभुजगामोगे) सवल, भालुक, भुजग से व्याप्त (भयैकास्पदे) भय का एक स्थान (गन्धान्ध द्विरदोत्करे) गन्ध से अन्ध हुये गजराज का समूह है जिसमे (करिरिपुक्रीडे·

१ अच्छभल्ल भुजगानामाभोगा पूर्णता यस्मिन् "आभोग· परिपूर्णता" इत्यभिधानात् २ एक गृहे ३ निष्ठुरे
४ पादत्राण रहित इत्यर्थ

कनीडे) सिंह की क्रीडा का एक स्थान (कण्टककर्करादिपुरुषे) कण्टक कर्करादि से कठोर (वने) वन मे (अपि) भी (अत्राण-पाद) जूता रहित पैर वाला (स्वैर) इच्छानुसार (सिंह) सिंह के (इव) समान (चरन्) भ्रमण करता हुआ (अत्तिभीति-विजयी) अर्त्तिभीतिविजयी (सयमी) सयमी (व्रज्यार्तिजित्) चर्या परीषहजयी होता है।

**भावार्थ**—जो शार्दूल, व्याघ्र, चीता, रीछ, सर्प आदि से भरा हुआ है भयास्पद है, गन्ध से मदोन्मत्त हुये गजराजो के क्रीडा का स्थान है, ककर, पत्थर, कण्टक आदि से व्याप्त है ऐसे वन मे सिंह के समान निर्भय होकर अत्राण पाद (जूता रहित) पैरो से भ्रमण करने वाले मुनि चर्या परीषयजयी होते है ।।९।।

## रोग परीषहजय

**कण्डूयागलगण्ड[5] पांडुदवथु[6] ग्रन्थिज्वरश्लीपद–**
**श्लेष्मोदुम्बरकुष्ठपवनश्वासादिरोगार्दितः[7]।**
**भिक्षु क्षीण बलोऽपि भेषज सुहृन्मंत्रानपेक्ष क्षमी**
**दुष्कर्मारि विनिर्मितार्ति विजयी स्याद् व्याधिबाधाजयः[8]।१०।**

**अन्वयार्थ**—(कण्डूयागलगण्डपाण्डुदवथुग्रन्थिज्वरश्लीपद, श्लेष्मोदुम्बरकुष्ठपित्तपवनश्वासादिरोगार्दित) खुजली, कठमाला, पाण्डु, दाह, ग्रन्थि, ज्वर, वल्मीक पाद, (पैर बहुत मोटा होता है) कफ, उदम्बर कुष्ट, पित्त, वायु, श्वासादि रोगो से पीडित (क्षीणवल) क्षीण बल वाला (अपि) भी (क्षमी) क्षमाशील (भिक्षु) साधु (भेषजसुहृन्मत्रानपेक्ष) औषधि, मित्र और मन्त्रो की अपेक्षा नही करता हुआ (दुष्कर्मारिविनिर्मिता) दुष्कर्म रूपी शत्रुओ के द्वारा विनिर्मित (आर्त्तिविजयी) दु खो को जीतने वाला (व्याधिवाधाजय) व्याधि बाधाजयी (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—खुजाल, गंडमाल, पाडु रोग, दाह, ग्रन्थि, ज्वर, श्लीपद, कफ, उदम्बर, कुष्ठ, वायु, श्वास आदि रोग से पीडित, क्षीण शक्ति वाला भी क्षमाशील साधु भेषज, मित्र और मन्त्रो की अपेक्षा नही करता है और दुष्कर्म रूपी शत्रु के द्वारा निर्मित रोगो पर विजय प्राप्त करने वाला साधु व्याधि परीषहजयी होता है ।।१०।।

## शयन परीषह

**झंझा[1]वातहतार्तकौशिक[2]शिवा[3]फेत्कारघोरस्वरां**
**शपा[4]क्रूररदां स्फुरद्रुचितडिज्जिह्वां क्षपा[5]राक्षसीम्।**
**यो तां द्राग् गमयत्यसौ[6] शयन[7]जातायासजिद्धीरधीः**
**[8]ध्वान्तात्यन्तकराल[9]भूधर[10]दरीदेशे प्रसुप्तः क्षण ।११।**

**अन्वयार्थ**—(झझावातहतार्तकौशिकशिवाफेत्कारघोरस्वरा) वृष्टि सहित वायु के ताडित होने से दु खी, उल्लू और शृगाल (सियार) पशुओ के फेत्कार (चीत्कार) से घोर शब्द वाली (शपाक्रूररदा) अशनि (बिजली का प्रकार) है क्रूर दात जिसके (स्फुरद्रुचितडिज्जिह्वा) स्फुरित बिजली है जिह्वा जिसकी ऐसी (ता) उस (क्षपाराक्षसी) रात्रि रूपी राक्षसिनी को (य) जो (द्राग्) शीघ्र ही (धीरधी) धीर बुद्धि वाला (ध्वान्तात्यन्तकरालभूधरदरीदेशे) अन्धकार से अत्यन्त

५ गण्डमाला ६ दु दु उपतापे-दाह ७ पीडित ८ रोग परीषह।

१ वृष्टि सहिता वायु (झझावात सवृष्टि– स्यात् वात्या वातस्तु मडली इत्यमरः २ उलूक ३ जम्बुक ४ अशनि
५ रात्रि ६ अवसान प्रापयति ७ शय्या परीषह ८ अन्धकार ९ रौद्र १० पर्वत।

रौद्र पर्वत की गुफा के प्रदेशों में (सुप्तः) सोया हुआ (क्षणं) क्षण के समान (गमयति) व्यतीत करता है (असौ) वह साधु (शयनजातायासजित्) शयनपरीषह जयी होता है।

**भावार्थ**—जहां वर्षा सहित भयंकर वायु से पीड़ित होकर उल्लू और श्रृंगाल चीत्कार कर रहे हैं, वह ही जिसके शब्द हैं, क्षपा जिसके क्रूर दांत हैं, स्फुरायमान कांति वाली विद्युत जिसकी जिह्वा है, ऐसी विकराल रात्रि रूपी राक्षसिनी को धीर बुद्धि वाले तपस्वी घोर अन्धकार से पूरित पर्वत की गुफा के प्रदेश में सोये हुये सुख पूर्वक व्यतीत करते हैं वे शयन परीषहजयी होते हैं ।।११।।

## तृण स्पर्श परीषह

श्रान्तः सन् श्रुतभावनाऽनशनसद्ध्यानाऽध्वयानादिभिः
स्तोकं कालमतिश्रमापहृतये शय्यानिषद्ये भजन् ।
शुद्धोर्वीतृणपत्र संस्तरशिला पट्टेषुतत्पीड़नः
कंडूयादिसहो भवेदिह तृणस्पर्शक्षमी संयमी ।।१२।।

**अन्वयार्थ**—(श्रुतभावनानशनसद्ध्यानाध्वयानादिभिः) श्रुत की भावना, उपवास, समीचीन ध्यान और मार्ग में गमनादि के द्वारा (श्रान्तः सन्) क्लान्त (थका हुआ) (अतिश्रमापहृतये) अति श्रम को दूर करने के लिए (शुद्धोर्वीतृणपत्रसंस्तरशिलापट्टेषु) शुद्ध पृथ्वी, तृण, पत्र, संस्तर और शिलापट्ट पर (स्तोकं) थोड़े (कालं) काल तक (शय्यानिषद्ये) शय्या और निषद्या को (भजन्) धारण करता हुआ (तत्पीड़नः) उसकी पीड़ा (कंडूयादिसहः) खुजाल आदि को सहन करता हुआ (संयमी) संयमी (इह) इस लोक में (तृणस्पर्शक्षमी) तृणस्पर्श परीषहजयी (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—श्रुत की भावना, उपवास, समीचीन ध्यान और मार्ग में गमनादि के कारणों से क्लान्त मुनि अतिश्रम को दूर करने के लिए शुद्ध पृथ्वी, तृण, पत्र, संस्तर और शिलापट्ट पर स्तोक काल तक शयनासन करते हैं। उस समय तृण आदि से शरीर में खुजाल उत्पन्न होती है उसको आनंदित होकर सहन करते हैं, मन में खेद खिन्न नहीं होते हैं। वे तृण स्पर्श परीषहजयी कहलाते हैं ।।१२।।

## वध परीषह

रुष्टैः पूर्व भवापकारकलनात्तज्जन्मवैरात्खलैः
म्लेच्छैर्निष्करुणैरकारणगुणद्वेषैश्च पापात्मकैः ।
देहच्छेदनभेदनादिविधिना यो मार्यमाणोऽप्यलं
देहात्मात्मविभेदवेदनभवक्षांतिर्वधातिक्षमी ।।१३।।

**अन्वयार्थ**—(पूर्वभवापकारकलनात्) पूर्व भव के अपकार के जान लेने से अथवा (तज्जन्मवैरात्) उस जन्म सम्बन्धी वैर से (रुष्टैः) रुष्ट हुये (खलैः) दुष्टों के द्वारा (च) और (निष्करुणैः) निर्दया (अकारणगुणद्वेषैः) बिना कारण गुणों से द्वेष करने वाले (पापात्मकैः) पापी (म्लेच्छैः) म्लेच्छों के द्वारा (देहच्छेदनभेदनादिविधिना) शरीर के छेदन भेदनादि विधि से (मार्यमाणः) मारने पर (अपि) भी (यः) जो (देहात्मात्मविभेदवेदनभवक्षांति) शरीर और अपने आत्मा के भेद विज्ञान के अनुभव से उत्पन्न क्षमाधारी संयमी (वधातिक्षमी) वध परीषह को सहन करते हैं (अलं) समर्थ होता है।

१ स्वाध्याय २ मार्गगमन ३ शयनोपवेशन।

**भावार्थ**—पूर्व भव के अपकार के जान लेने (जातिस्मरण) से अथवा उस जन्म सम्बन्धी वैर भाव से रुष्ट हुये शत्रुओ के द्वारा अथवा निष्कारण गुणो मे द्वेष रखने वाले, पापी, निर्दयी, म्लेच्छो के द्वारा शरीर के छेदन, भेदन, मारण ताड़न आदि करने पर भी जो शरीर और आत्मा के भेद विज्ञान से उत्पन्न आत्मानुभव के सामर्थ्य से खेद खिन्न नही होता है क्षमाशील वह साधु वध परीषहजयी कहलाता है ।।१३।।

## अलाभ परीषह

हंहो १ देह १ सहायतां तव समुद्दिश्यैवपोष्यो मया
पूर्त्तौ मत्तपसो गृहावलिमतो भ्रान्त्वाप्यनाप्तेऽशने ।
दोषः कोपि न विद्यते मम पुनर्लाभादलाभक्षमा
तां पूर्त्ति प्रतनोत्यतः प्रियतमैवेत्यलाभक्षमा ।।१४।।

**अन्वयार्थ**—(हहो) हे (देह) शरीर (मत्तपसः) मेरे तप की (पूर्त्तौ) वृद्धि मे (तव) तेरी (सहायता) सहायता का (समुद्दिश्य) उद्देश लेकर (एव) ही (मया) मेरे द्वारा (तव) तेरा (पोष्य) पोषण करना योग्य है (अत) इसलिये (गृहावलि) घरो की पक्तियो मे (भ्रान्त्वा) भ्रमण करके भी (अशने) भोजन के (अनाप्ते) प्राप्त नही होने पर (मम) मेरा (क.) कोई (अपि) भी (दोषः) दोष (न) नही है (पुन) पुनः (लाभात्) लाभ की अपेक्षा (अलाभक्षमा) आहार की अप्राप्ति (ता) उस तप की (पूर्ति) पूर्ति को (प्रतनोति) विस्तरित करती है । (अत) इसलिये (एषा) यह आहार की अप्राप्ति (एव) ही (प्रियतमा) प्रियतम है (इति) इस प्रकार (अलाभक्षमी) संयमी अलाभ जयी होता है ।

**भावार्थ**—हे शरीर ! तू मेरे तप की वृद्धि का कारण है,इसलिये मैं योग्य आहारादि के द्वारा तेरा पोषण करने के लिए घरो की पक्ति मे भ्रमण करता हूँ । यदि भ्रमण करने पर भी आहार की प्राप्ति नही होती है, तो मेरा कोई दोष नही है । आहार की प्राप्ति की अपेक्षा आहार की अप्राप्ति मेरे तप की विशेष वृद्धि करती है, इसलिए आहार की अप्राप्ति ही मुझे प्रियतम है । ऐसा विचार करके आहार की अप्राप्ति मे जो आनन्द मानता है वह सयमी अलाभ परीषहजयी होता है।१४।

## अरति परीषह

दुर्वारेन्द्रिय वृन्द रोगनिकर क्रूरादिबाधोत्करैः
प्रोद्भूतामरतिं व्रतोत्करपरित्राणे गुणोत्पोषणे ।
मक्षु क्षीणतरां करोत्यरतिजिद्वीरः स वंद्यः सता
यो दडत्रयदडनाहितमतिः सत्यप्रतिज्ञो व्रती ।।१५।।

**अन्वयार्थ**—(य) जो (व्रती) सयमी (दुर्वारेन्द्रियवृन्दरोगनिकरक्रूरादिबाधोत्करै) दुर्वार इन्द्रियो के समूह रोगो के समूह, क्रूरपशु आदि की बाधाओ के समूह से (प्रोद्भूता) प्रोद्भूत (अरति) अरति को (व्रतोत्करपरित्राणे) व्रतो के समूह के रक्षा करने मे (गुणोत्पोषणे) गुणो के पुष्ट करने मे (मक्षु) शीघ्र ही (क्षीणतरा) क्षीणतर (करोति) करता है (स) वह (अरतिजित्) अरति परीषहजयी (दडत्रयदडनाहितमति) मन, वचन, काय इन तीन दडो के दमन करने के लिए ग्रहण की मति जिसने ऐसा (सत्यप्रतिज्ञा) सत्य प्रतिज्ञा वाला (वीर) वीर (सता) सज्जन पुरुषो के द्वारा (वद्य) वंदनीय होता है ।

**भावार्थ**—जो सयमी अमनोज्ञ इन्द्रियो के विषय से, रोग आदि के उत्पन्न होने से, क्रूरपशु आदि की बाधाओ के समूह से उत्पन्न अरति को अपने व्रतो की रक्षा करने मे एव गुण समूह को पुष्ट करने के लिए क्षीण कर देता है, मानसिक

जुगुप्सा उत्पन्न नही होने देता है, वह मन, वचन, काय का विजयी (त्रिगुप्तिधारक) सत्य प्रतिज्ञ, धीर, वीर, अरति परीषह-जयी संयमी सत्पुरुषो के द्वारा वदनीय होता है ।।१५।।

## अदर्शन परीषह

वर्ण्यंते बहवस्तपोऽतिशयजाः सप्तर्द्धिपूजादयः
प्राप्ताः पूर्वतपोधनैरितिवचोमात्र तदद्यापियत् ।
तत्त्वज्ञस्य ममापि तेषु नहि कोऽपीत्यार्त्त सगोज्झिता
चेतोवृत्तिरदृक् परीषहजयः सम्यक्त्वसशुद्धितः ।।१६।।

**अन्वयार्थ**—(पूर्वतपोधनै·) पूर्व काल मे तपोधनो के द्वारा (बहव.) बहुत से (तपोऽतिशयजा ) तप के अतिशय से उत्पन्न (सप्तर्द्धिपूजादय ) सप्त ऋद्धि पूजा आदि (प्राप्ता ) प्राप्त हुई हैं (इति) इस प्रकार (यत्) जो (अद्यापि) आज भी (वर्ण्यन्ते) वर्णन किया जाता है (तत्) वह कथन (वचोमात्र) वचन मात्र है (हि) क्योकि (तेषु) उनमे से (मम) मुझ (तत्त्वज्ञस्य) तत्त्व ज्ञानी के (क अपि) कोई भी ऋद्धि (न) नही हुई है (इति) इस प्रकार (आर्त्तसंगोज्झिता) आर्त्त ध्यान के संग से रहित (चेतोवृत्ति.) मानसिक प्रवृत्ति है । वह (सम्यक्त्वसशुद्धित,) सम्यक्त्वसशुद्धि से (अदृक्परीषहजय·) अदृक्परीषहजयी कहलाती है ।

**भावार्थ**- पूर्वकाल मे तपोधनो ने बहुत से तपोअतिशय से उत्पन्न सप्त ऋद्धियाँ प्राप्त की हैं, ऐसा आज भी शास्त्रो मे सुना जाता है । परन्तु मुझे तो यह वार्त्ता सत्य प्रतीत नही होती है । क्योकि मैं तत्त्वज्ञानी इतना उत्कृष्ट तपश्चरण करता हूँ, परन्तु मुझे तो एक भी ऋद्धि प्राप्त नही हुई है । इस प्रकार मानसिक अश्रद्धा उत्पन्न नही होना ही सम्यक्त्व की निर्मलता है और इसी से योगी अदर्शन परीषहजयी होता है ।।१६।।

## स्त्री परीषह

जेता चित्तभवस्त्रयस्य[1] जगतां यासामपांगेषुभिः[2]
ताभिर्मत्तनितम्बिनोभिरभितः सलोभ्यमानोऽपि[3] यः ।
तत्फल्गुत्वभवेत्य[4] नैति विकृतिं त वर्य्यधै[5] र्येन्दिर
वन्दे स्त्र्यार्त्तिजय[6] जयन्तमखिलानर्थं कृतार्थं यतिं ।१७।

**अन्वयार्थ**—(यासा) जिन स्त्रियो के (अपागेषुभि ) कटाक्ष रूपी वाणो के द्वारा (चित्तभवः) कामदेव (जगतात्रयस्य) तीनो जगत का (जेता) जीतने वाला हुआ था (ताभि ) उन (मत्तनितम्बिनीभि ) मदोन्मत्त स्त्रियो के द्वारा (अमित ) चारो तरफ से (सलोभ्यमान ) लोभित किया हुआ (अपि) भी (य ) जो (तत्फल्गुत्व) उन स्त्रियो के कटाक्ष को सार रहित (अवेत्य) जानकर (विकृतिं विकृति को (न) नही (एति) प्राप्त होता है (त) उस (वर्य्यधैर्येन्दिर) श्रेष्ठ धैर्य है लक्ष्मी जिसके ऐसे (अखिलानर्थं) समस्त अनर्थो को (जयन्तं) जीतने वाले (कृतार्थं) कृतकृत्य (स्त्र्यार्त्तिजयं) स्त्री परीषह-जयी (यतिं) मुनि को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ ।

**भावार्थ**—जिन स्त्रियो के कटाक्ष रूपी वाणो के द्वारा कामदेव तीन जगत का जीतने वाला हुआ था । उन वनिताओ के द्वारा चारो तरफ से सलोभ्यमान होकर भी जो उन कटाक्षो को निस्सार समझ कर विकृति भाव को प्राप्त नही

---

१ काम २ कटाक्षवाणं ३ लोभ उत्पादय मानोऽपि ४ तासा अन्त सार रहित त्व ५ श्रेष्ठ धैर्येन्दिरा लक्ष्मी यस्य स त ६ स्त्री परीषहजित् स्यात् ।

होता है। उस श्रेष्ठ धैर्यधारी कृतकृत्य अखिल अनर्थों को जीतने वाले स्त्रीपरीषह जयी साधु को मैं नमस्कार करता हूँ ।१७।

## प्रज्ञा परीषह

प्रत्यक्षाक्रम[1] विश्ववस्तुविषयज्ञानात्मनः स्वात्मनो
गर्वः सर्वमतश्रुतज्ञ इति यः प्राप्ते[2] परोक्षे श्रुते।
सर्वस्मिन्नपि नो तनोति हृदये लज्जां स किं[3] तामिति
प्रज्ञोत्कर्षमदापनोदनपरः प्रज्ञार्त्ति[4] जित्तत्त्ववित् ।।१८।।

**अन्वयार्थ**—(प्रत्यक्षाक्रमविश्ववस्तुविषयज्ञानात्मन) प्रत्यक्ष और अक्रम से समस्त वस्तु के विषय का ज्ञान करने वाले (स्वात्मनः) अपने आत्मा के (परोक्षे) परोक्ष (श्रुते) श्रुतज्ञान के (प्राप्ते) प्राप्त हो जाने पर (सर्वमतश्रुतज्ञ) सर्व मत को जानने वाला हूँ (इति) इस प्रकार का (य) जो सयमी (गर्वः) गर्व युक्त (न) नही है (सर्वस्मिन्) सम्पूर्ण ज्ञान हो जाने पर भी (हृदये) हृदय मे (किं ता) अनिर्वचनीय (लज्जा) लज्जा को (तनोति) प्राप्त होता है (स) वह (प्रज्ञोत्कर्ष-मदापनोदनपर) प्रज्ञा के उत्कर्ष के मद को दूर करने मे तत्पर (तत्त्ववित्) तत्व को जानने वाला (प्रज्ञार्त्तिजित्) प्रज्ञा परीपहजयी होता है।

**भावार्थ**—वास्तविक मे आत्मा प्रत्यक्ष एवं युगपत् सर्व पदार्थों का जानने वाला है उसके परोक्ष श्रुत के जान लेने पर मैं सर्व मत का ज्ञाता हूँ। यह जानता हुआ भी हृदय मे अनिर्वचनीय लज्जा को प्राप्त होता है। वह प्रज्ञा के उत्कर्ष के मद को अपनोदन करने मे तत्पर तत्त्वज्ञानी प्रज्ञा परीषहजयी होता है ।।१८।।

## अज्ञान परीषह

ज्ञानध्यानरता मतिर्मम तपस्तीव्रं न-चोत्पद्यते[5]
ज्ञान पूर्णमय जड पशुरिति श्रोतुं वचोऽहं क्षमः।
नेत्यज्ञानपरीषह स सहते प्रव्यक्त[6]वस्तुस्थिति;
यः कार्यं[7] भवति स्वहेतु[8]युगले सत्येव नेत्यन्यथा ।।१९।।

**अन्वयार्थ**—(मम) मेरी (मति) मति (ज्ञानध्यानरता) ज्ञान ध्यान मे रत है (तपस्तीव्र) तप भी तीव्र है (तथापि) मेरे (पूर्णमय) पूर्ण (ज्ञान) ज्ञान (न) नही (उत्पद्यते) उत्पन्न हुआ है (अय) यह (जड) मूर्ख है (पशु) पशु है (इति) इस प्रकार के (वच) वचनो को (श्रोतुं) सुनने के लिए (अह) मैं (क्षम) समर्थ (न) नही हूँ (इति) इस प्रकार (अज्ञानपरीषह) है (स्वहेतुयुगले) अपने अतरग वहिरंग हेतु युगल के (सति) होने पर (एव) ही (कार्य) कार्य (भवति) होता है (अन्यथा) अन्यथा कार्य (न) नही होता है (इति) इस प्रकार (य) जो (प्रव्यक्तवस्तुस्थिति) सम्यक्प्रकार से वस्तु के स्वरूप जानने वाला (अज्ञानपरीषह) अज्ञान परीषह को (सहते) सहन करता है (स) वह अज्ञानपरीपहजयी होता है।

**भावार्थ**—मेरी बुद्धि ज्ञान ध्यान मे लीन है, मैं तीव्र तपस्वी हूँ, तथापि मुझे पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हुआ है, यह पशु है, मूर्ख है, अज्ञानी है, इस प्रकार के वचनो को सुनने के लिए मैं समर्थ नही हूँ, इसप्रकार की अज्ञान परीपह को जो अनरग

१ युगपत् २ ज्ञाते ३ अनिर्वचनीय ४ प्रज्ञापरीपहजित् ५ अत्र तथापि इति च शब्दात लभ्यते ६ सुष्ठुज्ञातवस्तुस्वरूप. ७ प्रयोजन ८ अतरगवहिरग कारणे।

बहिरग कारणो के मिलने पर ही कार्य होता है अन्यथा नही, इसप्रकार वस्तु की स्थिति को जानने वाला सहन करता है वह अज्ञान परीषह को जीतने वाला होता है ॥१६॥

### नाग्न्य परीषह

भूषा[1] वेष[2] विकारशस्त्रनिचय[3] त्यागात्प्रशस्ताकृते[4]-
बालस्येव मनोजजातविकृतिश्चित्तस्य लज्जेतिताम् ।
हित्वा मातृसमानमेव सकलं कान्ताजन पश्यतः
पूज्यो नाग्न्य[5]परीषहस्य विजयस्तत्त्वज्ञ तापो[6]दयः[7] ।२०।

**अन्वयार्थ**—(चित्तस्य) चित्त की (मनोजजातविकृतिः) मानसिक विकृति (लज्जा) लज्जा है (ता) उस लज्जा को (हित्वा) छोडकर (बालस्य) बालक के (इव) समान (भूषावेषविकारशस्त्रनिचयत्यागात्) आभूषण, वेष, विकार और शस्त्र के त्याग होने से (प्रशस्ताकृते·) प्रशसनीय आकार वाले के (मातृसमानं) माता के (सकल) सकल (कान्ताजन) कान्ताजन को (पश्यत ) देखने वाले के (तत्त्वज्ञताप्तोदय ) तत्त्वज्ञान से प्राप्त उदय (पूज्य.) पूज्यनीय (नाग्न्यपरीषहस्य) नाग्न्य परीषह का (विजय ) विजय है ।

**भावार्थ**—जिनका शरीर, भूषा, वेश आदि विकार रहित है जिनकी आकृति अत्यन्त वीतरागता मय है। मनोविकार से उत्पन्न हुई विकृति रूपी लज्जा को छोडकर बालक के समान निर्भय और निर्विकार होते हैं। समस्त स्त्री समूह को माता के समान देखते हैं। नग्न रहते हुए भी किंचित् मात्र भी मन मे ।वकार नही है वह साधु नग्न परीषह विजयी कहलाता है ॥२०॥

### आक्रोश परीषह

वर्णी कर्णहृदां विदारणकरान् क्रूराशयैः प्रेरिता-
नाक्रोशान् घनगर्जतर्जनखरान् शृण्वन्नशृण्वन्निव ।
शक्त्याऽत्युत्तम संपदाऽपि सहित. शान्ताशयश्चिन्तयन्
यो बाल्यं[1] खलसकुलस्य शयन[2] क्लेश क्षमी त स्तुवे ॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(कर्णहृदा) कर्ण और हृदय के (विदारणकरान्) विदारण करने वाले (क्रूराशयै ) क्रूर चित्त वालो के द्वारा प्रेरित (घनगर्जतर्जनखरान्) घन गर्जना की तर्जना से भी अत्यन्त तीक्ष्ण (आक्रोशान्) आक्रोशो को (शृण्वन्) सुनता हुआ भी (अशृण्वन् इव) नही सुनने वाले के समान होता हुआ (शक्त्या) शक्ति से (अत्युत्तमसम्पदा) अति उत्तम सम्पदा से भी (सहितः) सहित (अपि) तो भी (यः) जो (वर्णी) सयमी (शाताशय ) शात आशय वाला (खलसकुलस्य) खलजन की (वाल्य) अज्ञानित्व का (चितयन्) चितवन करता हुआ (शयनक्लेशक्षमा) आक्रोश परीषह को सहन करने वाला होता है (त) उसकी (स्तुवे) वन्दना (स्तुति) करता हूँ।

**भावार्थ**—जो सयमी कर्ण और हृदय के विदारक क्रूर चित्त वालो के द्वारा प्रेरित, अत्यन्त तीक्ष्ण आक्रोश-

१ केशादीना सस्कार २ लोचनादीना शृ गार चेष्टा ३ समूह कस्मिन्पुस्तके सिचय शब्दस्य प्रयोगोविद्यते । तस्यार्थ सिचय वस्त्र "वस्त्र वसन्तक वासश्चेलसिचय वस्त्राम्वरास्यमाच्छारदन ४ प्रशस्ताकारस्य ५ नाग्न्य परीषहजित् ६ तत्वज्ञस्योपलक्षणमेतत् तेन दुष्कर तपो नुष्ठायिनो वैराग्य भावनापरस्य चिरन्तनव्रतिन ७ वस्तु स्वरूप परिज्ञान जाताभिवृद्धि ।

कारी वचनो को सुन करके भी नही सुनने वाले के समान होता है तथा जो उत्तम शक्ति रूपी सम्पदा से सहित होते हुये भी शान्त चित्त वाला सयमी उन दुष्ट वचनकारी दुष्टो की मूर्खता का चिंतवन करता हुआ, आक्रोश परीषह को सहन करता उसकी हम स्तुति करते है ।।२१।।

## सत्कार पुरस्कार परीषह

ख्यातोऽहं तपसा श्रुतेन च पुरस्कारं प्रशसां नतिं
भक्त्या मे न करोति कोऽपि यतिषु ज्येष्ठोऽहमेवेतियः ।
ग्लानिं मानकृतां न याति स मुनिः सत्कार जातार्तिजित्
दोषा मे न गुणा भवन्ति न गुणा दोषाः स्युरित्यन्यतः ।२२।

**अन्वयार्थ**—(अह) मैं (तपसा) तप के द्वारा (श्रुतेन) श्रुत के द्वारा (ख्यात) विख्यात हूँ (यतिषु) यतियो मे (अहं) मैं (एव) ही (ज्येष्ठ) ज्येष्ठ हूँ (भक्त्या) भक्ति से (मे) मेरा (क) कोई (अपि) भी (पुरस्कार) पुरस्कार (प्रशंसा) प्रशसा (नति) नमस्कार (न) नही (करोति) करता है (इति) इसप्रकार (य:) जो (मानकृता) मान कषाय से उत्पन्न (ग्लानि) ग्लानि को (न याति) नही प्राप्त होता है वह विचार करता है कि (मे) मेरे (दोषा) दोष (न) नही है (गुणा) गुण (भवन्ति) होते हैं (अन्यत.) सत्कार करने से (गुणा) गुण (न) नही (दोषा) दोष (स्यु:) होते हैं (स) वह (मुनि:) मुनि (सत्काराजातार्त्तिजित्) सत्कार से उत्पन्न अर्त्ति को जीतने वाला होता है।

**भावार्थ**—मैं तप के द्वारा श्रुत के द्वारा विख्यात हूँ। सर्व यतियो मे मैं ही ज्येष्ठ हूँ, तथापि कोई मेरा सत्कार पुरस्कार, प्रशसा, नमस्कार नही करता है। इसप्रकार मान कषाय के उदय से उत्पन्न ग्लानि को नही प्राप्त होने वाला साधु सत्कार परीषहजयी होता है। सत्कार, पुरस्कार परीषहजयी साधु विचार करता है कि मेरा सत्कार पुरस्कार नही करने से मेरे गुण दोष नही होते हैं और अन्य पुरुषो के सत्कार से मेरे दोष गुण नही होते हैं मुझे रागीद्वेषी नही होना चाहिये ।२२।

## याञ्चा विजय

प्राज्यं राज्यमुदस्य शाश्वतपदप्राप्त्यै तपोबृंहणे
देहो हेतुरयं हि भुक्त्यनुगता चास्य स्थितिस्तत्कुतः ।
भिक्षार्थं भ्रमणं ह्रियः पदमिदं यस्मान्महार्यास्पद
नीचैर्वृत्तिरनिन्दितेति विचरन याञ्चाजय· स्यान्मुनि ।२३।

**अन्वयार्थ**—(शाश्वतपदप्राप्त्यै) शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए (प्राज्य) उत्कृष्ट (राज्यं) राज्य को (उदस्य) छोडकर (तपोबृंहणे) तप की वृद्धि मे (अय) यह (देह) शरीर (हेतु) कारण है (च) और (अस्य) इस शरीर की (स्थिति) स्थिति (भुक्त्यनुगता) भुक्ति के अनुसार है (तत्) इसलिए (भिक्षार्थं) भिक्षा के लिए (भ्रमण) भ्रमण करना (ह्रिय:) लज्जा का (पद) स्थान (कुत) कैसे है (यस्मात्) क्योकि (इद) भिक्षा के लिए भ्रमण (महार्यास्पद) महार्यों का आस्पद है (इति) इसप्रकार (नीचैर्वृत्ति) नम्र वृत्ति वाला (अनिन्दिता) अनिन्दित (विचरन्) चर्या करने वाला (मुनि.) मुनि (याञ्चाजय) याचना परीषहजयी (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—मैंने शाश्वतपद-मोक्ष प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट राज्य को छोडकर तप को स्वीकार किया है। उस तप की वृद्धि मे शरीर कारण है और शरीर की स्थिति का कारण आहार है। इसलिए तप की वृद्धि के कारणभूत भिक्षा के

लिए भ्रमण करना लज्जा का स्थान नही है प्रत्युत महार्थो का स्थान है। लज्जा का स्थान तो याचना है इस प्रकार नग्न वृत्ति से अनिन्दित चर्या के भ्रमण करने वाला सयमी याच्ञा परीषहजयी होता है ।।२३।।

### निषद्या परीषह

सर्वाशाशमहान्धकारपुरुजाऽऽयामां त्रियामां यमी
योगैर्योगमयत्यवार्यमहिमाऽऽभोगैर्मुहूर्त्तं यथा ।
क्षेत्रे स्त्रीजनपश्ववद्यरहिते हृद्ये निषद्यास्थितः
सन्नत्युग्र निशाचराप्रतिहतध्यानो निषद्याजयी ।।२४।।

**अन्वयार्थ**—(स्त्रीजनपश्ववद्यरहिते) स्त्रीजन, पशु, नपु सक आदि दोषो से रहित (हृद्ये) मनोज्ञ (क्षेत्रे) क्षेत्र मे (अत्युग्रनिशाचराप्रतिहतध्यान) अति उग्र निशाचरो के द्वारा अप्रतिहत ध्यानी (निषद्यास्थित) निषद्या से स्थित (अवार्यमहिमा) अवार्य महिमा वाला (य) जो (यमी) सयमी (सर्वाशाशमहान्धकारपुरुजाऽऽयामा) सर्व दिशाओ को भक्षण करने वाले महान्धकार से व्याप्त दीर्घ (त्रियामा) रात्रियो को (यथा) जैसे (मुहूर्त्त) मुहूर्त्त के समान (आभोगै) विस्तरित (योगै) योग के द्वारा (गमयति) व्यतीत करता है वह (निषद्याजयी) निषद्याजयी होता है।

**भावार्थ**—स्त्री, पशु, नपु सक से रहित शुद्ध प्रशसनीय क्षेत्र मे निषद्या से स्थित अत्यन्त उग्र निशाचरो के द्वारा अप्रतिहत ध्यानी, सयमी, सर्व दिशाओ को भक्षण करने वाले महान्धकार से व्याप्त दीर्घ रात्रियो को एक मुहूर्त के समान व्यतीत करता है वह सयमी निषद्या परीषहजयी कहलाता है ।।२४।।

### परीषह विजय का फल

देशं कालं स्वकीयं बलमपि नृपतिः सम्यगालोच्य यद्व
च्छत्रुव्रातस्य जेता भवति यतिरपि स्वीयकर्मोदयेन ।
जातस्यास्यार्त्तिजातोद्भटभटकटकस्योरुधैर्यस्तथा यः
सोऽयंस्याद्वर्य वीर्याचरणचणजुतो वीरलक्ष्मीनिवास ।२५।

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (देश) देश (काल) काल (स्वकीयं) अपने (वल) सेना का (सम्यगालोच्य) भली प्रकार विचार कर (नृपति) राजा (शत्रुव्रातस्य) शत्रु समूह का (जेता) जीतने वाला (भवति) होता है (तथा) उसी प्रकार (उरुधैर्य) महान धैर्य वाला (य) जो (यति) यति (अपि) भी (स्वीयकर्मोदयेन) अपने कर्मोदय से (जातस्य) उत्पन्न (अस्य) इस (आर्त्तिजातोद्भटकटकस्य) बावीस प्रकार के परीषह रूपी धीर भट की सैन्य का (जेता) जीतने वाला होता है (स.) वह (अय) यह (वर्यवीर्याचरणचणनुत) उत्कृष्ट वीर्याचार के आचरण मे विख्यात कीर्ति वाला (वीरलक्ष्मी-निवास) वीर की लक्ष्मी का निवास (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—जैसे अपने देश काल सेना आदि का भली प्रकार विचार करके राजा शत्रुओ के समूह का जीतने वाला होता है, उसी प्रकार महान धैर्यशाली यति भी देश कालादि का विचार करके अपने कर्मो के उदय से उत्पन्न बाईस प्रकार के परीषह रूपी भट की सैन्य का विजेता होता है उत्कृष्ट वीर्याचरण से विख्यात कीर्ति वाला वह सयमी वीर लक्ष्मी का निवास होता है ।।२५।।

चक्रं विक्रममानमर्दनमुरुज्या प्राज्यराज्यं च यः
कुर्वन्ग्रन्थविरागतातिशयतस्त्यक्त्वाऽऽप्तये ।

तत्प्राप्तौ तु परं क्षमादिकमर तद्धर्मचक्रं दधद्
बंद्योऽभूद्भुवनत्रयस्य तदिद चित्र चरित्र मुने· ।।२६।।

**अन्वयार्थ**—(विक्रममानमर्दन) पराक्रमियो के मान का मर्दन करने वाले (चक्र) चक्र को (उरुज्या) पृथ्वी को (च) और (प्राज्यराज्यं) उत्कृष्ट राज्य को (ग्रन्थविरागतातिशयतः) परिग्रह जनित परम वैराग्य से (आत्मरूपाप्तये) आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए (त्यक्त्वा) छोडकर (तु) और (तत्प्राप्तौ) उस आत्म स्वरूप की प्राप्ति मे (पर) उत्कृष्ट (क्षमादिक) उत्तम क्षमादि (तद्धर्मचक्र) उस धर्म चक्र को (कु थु) कु थुनाथने [अर] शीघ्र ही [दधत्] धारण किया था उस [मुने.] मुनि का [इदं]:यह [चित्र] विचित्र [चरित्रं] चारित्र [भुवनत्रयस्य] तीन भुवन का [बद्य·] वन्दनीय [अभूत्] हुआ था।

**भावार्थ**—जिस कु थुनाथ ने परिग्रह के त्याग की उत्कृष्टता के अतिशय से आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए शीघ्र ही पराक्रमियो के मान का मर्दन करने वाला उत्कृष्ट चक्र रत्न भूमि को और विशाल षट्खण्ड के राज्य को छोडकर आत्म स्वरूपी की प्राप्ति मे कारणभूत उत्तम क्षमादिक धर्म चक्र को स्वीकार किया था, उस प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनि का यह विचित्र चरित्र तीन लोक मे वदनीय हुआ था।

**इति श्रीवीरनन्दिसिद्धांति चक्रवर्त्तीप्रणीत श्री आचारसार नामशास्त्र मे वीर्याचार का वर्णन करने वाला सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।**



# अथाष्टमोऽधिकारः

**पद्मप्रभ कोकनदोदरप्रभ पद्माविनोदायतन सनातनम्।**
**सर्वात्मनीनोरुदयं महोदयम् जिनेश्वरं नौमि विशुद्धधीश्वरम् ।।१।।**

**अन्वयार्थ**—[कोकनदोदरप्रभ] लाल कमल के गर्भ के समान वर्णवाले [पद्माविनोदायतन] लक्ष्मी का क्रीडा गृह [सनातनम्] द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अनादि [सर्वात्ममीनोरुदय] सकल जीवो के हितकारी [महोदय] महोदयी [विशुद्धधीश्वरम्] सर्वविशुद्धि के अधीश्वर [जिनेश्वर] जिनेश्वर [पद्मप्रभं] पद्मप्रभु को [नौमि] मैं नमस्कार करता हूँ।

**भावार्थ**—जो लाल कमल के समान वर्ण वाले हैं, लक्ष्मी के क्रीडा स्थान हैं, सर्व प्राणियो के हितकारक हैं, शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनादि हैं, महान केवलज्ञानादि गुणो का स्थान है, सर्व विशुद्धियो के स्वामी हैं, ऐसे श्री जिनेश्वर पद्म प्रभु भगवान को मैं वीरनन्दि आचार्य नमस्कार करता हूँ ।।१।।

**शुद्धयोष्टौ विधीयन्ते पचाचारविशुद्धये।**
**भूषामनोहराऽऽकारस्याऽतिशोभाश्रिये· न किम् ।।२।।**

**अन्वयार्थ**—[पंचाचारविशुद्धये] पंचाचार की विशुद्धि के लिए [अष्टौ] आठ [शुद्धय.] शुद्धिया [विधीयते] कही जाती हैं [मनोहराकारस्य] मनोहर आकार वाले के [भूषा] आभूषण [किं] क्या [अतिशोभाश्रिये] अत्यन्त शोभा की श्री के लिए [न] नही अपितु [अस्त्येव] है ही।

**भावार्थ**—यहा से दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार रूप पचाचार की शुद्धि के के लिए आठ प्रकार की शुद्धि कही जाती हैं। जैसे अत्यन्त सौंदर्य से युक्त मानव के द्वारा धारण किये गये आभूषण शरीर की शोभा को बढाने वाले होते हैं उसी प्रकार पंचाचार की शोभा-कांति को बढाने वाली अष्ट महा शुद्धियां होती हैं ।।२।।

## शुद्धियों के नाम

**स्युर्भाववाक्यकायेर्याभिक्षाविनयसंश्रयाः ।**
**शयनाऽऽसनव्युत्सर्गगेति चेत्यष्टशुद्धयः ।।३।।**

**अन्वयार्थ**—(भाववाक्यकायेर्याभिक्षाविनयसश्रया) भाव शुद्धि, वाक्यशुद्धि, कायशुद्धि, ईर्याशुद्धि, भिक्षाशुद्धि विनयसंश्रयशुद्धि, (शयनासनव्युत्सर्गगा) शयनासनशुद्धि, व्युत्सर्गशुद्धि (इति) इसप्रकार (अष्टशुद्धय·) आठ प्रकार की शुद्धिया होती हैं।

**भावार्थ**—भाव [मन] शुद्धि, वचन शुद्धि, कायशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, विनयशुद्धि, शयनासनशुद्धि, व्युत्सर्गशुद्धि इस प्रकार व्रतो को निर्मल करने वाली ये आठ प्रकार की शुद्धियाँ कही जाती है। ।।३।।

## भाव शुद्धि

**सदाऽपेतप्रमादा या वाचनादिरता मतिः ।**
**शंकादिदृङ्मलापेता मार्दवादिगुणान्विता ।।४।।**

**स्याद्भावशुद्धिराचार: सत्यामस्यांप्रवर्द्धते ।**
**यद्वदुप्तो विशुद्धोर्व्यां सम्यग्बोजव्रजस्तथा ।।५।। युग्मं ।।**

**अन्वयार्थ**—(सदा) हमेशा (अपेतप्रमादा) प्रमादरहित (वाचनादिरता) वाचनादि मे लीन (शंकादिदृङ्मलापेता) शकादि सम्यग्दर्शन के मल दोषो से रहित (मार्दवादिगुणान्विता) मार्दवादिगुणो से युक्त (मति) बुद्धि (भावशुद्धि.) भावशुद्धि (स्यात्) है (अस्या) इसके (सत्या) होने पर (आचार) चारित्र (प्रवर्द्धते) वृद्धिगत होता है (यद्वत्) जैसे (विशुद्धोर्व्यां) विशुद्धि भूमि मे (उप्त) बोया हुआ (सम्यग्बीजव्रज) समीचीन बीज का समूह।

**भावार्थ**—निरन्तर प्रमाद से रहित शास्त्रध्यान मे लीन शकादि दोषो से रहित मार्दवादिगुणो से शुद्ध जो मानसिक प्रवृत्ति है वह परिणामो की विशुद्धि है, उसको भाव शुद्धि कहते हैं। इस भाव शुद्धि मे चारित्र की वृद्धि उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार शुद्ध भूमि मे बोया हुआ समीचीन बीज सहज फल को देनेवाला होता है ।।४-५।।

## वचन शुद्धि

**कन्या प्रदानयोग्येय क्षेत्रादिलवनोचितम् ।**
**प्रोत्खाताः परिखाः कूपवाप्यः शास्या दुरीहिता । ६।।**

**गीतवादित्रनृत्यादि हृद्यानीयं वरांगना ।**
**भटेभमल्लयुद्धानि सुकृतानि वनं वरम् ।।७।।**

**रोग्यषः पंगुरित्यादिव्यवहाराश्रिताप्रिया-**
**संयतोचितवाक्त्यागाद्देशकालसमोचिता ।।८।।**

**मृदुमधुरगम्भीरा वाङमोक्षमार्गोपदेशना ।**
**वाक्यशुद्धिर्गुणांभोधिविधुदीधितिरीरिता ॥९॥ चतुष्कम् ॥**

**अन्वयार्थ**—(इय) यह (कन्याप्रदानयोग्या) विवाह योग्य है (क्षेत्रादिलवनोचित) यह क्षेत्र काटने योग्य है (परिखा ) खाई (कूपवाप्य ) कूवा बावडी (प्रोत्खाता ) अच्छे खोदे हुये हैं (शास्या ) यह अनुशासन करने योग्य है (दुरीहिताः) दुचेष्टित (गीतवादित्रनृत्यादि) गीतवादित्र नृत्यादि (हृद्यानि) मनोज्ञ है (इयं) यह (वरागना) श्रेष्ठ स्त्री है (भटेभल्लयुद्धानि) भट, हाथी, योद्धाओ का युद्ध (सुकृतानि) श्रेष्ठ है (वनं) वन (वरं) श्रेष्ठ है (रोग्यध पगु ) रोगी, अन्धा, पगु इत्यादि (व्यवहाराश्रिताप्रियासयतोचितवाक्त्यागात्) इत्यादि व्यवहाराश्रित, अप्रिय, असयतोचित वचनो का त्याग कर देने से और (देशकालसमोचिता ) देश काल और सभा के उचित (मोक्षमार्गोपदेशना) मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले (मृदुमधुरगम्भीरा) मृदुमधुर गंभीर (वाङ्) वचन (गुणाभोधिविधुदीधिति.) गुण रूपी समुद्र को वृद्धिगत करने के लिए चन्द्र के समान (वाक्यशुद्धि ) वाक्य शुद्धि है ।

**भावार्थ**—यह कन्या विवाह योग्य हो गई है, यह क्षेत्र काटने के उचित है, यह परिखा कुआ बावडी सुन्दर खुदी हुई है, वह अनुशासन करने योग्य है, यह दुश्चेष्टा वाला है, यह गीत वादित्र नृत्यादि मनोज्ञ है, यह वरागना है, भट, हाथी योद्धाओ का युद्ध बहुत अच्छा हुआ है, यह वन श्रेष्ठ है, रोगी, अन्धापगु इत्यादि व्यवहाराश्रित अप्रिय, असयत जनो के बोलने योग्य सावद्य वचनो को छोडकर देश काल और सभा के उचित मोक्षमार्ग का कथन करने वाले मृदु, मधुर, गभीर, परजन हितकारी सावद्य रहित निर्दोष वचन वाले ना वाक्य शुद्धि है । यह वाक्य शुद्धि गुणरूपी समुद्र को वृद्धिगत करने के लिए चन्द्रमा के समान है ॥६,७,८,९॥

## कायशुद्धि

**विश्रंभोपादिका लोकस्याऽस्तसंस्कारसहतिः ।**
**कायशुद्धिः क्षमा मूर्त्तिभूतेवाऽऽभाति निस्पृहा ॥१०॥**

**विरागताललतोद्भूतिभूमिभीर्तिविवर्जिता ।**
**जातरूपमनोहारिण्येषां भूषा तपः श्रियः ॥११॥**

**अन्वयार्थ**—(लोकस्य) लोगो के (विश्र भोपादिका) विश्वास की उत्पादक (अस्तसस्कारसहति·) मस्कार सहित (विरागताललतोद्भूतिभूमि ) विरागता रूपी लता उत्पन्न होने की भूमि (भीतिवर्जिता) भय से रहित (जातरूपमनोहारिणी) यथा जात रूप से मनोहर (निस्पृहा) शरीर की स्पृहा से रहित (तपश्रिय ) तपश्री की (भूषाः) भूषण (एषा) यह (कायशुद्धि.) कायशुद्धि (क्षमामूर्तिभूता) क्षमा की मूर्ति के (इव) समान (आभाति) शोभित होती है ।

**भावार्थ**—यह कायशुद्धि आवरण आभूषणो से रहित, शरीर सस्कार से शून्य यथाजात रूप धारण करने वाली, अंग विकार से रहित और सर्वत्र विश्वसनीय प्रवृत्ति रूप है । यह मूर्तिमान प्रशम सुख के समान है । क्षमा की मूर्ति है । वीतरागता रूपो लता के उत्पत्ति के लिए भूमि के समान है इस काय शुद्धि के होने पर न तो दूसरो से अपने को भय होता है और न अपने से दूसरो को भय होता है ॥१०,११॥

## ईर्यापथ शुद्धि

**भयविस्मयविभ्रान्ति लोलाविकृतिलंघन- ।**
**प्रधावनाद्यपेतेर्यापथ शुद्धिर्दयान्विता ॥१२॥**

**अन्वयार्थ**—(भयविस्मयविभ्रान्ति लीलाविकृति लघनप्रधावनाद्यपेता) भय, आश्चर्य, विभ्रान्ति, लीला, विकृति, लघन, प्रधावना-दौडना आदि से रहित (दयान्विता) अनुकम्पा सहित (ईर्यापथशुद्धि ) ईर्यापथ शुद्धि है।

**समाहितप्रशान्ताङ्गा प्रलंबितकरा वरा।**
**गतिश्चारित्रसंपत्तिहेतुर्नीतिरिव श्रियः ॥१३॥**

**अन्वयार्थ**—(समाहितप्रशान्तागा) सावधान और प्रशान्त अंग सहित (प्रलवितकरा) नीचे लटक रहे हैं हाथ जिसमे (श्रिय.) लक्ष्मी की कारण (चारित्रसपत्तिहेतु.) चारित्र रूपी सपत्ति की कारण भूत (नीति) नीति (इव) समान (वरा) श्रेष्ठ (गति.) गमनागमन ईर्यापथ शुद्धि है।

**भावार्थ**—अनेक प्रकार के जीवस्थान, जीवयोनि, जीवाश्रय, आदि के विशिष्ट ज्ञानपूर्वक प्रयत्न के द्वारा जिसमे जन्तु पीडा का बचाव किया जाता है। जिसमे ज्ञान, सूर्यप्रकाश और इद्रिय प्रकाश से अच्छी तरह देखकर गमन किया जाता है, तथा जो शीघ्र विलम्बित, सम्भ्रात, विस्मित, लीला विकार, अन्य दिशाओ की ओर देखना आदि गमन के दोषो से रहित गति वाली है वह इर्यापथ शुद्धि है। इसके होने पर सयम उसी तरह प्रतिष्ठित होता है जैसे कि सुनीति से वैभव ॥१३॥

## भिक्षाशुद्धि

**आरंभः प्राणिनः प्राणव्यपरोप उपद्रव'।**
**उपद्रवणमगच्छेदादिविद्रावणं मतम् ॥१४॥**

**सतापकरणं तस्य परितापनमेतकैः।**
**चतुर्भिरन्न निष्पन्नमध· कर्मातिनिन्दितम् ॥१५॥युग्मं॥**

**अन्वयार्थ**—(प्राणिन.) प्राणियो के (प्राणव्यपरोपण) प्राणो का घात (उपद्रव.) उपद्रव (आरभ) आरंभ (अंगछेदादि.) अंग छेदादि (उपद्रवणं) उपद्रवण (विद्रावण) विदारण (तस्य) प्राणियो के (सतापकरण) संताप करने वाला (परितापन) परितापन (एतकै) इन (चतुर्भि) चार कारणो से (निष्पन्नं) निष्पादन किये हुए (अन्न) आहार को (अतिनिन्दित) अतिनिन्दित (अध कर्म) अध कर्म (मतम्) माना है।

**भावार्थ**—प्राणियो के प्राण व्यपरोपण रूप, उपद्रवकारी, आरभ, विद्रावण, उपद्रवण सतापन आदि चार कारणो से निष्पन्न आहार को निंदनीय अध कर्म करते हैं अर्थात् जिस अन्न की मन वचन काय कृतकारित और अनुमोदना से हिसारूप निष्पत्ति है वह अध कर्म है ॥१४,१५॥

**वाक्चित्तकायकारितकृतानुमतकर्मणा।**
**नवभेदं तदेतेन कर्मणा परिवर्जिता ॥१६॥**

**योद्गमोत्पादनैषणैर्दोषैः नंयोजनेन च।**
**प्रमाणागारधूमाख्यैर्व्यपेता कारणान्विता ॥१७॥**

**एषणासमितिप्रोक्तक्रमाप्तान्नसेवना।**
**भिक्षाशुद्धिर्गुणव्रातरक्षादक्षा स्मृता नुता ॥१८ त्रिकं॥**

**अन्वयार्थ**—(वाक्चित्तकायकारितकृतानुमतकर्मणा) मन, वचन, काय, कृत कारित, अनुमोदना रूप क्रिया वाले (एतेन) इस (कर्मणा) कर्म के द्वारा (नवभेद) नवभेद (परिवर्जिता) रहित (यत्) जो (उद्गमोत्पादनैषणै.) उद्गम उत्पादन एषणा (सयोजनेन) सयोजन (प्रमाणागारधूमाख्यै) प्रमाण अगार धूम नामक (दोषै) दोषो से (व्यपेता) रहित (कारणान्विता) कारण युक्त (एषणासमितिप्रोक्त क्रमप्राप्ताशनसेवना) एषणा समिति मे कथित क्रम से प्राप्त आहार सेवन करना (गुणव्रातरक्षदक्षा) गुणो के समूह की रक्षा करने मे निपुण (नुता) पूजनीय (भिक्षाशुद्धि:) भिक्षाशुद्धि (स्मृता) मानी गयी है।

**भावार्थ**—मन वचन काय,कृतकारित अनुमोदना आदि नवकोटि से विशुद्ध उद्गम, उत्पादन, एषणा, सयोजन प्रमाण, अगार धूम, दोष से रहित स्वाध्याय आदि छह कारणो से युक्त, एषणा समिति मे कथित क्रम से प्राप्त आहार को सेवन करना भिक्षाशुद्धि है। यह भिक्षाशुद्धि पूजनीय है और गुणो के समूह की रक्षा करने वाली है ॥१६,१७,१८॥

## उद्गम दोष के १६ भेद

**उदिष्टाध्यवधि पूतिमिश्राणि स्थापित बलिः ।**
**प्राभृत च प्राविः कृतं क्रीतप्रामुष्य संज्ञकौ ॥१६॥**

**परिवृतश्चामिहत दोष उद्भिन्ननामकः ।**
**मालिकाऽऽरोहण छेद्या निस्पृष्टानीतिचोद्गमा ।२०युग्मं।**

**अन्वयार्थ**—(उद्दिष्टा) औद्देशिक (अध्यवधिपूतिमिश्राणि) अध्यवधि पूति, मिश्र (स्थापित) स्थापित (वलिं) वलि (प्राभृत) प्राभृत (प्राविष्कृत) प्राविष्कृत (क्रीतप्रामुष्यसज्ञकौ) क्रीत, प्रामुष्य (परिवृत) परिवर्तक (अभिहत) अभिहित (उद्भिन्ननामक) उद्भिन्न (च) और (मालिकारोहऽऽणाछेद्यानिसृष्टानि) मालिका आरोहण अछेद्य, अनिसृष्ट (इति) इस प्रकार (उद्गम) उद्गम दोष है।

**भावार्थ**—औदेशिक दोष, अवध्यवधि दोष, पूतिदोष, मिश्रदोष, स्थापितदोष, बलिदोष, प्राभृतदोष, प्रविष्कृतदोष, क्रीतदोष, प्रामुष्यदोष, परिवर्तकदोष, अभिहितदोष, उभिन्नदोष मालिका रोहणदोष, अच्छेद, अनिसृष्ट यह उद्गम दोष के १६ भेद हैं ॥१६,२०॥

**यत्स्वमुद्दिश्य निष्पन्नमन्नमुद्दिष्टमुच्यते ।**
**अथवा यमिपाखडीदुर्बलानखिलानपि ॥२१॥**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (स्व) अपने (अथवा) अथवा (यमिपाखडिदुर्बलान् अखिलान्) सयमी पाखडी दीन जन कृपण आदि सर्व लोको के (उद्दिश्य) उद्देश को लेकर (निष्पन्नं) निष्पन्न (अन्न) आहार (उद्दिष्टं) उद्दिष्ट उच्यते आहार कहा जाता है।

**भावार्थ**—जो आहार अपना उद्देश्य लेकर बनाया है, वह उद्दिष्ट है। अथवा सयमी, पाखडी, भिखारी आदि सबके उद्देश्य से बनाया हुआ आहार भी उद्दिष्ट कहा जाता है।

विशेषार्थ—औदेशिक दोष के चार भेद हैं—१ यावानुद्देश, २ समुद्देश ३ आदेश ४ समादेश। जो कोई आयेगा उन सबको देंगे ऐसे उद्देश्य से बनाया हुआ आहार यावानुद्देश है। पाखंडी अन्य लिंगी के निमित्त से बना हुआ अन्न समुद्देश है। तापस परिव्राजक आदि के लिए बनाया हुआ आहार आदेश है। निर्ग्रन्थ साधु के लिए बनाया हुआ आहार समादेश दोष है। यह चार औद्देशिक दोष के भेद है ॥२१॥

प्रगता यस्मादसवस्तत्स्यात्प्रासुकमित्यलम् ।
शुद्धमप्यन्नमात्मार्थं कृतं सेव्यं न सयतै ।।२२।।

**अन्वयार्थ**—(यस्मात्) जिससे (प्रगता) निकले गये हैं (असव) प्राणी (तत्) वह (प्रासुक) प्रासुक (स्यात्) है (आत्मार्थं) अपने लिए (कृतं) किया हुआ (शुद्धं) शुद्ध (अपि) भी (अन्न) आहार (सयतै.) सयतो के द्वारा (न) नही (सेव्य) सेवन करना चाहिये (इति अल) विशेष क्या कहे ।

**भावार्थ**—यद्यपि जिस वस्तु से प्राणी निकल गये हैं, वह वस्तु प्रासुक है तथापि अपने लिए बनाये हुए आहार को सयमीजन सेवन नही करते है ।।२२।।

मत्स्यार्थं वा कृते मत्स्या माद्यन्ति मदनोदके ।
नो दर्दुरास्तथा भिक्षुर्दोष्युद्दिष्टान्न सेवकः ।।२३।।

**अन्वयार्थ**—(मत्स्यार्थंकृते) मछलियो के लिए किये हुए (मदनोदके) मदकारी (जलेन) जल से (मत्स्याः माद्यन्ति) मछलिया मदोन्मत्त होती हैं (दर्दुरा) मेढक मदोन्मत्त (न) नही होते हैं (तथा) उसी प्रकार (उद्दिष्टान्नसेवक) उदिष्ट अन्न का सेवन करने वाला (भिक्षु) भिक्षु (दोषी) दोषी है ।

**भावार्थ**—मछलियो के लिए किये हुये मदनकारी जल मे मछलिया मदोमत्त होती हैं मेढक नही ? उसीप्रकार साधु अपने लिए बनाये हुये आहार मे अत्यन्त मदोन्मत्त होते हैं । दूसरे के लिए बने हुए आहार मे गृद्धि नही होती इसलिए उद्दिष्ट अन्न का सेवन करने वाला साधु दोषी है ।।२३।।

तदुलांब्वधिकक्षेपः स्वार्थं पाके यतीन्प्रति ।
स्यादध्यवधिरोधो वा पाकान्तं तत्तपस्विनाम् ।।२४।।

**अन्वयार्थ**—(स्वार्थं) अपने लिए बने हुए (पाकं) पाक (भोजन) मे (यतीन्प्रति) साधुओ के लिए (तदुलाव्वधिकक्षेप·) तन्दुल जलादि का अधिक क्षेपण करना (वा) अथवा (पाकान्त) आहार की निष्पत्तिपर्यन्त (तपस्विना) तपस्वियो का (रोध) रोध (रुकावट) करना (अध्यवधि) अध्यवधि दोष (स्यात्) है ।

**भावार्थ**—संयमी दिगबर साधु को आता हुआ देखकर अपने निमित्त बने हुये भात, दाल आदि मे-भात, दाल आदि का क्षेपण करना अर्थात् पकते हुये चावल आदि मे और चावल डालकर पकाना अथवा जब तक आहार निष्पन्न न हो तब तक धर्म प्रश्न के बहाने से साधु को रोककर रखना अध्यवधि दोष है ।।२४।।

पूति प्रासुकपात्रादिमिश्रमप्रासुकेन यत् ।
मिश्रसंगे हि पाखंडियतिभ्यो यद्वितीर्यते ।।२५।।

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (अप्रासुकेन) अप्रासुक से (मिश्रं) मिश्र हुये (प्रासुकपात्रादि) प्रासुक पात्रादि (पूति) पूति दोष है (हि) निश्चय से (पाखंडियतिभ्य) पाखंडि और यतियो के लिए (सगे) एक साथ (यत्) जो (वितीर्यते) वितरण किया जाता है वह मिश्र दोष है ।

**भावार्थ**—प्रासुक पात्रादि वस्तु अप्रासुक से मिश्रित है वह पूति दोष है । अर्थात् चूल्हा, ओखली, कलछी, बर्तनादि का संकल्प करना कि जब तक इस चूल्हे पर पकाया हुआ साधु को नही देंगे तब तक किसी को नहीं देंगे यह पूति

दोष है। यद्यपि वर्तनादि प्रासुक है, परन्तु उसमे पकाने का आरभ जनित सकल्प है, इसलिए ऐसा करने को पूति दोष कहते हैं। पाखडी दिगम्बर दोनो को एक साथ देना यह मिश्रदोष है ॥२५॥

**स्वगृहेऽन्यगृहे वा यत् स्थापितं पाकभाजनात् ।**
**अन्यस्मिन् भाजनेऽन्नादि निक्षिप्य स्थापित मतम् ।२६।**

**अन्वयार्थ**—(पाकभाजनात्) पाक के बर्तन मे से (अन्यस्मिन्) दूसरे (भाजने) भाजन मे (अन्नादि) अन्नादिक को (निक्षिप्य) रखकर (यत्) जो (स्वगृहे) अपने घर मे (वा) अथवा (अन्यगृहे) अन्य घर मे (स्थापितं) स्थापित किया जाता है। (तत्) उसको स्थापित दोष है।

**भावार्थ**—जिस भाजन मे आहार पकाया है, उससे निकालकर दूसरे भाजन मे रखकर दूसरे घर मे या उसी घर मे स्थापित करके साधु को देना स्थापित दोष है ॥२६॥

**यक्षादेबलिदानावशिष्टाहारो बलिर्मतः ।**
**संयतागमनार्थं वा करणं बलिकर्मणः ॥२७॥**

**अन्वयार्थ**—(यक्षादे) यक्षादिकी (बलिदानावशिष्टाहार) बलिदान से अवशिष्ट आहार (बलि.) बलि दोष (मत.) है (वा) अथवा (सयतागमनार्थं) संयत के आगमन के लिये (बलिकर्मण) बलिकर्म (करण) करना भी दोष है।

**भावार्थ**—जो आहार यक्ष की पूजा के लिये बना हो उनमे से शेष बचे हुए भोजन को साधु को देना बलिदोष है, अथवा आज हमारे घर साधु का आहार होगा तो मैं यक्ष की पूजा करूँगा आदि कहकर आहार देना बलिदोष है ॥२७॥

**वेलादिवसमासर्तुवर्षादिनियमेन यत् ।**
**यतिभ्यो दीयमानान्नं प्राभृतं परिकीर्तितम् ॥२८॥**

**अन्वयार्थ**—(वेलादिवसमासर्तुवर्षादिनियमेन) समय, दिवस, महीना, ऋतु, वर्षा के दिन आदि के नियम से (यत) जो (यतिभ्य.) यतियो के लिये (दीयमान) दिया गया (अन्न) अन्न (प्राभृत) प्राभृतदोषयुक्त (परिकीर्तितम्) कहा है।

**भावार्थ**—समय, दिन, महीना, ऋतु, वर्षा, दिवस आदि के नियम से जो आहार दिया जाता है, उसको प्राभृत दोष कहते हैं।

**विशेषार्थ**—समय का परिवर्तन करके आहार देना उसे प्राभृत दोष कहते हैं ॥२८॥

**गेहप्रकाशकरणं यत्प्राविष्कृतमीरितम् ।**
**संस्कारो भाजनादीनां वा स्थानान्तर धारणम् ॥२९॥**

**अन्वयार्थ**—(गेहप्रकाशकरण) घर को प्रकाशित करना (वा) अथवा (भाजनादिना) भाजनादि का (सस्कार) सस्कार करना (स्थानान्तरधारण) स्थानान्तर मे ले जाना (प्राविष्कृत) प्राविष्कृत दोष (ईरित) कहा है।

**भावार्थ**—प्राविष्कृत दोष के दो भेद हैं। संक्रमण और प्रकाशन। साधु के घर आने पर भोजन भाजनादि को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना संक्रमण प्राविष्कृत दोष है और साधु के घर आने पर भाजन को मिट्टी आदि से स्वच्छ करना, दीपक का प्रकाश करना आदि प्रकाशन प्राविष्कृत दोष है ॥२९॥

विद्याद्रव्यादिभिः क्रीत क्रीतं प्रामृष्यमिष्यते ।
स्तोकर्णं वृद्धवृद्धिभ्यां यतिदानार्थमर्जितम् ।।३०।।

**अन्वयार्थ**—(विद्याद्रव्यादिभिः) विद्या और द्रव्यादि के द्वारा (क्रीत) खरीदा हुआ अन्न (क्रीत) क्रीत दोष है (वृद्धयवृद्धिभ्या) वृद्धि अवृद्धि के द्वारा (यतिदानार्थं) यतिओ के दान देने के लिए (स्तोकर्णं) स्तोक कर्म (अर्जित) अर्जित किया जाता है। वह (प्रामृष्य) प्रामृष्य दोष (इष्यते) कहा जाता है।

**भावार्थ**—क्रीत दोष के दो भेद हैं द्रव्य और भाव। संयमी के घर मे प्रवेश करने पर गाय भैंस आदि द्रव्य देकर आहार द्रव्य को खरीदना और साधु को देना द्रव्य क्रीत दोष है। मन्त्र, तन्त्र, विद्या आदि देकर आहार खरीदना और साधु को देना भावक्रीत दोष है। साधु को आहार कराने के लिए उधार लेकर आहार देना प्रामृष्य दोष है। उसके भी दो भेद है। सवृद्धिक और अवृद्धिक कर्ज से अधिक आहार देना सवृद्धिक प्रामृष्य दोष है। और जितना कर्ज लिया है उतना ही देना अवृद्धिक प्रामृष्य दोष है ।।३०।।

व्रीहिकूरादिभिः शालिकूरादेः परिवर्तनम् ।
यदास्यामीति यतयेपरिवर्त्तः प्रकीर्तितः ।।३१।।

**अन्वयार्थ**—(यतये) यती के लिये (दास्यामि) देऊँगा (इति) इसलिये (व्रीहिकूरादिभि) व्रीहि चावलादि के द्वारा (शालिकूरादे) शालि आदि चावल का (परिवर्तन) परिवर्तन करना (परिवर्त) परिवर्त दोष (परिकीर्तित) कहा है।

**भावार्थ**—साधुओ को आहार देने के लिये अपने चावलादि को देकर दूसरे उत्तम चावलादि लेना परिवर्त्त दोष है ।।३१।।

स्यादायातमभिहृतं ग्रामवारगृहान्तरात् ।
योग्यमृजुसमासन्नाऽऽसप्तमाग्देहतो यदि ।।३२।।

**अन्वयार्थ**—(ग्रामवारगृहान्तरात्) ग्राम, मोहल्ला गृहान्तर से (आयात) लाया हुआ आहार देना (अभिहृत) अभिहृत दोष (स्यात्) है (यदि) यदि (ऋजुसमासन्नासप्तमात्) सरलपक्तिबद्धसप्त (गेहात्) घर से (आयात) लाया गया है वह (योग्यं) योग्य है।

**भावार्थ**– गामान्तर से एक मोहल्ला से दूसरे मोहल्ला मे पक्तिबद्ध घर को छोडकर दूसरे घर से दूसरे घर मे लेजाकर आहार देना अभिहृत-दोष है। यदि सरल, निकठ, पक्तिबद्ध सात घर से लाया हुआ है तो दोष नही है। मूलाचार मे लिखा है (गाथा नं ४३८-४३९ पिण्डशुद्ध ६) अभिघट दोष के दो भेद हैं। एक देश सर्व देशाभिघट के दो भेद हैं। अचिन्न, अनाचिन्न, पंक्तिवद्ध सीधे तीन अथवा सात घरो से आया भात आदि अन्न आचिन्न अर्थात् गृहण करने योग्य है। और इससे उल्टे सीधे घर न हो ऐसे सात घरो से लाया हुआ भी अन्न अथवा आठवा आदि घर से आया हुआ ओदनादि भोजन अनाचिन्न अर्थात् ग्रहण करने योग्य नही है। क्योकि इसमे ईर्यापथका दोष लगता है।

विमुद्रादिकमुद्भिन्नं मालिकाऽऽरोहण मतम् ।
मालिकादिसमारोहणेनातीत धृतादिकम् ।।३३।।

**अन्वयार्थ**—(विमुद्रादिक) मुद्रादिक को (उद्भिन्न) उद्भिन्न (मालिकादिसमारोहेणन) मालिकादि के समारोहण से (आतीतं) लाया हुआ (धृतादिकं) धृतादिक (मालिकारोहण) मालिका रोहण (मत) माना है।

[मूलाचार गाथा न. ४४७]

**भावार्थ**—मिट्टी लाख आदि से ढका हुआ अथवा नाम की मौहर कर चिह्नित जो औषध घी शक्कर आदि द्रव्य है,उसे उघाड कर देना वह अद्भिन्न दोष है। चींटी आदि का प्रवेश होने से दोष हैं। २ काष्ठ आदि की बनी सीढी अथवा पैढ़ी (जीना) से घर के ऊपर के खन (माले) पर चढ करके वहा रखे हुए पूआ लड्डू आदि अन्न को लाकर साधु को देना वह मालारोहण दोष है ।।३३।।

नृपतस्करभीत्यादेर्दत्तमाच्छेद्यमुच्यते ।
अनिसृष्टमीशानीशाऽनभिमत्या यदर्प्यते ।।३४।।

**अन्वयार्थ**—(नृपतस्करभीत्यादे ) राजा, चोर आदि के भय से (दत्त) दिया हुआ दान (आच्छेद्य) आच्छेद्य (उच्यते) कहा जाता है (ईशानीशानभिमत्या) ईश और अनीश की अनभि मति से (यत ) जो (अर्प्यते) अर्पण किया जाता है वह (अनिसृष्ट) अनिसृष्ट दोष कहा जाता है।

**भावार्थ**—राजा चोर आदि के भय से जो आहार दिया जाता है वह आच्छेद्य दोष है। मूलाचार मे लिखा है। सयमी साधुओ के भिक्षा के परिश्रम को देख राजा और चोर आदिक गृहस्थियो को ऐसा डर दिखाकर कहे कि जो तुम इन साधुओ को भिक्षा नही दोगे तो हम तुम्हारा द्रव्य छीन लेंगे, गाँव से निकाल देंगे, ऐसा डर दिखाकर दिया गया जो दान वह आच्छेद्य दोष है ऐसा जानना ।।४४३।। स्वामी और अन्य जनो के निषेध किये हुए आहार को देना अनीशर दोष कहलाता है। अनीशार्थ दोष के २ भेद हैं ईश्वर अनीश्वर। इन दोनो के भी मिलकर चार भेद हैं। पहला भेद ईश्वर सारक्ष तथा अनीश्वर के तीन भेद व्यक्त अव्यक्त सघाट दान का स्वामी देने की इच्छा करे और मन्त्री आदि मना करे तो दिया हुआ भी भोजन ईश्वर अशीनार्थ है। स्वामी से अन्यजनो पर निषेध किया अनीश्वर कहलाता है वह व्यक्त (वृद्ध) अव्यक्त (बाल) सघाट दोनो के भेद से तीन प्रकार है (मू आ. ४४४) ।।३४।।

## उत्पादन दोष के भेद

धात्रीदूतभिषग्वृत्तिनिमित्तेच्छाविभाषणम् ।
पूर्वपश्चात्स्तुतिः क्रोधचतुष्कं वश्यकर्म च ।।३५।।

स्वगुणस्तवनं विद्यामंत्रचूर्णोपजीवनम् ।
चेत्येते षोडशोत्पादनाख्यां दोषा विभाषिताः ।।३६।।

**अन्वयार्थ**—(धात्रीदूतभिषग्वृत्तिनिमित्तेच्छाविभाषण) धात्री दूत, भिषग् वृत्ति, निमित्त, इच्छा, विभाषण, (पूर्व) पूर्व (पश्चात्) पश्चात् (स्तुति ) स्तुति (क्रोधचतुष्क) क्रोध चतुष्क (वश्यकर्म) वश्यकर्म (च) और (स्वगुणस्तवन) स्वगुणस्तवन (विद्यामत्रचूर्णोपिजीवन) विद्या, मत्र, चूर्ण, उपजीवन (इति) इसप्रकार (एते) ये (षोडश) सोलह (उत्पादनाख्या ) उत्पादन नामक (दोषा.) दोष (विभाषिता) कहे गये हैं।

**भावार्थ**—धात्री दोष, दूत, चिकित्सा, निमित्त, आजीव, वनीपक, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी ये दस दोष। तथा पूर्व स्तुति, पश्चात् सस्तुति, विद्या, मंत्र, चूर्ण, योग मूल कर्म दोष ये सब मिलकर सोलह उत्पादन दोष हैं ।।३५,३६।।

बाललालनशिक्षादिर्धात्रीत्व दूतता मता ।
दूरबन्धुजनानां वाग्नयनानयनक्रिया ।।३७।।

**अन्वयार्थ**—(बाललालनशिक्षादिः) बच्चो के लालन शिक्षादि (धात्रीत्व) धात्रीत्व दोष है (दूरबधुजनाना) दूर बन्धुजनो के (वाग्नयना नयनक्रिया) समाचार ले जाना लाना आदि (दूतता) दूतता (मता) मानी है।

**भावार्थ**—बच्चो को पालन करने वाली धाय कहलाती है। स्नान कराने वाली, आभूषण पहराने वाली, रमाने वाली, दूध पिलाने वाली और माता के समान पास सुलाने वाली के भेद से धाय पाच प्रकार की है। इन पाच प्रकार की धायविद्या का उपदेश देकर साधु आहार लेता है वह धाय दोष है। इससे स्वाध्याय का नाश और साधु मार्ग मे दूषण लगता है। एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे जाते समय साधु किसी कुटुम्बी के संदेश कहकर आहार लेता है वह दूत दोष है।३७।

**गजाऽश्वजांगुली बालवैद्याद्यैर्नीचवृत्तिभिः।**
**भिषग्वृत्तिर्मता तादृगन्यैरप्यशनाऽर्जनम् ।।३८।।**

**अन्वयार्थ**—(गजाश्वजागुलीबालवैद्याद्यै) हाथी, घोडा, विष, बालक के चिकित्सादि के द्वारा (तादृग्) वैसी (अन्यैः) और भी (नीचवृत्तिभिः) नीच वृत्तियो के द्वारा (अर्जन) अर्जन किया हुआ (अयनं) आहार (भिषग्वृत्ति.) भिषक वृत्ति (मत) माना है।

**भावार्थ**—गज चिकित्सा, अश्व चिकित्सा, विष चिकित्सा, बाल चिकित्सा आदि शब्द से भूततन्त्र, मन्त्र आदि क्रियाओ के द्वारा आहार उत्पादन करना भिषग् दोष है ।।३८।।

**स्वरान्तरिक्षभौमांगव्यजनच्छिन्नलक्षण-**
**स्वप्नाष्टांगनिमित्तैर्यन्निमित्तमशनार्जनम् ।।३९।।**

**अन्वयार्थ**—(स्वरान्तरिक्षभौमागव्यजनच्छिन्नलक्षणस्वप्नाष्टागनिमित्ते.) स्वर, अंतरिक्ष, भौम, अग, व्यंजन, छिन्न, लक्षण स्वप्न आदि अष्टाग, निमित्त के द्वारा (यत्) जो (अशनार्जन) अशन का अर्जन करता है (निमित्त) वह निमित्त दोष है।

**भावार्थ**—पिंगलादि स्वर से अथवा पक्षी, पशु, मानव आदि के शब्द से शुभ कहना स्वर निमित्त है। चद्र सूर्यादि के गमन के निमित्त से शुभाशुभ कहना अतरिक्ष निमित्त है। भूमि जनित चिन्हो से शुभाशुभ कहना भौम निमित्त है। शरीर के अवयवो को देखकर शुभाशुभ कहना अगनिमित्त है। तिल मस्सा आदि चिह्नो से शुभाशुभ कहना व्यजन निमित्त है। शरीर गत पद्म, चक्र, शख आदि से शुभाशुभ कहना लक्षण निमित्त है। स्वप्न मे विमान तालाब आदि देखने पर शुभाशुभ कहना स्वप्न निमित्त है। वस्त्रादि के छेदने पर चूहे आदि के द्वारा काटने पर शुभाशुभ कहना छिन्न निमित्त है। इन अष्ट निमित्त ज्ञान से शुभाशुभ कहकर आहार लेना निमित्त दोष है ।।३९।।

**दीनाद्यन्नाद्यदानेन पुण्यं ननु भवेदिति।**
**पृष्ठेऽभ्युपगमान्नार्थं भवेदिच्छाविभाषणम् ।।४०।।**

**अन्वयार्थ**—ननुप्रश्नवाची शब्द (दीनाद्यन्नाद्यदानेन) दीन, कृपण, भिखारी आदि को अन्न न देने से (पुण्य) पुण्य (भवेत्) होता है (इति) इसप्रकार (पृष्ठे) पूछने पर (अन्नार्थं) आहार के लिए (अभ्युपगम) उसकी इच्छानुसार (भवेत्) होता है ऐसा कहना (इच्छाविभाषण) इच्छाविभाषण दोष है। मूलाचार मे कहा है।

**भावार्थ**—कोई दाता ऐसे पूछे कि कुत्ता, कृपण, भिखारी, असदाचारी ब्राह्मण भेषी साधु तथा त्रिदडी आदि साधु और कौआ इनको आहारादि देने मे पुण्य होता है या नही ? उसकी रुचि के अनुकूल ऐसा कहे कि पुण्य ही होता है, वहा भोजन लेने मे वनीपक दोष जानना इनमे दीनता है। ४५१ ।।४०।।

दाता ख्यातस्त्वमित्याद्यं गेह्यानंदनंदनम् ।
पूर्वंपश्चाच्च भुक्तेस्तत्पूर्वं पश्चात्स्तवद्वयम् ।।४१।।

**अन्वयार्थ**– (पूर्वं) पूर्वं (च) और (पश्चात्) पश्चात् (त्व) तुम (ख्यात) प्रसिद्ध दाता हो (इत्याद्यं) इत्यादि वचनो के द्वारा (भुक्तेः) आहार के (पूर्वं) पूर्व (पश्चात्) आहारानतर (गेह्यानंदनदनम्) गृहस्थो के सतोषोत्पादक वचन बोलना (स्तवद्वय) पूर्व स्तुति और पश्चात् स्तुति है।

**भावार्थ**—आहार करने के बाद स्तुति करना पश्चात् स्तुति और आहार के पूर्व गृहस्थी की स्तुति करना पूर्व स्तुति दोष है ।।४१।।

क्रोधाद्यन्नार्जन क्रोधचतुष्क वश्यकर्म यत् ।
वश्यकृन्मंत्रतंत्रादिदेशनेनाशनार्जनम् ।।४२।।

**अन्वयार्थ**—(क्रोधाद्यन्नार्जन) क्रोधादिक के वश होकर आहार लेना (क्रोधचतुष्क) क्रोध चतुष्क दोष हैं (वश्यकृन्मन्त्रतंत्रादिदेशनेन) वशीकरण मत्रतत्रादिक के उपदेश से (अशनार्जनं) आहार अर्जन करना (वश्यकर्म) वश्यकर्म है।

**भावार्थ**—क्रोध के वशीभूत हो र आहार लेना क्रोध दोष हैं। मान कषाय से लेना मान दोष, मायाचार से लेना माया दोष, लोभ से लेना लोभ दोष है। वशीकरण मत्रतत्रादि बताकर आहार लेना वश्यकर्म दोष है। उक्त च मूलाचारे क्रोध, मान, माया लोभ से आहार लेना क्रोध,मान,माया, लोभ रूप उत्पादन दोष होता है ऐसा जानना ।।४२।।

स्वतपः श्रुतजात्यादिवर्णन स्वगुणस्तवः ।
विद्यागः सिद्धविद्यादि प्रभावादिप्रदर्शनम् ।।४३।।

**अन्वयार्थ**—(स्वतप श्रुतजात्यादिवर्णनम्) अपना तप, जाति,आदि का वर्णन करना (स्वगुणस्तव) स्वगुण स्तव दोष है। (सिद्धविद्यादिप्रभावादिप्रदर्शनम्) सिद्ध विद्यादि का प्रभाव दिखाकर आहार लेना (विद्याग) विद्या दोष है।

**भावार्थ**—अपनी जाति, कुल, तपश्चरण आदि की महानता प्रगट करके आहार ग्रहण करना स्वगुण स्तवन दोष है। अपनी सिद्ध विद्यादिक का प्रभाव दिखाकर आहार लेना विद्या दोष है। धर्म प्रभावना के लिए विद्याओ का चमत्कार दिखाना दोष नही है। आहार के लोभ से दिखाना दोष है। मूलाचार मे कहा है जो साधन से सिद्ध हो वह विद्या है। उस विद्या की आशा देने से हम तुमको विद्या देंगे तथा उस विद्या की महिमा वर्णन करने से जो आहार ले उस साधु को विद्या दोष होता है। ४३।।

पाठसिद्धादिमंत्राणामङ्गश्रृंगारकारिणः ।
चूर्णादेर्देशने स्यातां मंत्रचूर्णोपजीवने ।।४४।।

**अन्वयार्थ**—(पाठसिद्धादिमत्राणा) पठित सिद्ध मत्रो का (अगश्रृंगारकारिण) अगो को विभूषित करने वाले (चूर्णादे) चूर्णादिक का (देशने) उपदेश देना (मत्रचूर्णोपजीवने) मत्र चूर्णोपजीवन दोष है। सो ही मूलाचार में कहा है।

**भावार्थ**– पढने मात्र से जो मंत्र सिद्ध हो वह पठित सिद्ध मन्त्र होता है उस मन्त्र की आशा (लोभ) दिखाकर और उसकी महिमा कहकर जो साधु आहार ग्रहण करता है उसके मत्र दोष होता है। अगश्रृंगारादि के चूर्ण आदि का उपदेश देकर आहार लेना चूर्ण दोष है ।।४४।।

## एषणा समिति के दश भेद

**दोषाः शंकितम्रक्षिते निक्षिप्तं पिहितोज्झिते ।**
**व्यवहारो दातृमिश्रापक्वलिप्ता दशैषणाः ।।४५।।**

**अन्वयार्थ**—(शकितम्रक्षिते) शकित, म्रक्षित (निक्षिप्त) निक्षिप्त (पिहितोज्झिते) पिहित और उज्झित (व्यवहारः) व्यवहार (दातृमिश्रापक्वलिप्ता) दायक, मिश्र, अपक्व, लिप्त (दशैषणा.) ये दश एषणा के (दोषा) दोष है।

**भावार्थ**—शकित, मृक्षित, निक्षिप्त, पिहित, त्यक्त, सव्यवहरण, दायक, उन्मिश्र, अपरिणत, लिप्त ये दश अनशन (एषणा) दोष है ।।४५।।

**शंकितं शकितं सेव्यमेतदन्न न वेति यत् ।**
**सस्नेहहस्तपात्रादिदत्तं यन्म्रक्षित मतम् ।।४६।।**

**अन्वयार्थ**—(एतत्) यह (अन्न) अन्न (सेव्यं) सेवा करने योग्य है कि (न वा) नही (इति) इस प्रकार जो (शकित) शका है वह (शंकित) शकित दोष है (यत्) जो (सस्नेहहस्तपात्रादिदत्त) चिकने हाथ तथा पात्रादि से दिया हुआ अन्न है (मृक्षित) वह मृक्षित दोष (मतं) माना है।

**भावार्थ**—भात, लाडू, दूध, इलायची, लवग, आदि चार प्रकार के भोजन आगम के अनुसार मेरे लेने योग्य है, या नही ऐसी शका सहित आहार लेना शकित दोष होता है। चिकने हाथ से या पात्र से आहार देना मृक्षित दोष है उसे हमेशा त्याग करना चाहिये ।।४६।।

**सचित्तपद्मपत्रादौ क्षिप्तं निक्षिप्तसंज्ञितम् ।**
**सचित्तेनाब्जपत्रादिना वृतं पिहिताशनम् ।।४७।।**

**अन्वयार्थ**—(सचित्तपद्मपत्रादौ) सचित्त पद्म पत्रादि मे (क्षिप्त) रखे हुये अन्न को लेना (निक्षिप्तं) निक्षिप्त नामकदोष है। (सचित्तेन) सचित्त (अब्जपत्रादिना) कमल पत्रादि से (आवृत) ढका हुआ अन्न (पिहिताशन) पिहिताशन दोष युक्त है।

**भावार्थ**—अप्रासुक सचित्त पृथ्वी, जल, तेज, हरितकाय, बीजकाय, जीवो के ऊपर रखा हुआ जो आहार वह छह भेद वाला निक्षिप्त है,ऐसे आहार को निक्षिप्त दोष कहते हैं। अप्रासुक वस्तु से ढका हुआ अथवा उसे उघाडकर जो दे ऐसे आहार को लेना पिहित दोष होता है ।।४७।।

**स्यादुज्झितं वहु त्यक्त्वा यच्चूताद्यल्पसेवनम् ।**
**पानादि दीयमानं वाऽनल्पेन गलनेन तत् ।।४८।।**

**अन्वयार्थ**—(वहुत्यक्त्वा) बहुत मे पदार्थों को छोडके (यत्) जो (चूताद्यल्पसेवन) आम आदि को अल्प सेवन करता है (वा) अथवा (दीयमान) दिये गये (पानादि) पेय आदि पदार्थों को (अनल्पेन) बहुत (गलनेन) झरने से भोजन करना (उज्झितं) उज्झित दोष (स्यात्) है।

**भावार्थ**—बहुत भोजन को छोडकर थोडा भोजन करे, छाछ आदि से झरते हुये हाथ से भोजन करे, अथवा किसी एक आहार को छोडकर ग्रहण करे उसके उज्झित दोष होता है ।।४८।।

यत्यर्थं सम्भ्रमाच्चेलपात्रादेरसमीक्ष्य यत् ।
समाकर्षणमाम्नातं व्यपहार इति श्रुते ।।४६।।

**अन्वयार्थ**—(यत्यर्थं) यतिराज के लिए (सम्भ्रमात्) शीघ्रता से (चेलपात्रादेः) वस्त्र भाजनादि को (असमोक्ष्य) नही देखकर (यत्) जो (समाकर्षण) भोजनादि को घर्षण कर देना (श्रुते) आगम मे (व्यपहारः) व्यपहार (इति) इस प्रकार (दोषाम्नात) माना है।

**भावार्थ**—वस्त्र, भाजन, भोजन का अवलोकन नही करके शीघ्रता से दिया हुआ अन्न ग्रहण करना व्यपहार (व्यपहार) दोष है ।।४६।।

नग्नः शौण्डः पिशाचोन्धः पतितो मृतकाऽनुग ।
तीव्ररोगी व्रणी लिंगी नीच्चोच्चस्थानसंस्थितः ।।५०।।

आसन्नगर्भिणी वेश्या दास्यन्तरिताऽशुचिः ।
भक्षयन्ति किमप्येवमाद्या दोषास्तु दातृगाः ।।५१।।युग्मम्

**अन्वयार्थ**—(नग्न) नग्न (शौण्ड) मदिरा पीने वाले या मदिरा का कार्य करने वाला (पिशाचः) पिशाच से गृहीत वा वायुदोष से पीडित (अन्ध) अन्धा (पतित) मूर्च्छा से गिरा हुआ (मृतकाऽनुग) मुर्दे को श्मशान मे जलाकर वा डालकर आया हो (तीव्ररोगी) तीव्ररोगी (व्रणी) घाव से युक्त (लिंगी) अन्वेषधारी (नीचोच्चस्थानसस्थित) साधु से नीचे और ऊँचे स्थान पर खडा हो (आसन्नगर्भिणी) पाच महीने से अधिक गर्भवाली हो (वेश्या) वेश्या (दासी) दासी (अतरिता) दीवाल, पर्दा आदि से अन्तरित (अशुचि) अपवित्र (किमपि) कुछ भी खा रही हो (एव) इस प्रकार (आद्य.) आदि शब्दो से और भी (दातृगा) दातागतदोष है।

**भावार्थ**—जो स्त्री वालक को सजाती हो,मदिरा पीने मे लपट हो,रोगी हो,मुरदे को जलाकर आया पुरुष हो, नपुंसक हो, वायु आदि से पीडित हो, वस्त्रादि ओढे हुए न हो, मूत्र आदि करके आया हो, मूर्च्छा से गिर पडा हो, वमन कर आया हो, सहित हो, दासी हो, अर्जिका रक्तपटिका आदि हो, अंगो का मर्दन करने वाली हो, अतिवालक (भोली) हो अधिक वूढी हो, भोजन करती झूठे मुह हो, पाच महीना आदि के गर्भ से युक्त हो, अन्धी हो, दीवाल आदि के अन्तर से वैठी हो, ऊँची जगह बैठी हो, नीचे जगह पर वैठी हुयी हो, मुह से फूककर अग्नि जलाना काठ आदि डालकर आग जलाना, काठ को ललाने के लिये सरकाना, राख से अग्नि को ढकना, जलादि से अग्नि को बुझाना तथा अन्य भी अग्नि के कार्यकर भोजन देना, गोबर आदि से दीवाल का लीपना स्नानादि क्रिया करना, दूध पीते वालक को छोडकर आहार देना इत्यादि क्रियाओ से आहार दे तो दातागत दोष है ।।५०-५१।।

मिश्र षट्जीवसम्मिश्रमपक्व पावकादिभिः ।
द्रव्यैरत्यक्तपूर्वस्ववर्णगन्धरसविदुः ।।५२।।

**अन्वयार्थ**—(षट्जीवसमिश्र) छह काय के जीवो के मिश्रित आहार लेना (मिश्र) मिश्रदोष है (पावकादिभिः) अग्नि आदि के द्वारा (द्रव्यै) हरडादि द्रव्यो से (अत्यक्तापूर्वस्ववर्णगंधरस) नही छोडा है पूर्व स्ववर्ण, गध, रस जिसने उसको (अपक्व) अपक्व (विदु) कहा है।

**भावार्थ**—छह काय के जीव से मिश्रित, अप्रासुक आहार लेना मिश्र दोष है। जल का अग्नि द्वारा गरम

करने पर भी जिस जल ने अपने रूप रस गध को नही छोडा है अर्थात् पूर्ण गरम नही हुआ है, अथवा हरड आदि के चूर्ण प्रासुक करने पर रूप बदला नही हो उसे आहार मे लेना अपक्व दोष है ।।५२।।

लिप्तमप्रासुकैस्तोयमृत्तिकातालकादिभि ।
लिप्तैर्दर्वीकराद्यैर्यद्दीयमानाशनादिकम् ।।५३।।

**अन्वयार्थ**—(अप्रासुकै ) अप्रासुक (तोयमृत्तिकातालकादिभि·) पानी, मिट्टी, हरताल आदि के द्वारा (लिप्तै ) लिप्त (दर्वीकराद्यै ) कडछली हाथ आदि के द्वारा (दीयमानाशनादिक) दिया गया अनशनादि (लिप्त ) लिप्त दोष है।

**भावार्थ**—मूलाचार मे लिखा है गेरू, हरताल, खडिया, मैनशिल, चावल आदि का चूर्ण कच्चा शाक, इनसे लिप्त हाथ तथा पात्रअथवा अप्रासुक जल से भीगा हुआ हाथ तथा पात्र इन दोनो से भोजन दे तो लिप्त दोष होता है ।।५३।।

स्वादार्थमन्नपानानां यत्संयोजनकर्म तत् ।
प्रोक्तं संयोजनं नानारोगाऽसंयमकारणम् ।।५४।।

**अन्वयार्थ**—(स्वादार्थं) स्वाद के लिए (अन्नपानाना) अन्न पानी का (यत्) जो (सयोजनकर्म) सयोग कर्म है (तत्) वह (नानारोगाऽसयमकारणम्) नाना प्रकार के रोग और असंयम कारण (सयोजन) सयोजन नामक दोष (प्रोक्त) कहा है।

**भावार्थ** - जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होकर स्वाद के लिए गरम अन्न पानादि मे शीतल जलादि मिलाकर ग्रहण करना सयोजन दोष हैं यह अनेक प्रकार के रोगो का उत्पादक है और असयम का कारण है ।।५४।।

अन्नेनार्द्धं तृतीयाश कुक्षेः पानेन पूरयेत् ।
वायोः सुखप्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ।।५५।।

**अन्वयार्थ**—(कुक्षे ) कुक्षि के (अर्द्ध) अर्द्ध भाग को (अन्नेन) अन्नादिक से (तृतीयाश) तृतीयाश को (पानेन) पानी से (पूरयेत्) पूरित करे। (वायो ) वायु के (सुखप्रचारार्थं) सुख प्रचार के लिए (चतुर्थ) चतुर्थ भाग (अवशेषयेत्) खाली रखे।

**भावार्थ**—उदर के अर्द्ध भाग को अन्न से भरे, तृतीयाश पेय पदार्थ से भरे और चतुर्थांश सुख पूर्वक वायु संचार के लिए खाली रखे ।।५५।।

प्रमाणादतिरेकोऽस्मात्प्रमाणागो भवेद्यतः ।
ध्यानाध्ययनभंगार्तिनिद्राऽऽलस्यादयोऽगिन ।।५६।।

**अन्वयार्थ**—(अस्मात्) इस, (प्रमाणात्) प्रमाण से (अतिरेक ) उल्लंघन करना (प्रमाणाग ) प्रमाण दोष (भवेत्) होता है (यत ) जिससे (अगिन ) प्राणियो के (ध्यानाध्ययनभगार्तिनिद्राऽऽलस्यादय.) ध्यान, अध्ययन का भग अर्ति, निद्रा, आलस्यादि उत्पन्न होते हैं।

**भावार्थ**—शास्त्रो के प्रमाण से अधिक आहार करने से ध्यानाध्ययन का भग, रोग, निद्रा, आलस्य आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं, इसलिए प्रमाण से अधिक आहार करना प्रमाण दोष है।

रागेणेष्टान्नपानाप्ती सेवांगारो निगद्यते ।
धूमोऽनिष्टान्नपानादौ यद्द्वेषेण निषेवनम् ॥५७॥

**अन्वयार्थ**—(इष्टान्नपानाप्तौ) इष्ट अन्न पानादि प्राप्ति होने पर (रागेण) रागपूर्वक (सेवा) सेवा करना (अंगारः) अगार दोष है। (अनिष्टान्नपानादौ) अनिष्ट अन्न पान की प्राप्ति होने पर (यत्) जो (द्वेषेण) द्वेष पूर्वक (निषेवन) सेवन किया जाता है वह धूम दोष (निगद्यते) कहा जाता है।

**भावार्थ**—इष्ट अन्न पान के मिलने पर अतिगृद्धि से सेवन करना अगार दोष है। अनिष्ट अन्न पान की प्राप्ति होने पर द्वेषपूर्वक ग्लानि करता हुआ भोजन करना धूम दोष है ॥५७॥

### कारण दोष का वर्णन

क्षुच्छान्त्यावश्यकप्राणरक्षाधर्मयमा मुनेः ।
वैय्यावृत्यं च षट्भुक्तेः कारणानीति यन्मतम् ॥५८॥

**अन्वयार्थ**—(क्षुच्छान्त्यावश्यकप्राणरक्षाधर्मयम.) भूख की शान्ति, आवश्यको का पालन, प्राणरक्षा, धर्मो का परिपालन, सयम साधन (च) और (वैय्यावत्य) सेवावृति (इति) इस प्रकार (मुने) मुनि के (भुक्ते.) भुक्ति के (षट्) ये, छह (कारणानि) कारण (मत) माने हैं।

**भावार्थ**—मुनि को क्षुधाकी वेदना के उपशमार्थ, वैय्यावृत्ति करने के लिये, छह आवश्यक क्रिया के पालनार्थ तेरह प्रकार के चरित्र के लिये प्राण रक्षा के लिये, उत्तम क्षमादि धर्म के पालन के लिये भोजन करना चाहिये ॥५८॥
[मूलाचार ४७९]

तत·शरीरसंवृद्ध्यै तत्तेजोबलवृद्धये ।
स्वादार्थमायु·संवृद्ध्यै नैव भुञ्जीत सयतः ॥५९॥

**अन्वयार्थ**—(तत) क्योकि (संयत) संयमी (शरीरसंवृद्ध्यै) शरीर वृद्धि के लिये (तत्तेजोवलवृद्धये) तेज और वल वृद्धि के लिये (स्वादार्थं) स्वाद के लिये (आयुसंवृद्ध्यै) आयु वृद्धि के लिये (नैव) नही (भुञ्जीत) भोजन करते हैं।

**भावार्थ**—साधु गण शरीर की पुष्टि करने के लिये, तेज और बल की वृद्धि के लिये जिह्वा इन्द्रिय के स्वाद के लिये और आयु की वृद्धि के लिये भोजन नही करते हैं ॥५९॥

महोपसर्गोऽऽतकांगसंन्यासाणिदयातपो-
ब्रह्मचर्याणि भिक्षोर्षट् कारणान्यशनोज्झने ॥६०॥

**अन्वयार्थ**—(भिक्षो·) भिक्षु के (अशनोज्झने) आहार के छोडने मे (महोपसर्गाऽऽतंकागसंन्यासाणिदयातयो-ब्रह्मचर्याणि) महोपसर्ग, रोग, शरीर के ममत्व का त्याग, प्राणिदया, तप- ब्रह्मचर्य (षट्) ये छह (कारणानि) कारण हैं।

**भावार्थ**—सयमीगण व्याधि के अकस्मात् हो जाने पर, देव मनुष्यादि द्वारा उपसर्ग होने पर, उत्तम क्षमा आदि धर्म के घात के कारणो के उपस्थित होनेपर, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने के लिये, शरीर मे ममत्व छोड़ने और जीवो पर दया करने के लिये आहार का त्याग करते हैं।

एतद्दोषविहीनान्नभुक्तेरन्तरकारिणः ।
अन्तरायाः कियन्तोऽत्र वर्ण्यन्ते वर्णिनामिमे ॥६१॥

**अन्वयार्थ**—(वर्णिना) साधुओ के (एतद्दोषविहीनान्नभुक्ते) इन छियालीस दोषो से रहित आहार के (अन्तरकारिण) अन्तर (बाधा) करने वाले (कियन्त) कितने (अन्तराया.) अन्तराय हैं (इमे) इनका (अत्र) यहा पर (वर्ण्यन्ते) वर्णन किया जाता है।

**भावार्थ**—इस प्रकार छियालीस दोष रहित आहार करने वाले साधु के कुछ अन्तरायो का यहाँ वर्णन किया जाता है ॥६१॥

रसपूयाऽस्थिमांसासृक्चर्ममेध्यादिवीक्षणम् ।
काकाद्यमेध्यपातोंगे वमनं स्वस्थ रोधनम् ॥६२॥

अश्रुपातश्च दुःखेन पिंडपातः स्वहस्ततः ।
काकादिपिंडहरणं पतनं त्यक्तसेवनम् ॥६३॥

पादान्तरालात्पचाक्षगतिः पचेन्द्रियात्ययः ।
स्वोदरकृमिविण्मूत्ररक्तपूयदिनिर्गमः ॥६४॥

निष्ठीवनं संदष्ट्रांगिदशन चोपवेशनम् ।
पाणिपात्रेऽत्र सांगास्थिनखरोमादिदर्शनम् ॥६५॥

प्रहारो ग्रामदाहोऽशुभोग्रबीभत्सवाक्श्रुतिः ।
उपसर्गाः पतन पात्रस्यायोग्यगृहाशनम् ॥६६॥

जानुदेशादधः स्पर्शश्चेत्येवं बहवो मताः ।
लोकसंयमवैराग्यजुगुप्सा भवभीतिजाः ॥६७॥ षड्भिःकुलकम् ॥

**अन्वयार्थ**—(रसपूयाऽस्थिमासासृक्चर्ममिध्यादिवीक्षणम्) रस, पीप, हड्डी, मास, रक्त, चर्म, अमेध्य आदि का देखना (अगे) शरीर पर (काकाद्यमेध्यपात.) कौवा आदि की वीट गिरजाना (स्वस्य) अपने आपके (वमन) वमन होना (रोधनं) रोकना (दु खेन) दु खसे (अश्रु पात ) अश्रु पात होना (स्वहस्तत ) अपने हाथ से (पिंडपात ) ग्रास का गिरजाना (काकादिपिंडहरण) कौवा आदि के द्वारा पिण्ड का हरण (च) और (पतन) गिरजाना (त्यक्तसेवनं) त्याग की हुई वस्तु का सेवन करना (पादान्तरालात्) पैरो के अन्तराल से (पचाक्षगति )पचेन्द्रिय प्राणी का निकलना (पचेन्द्रियात्यय )पंचेन्द्रिय प्राणी का घात होना (स्वोदरकृमिविण्मूत्ररक्तपूयादिनिर्गम ) अपने उदर से कृमि, मल, मूत्र, रस, पूय आदि का निकलना (निष्ठीवनं) थूकना (सदष्ट्रांगिदशन) दाढवाले कुत्ता आदि प्राणियो के द्वारा काटना (उपवेशन) बैठ जाना (अत्र) यहा (पाणिपात्रे) हाथ में (सांगास्थिनखरोमादिदर्शनम्) प्राणियो का अग, अस्थि, नख, रोम आदि का दृष्टिगोचर होना (प्रहारः) प्रहार होना (ग्रामदाह.) गाव मे अग्नि लग जाना (अशुभोग्रबीभत्सवाक्श्रुति.) अशुभ, उग्र, भयकर वचनो का सुनना (उपसर्गा ) उपसर्ग होना (पात्रस्य) पात्रका (पतन) गिरजाना (अयोग्यगृहाशन) अयोग्य घर मे प्रवेश करना (जानुदेशादध:स्पर्श.) जानु से नीचे के प्रदेश का स्पर्श करना (इति एव) इस प्रकार (लोकसयमवैराग्यजुगुप्साभवभीतिजा.) लोक, सयम, वैराग्य, जुगुप्सा और भव की भीति से उत्पन्न (बहवः) बहुत अन्तराय (मता) माने गये हैं ॥६२-६३-६४-६५-६६-६७॥

भावार्थ—१-३ राध-पीप अस्थि, मास, रक्त, चर्म, अमेध्य, (टट्टी) आदि के देखने से अतराय होती है।
४—आहार को जाते समय साधुओ के शरीर पर कौआ आदि बीट करे तो काक नामा अतराय है।
५—अशुचि वस्तु से पैर लिप्त हो जाय तो अमेध्य अतराय है।
६—वमन हो जाय तो छर्दिनामा अतराय है।
७—मत खाओ इसप्रकार कोई भोजन मे रुकावट करे तो रोध नामा अंतराय है।
८—किसी के नेत्रो से दुःख से अश्रुपात होना देखे तो रुदन नामा अंतराय है।
९—अपने हाथ से ग्रास नीचे गिर जाय तो पाणिपिंडपतन नामक अतराय है।
१०—आहार करते समय कौआ आदि ग्रास ले जाय तो काकादिपिंडहरण अतराय है।
११—आहार को जाते समय वा आहार करते समय मूर्च्छा आदि से साधु गिर जाय वा दाता आहार देते समय गिर जाय तो पतन नामक अंतराय है।
१२—त्याग की हुई वस्तु का सेवन करना प्रत्याख्यान सेवना नामक अतराय है।
१३—पैरो के अतराल से पचेन्द्रिय प्राणी निकल जाय तो जीव संपात नामक अन्तराय है।
१४—पचेन्द्रिय जीव का वध होना जन्तुवध नामक अन्तराल है।
१५—आहार करते समय अपने उदर से कृमि निकल जाय तो उदर कृमि निर्गमन अन्तराय है।
१६—आहार करते समय उदर से मल निकल जाय तो उच्चार नामक अन्तराय है।
१७—आहार करते समय मूत्र निकल जाय तो प्रश्नवरण नामक अन्तराय है।
१८—अपने या दूसरे शरीर से रक्त पीव निकलता देखे तो रुधिर नामक अंतराय है।
१९—आहार करते समय मुख से कफ ग्रास आदि थूके तो निष्ठीवन अन्तराय है।
२०—कुत्ता आदि काटे तो सदंश नामक अन्तराय है।
२१—आहार करते वा मार्ग मे जाते समय मार्ग मे बैठ जाय तो उपवेशन नामक अन्तराय है।
२२—पाणि पात्र मे विकलत्रयादि जन्तु आदि का मर जाना प्राणी जन्तु वध नामक अन्तराय है।
२३—हाथ मे नख, रोम आदि का दृष्टिगोचर होना मासादि दर्शन अन्तराय है।
२४—अपने वा किसी दूसरे को तलवार आदि से प्रहार करे तो प्रहार नामक अन्तराय है।
२५—ग्राम जलने लग जाय तो ग्राम दाह नामक अन्तराय है।
२६—अशुभ तीव्र भय और कलहकारी वचन सुने सो अशुभ वाक्श्रुति नामक अन्तराय है।
२७—कोई उपसर्ग हो तो उपसर्ग नामक अन्तराय है।
२८—दाता के हाथ से पात्र गिर जाय तो पात्र सपात नामक अन्तराय है।
२९—अयोग्य चाडालादि के घर मे प्रवेश हो जाय अयोग्य गृह प्रवेश नामक अन्तराय है।
३०—जानु (गोडे के) नीचे के भाग का स्पर्श करना जान्वध स्पर्श नामक अन्तराय है।
३१—जानु प्रमाण काठ के ऊपर उल्लघन करके जाना जानूपरिव्यक्तिक्रम अन्तराय है।
३२—नाभि से नीचे मस्तक करके निकलना नाभि अधोनिर्गमन अन्तराय है। इसके अलावा चाडाल का स्पर्श, कलह, इष्ट का मरण, आदि बहुत से भोजन त्याग के कारण है तथा लोक निन्दा होने से, सयम वैराग्य के लिए ससार से भयभीत होकर आहार का त्याग करना चाहिये। इसमे नख, रोम, प्राणिरहितशरीर, अस्थि, गेहूँ आदि धान के कण, पीप, चर्म, रुधिर, मास अकुर होने योग्य गेहूँ चना आदि बीज, कदमूल आदि चौदह मल दोष है ॥६८॥

**ज्ञात्वायोग्यमयोग्यं च द्रव्य क्षेत्रत्रयाश्रयम्।**
**चरत्येव प्रयत्नेन भिक्षाशुद्धिमतो यति ॥६८॥**

अन्वयार्थ—(अत) इसलिए (यति) सयमी (क्षेत्रत्रयाश्रय) क्षेत्र, काल और भाव के आश्रित (योग्य) योग्य

(अयोग्य) अयोग्य (द्रव्यं) द्रव्य को (ज्ञात्वा) जानकर (प्रयत्नेन) प्रयत्न पूर्वक (भिक्षाशुद्धि) भिक्षा शुद्धि को (चरतिएव) आचरण करता है।

**भावार्थ**—क्षेत्र, काल, भाव के आश्रय से योग्य अयोग्य द्रव्य को जानकर सयमी भिक्षा शुद्धि का आचरण करता है।

## विनयशुद्धि

**कुलर्द्धि जातिरूपाज्ञातपोज्ञानबलोद्भवैः।**
**मदैर्विहीना विनये शुद्धिः सद्गुणसन्नतिः ॥६९॥**

**कार्याऽर्हत्सिद्धोपाध्यायसूरिसाध्वादिकेष्वसौ।**
**समीक्ष्य क्षेत्रकालाऽवस्थासमादि यथागमम् ॥७०॥**

**अन्वयार्थ**—(कुलर्द्धिजातिरूपाज्ञातपोज्ञानबलोद्भवै) कुल, ऋद्धि, जाति, रूप, आज्ञा, तप, ज्ञान और बल से उत्पन्न (मदैः) मदो से (विहीना) रहित (सद्गुणसन्नति) प्रशस्त गुण वालो मे प्रणति!(विनये) विनय मे (शुद्धि) शुद्धि है अर्थात् कुल, ऐश्वर्य, जाति रूप, आज्ञा, तप, ज्ञान और बल से उत्पन्न मद से रहित होना या नम्रवृत्ति होना (असौ) यह विनयशुद्धि है इस विनय शुद्धि को (क्षेत्रकालाऽवस्थासमादि) क्षेत्र, काल, काल अवस्था, समता को (समीक्ष्य) देखकर (यथागमम) आगम के अनुसार (अर्हत्सिद्धोपाध्यायसूरिसाध्वादिकेषु) अर्हत, सिद्ध, उपाध्याय, आचार्य, साधु आदि मे (कार्या) करना चाहिये।

**भावार्थ**—क्षेत्र, काल, अवस्था, समता आदि को देखकर आगम के अनुसार अरिहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु आदि मे विनय करना चाहिये ॥६९,७०॥

**नात्यासन्नो न दूरस्थो न पार्श्वस्थो न पृष्ठगः।**
**नोच्चस्थो वा गुरुं पृच्छेत्पृच्छेदभिमुखोनत ॥७१॥**

**स्थिते स्थित्वोपविष्टे सत्युपविश्य गुरौ स्फुटम्।**
**श्रद्धामार्दवभक्त्याऽऽर्जवादियुक्तः कृतांजलिः ॥७२॥**

**अन्वयार्थ**—(अत्यासन्न) अति निकट (न) नही (दूरस्थ,) दूर स्थित (न) नही (पार्श्वस्थः) पार्श्वस्थ (न) नही (पृष्ठग) पीठ पीछे भी (न) नही (उच्चस्थ.) उच्च स्थान पर भी (न) नही होकर (पृच्छेत्) पूछे परन्तु (गुरौ) गुरु के (स्थिते) खडे रहने पर (स्थित्वा) खडा रहकर (उपविष्टे सति) बैठने पर (उपविश्य) बैठकर (स्फुट) स्फुट (श्रद्धामार्दवभक्त्या) श्रद्धा मार्दव और भक्ति से (आर्जवादियुक्तः) आर्जव आदि से युक्त होकर (कृताजुलि.) अजुलि करके (अभिमुख) सन्मुख से (नत) नमस्कार युक्त (गुरु) गुरु को (पृच्छेत्) पूछे।

**भावार्थ**—गुरु के अत्यन्त निकट भी नही बैठे। अत्यन्त दूर भी नही बैठे। पसवाडे मे नहीं बैठे। पीठ पीछे नही बैठे। गुरु से ऊँचे स्थान पर भी नही बैठे। गुरु के खडा होने पर खडा हो जाय। गुरु के बैठने पर बैठ जाय तथा कोई बात पूछना हो तो सम्मुख आकर श्रद्धा, मार्दव, आर्जव आदि भाव से युक्त होकर हाथ जोडकर नमस्कार करके पूछे ॥७१-७२॥

वक्तर्यन्यकथास्तस्मिन्विक्षेपोत्पादक वचः ।
तत्पार्श्वे स्वैरवाग्वृत्तिप्रवृत्ती च त्यजेद्यतिः ॥७३॥

**अन्वयार्थ**—(यतिः) साधु (तस्मिन्) उसके (अन्यकथाः) अन्यकथा के (वक्तरि) बोलने पर (विक्षेपोत्पादक) विक्षेपोत्पादक (वच) वचन (च) और (तत्पार्श्वे) उस गुरु के समीप मे (स्वैरवाग्वृत्तिप्रवृत्ती) स्वैराचार की वृत्ति और प्रवृत्ति को (त्यजेत्) छोड दे ।

**भावार्थ**—गुरुराज के समीप मे उनके प्रतिकूल वचन और स्वैराचार प्रवृति को छोड देना चाहिये ॥७३॥

अब इस विनय शुद्धि को पालन करने वाले शिष्य के कर्त्तव्य का निरूपण करते हैं

संस्तरोत्क्षेपनिक्षेपप्रमुखैः परिकर्मभिः ।
शर्म संपादयेत्सूरेः शर्मैषी विनयान्वितः ॥७४॥

**अन्वयार्थ**—(शर्मैषी) सुख को चाहने वाले (विनयान्वित) विनयशील शिष्य (सस्तरोत्क्षेपनिक्षेपप्रमुखैः) सस्तर का उठाना रखना आदि प्रमुख (परिकर्मभि) परिचर्या के द्वारा (सूरे) सूरि के (शर्म) सुख (सपादयेत्) सपादन करे ।

**भावार्थ**—सुख का इच्छुक विनयशील सयमी संस्तर, पुस्तक आदि का रखना उठाना, शोधन करना, पैर दबाना आदि परिचर्या से आचार्य को सतुष्ट करे ॥७४॥

श्रुत्वोक्तेः स्खलितं नैव हसेत्कस्यापि नो वदेत् ।
अप्रियं हर्षामर्षाभ्यां न कुर्यात्परपीडनम् ॥७५॥

**अन्वयार्थ**—(कस्य) किसी के (अपि) भी (उक्ते) वचन के (स्खलित) स्खलित को (श्रुत्वा) सुन करके (नैव) नही (हसेत्) हसना चाहिये । (अप्रिय) अप्रिय वचन (न) नही बोले (हर्षामर्षाभ्या) हर्ष और क्रोध से (परपीडन) पर का पीडन भी (न) नही (कुर्यात्) करे ।

**भावार्थ**—विनयशील मानव किसी के मुख से स्खलित वचन निकल जाय तो नही हसे । अप्रिय अनिष्ट वचन नही बोले तथा रागद्वेष से किसी के शरीर का पीडन मर्दन भी नही करे ॥७५॥

इय विनयशुद्धिर्नुर्भूषाऽशेषगुणश्रियः ।
कारणं सुखदं नान्यदिहाऽमुत्र च देहिनाम् ॥७६॥

**अन्वयार्थ**—(इय) यह (विनयशुद्धि) विनयशुद्धि (नुः) मानवो का (भूषा) भूषण है । (देहिनाम्) प्राणियो के (इह) इस (च) और (अमुत्र) परलोक मे (अन्यत्) विनय को छोड कर (अशेषगुणश्रिय) अशेष गुण श्री का (सुखद) सुख को देने वाला (कारण) कारण (न) नही है ।

**भावार्थ**—विनय मानव का भूषण है । इस लोक और परलोक मे विनय को छोड़कर दूसरे समस्त गुण श्री का सुखद कारण नही है । समस्त गुणो की शोभा विनय है ॥७६॥

## शयनासन शुद्धि का स्वरूप

अनात्मोद्देशनिष्पन्ने निरारम्भेऽन्यसम्मते ।
शून्यागारादिदेशे च न स्त्रीक्षुद्रनटादिके ॥७७॥

व्युत्सर्गादिश्रमोच्छित्यै शयनाऽसनयोः कृतिः ।
यतेरत्यल्पकाल सा शयनाऽऽसनशुद्धिधीः ।।७८।।युग्मम्।।

**अन्वयार्थ**– (अनात्मोद्देशनिष्पन्ने) अपने उद्देश्य से रहित है निष्पत्ति जिसकी (निरारभे) आरम्भ रहित (अन्यसम्मते) दूसरे के लिए निष्पन्न (स्त्रीक्षुद्रनटादिके) स्त्री क्षुद्रादिक नटादि जिसमे (न) नही है ऐसे (शून्यागारादिदेशे) शून्यागारादि क्षेत्र मे (व्युत्सर्गादिश्रमोच्छित्यै) कायोत्सर्ग आदि से उत्पन्न श्रम का अपनोदन करने के लिए (यते) यति को (अत्यल्पकाल) अति अल्पकाल पर्यंत (शयनाऽसनयो.) शयनासन की (कृतिः) क्रिया है (स) वह (शयनासनशुद्धि) शयनासन शुद्धि है ।

**भावार्थ**—कायोत्सर्ग आदि से उत्पन्न श्रम का अपनोदन करने के लिए मुनिराज अपने लिए नही बनाये हुए आरम्भ से रहित, अन्य की सम्मति से युक्त, स्त्री, नपुसक, क्षुद्रनट, आदि के सचार से रहित, शून्यागार आदि क्षेत्र मे अति अल्पकाल शयनासन करने वाले संयमी के शयनासन शुद्धि होती है ।।७७,७८।।

चूर्णीकृत्य नखात्केशान्विश्लिष्यैकैकमुत्सृजेत् ।
अनुल्बलरणमलेपं च क्ष्वेलसिंहाणकादिकम् ।।७९।।

**अन्वयार्थ**—(केशान्) केशो को (नखात्) नखो से (चूर्णीकृत्य) चूर्ण करके (एकैक) एक एक का (विश्लिष्य) विश्लेषण करके (च) और (क्ष्वेलसिंहाणकादिकं) कफ और नाक के मल आदि को (अनुल्बण) बिना विस्तरित (अलेप) बिना लेप (उत्सृजेत्) छोडे ।

**भावार्थ**—केशो को नखो से चूर्ण करके और एक एक विश्लेषण करके जमीन पर डाले कफ और नाक के मलादि को किसी दीवाल पर लेप नही करे ।।७९।।

वीक्ष्य पूर्वापरोर्ध्वधिः पार्श्वभागान्पुरोदिते ।
स्थाने प्रस्रवणोच्चार वातं निःशब्दमुत्सृजेत् ।।८०।।

**अन्वयार्थ**—(पूर्वापरोर्ध्वधि पार्श्वभागान्) पूर्वापर उर्ध्व अधोभाग को (वीक्ष्य) देखकर (पुरोदिते) पूर्व कथित (स्थाने) स्थान मे (प्रस्रवणोच्चार) मूत्र और मल का तथा (नि.शब्द) शब्द रहित (वात) वात को (उत्सृजेत्) छोडे ।

**भावार्थ**—अपने समीप के पूर्व, पश्चिम, ऊर्ध्व, अधोभाग को देखकर पूर्वकथित क्षेत्र मे मल मूत्र करे, तथा अधोवायु का सचार शब्द रहित करे ।।८०।।

पश्चाच्छुचि प्रकृत्येष्टकाविकृत्यादिभिः पुन ।
स्यात्क्षालिताऽऽसनकरः सौवीरोष्णजलादिभिः ।।८१।।

**अन्वयार्थ**—(पश्चात्) मलमूत्र करने के वाद (पुन.) फिर (इष्टकाविकृत्यादिभि ) ईंट, गोवर के कडा आदि के द्वारा (शुचि) शुद्धि (प्रकृत्य) करके (सौवीरोष्णजलादिभि ) हरड आदि डाले हुये अथवा उष्ण जल के द्वारा (क्षालिताऽऽसनकर ) धोये हैं आसन और हाथ जिसने जिसने ऐसा (स्यात्) होवे ।

**भावार्थ**—मल मूत्र करके गोवर, ईंट के शुष्क टुकडे से शुद्धि करके प्रासुक जल से हाथ पैर धोवे ।।८१।।

व्युत्सर्गसमिति

जरारुजार्दित कायं सन्यासेन त्यजेदिति ।
व्युत्सर्गशुद्धि सशुद्धिः विद्यते यमिनामियम् ॥८२॥

अन्वयार्थ—(जरारुजार्दित·) जरा और रोग से पीडित होने पर (संन्यासेन) सन्यासपूर्वक (काय) शरीर को (त्यजेत्) छोटे (इति) इस प्रकार (इय) यह (यमिना) मुनियो की (व्युत्सर्गशुद्धि) व्युत्सर्गशुद्धि (संशुद्धि) सशुद्धि को (विद्यते) धारण करती है ।

भावार्थ—जरा रोग आदि से पीडित होने पर सन्यासपूर्वक शरीर का त्याग करे यह संयमियो की व्युत्सर्ग शुद्धि है ॥८२॥

पुष्टि विशिष्टामियमष्टशुद्धिर्विशुद्धभावैः परिभावितेह ।
करोति पंचाचरणस्य यद्वत् सौरीमरीचि सरसीजलक्ष्मीम् ॥८३॥

अन्वयार्थ—(इह) इस लोक मे (विशुद्धभावे ) विशुद्धभाव से (परिभाविता) परिभावित (इय) यन (अष्ट-शुद्धि·) आठ प्रकार की शुद्धि (पचाचरणस्य) पचाचार की (विशिष्टा) विशिष्ट (पुष्टि) पुष्टि को (करोति) करती है (यद्वत्) जैसे (सौरीमरीचि ) सूर्य की किरणे (सरसीजलक्ष्मी) कमल की लक्ष्मी को (करोति) करती है ।

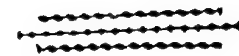
भावार्थ-- जिस प्रकार सूर्य की किरणे कमल को विकसित करती हैं उसी प्रकार निर्मल भावो से भावित यह विनयादि आठ प्रकार की शुद्धि पचाचार को विशुद्ध करती है ॥८३॥

छत्रत्रयं यस्य जगत्रयस्य स्वामित्वसंकीर्तिपरं रराज ।
सन्मगल व स जिनोऽस्तु देव श्रीवासुपूज्यो भुवनत्रयेड्य· ॥८४॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसके (जगत्भयस्य) तीन जगत के (स्वामित्वसकीर्तिपरं) स्वामित्व की सकीर्ति परक (छत्रत्रय) तीन छत्र (रराज) शोभित होते हैं (स.) वह (भुवनत्रयेड्य·) तीन लोक मे पूज्यनीय (श्री वासुपूज्य ) श्री वासुपूज्य (जिन.) जिन (देव ) देव (व ) तुम्हारे लिये (सन्मगल) सन्मगलकारी (भवतु) हो ।

भावार्थ—जिसके तीन जगत के स्वामित्य का स्थापन करने वाले तीन छत्र शोभित हो रहे हैं, वह तीन लोक मे पूजनीय वासुपूज्य जिनेन्द्र तुम्हारे लिए मगलकारी होवे ॥८०॥

इति श्रीमद्वीरनन्दिसिद्धान्तिचक्रवर्तिप्रणीते श्रीआचारसारनाम्निशास्त्रे
शुद्ध्यष्टकवर्णनात्मकोऽष्टमोऽधिकार ।



## नवमोऽधिकारः

श्रीमांस्त्रिलोक्या कृतपादसेवो यः सर्वसत्यामृतदिव्यराव ।
स्यादिष्टद सोऽनुपप्रभाव सुपार्श्वदेवो भवकक्षदाव· ।१।

**अन्वयार्थ**—(य ) जो (श्रीमान्) श्रीमान (त्रिलोक्या ) तीन लोक के द्वारा (कृतपादसेव·) की गयी है चरण सेवा जिसकी (सर्वसत्वामृतदिव्यराव ) सर्व सत्व हितकारी है दिव्यवाणी जिसकी (अनुपमप्रभाव ) अनुपम है प्रभाव जिसका ऐसा (भवकक्षदाव.) ससार रूपी अटवी को जलाने वाला (स:) वह (सुपार्श्वदेव ) सुपार्श्वदेव (इष्टद:) हमे इष्ट वस्तु को देने वाला (स्यात्) हो।

**भावार्थ**—अनन्तचतुष्टयरूप अन्तरंग लक्ष्मी और समवशरणादि वहिरग लक्ष्मी से युक्त तीन लोक के द्वारा पूजित, सर्वसत्वहितकारी, दिव्यवाणीधारक, अनुपम प्रभावी, ससार रूप अटवी के दाहक, श्रीसुपार्श्व जिनेश्वर हमे इष्टफल के दाता हो ॥१॥

## आवश्यक शब्द का अर्थ

**आवश्यकक्रियावश्यं कार्यं कर्मावशस्य वा ·**
**मुने कर्मोदितं सेति कषायाक्षोऽवशोऽवश ॥२॥**

**अन्वयार्थ**—(अवशस्य) स्वाधीन (मुने ) मुनि के (अवश्यं) अवश्य (कार्य) करने योग्य (कर्म) कार्य (कर्म) कर्म (उदित) कहा है (वा) अथवा (कषायाक्षोवश.) कषाय और इन्द्रियो के अवश होता हुआ (अवश ) अवशाधीन है (सा) वह (इति) इस प्रकार (आवश्यकक्रिया) आवश्यक क्रिया है।

**भावार्थ**—कषाय और इन्द्रिय के आधीन होना अथवा आधीन मुनि के जो अवश्य करने योग्य कार्य है वह आवश्यक क्रिया कहलाती है। अथवा जो स्वाधीन होकर क्रिया की जाती है अथवा जो अवश्य करने योग्य है वह आवश्यक क्रिया कहलाती है ॥२॥

**सा षड्विधोदितेत्येव समतास्तवनंदनम् ।**
**सप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायविसर्जनम् ॥३॥**

**अन्वयार्थ**—(समतास्तववन्दनम्) समता, स्तवन, वन्दना (प्रतिक्रमणप्रत्याख्यानकायविसर्जनम्) प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग (इतिएव) इसप्रकार (सा) वह आवश्यक क्रिया (षड्विधा) षट् प्रकार की (उदिता) कही है।

**भावार्थ**—समता, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग यह छह प्रकार की आवश्यक क्रिया है ॥३॥

**स्यान्नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधा ।**
**समता नाम समतंतस्या नामस्ववाचकम् ॥४॥**

**अन्वयार्थ**—(नामस्थापनाद्रव्यभावभेदात्) नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से (समता) समता (चतुर्विधा) चार प्रकार की है (एतस्या.) इसका (समता) समता (नाम) नाम (स्ववाचक) स्व वाचक है।

**भावार्थ**—शुभ अशुभ नाम को सुनकर रागद्वेष का नही करना नाम सामायिक है। मनोहर और अमनोहर स्थापनादि मे रागद्वेष नही करना स्थापना सामायिक है। सुवर्ण, मिट्टी आदि रम्यारम्भ द्रव्यों में समदर्शी होना द्रव्य सामायिक है। सर्व जीवो मे मैत्रीभाव तथा अशुभ भावो का त्याग होना भाव सामायिक है ॥४॥

**जीवजीवोप्रपेष्टार्थजातिद्रव्यगुणक्रिया ।**
**नामोत्पत्तिनिमित्तानपेक्षं यन्नाम तन्मतम् ॥५॥**

**अन्वयार्थ**—(जीवाजीवोभयेष्टार्थजातिद्रव्यगुणक्रिया) जीव, अजीव, उभय, इष्ट, अर्थ, जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया आदि (नामोत्पत्तिनिमित्तानपेक्षं) नामकी उत्पत्ति मे निमित्त की अपेक्षा नही करके (यत्) जो (नाम) नाम (तत्) वह (नाम) नाम निक्षेप है।

**भावार्थ**—जीव, अजीव और उभय, इष्ट पदार्थ,जाति, गुण,द्रव्य, क्रिया, आदि नामोत्पत्ति के निमित्त कारणो की अपेक्षा के विना जो नाम रखा जाता है वह नाम निक्षेप है ।।५।।

**यत्सेयमित्यभेदेन सदृशेतरवस्तुषु ।**
**स्थापन स्थापन वार्हत्प्रतिकृत्यक्षतादिषु ।।६।।**

**अन्वयार्थ**—(सदृशेत्तरवस्तुषु) सदृश और असदृश वस्तु मे (वा) अथवा (अर्हत्प्रतिकृत्यक्षतादिषु) अरिहंत के विम्व और अक्षत आदि मे (सा) वह (इय) यह समता है (इत्यादि) इस प्रकार (अभेदेन) अभेदनय से (यत्) जो (स्थापन) स्थापना है (सा इयं) वह स्थापना निक्षेप है।

**भावार्थ**—तदाकार और अतदाकार वस्तु मे यह वह है, इस प्रकार की कल्पना करना स्थापना निक्षेप है।६।

**द्रव्यं भविष्यत्पर्याय गतार्पितविर्वात च ।**
**तत्द्वेधाऽऽगमो नो आगमश्चेत्याद्यस्तयोरयमः ।।७।।**

**जीवः स्यादुपयोगो नो विज्ञातसमतागमः ।**
**आगमादन्यो नो आगमाख्य स त्रिविधो यथा ।।८।।**

**ज्ञायकांग भविष्यंस्तद्व्यतिरिक्तमिति त्रिधा ।**
**तेष्वाद्य भाव्यतिक्रान्तवर्तमानविकल्पत· ।।६।।त्रिकं।।**

**अन्वयार्थ**—(भविष्यत्पर्याय) भविष्यत् पर्याय के सन्मुख (द्रव्य) द्रव्य (आगम) आगम (च) और (नो आगम) नो आगम के भेद से (तद्द्वेधा) वह दो प्रकार का है। (तयो) उन आगम नो आगम मे (अय) यह (आद्य) प्रथम आगम द्रव्य (विज्ञातसमागम) समता का वर्णन करने वाले शास्त्र का ज्ञायक परन्तु (उपयोगोन) समता शास्त्र के उपदेश से रहित (जीव) जीव समतागम जीव है। (आगमात्) आगम से (अन्य) अन्य (नोआगमाख्य) नो आगम नामक समता है (स) वह (त्रिविध) तीन प्रकार का है (यथा) जैसे (ज्ञायकाग) ज्ञायक शरीर (भविष्यत्) भविष्यत् (तद्व्यतिरिक्त) तद् व्यतिरिक्त (इति) इसप्रकार (त्रिधा) तीन प्रकार का है (तेषु) उनमे (आद्य) प्रथम ज्ञायक शरीर (भाव्यतिक्रातवर्तमान विकल्पत) भावी, अतिक्रान्त, वर्तमान विकल्प से (त्रिधा) तीन प्रकार का है।

**भावार्थ**—भविष्यत और अतीत सन्मुख पर्याय को द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य आगम और नो आगम के भेद से दो प्रकार का है। समता का वर्णन करने वाले शास्त्र का ज्ञायक और उनके उपयोग से रहित जीव आगम समता द्रव्य है। नो आगम द्रव्य ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उसमे ज्ञायक शरीर भूत, भविष्यत, वर्तमान के भेद से तीन प्रकार का है।।७,८,६।।

**आधाराऽऽधेयधर्मोपचारेणांगत्रयस्य च ।**
**तत्वा धनु·शत भुंक्ते धावतीत्यत्र वा तथा ।।१०।।**

**अन्वयार्थ**—(आधाराधेयधर्मोपचारेण) आधार आधेय के उपचार से (अगत्रयस्य) भूत, भविष्य, वर्तमान, कालीन तीन अगो का (तत्व) नो आगम तत्व है (यथा) जैसे (धनु शत) धनुशत को (भुक्ते) भोगता है (वा) अथवा (धावति) दौडता है (इति) इसप्रकार है (तथा) उसीप्रकार ।

**भावार्थ**—तीनो अंगो का नो आगम तत्व आधार (शरीर) आधेय (जीव) धर्म के उपचार से तीन प्रकार का है। जैसे धनुष को छोडकर भोजन करने वाला भी धनुषधारी है। भोजन को छोडकर धनुष को ग्रहण करने वाला भी धनु है। धनुष को छोडकर दौडने वाला भी धनु कहलाता है उसीप्रकार शरीर भी भूत, भविष्य और वर्तमान से तीन प्रकार का है ॥१०॥

**स्याच्च्युतं च्यावितं त्यक्तमित्यतीतं त्रिभेदगम् ।**
**च्युतं त्यागं विनाऽऽयुष्यक्रमक्षयगतात्मकम् ॥११॥**

**अन्वयार्थ**—(अतीत) अतीतकाल का शरीर (च्युत) च्युत (च्यावित) च्यावित (च) और (त्यक्त) त्यक्त [इति] इसप्रकार [त्रिभेदगम्] तीन प्रकार का है। [त्यागं] त्याग के [विना] बिना [आयुष्यक्रमक्षयगतात्मकम्] आयु क्रम के क्षय से नष्ट हुआ शरीर [च्युत] च्युत कहलाता है।

**भावार्थ**—अतीत काल सम्बन्धी शरीर च्युत, च्यावित, और त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है। उसमे सन्यास मरण के बिना आयुक्षय से नष्ट हुआ शरीर च्युत कहलाता है ॥११॥

**च्यावितं कदलीघातपतितं त्यागवर्जितम् ।**
**त्यक्तं भक्तादिकत्यागैर्घाताऽघातगतात्मकम् ॥१२॥**

**अन्वयार्थ**—[त्यागवर्जित] त्याग से रहित [कदलीघातपतित] कदली घात से पतित [च्यावित] च्यावित [भक्तादित्यागैः] भक्तादि त्याग के द्वारा [घाताघातगतात्मकम्] घात अघात आत्मक [त्यक्त] त्यक्त कहलाता है।

**भावार्थ**—सन्यास से रहित कदलीघात से नष्ट हुआ शरीर च्यावित है। त्यक्त, इगिनी, प्रायोपगमन से छोडा हुआ शरीर कदलीघात से नष्ट हुआ शरीर अथवा बिना कदलीघात से नष्ट हुआ हो परन्तु त्याग सहित मरण हो वह च्यावित शरीर कहलाता है।

**विषास्त्रघातभीरक्तक्षयसंक्लेशवेदना-**
**ऽऽहारोच्छ्वासनिरोधा स्युरायुष्यच्छेदकारिणः ॥१३॥**

**अन्वयार्थ**—[विषास्त्रघातभीरक्तक्षयसक्लेशवेदनाऽऽहारोच्छ्वासनिरोधा ] विष, अस्त्रघात, भीति, रक्तक्षय, सक्लेशपरिणाम, वेदना, आहार, और उच्छ्वास का निरोध [आयुच्छेदकारिणः] आयु के घातक कारण [स्युः] हैं।

**भावार्थ**—विप के भक्षण करने से, शस्त्र के घात से, किसी भयकारक पदार्थ देखने से, रक्त के क्षय होने से, सक्लेश परिणाम होने से, तीव्र वेदना से, आहार और उच्छ्वास के विरोध से आयु का घात होता है उसको कदलीघात मरण कहते हैं ॥१३॥

**स्याद्भाव्यर्पितपर्यायो भविष्यद्राजनाममाक् ।**
**भविष्यद्राजपर्यायो योपचारान्नृपात्मज ॥१४॥**

**अन्वयार्थ**—(भाव्यर्पितपर्याय·) भविष्यतकाल मे होने वाली विवक्षित पर्याय वाला जीव भावि नो आगम द्रव्य है (यथा) जैसे (भविष्यद्राजपर्याय ) भविष्यत् काल मे राजा होने वाला (नृपात्मज·) राजा का पुत्र (उपचारात्) उपचार से (राजनामभाक्) राजा कहलाता है।

**भावार्थ**—भविष्यत् काल मे होने वाली पर्यायो का वर्तमान काल मे कहना भावि नो आगम द्रव्य है। जैसे भविष्यत काल मे राजा होने वाले राजा के पुत्र को वर्त्तमान मे राजा कहना। उसीप्रकार भविष्यतकाल मे सामायिक रूप परिणमन होने वाले जीव के शरीर को वर्तमान मे सामायिक कहना नो आगम द्रव्य है ॥१४॥

**कर्मनोकर्म भेदं स्यात्तृतीयं तत्र कर्म यत् ।**
**चारित्रमोहमन्दानुभावद्रव्यैनसस्ततिः ॥१५॥**

**अन्वयार्थ**—(तृतीय) तीसरा व्यतिरेक नामक नो आगमद्रव्य (कर्मनोकर्मभेद ) कर्म नोकर्म भेद से दो प्रकार का है (तत्र) उसमे (चारित्रमोहमन्दानुभावद्रव्यैनस.) चारित्र मोहनीय कर्म के भेद अनुभाग रूप द्रव्य कर्मो की (तति·) समूह (कर्म) तद्व्यतिरेक है।

**भावार्थ**—तद्व्यतिरेक नो आगमद्रव्य कर्म नोकर्म भेद से दो प्रकार का है। उसमे चारित्र मोहनीय कर्म के मद अनुभाग से चारित्रधारी जीव के शुभ परिणामो से उपार्जित प्रकृति आदि प्रशस्त प्रकृति नो आगम तद्व्यतिरेक सामायिक है ॥१५॥

**नोकर्म मृत्सुवर्णाश्ममाणिक्याऽहिस्रगादिकम् ।**
**समताकारण बाह्यभावावलोकिनः ॥१६॥**

**अन्वयार्थ**—(मृत्सुवर्णाश्ममाणिक्याऽहिस्रगादिकम्) मिट्टी, सुवर्ण, पत्थर, माणिक्य, सर्प, मालादिक को (बाह्य-भावभावालोकिन ) बाह्य भाव रूप पदार्थों को देखने वाले के (समताकारण) समता का कारण (नोकर्म) नोकर्म सामायिक है।

**भावार्थ**—बाह्य मे पदार्थों को देखने वालो के जो मिट्टी, सुवर्ण, पत्थर, माणिक्य, माला, सर्प आदि मे समता का कारण द्रव्य है वह नो कर्म तद्व्यतिरेक है। अथवा तद्व्यतिरिक्त द्रव्य नोकर्म सचित अचित और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है। सचित उपाध्याय है अचित्त पुस्तक है। पुस्तक सहित उपाध्याय मिश्र है। यह उपाध्याय आदि समता भाव मे सहायक कारण है, इसलिए इनको भी नोकर्म सामायिक कहते हैं ॥१६॥

**अर्पितेन विवर्त्तेन वर्तमानेन संयुतम् ।**
**द्रव्यं भावो भवेद्भावमात्र वा विनयाश्रयः ॥१७॥**

**अन्वयार्थ**—(अर्पितेन) विवक्षित (वर्तमानेन) वर्तमान (विवर्त्तेन) पर्याय से (संयुक्तं) सयुक्त (द्रव्य) द्रव्य (भाव ) भाव (भवेत्) होता है (वा) अथवा (विनयाश्रय ) विनय का आश्रय भूत (भावमात्र) समता का भाव भाव सामायिक है।

**भावार्थ**—विवक्षित वर्तमान पर्याय मे सयुक्त मुनि, भावसामायिक है। अथवा विनय सयुक्त समताभाव भाव सामायिक है ॥१७॥

**भाव आगम नोआगमद्विभेदस्तयोर्भवेत् ।**
**आगमः समताशास्त्रार्थोपयोगयुतो यतिः ॥१८॥**

**अन्वयार्थ—**(भाव) भाव समता (आगमनोआगमद्विभेदः) आगम और नो आगम के भेद से दो प्रकार की है (तयोः) उन दोनो मे (समताशास्त्रार्थोपयोगयुत) समता शास्त्र के अर्थ मे उपयुक्त (यति) यति (आगमः) आगम भाव सामायिक है ।

**भावार्थ—**भावसमता, आगम नो आगम भेद से दो प्रकार की है । उनमे समता शास्त्र के अर्थ मे उपयुक्त यति को भावआगम सामायिक कहा है ॥१८॥

**द्विभेद उपयुक्तस्तत्परिणत इतीतरः ।**
**शास्त्रं विनोपयुक्तोऽस्यामुपयुक्त इति स्मृतः ॥१९॥**

**अन्वयार्थ—**(उपयुक्त) उपयुक्त (द्विभेद) दो प्रकार का है (शास्त्र) सामायिक शास्त्र के (बिना) विना (उपयुक्त) उपयुक्त तथा (अस्यातत्परिणत,) उसमे परिणत (उपयुक्त) उपयुक्त (इतरः) नो आगम है ।

**भावार्थ—**शास्त्र के बिना उपयुक्त और शास्त्र मे उपयुक्त इसप्रकार नो आगम भाव निक्षेप के दो भेद हैं । सामायिक शास्त्र के बिना आत्मध्यान मे उपयुक्त मुनि का शरीर नो आगम है । अथवा सामायिक शास्त्र मे उपयुक्त मुनि का शरीर नो आगम भाव है ॥१९॥

## सामायिक शब्द का निरुक्ति अर्थ

**सं यः स्वार्थनिवृत्यात्मनेद्रियाणाभयोऽयनम् ।**
**समयः सामायिकं नाम स एव समताह्वयम् ॥२०॥**

**अन्वयार्थ—**(स) सम्यक् प्रकारेण (आत्मना) अपनी आत्मा के साथ (इन्द्रियाणा) इन्द्रियो को (स्वार्थ-निवृत्य) अपने अपने विषयो से विमुख करके (अय) अय शब्द का अर्थ (अयन) प्रवृत्ति (स.) वह (समय.) समय है । (सामायिक) समय का भाव सामायिक है (स.) वह (एव) ही (समताह्वय) समता है ।

**भावार्थ—**'सम' का अर्थ इन्द्रियो को अपने अपने विषयो मे निवृत्त करके 'अय' अपने आप मे लीन होना है । अर्थात् वाह्यमुखी प्रवृत्ति को छोडकर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करना समय है और समय का भाव सामायिक है । सामायिक का ही नाम समता है ॥२०॥

**समस्यारागरोषस्य सर्ववस्तुष्वयोऽयनम् ।**
**समायः स्यात्स एवोक्त सामायिकमिति श्रुते ॥२१॥**

**अन्वयार्थ—**(सर्ववस्तुषु) सर्व वस्तुओ में (समस्य) सम का अर्थ (अरागरोषस्य) राग द्वेष रहित (अय) अय का अर्थ (अयन) गमन (समाय·) सामायिक (स्यात्) है । (स ) वह (एव) ही (श्रुते) श्रुत मे (सामायिक) सामायिक (इति) इसप्रकार (उक्त) कहा है ।

**भावार्थ—**सर्व वस्तुओ मे रागद्वेष की निवृत्ति करके अपने आप मे रमण करना श्रुत मे सामायिक कहा गया है । "सम" शब्द का अर्थ रागद्वेष रहित "अयवा" अर्थ अपने मे लीन होना उसी का नाम समय है और समय का भाव सामायिक है ॥२१॥

समः स्यादत्ययस्याप्तिहेतुवस्तुसमो वमी।
समस्यभावः समता तोषरोषव्यपेतता

अन्वयार्थ—एक प्रति मे यह श्लोक भी है—सर्व द्रव्य मे रति अरति का भाव सम है और अपने मे प्रवृत्ति का नाम "अय" है। उसी रागद्वेष रहित प्रवृत्ति का नाम समता वा सामायिक है।

तत्परिणत नोआगम सामायिक का अर्थ

समतोपेतचित्तो यः स तत्परिणताह्वयः।
प्रकृतोऽत्रायमन्यासु क्रियास्वेवं निरुपयेत् ॥२२॥

अन्वयार्थ—(य) जो (समतोपेतचित्त) समता से उपयुक्त चित्त है जिसका (स) वह (तत्परिणताह्वय) तत्परिणत नाम नोआगम भाव सामायिक है। (अत्र) इस सामायिक मे (अय) यह (प्रकृत) प्रकरण है वह (अन्यासु) अन्य (क्रियासु) क्रियाओ मे (एव) इस प्रकार (निरूपयेत्) निरूपण करना चाहिये।

सर्वव्यासंगनिर्मुक्तः संशुद्धकरणत्रयः।
धौतहस्तपदद्वन्द्वः परमानंदमंदिरम् ॥२३॥

चैत्यचैत्यालयादीनां स्तवनादौ कृतोद्यमः।
भवेदनन्तससारसन्तानोच्छित्तये यतिः ॥२४॥ युग्मम्॥

अन्वयार्थ—(सर्वव्यासगनिर्मुक्त.) सर्व व्यापार से रहित (संशुद्धकरणत्रय) शुद्ध मन वचन काय वाला (धौतहस्तपदद्वन्द्व.) धोये हैं हाथ पैर जिसने (परमानदमदिरम्) परमानन्द का मन्दिर (यति.) साधु (अनन्तसंसारसन्तानोच्छित्तये) अनन्त ससार के सतान का छेद करने के लिए (चैत्यचैत्यालयादीना) चैत्य चैत्यालय आदि के (स्तवनादौ) स्तवन आदि मे (कृतोद्यम) उद्यम करने वाला (भवेत्) हो।

भावार्थ—सर्व व्यापार से रहित, शुद्धमनवचनकाय से युक्त, परम आनन्द मे लीन साधु, हाथ पैर धोकर अनन्त ससार की सतति का छेद करने के लिए चैत्य (जिनप्रतिभा) चैत्यालय आदि के स्तवन करने मे तत्पर होवे अर्थात् परम भक्ति से जिन भगवान की स्तुति करे ॥२३,२४॥

यथा निश्चेतनाश्चिन्तामणिकल्पमहीरुहाः।
कृतपुण्यानुसारेण तदभीष्टफलप्रदाः ॥२५॥

तथाऽर्हदादयश्चास्तरागद्वेषप्रवृत्तयः।
भक्तभक्त्यनुसारेण स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे (निश्चेतना) अचेतन (चितामणिकल्पमहीरुहा) चितामणि कल्पवृक्ष (कृतपुण्यानुसारेण) किये हुये पुण्य के अनुसार (तदभीष्टफलप्रदा) उस अभीष्ट फल को देने वाले होते हैं (तथा) उसी प्रकार (अस्तरागप्रवृत्तय) नष्ट हो गई है रागद्वेष प्रवृत्ति जिसकी ऐसे (अर्हदादय) अर्हद् आदि (भक्तभक्त्यनुसारेण) भक्त को भक्ति के अनुसार (स्वर्गमोक्षफलप्रदा) स्वर्ग मोक्ष के फल देने वाले होते हैं।

**भावार्थ**—जिस प्रकार अचेतन चिंतामणि और कल्पवृक्ष पुण्य के अनुसार अभीष्ट फल को देने वाले होते हैं उसी प्रकार वीतरागी अरहंत देव की प्रतिमा आदि भक्त की भक्ति के अनुसार स्वर्ग मोक्ष के फल को देने वाले होते हैं ।।२५,२६।।

**गरापहारिणी मुद्रा गरुडस्य यथा तथा ।**
**जिनस्याऽप्येनसो हत्री दुरितारातिपातिनः ।।२७।।**

**अन्वयार्थ**—(यथा) जैसे (गरुडस्य) गरुड की (मुद्रा) मुद्रा (गरापहारिणी) विष को हरने वाली होती है (तथा) उसीप्रकार (दुरुतारातिपातिन·) पाप रूपी शत्रुओ का नाशक (जिनस्य) जिन भगवान की (मुद्रा) मुद्रा (अपि) भी (एनस·) पापो की (हत्री) नाश करने वाली होती है ।

**भावार्थ**—जिस प्रकार गरुड की मुद्रा विष को हरण करने वाली होती है उसी प्रकार जिनेन्द्रदेव की मुद्रा पाप नाशक होती है ।।२७।।

**सुमनः संगमादंगतीहसूत्रं पवित्रताम् ।**
**पिष्टः प्रकृष्टमाधुर्वं प्रकृष्टेक्षुरसाद्यथा ।।२८।।**

**चंपापावादिनिर्वाणक्षेत्रादीनि पवित्रताम् ।**
**वंद्यतां च व्रजत्येव वंद्यसंगमतस्तथा ।।२९।। युग्मम्।।**

**अन्वयार्थ**—(यथा) जैसे (इह) इस लोक मे (सुमन ) फूल के (सगमात्) सगम से (सूत्र) सूत्र धागा (पविश्रता) पवित्रता को (अंगति) प्राप्त होता है (प्रकृष्टेक्षुरसात्) प्रकृष्ट इक्षुक रस के संयोग से (पिष्ट ) पिष्ट (आटा) (प्रकृष्टमाधुर्यं) प्रकृष्ट मधुरता को प्राप्त होता है (तथा) उसीप्रकार (चपापावादिनिर्वाणक्षैत्रादीनि) चंपापुर, पावापुर, आदि निर्वाण क्षेत्र (वद्यसगमतः) पूज्य पुरुषो के संगम से (पवित्रता) पवित्रता (च) और (वद्यता) वदनीयता को (व्रजत्येव) प्राप्त होते हैं ।

**भावार्थ**—जैसे पुष्प के सबध से सूत्र पवित्रता को प्रात्र होता है, इक्षुरस के सयोग से गेहूँ आदि का चूर्ण मधुरता को प्राप्त होता है उसीप्रकार पूज्य पुरुषो के संयोग से चपापुर, पावापुर, सम्मेदशिखर आदि निर्वाण क्षेत्र पवित्र और वदनीयता को प्राप्त हुये हैं ।।२८,२९।।

**मत्वेति जिनगेहादिं त्रिःपरीत्य कृतांजुलि ।**
**प्रकुर्वंस्तच्चतुर्दिक्षु सत्र्यावर्त्ता शिरोनतिम् ।।३०।।**

**घोरसंसारगंभीरवारिराशौ निमज्जताम् ।**
**दत्तहस्तावलबस्य जिनस्यार्चार्थमाविशेत् ।।३१ युग्मम्।।**

**अन्वयार्थ**—(इति) ऐसा (मत्वा) मानकर (जिनगेहादिं) जिन मदिर आदि को (त्रि परीत्य) तीन प्रदक्षिणा देकर (कृताजुलि ) की है अजुलि जिसने ऐसा (तच्चतुर्दिक्षु) उस जिन मदिर की चारो दिशाओ मे (सत्र्यावर्ता) तीन आवर्त्त सहित (शिरोनतिं) शिरोनति को (प्रकुर्वन्) करता हुआ (घोरसंसारगभीरवारिराशौ) घोर संसार रूपी गभीर समुद्र मे (निमज्जता) डूबे हुए प्राणियो को (दत्तहस्तावलंबस्य) दिया है हस्तावलबन जिसने ऐसे (जिनस्य) जिनेन्द्र भगवान की (अर्चार्थं) पूजा करने के लिए (अविशेत्) प्रवेश करे ।

**भावार्थ**—ऐसा जान करके जिन मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर, हाथ जोडकर, चारो दिशाओ मे तीन आवर्त सहित नमस्कार करके घोर ससार रूपी समुद्र मे डूबे हुये ससारी प्राणियो को हस्तावलंबन देने वाले जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने के लिए जिन मंदिर मे प्रवेश करे ।।३०,३१।।

**जिनेशतारकाधीशपादसपादितोत्सवः ।**
**श्रीलीलामदिरस्वीयलोचनेन्दीवरः पुनः ।।३२।।**

**ईर्याऽऽगः शुद्धये व्युत्सर्गं कृत्वाऽऽसीनोऽनुकपया ।**
**आलोच्य समतांवर्यां कुर्यादात्मेच्छयाऽन्यदा ।।३३।युग्मं।।**

**अन्वयार्थ**—(जिनेशतारकाधीशपादसपादितोत्सवः) जिनेन्द्र भगवान रूपी चद्रमा के पाद (किरण और चरण) से सपादित है उत्सव जिसके (श्रीलीलामदिरस्वीयलोचनेन्दीवर ) लक्ष्मी की लीला का मदिर ही है निज लोचन रूपी कमल जिसके ऐसा सयमी (पुन ) फिर (ईर्यागः) ईर्यापथ के पापो की (शुद्धयेः) शुद्धि के लिए (व्युत्सर्गं) कायोत्सर्ग (कृत्वा) करके (आसीनः) बैठा हुआ (अनुकम्पया) अनुकम्पा से (आलोच्य) आलोचना करके (अन्यदा) अन्यदा (आत्मोच्छया) अपनी इच्छासे (वर्यां) श्रेष्ठ (समता) सामायिक को (कुर्यात्) करे ।

**भावार्थ**—जिनेन्द्र भगवान रूपी चंद्रमा के पाद (किरण चरण) से आनन्दित है लक्ष्मी के निवास भूत नेत्र रूपी कमल जिसके ऐसा संयमी प्रथम मन्दिर मे प्रवेश करके ईर्यापथ शुद्धि के लिए "पडिकम्मामिभते" इत्यादि प्रतिक्रमण पढ कर कायोत्सर्ग करे । तदनन्तर बैठकर जीवघात से भयभीत होता हुआ अनुकम्पा से (इच्छामि भन्ते) इत्यादि आलोचना पढ कर अपनी इच्छा से उत्तम समता को स्वीकार करे ।।३२,३३।।

**लक्षण समतादीनां पुरोक्त किन्तु वर्ण्यते ।**
**व्युत्सर्गावसरोच्छ्वाससख्यानामादि साम्प्रतम् ।।३४।।**

**अन्वयार्थ**—(पुरा) पूर्व मे (समतादीना) समतादि का (लक्षण) लक्षण (उक्त) कहा है (किन्तु) परन्तु (साम्प्रतं) इस समय (व्युत्सर्गावसरोच्छ्वाससख्यानामादि) उत्सर्ग काल के उच्छ्वासो की सख्याओं का (वर्ण्यते) वर्णन किया जाता है ।

**भावार्थ**—यद्यपि प्रथम अधिकार के छत्तीस श्लोक के द्वारा सामायिक का लक्षण कहा है तथापि इस समय कायोत्सर्ग के काल के श्वासोच्छ्वास की सख्या का वर्णन करते है । ३४।।

**क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहम् ।**
**विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम् ।।३५।।**

**कृत्वा करसरोजातमुकुलालंकृत निजम् ।**
**भाललीलासर कुर्यात् त्र्यावर्त्ता शिरसो नतिं ।।३६।।**

**अन्वयार्थ**—(अस्या) इस (क्रियाया) क्रिया मे (अस्याः) इस (भक्ते ) भक्ति का (व्युत्सर्गं) कायोत्सर्ग (अहं) मैं (करोमि) करता हू (इति) इस प्रकार (विज्ञाप्य) विज्ञापन करके (समुत्थाय) उठकर (गुरुस्तवनपूर्वकम्) गुरु

स्तवन पूर्वक (निजं) अपने (करसरोजातमुकुलालकृत) हस्त, कमल की कुड्मलाकृति को (भाललीलासर) ललाट पर (कृत्वा) करके (त्र्यावर्त्ता) तीन आवर्त्त और (शिरस) मस्तक से (नतिं) नमस्कार को (कुर्यात्) करे ।

**भावार्थ**—मैं इस क्रिया मे इस भक्ति का कायोत्सर्ग करता हू जैसे पूर्वाह्निक देववदना मे "चैत्यभक्ति कायोत्सर्गंकरोम्यहं" इस प्रकार विज्ञापन करे । तदनतर उठकर "णमो अरिहंताणं" इत्यादि पचपरमेष्ठी को नमस्कार कर अपने कर कमल की अजुलि को मस्तक पर रखकर तीन आवर्त सहित नमस्कार करे ।।३५,३६।।

**आद्यस्य दंडकस्यादौ मंगलादेरयं क्रम· ।**
**तदन्तेऽप्यंगव्युत्सर्ग· कार्योतस्तदनन्तरम् ।।३७।।**

**कुर्यात्तथैव "थोस्सामी" त्याद्यार्याद्यंतयोरपि ।**
**इत्यस्मिन् द्वादशावर्त्ता· शिरोनतिचतुष्टयम् ।।३८।युग्मं।।**

**अन्वयार्थ**—(आद्यस्य) आदि (दडकस्य) दंडक के (आदौ) आदि मे (मगलादे·) मगलादि का (अयं) यह (क्रम) क्रम है । (तदन्ते) चत्तारिमगलं आदि दडक के अन्त मे (अपि) भी (अंगव्युत्सर्ग) कायोत्सर्ग (कार्य·) करना चाहिये। (अत) इसके (तदनतरं) बाद (तथैव) उसी प्रकार (थोस्सामी) थोस्सामी (इति) इस प्रकार (कुर्यात्) करे (इति) इस प्रकार (अस्मिन्) कायोत्सर्ग मे (आर्याद्यन्तयो) आर्या के आदि और अन्त मे (अपि) भी (द्वादशावर्त्ता·) बारह आवर्त्त (शिरोनतिचतुष्टयं) चार शिरोनति (कुर्यात्) करना चाहिये ।

**भावार्थ**—एक भक्ति के दंडक की आदि मे मंगलादिका यही क्रम है । अर्थात् भक्ति पूर्वक क्रिया और भक्ति का विज्ञापन करे । एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके दडक पढे । दडक के बाद एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके कायोत्सर्ग करे । तदनन्तर एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करे । इस प्रकार एक कायोत्सर्ग मे चार शिरोनति और बारह आवर्त्त करना चाहिये ।।३७,३८।।

**ग्रंथारंभे समाप्तौ च स्वाध्याये स्तवनादिषु ।**
**सप्तविंशतिरुच्छ्वासा व्युत्सर्गे दुर्मनस्यपि ।।३९।।**

**अन्वयार्थ**—(स्वाध्याये) स्वाध्याय मे (च) और (स्तवनादिषु) स्तवन आदि मे (दुर्मनसि) विकृति परिणाम के होने पर (व्युत्सर्गे) कायोत्सर्ग मे (सप्तविंशति:) सत्तावीस (उच्छ्वास·) उच्छ्वास है ।

**भावार्थ**—ग्रन्थ के आरभ, समाप्ति, स्वाध्याय, पंचपरमेष्ठी की वन्दना और दुर्भावना के कायोत्सर्ग मे सत्ताईस श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये ।।३९।।

**व्रतेत्वन्यतमस्याऽतिचारशुद्धेर्दिनस्य च ।**
**स्यात्प्रतिक्रमणेऽष्टाग्रशतं रात्र्यास्तु तद्दलम् ।।४०।।**

**अन्वयार्थ**—(व्रतेषु) व्रतो मे (अन्यतमस्य) किसी भी (अतिचारशुद्धे·) अतिचार की शुद्धि के लिए (च) और (दिनस्य) दैवसिक (प्रतिक्रमणे) प्रतिक्रमण मे (अष्टाग्रशत) एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास (तु) और (रात्र्या·) रात्रि के प्रतिक्रमण मे (तद्दल) उससे आधा अर्थात् चौवन श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग (स्यात्) होता है ।

**भावार्थ**—व्रतो मे अतिचार होने पर दैवसिक प्रतिक्रमण मे १०८ श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा रात्रिक प्रतिक्रमण मे ५४ श्वासोच्छ्वासो मे कायोत्सर्ग करना चाहिये ।।४०।।

पाक्षिके त्रिशतं चातुर्मासिके स्याच्चतुः शतम् ।
शतानिपंच संवत्सरस्य षट्सु क्रियान्तगे ।।४१।।

पंचविंशतिरुच्छ्वासा गोचरेर्यातिचारयोः ।
जिनसाधुनिषद्यानां विण्मूत्रोत्सर्जनैनसि ।।४२।।

**अन्वयार्थ**—(पाक्षिके) पाक्षिक प्रतिक्रमण मे (त्रिशत) तीन सौ (चातुर्मासिके) चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे (चतुःशत) चार सौ (सवत्सरस्य) वार्षिक प्रतिक्रमण मे (पंच) पाच (शतानि) सौ (षट्सु) छह प्रकार के प्रतिक्रमणो मे (क्रियातगे) प्रतिक्रमण भक्ति के अन्त मे (जिनसाधुनिषद्याना) जिनेन्द्र भगवान की साधुओ की निषद्या के (गोचरेर्यातिचारयोः) गमनागमन के अतिचार के प्रतिक्मण मे (विण्मूत्रोत्सर्जनैनसि) मल मूत्र के विसर्जन के पाप मे (पचविंशति) पच्चीस (उच्छ्वासा) श्वासोच्छ्वास होते हैं।

**भावार्थ**—पाक्षिक प्रतिक्रमण मे तीन सौ श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिए। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे चार सौ श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये। वार्षिक प्रतिक्रमण मे पाच सौ श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये। छह प्रकार प्रतिक्रमण भक्ति के अन्त मे पच्चीस श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये। आहार करने के बाद पच्चीस श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये। जिन साधुओ की निषद्या, तीर्थयात्रादि के गमनागमन और मलमूत्र के विसर्जन मे भी पच्चीस श्वासोच्छ्वास मे कायोत्सर्ग करना चाहिये ।।४१,४२।।

देवतास्तवनेभक्ति चैत्यपचगुरुभयोः ।
चतुर्दश्यां तयोर्मध्ये श्रुतभक्तिर्विधोयते ।।४३।।

**अन्वयार्थ**—(देवतास्तवन) देवताओ के स्तवन मे (चैत्यपचगुरुभयो ) चैत्य और पच गुरु की (भक्ति) भक्ति (चतुर्दश्या) चतुर्दशी के दिन (तयो ) चैत्य पचगुरु भक्ति के (मध्ये) मध्य मे (श्रुतभक्तिः) श्रुत भक्ति (विधीयते) की जाती है।

**भावार्थ**—त्रिकाल देव वदना में चैत्यभक्ति और पचगुरुभक्ति पढनी चाहिये। चतुर्दशी के दिन चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति और पचगुरुभक्ति करनी चाहिये ।।४३।।

स्यात्सिद्धश्रुतचारित्रशान्तिभक्ति चतुष्टयम् ।
अष्टम्यां श्रुतभक्तयोनमेतत्तीर्थेश जन्मनि ।।४४।।

पाक्षिके जिनचैत्ये च यद्यष्टम्यादिकर्मणाम् ।
संयोगो देवतापूजादर्शनस्तवनैः सह ।।४५।।

प्राक् शान्तिभक्तितस्तेषु चैत्यपचगुरुभयोः ।
भक्ति स्त सिद्धभक्ति स्यात्सिद्धप्रतिकृतिस्तुतौ ।।४६त्रिकं।।

**अन्वयार्थ**—(अष्टम्या) अष्टमी के दिन मे (सिद्धश्रुतचारित्रशान्तिभक्तिचतुष्टयम्) सिद्ध, श्रुत, चारित्र, शान्ति भक्ति चतुष्टय (तीर्थेशजन्मनि) तीर्थंकरके गर्भ जन्म कल्याण मे (श्रुतभक्तोयान) श्रुतभक्ति को छोड़ कर (एतत्) ये तीन

भक्ति (स्यात) होती हैं (च) और (यदि) यदि (पाक्षिके) पाक्षिक क्रिया मे (जिनचैत्ये) अपूर्व जिन प्रतिमा के स्थापन में (अष्टम्यादिकर्मणा) अष्टमी आदि क्रियाओ का (सयोग·) सयोग हो तो (तेषु) उस क्रिया कर्म मे (देवतापूजादर्शनस्तवनं.) देवता पूजन दर्शन स्तवन के (सह) साथ (शान्तिभक्तित ) शान्ति भक्ति के (प्राक्) प्रथम (चैत्यपचगुरुभयो.) चैत्य पंच गुरु इन दोनो की (भक्ती) भक्ति (स्त ) होती है (सिद्धप्रतिकृतिस्तुतौ) सिद्ध प्रतिमा की स्तुति मे (सिद्धभक्ति ) सिद्ध भक्ति (स्यात्) होती है ।

**भावार्थ**—अष्टमी की क्रिया मे सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति चारित्रभक्तिऔर शातिभक्ति करनी चाहिये । तीर्थकरो के गर्भजन्म कल्याण मे सिद्ध चारित्र भक्ति करना चाहिये । यदि अष्टमी क्रिया में पाक्षिक क्रिया अथवा अपूर्व जिनचैत्य स्थापन का सयोग आ जाय तो चैत्यभक्ति पचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति पढना चाहिये ।।४४,४५,४६।।

**चतुर्दशीदिने कर्तुं क्रियां न लभते यदि ।**
**धर्मकार्यादिनाऽष्टम्या क्रिया कार्या तु पाक्षिके ।।४७।।**

**अन्वयार्थ**—(यदि) यदि (धर्मकार्यादिना) धर्म क्रिया आदि के कारण (चतुर्दशी) चतुर्दशी के दिन मे (क्रियां) क्रिया को (कर्तुं) करने के लिए (न लभते) समयनही मिले तो (पाक्षिके) पाक्षिक प्रतिक्रमण मे (अष्टम्याः) अष्टमी की (क्रिया) क्रिया (कार्या) करनी चाहिये ।

**भावार्थ**—यदि कोई धार्मिक कार्य के कारण चतुर्दशी के दिन क्रिया नही कर सके तो पाक्षिक प्रतिक्रमण मे अष्टमी की क्रिया करनी चाहिये ।।४७।।

**नंदीश्वरक्रियायां स्तः सिद्धनन्दीश्वरोभयो· ।**
**भक्तिपंचगुरूणां च शान्तिभक्तिस्तदन्तगा ।।४८।।**

**अन्वयार्थ**—(नदीश्वरक्रियाया) नदीश्वर क्रिया मे (सिद्धनन्दीश्वरोभयो ) सिद्ध नन्दीश्वर (भक्ति) भक्ति (स्त ) होती है (तदन्तगा) उन दोनो के अन्त मे (पचगुरुणा) पचगुरु की (च) और (शान्तिभक्ति ) शान्ति भक्ति होती है ।

**भावार्थ**—नन्दीश्वर क्रिया मे सिद्ध भक्ति, नन्दीश्वरभक्ति, पचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति करना चाहिये ।४८।

**स्यात्सिद्धचैत्ययोः पंचगुरुणा स्नपनस्तवे ।**
**भक्ती सशान्तिभक्तिस्तु हीनमध्याद्विभक्त्यदः ।।४९।।**

**स्थिरेतरप्रतिष्ठायां चतुर्थस्नपने पुनः ।**
**चलचैत्यप्रतिष्ठायाः पूर्वोक्तस्नपनक्रिया ।।५०।।**

**अन्वयार्थ**—(स्नपनस्तवे) अभिषेक की वदना मे (सशान्तिभक्ति ) शान्तिभक्ति सहित (सिद्धचैत्ययो.) सिद्ध भक्ति चैत्यभक्ति (पचगुरुणा) पच गुरु की (भक्ती) भक्ति (स्यात) होती है (तु) और (स्थिरेतर प्रतिष्ठायां) स्थिर और चल प्रतिमा की प्रतिष्ठा मे (हीनमध्याद्विभक्त्यद ) बीच की दो भक्ति छोडकर सिद्ध और शान्ति भक्ति तथा (चलचैत्यप्रतिष्ठायां) चल चैत्य की प्रतिष्ठा मे (पूर्वोक्तस्नपनक्रिया) पूर्वोक्त स्नपन क्रिया करना चाहिये ।

**भावार्थ**—जिनाभिषेक की वदना मे सिद्ध भक्ति, चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति और शाति भक्ति करना चाहिये स्थिर चल जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा मे और चतुर्थ अभिषेक मे सिद्धभक्ति और शान्तिभक्ति करनी चाहिये । चलचैत्य की प्रतिष्ठा मे सिद्ध भक्ति, चैत्य भक्ति, पचगुरु भक्ति और शान्ति भक्ति करना चाहिये ।।४९ ५०।।

स्थिरप्रतिष्ठास्नानेऽस्मिन्नेषैवाऽऽलोचनाऽन्विता ।
चारित्रभक्तिः स्यात्किन्तु सिद्धभक्तेरनन्तरम् ।।५१।।

**अन्वयार्थ**—(किन्तु) किन्तु (अस्मिन्) इस (स्थिरप्रतिष्ठास्नाने) स्थिर प्रतिमा की प्रतिष्ठा के स्नपन मे (एषा) यह (एव) ही (आलोचनान्विता) आलोचना से युक्त (सिद्धभक्ते) सिद्धभक्ति के (अनन्तर) अनन्तर (चारित्रभक्ति.) चारित्रभक्ति (स्यात्) होती है ।

**भावार्थ**—स्थिर प्रतिमा की प्रतिष्ठा मे अभिषेक समय सिद्ध भक्ति के बाद आलोचना युक्त चारित्र भक्ति होती है ।।५१।।

सिद्धभक्तिर्मुनौ जेष्ठे सिद्धान्तविदि सा युता ।
श्रुतभक्त्याऽऽचार्यभक्त्या तु गणिन्येतत्त्रय पुन ।।५२।।

सूरौ सैद्धान्तिकेऽल्पेऽपिप्रतिमायोगसंस्थिते ।
सिद्धभक्ति र्भवेद्योगशान्तिभक्ति च सयते ।।५३।।

अत्र चारित्रभक्तिश्चेत्सिद्धभक्तेरनन्तरम् ।
योगभक्त्या परीतिश्च परिनिष्क्रमणक्रिया

**अन्वयार्थ**—(जेष्ठे) ज्येष्ठ (मुनौ) मुनि की वदना मे (सिद्धभक्ति) सिद्ध भक्ति (सिद्धान्तविदी) सिद्धान्त वेक्ता की वदना मे (श्रुतभक्त्या) श्रुत भक्ति से (युता) सहित (सा) सिद्ध भक्ति (गणिनि) आचार्य की वन्दना मे (आचार्यभक्त्या) आचार्य भक्ति से रहित (श्रुतभक्ति) सिद्ध भक्ति (तु) और (पुन.) फिर (सैद्धान्तिके), सिद्धान्त को जानने वाले (सूरौ) आचार्य की वदना मे (एतत्) यह (त्रय) सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, और आचार्य भक्ति (अल्पे) अपि ज्ञान से हीन (प्रतिमा योग संस्थिते) प्रतिमा योग (स्थित सयते) मुनि की वंदना मे (योगशान्तिभक्ति) योगी भक्ति और शान्ति भक्ति (भवेत्) होती है ।

**भावार्थ**—अपने से ज्येष्ठ मुनि की वदना करते समय सिद्ध भक्ति पढना चाहिये । सिद्धान्त पारगामी साधु की वंदना सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति आचार्य भक्ति पूर्वक पढकर करना चाहिये । गणि की वदना सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्य भक्ति पूर्वक करना चाहिये । सिद्धान्त पारगामी आचार्य की वन्दना करते समय सिद्ध, श्रुत, आचार्य, भक्ति पढना चाहिये । अल्प सिद्धान्त के ज्ञाता मुनि प्रतिमा योग मे स्थित हो तो उनकी वन्दना सिद्ध भक्ति, योग भक्ति और शान्ति भक्ति पढकर करनी चाहिये ।।५२,५३,५४।।

अत्र चरित्र भक्तिश्चेत्सिद्ध भक्तेरनन्तरम् ।
योगभक्त्या परीतिश्च परिनिष्क्रमणक्रिया ।।५४।।

**अन्वयार्थ**—(अत्र) यहा पर (परिनिष्क्रमणक्रिया) परिनिष्क्रमण क्रिया (योगभक्त्या) योग भक्ति से (परीति) परिक्रमा लगाकर (सिद्धभक्ते) सिद्धभक्ति के (अनन्तरम्) अनन्तर (चारित्रभक्ति.) चारित्रभक्ति से करनी चाहिये ।

**भावार्थ**—दीक्षाकल्याण की क्रिया मे योगभक्ति से परिक्रमा करके सिद्धभक्ति और चारित्रभक्ति पढनी चाहिये ।।५४।।

ज्ञानोत्पत्तौ क्रियैषैव सिद्धभक्तेरनंतरं ।
श्रुतभक्तिश्च स्यात् किन्तु जिननिर्वाण भूष्वपि ।५५।

परिनिर्वाणभक्तिस्तु योगभक्ते रनन्तरं ।
परिनिर्वाण भक्त्या तु त्रिः परीत्य क्रिया भवेत् ।।५६युग्मं।।

**अन्वयार्थ**—(ज्ञानोत्पत्तौ) ज्ञान की उत्पत्ति की क्रिया मे (एषा) यह (क्रिया) क्रिया है (किन्तु) परन्तु (सिद्धभक्तेः) सिद्ध भक्ति के अनन्तर (श्रुतभक्ति) श्रुतभक्ति (स्यात्) होती है (च) और (जिननिर्वाणभूमिषु) जिन निर्वाण भूमियो मे (निर्वाणभक्त्या) निर्वाण भक्ति से (त्रिपरीत्य) तीन प्रदक्षिणा देकर (योगभक्ते.) योग भक्ति के (अनन्तर) अनन्तर (परिनिर्वाणभक्तिः) परिनिर्वाण भक्ति (क्रिया) क्रिया (भवेत्) होती है।

**भावार्थ**—केवलज्ञान की उत्पत्ति क्रिया मे सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र भक्ति, योगीभक्ति और शान्ति भक्ति होती है। जिन परिनिर्वाण स्थान मे सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगी भक्ति, निर्वाणभक्ति और शान्ति भक्ति करनी चाहिये ।।५५,५६।।

सिद्धनिवार्णयो: पंचगुरुणां भक्ति रप्यतः ।
स्याच्छान्तिभक्तिः श्रीवर्धमाननिर्वाणवासरे ।।५७।।

**अन्वयार्थ**—(श्रीवर्धमाननिर्वाणवासरे) श्री वर्धमान भगवान के निर्वाण दिन मे (सिद्धनिर्वाणयो) सिद्ध निर्वाण की (अपि) और (पचगुरुणा) पचगुरुओ की (भक्तिः) भक्ति (शानिभक्ति) शाति भक्ति (स्यात्) होती है।

**भावार्थ**—वर्धमान स्वामी के निर्वाण दिन मे सिद्ध भक्ति, निर्वाणभक्ति, पचमहागुरु भक्ति और शातिभक्ति करनी चाहिये ।।५७।।

समाधिविधिना सम्यक् सामान्ये संयतेमृते ।
सिद्धभक्तिर्भवद्योगशान्तिभक्तिद्वयं तत· ।।५८।।

**अन्वयार्थ**—(समाधिविधिना) समाधि विधि से (सम्यक्) भलीप्रकार (सामान्ये) सामान्य (सयते) संयत के (मृते) मर जाने पर (सिद्धभक्ति.) सिद्ध भक्ति (तत ) उसके वाद (योगशातिभक्तिद्वयं) योगभक्ति शातिभक्ति यह दोनो (भवेत्) होती है।

**भावार्थ**—समाधि से विधिपूर्वक सामान्य मुनि के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति योगी भक्ति और शातिभक्ति पढना चाहिये ।।५८।।

यद्यत्रश्रुतभक्ति स्यात्सिद्धभक्तेरनतरम् ।
कृतिकर्मेति निर्दिष्टं साधौसिद्धान्तवेदिनि ।।५९।।

**अन्वयार्थ**—(यदि) यदि (सिद्धान्तवेदिनि) सिद्धान्तवेदी (साधौ) साधु के स्वर्गवास होने पर (अत्र) इसमे (सिद्धभक्ते.) सिद्ध भक्ति के (अनतरम्) 'अनतर (श्रुतभक्ति ) श्रुतभक्ति (स्यात्) होती है (इति) इसप्रकार (कृतिकर्म) कृतिकर्म (निर्दिष्ट) कहा है।

**भावार्थ**—सिद्धान्तवेदी साधु के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, योगभक्ति और शान्तिभक्ति पूर्वक कृतिकर्म कहा है ।।५९।।

**सामान्यमुनिकर्मैव व्रतिन्युत्तरयोगिनि ।**
**स्यात्तु चरित्रभक्तिश्च सिद्धभक्तेरनन्तरम् ।।६०।।**

**अन्वयार्थ**– (उत्तरयोगिनि) उत्तरगुण पालन करने वाले (व्रतिनि) सयत की समाधि होने पर (सामान्य-मुनिकर्मैव) सामान्य मुनि की क्रिया के समान है । (तु) परन्तु (सिद्धभक्ते.) सिद्धभक्ति के (अनंतरम्) अनन्तर (चारित्रभक्ति) चारित्रभक्ति (स्यात्) होती है ।

**भावार्थ**—उत्तर गुणो को पालन करने वाले सयत के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति और शान्तिभक्ति पढना चाहिये ।।६०।।

**स्यत्सिद्धश्रुतचारित्रयोगभक्तिचतुष्टयम् ।**
**शान्तिभक्तिश्च सिद्धान्तवेदिन्युत्तरयोगिनि ।।६१।।**

**अन्वयार्थ**—(उत्तरयोगिनि) उत्तर गुणो का पालन करने वाले (सिद्धान्तवेदिनि) सिद्धान्तवेदी के स्वर्गवास होने पर (सिद्धश्रुतचारित्रयोगभक्तिचतुष्टयम्) सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगभक्ति चतुष्टय (च) और (शातिभक्ति) शातिभक्ति (स्यात्) होती है ।

**भावार्थ**—उत्तर गुणो के पालक सिद्धान्तवेदी साधु का स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति योगभक्ति और चारित्रभक्ति पढना चाहिये ।।६१।।

**आचार्येषु चतुर्थेषु योगभक्तेरनन्तरम् ।**
**सूरिभक्तिर्भवेदष्टौ निषद्यादेहयोरिमाः ।।६२।।**

**अन्वयार्थ**—(चतुर्थेषु) चारो (आचार्येषु) आचार्यो के स्वर्गवास होने पर (योगभक्ते) योगभक्ति के (अनन्तरम्) अनन्तर (सूरिभक्ति) आचार्यभक्ति (भवेत्) होती है । (निषद्यादेहयो) निषद्याभूमि और मुनि के मृतक शरीर की (इमा·) ये (अष्टौ) आठ क्रियायें हैं ।

**भावार्थ**—सामान्य आचार्य के स्वर्गवास हो जाने पर सिद्धभक्ति, योगभक्ति, आचार्यभक्ति, शान्तिभक्ति तथा सिद्धान्तवेदी आचार्य के स्वर्गवास होने पर, सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, योगभक्ति, आचार्य भक्ति और शान्तिभक्ति पढना चाहिये । उत्तर गुणो के पालक आचार्य के स्वर्गवास होने पर सिद्धभक्ति, योगभक्ति, चारित्रभक्ति, आचार्यभक्ति और शाति भक्ति पढना चाहिये सिद्धान्तवेदी और उत्तर गुणो के पालक आचार्य के स्वर्गवास मे सिद्धभक्ति,श्रुतभक्ति,चारित्र,योगभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति पढना चाहिये । सामान्य मुनि, सिद्धान्तवेदी उत्तर गुण पालक उत्तर गुण नहित सिद्धान्त-वेदी साधु की और आचार्य की निषद्या भूमि की और उनकी मृतक शरीर की कृतिकर्म मे यही भक्ति बोलना चाहिये । अर्थात् सामान्य मुनि की निषद्याभूमि और शरीर की वदना मे सामान्य मुनि की क्रिया करनी चाहिये ।।६२।।

**सिद्धश्रुतयोर्भवती श्रुतपचम्यां तु वाचना ।**
**स्वाध्यायः शान्तिभक्त्यन्तमस्य निष्ठापनं ततः ।।६३।।**

**अन्वयार्थ**—(श्रुतपचम्या) श्रुत पचमी के दिन (सिद्धश्रुतयोर्भक्ती) सिद्ध और श्रुत भक्ति बोलकर श्रुत-स्कन्ध की स्थापना करनी चाहिये। (तु) और (वाचना) वाचना (स्वाध्याय) स्वाध्याय सिद्ध, श्रुतभक्ति पढकर प्रारम्भ करना चाहिये। (अस्य) इस स्वाध्याय के (निष्ठापन) निष्ठापन मे (शान्तिभक्त्यन्तम्) अन्त मे शान्तिभक्ति पढना चाहिये।

**भावार्थ**—श्रुत पचमी की स्वाध्याय मे सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति बोलकर श्रुत की स्थापना करके वाचना स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिये और शान्तिभक्ति बोलकर स्वाध्याय निष्ठापन करना चाहिये ॥६३॥

**एतत्संन्यासप्रारभे शांतिभक्तिर्न हीह तु ।**
**श्रुतपचमीक्रिया स्यादस्य निष्ठापने पुनः ॥६४॥**

**अन्वयार्थ**—(इह) इस (सन्यासप्रारभे) सन्यास के प्रारम्भ मे (एतत्) श्रुतवाचना के समान है (तु) परन्तु (शान्तिभक्ति·) शान्तिभक्ति (न) नही है (पुन) और (अस्य) सन्यास के (निष्ठापने) निष्ठापन मे (श्रुतपचमीक्रिया) श्रुत पचमी की क्रिया (स्यात्) होती है।

**भावार्थ**—संन्यास के प्रारभ मे सिद्धभक्ति और श्रुतभक्ति करना चाहिये और निष्ठापन मे सिद्धभक्ति, श्रुत भक्ति, शान्तिभक्ति करना चाहिये ॥६४॥

**महत्यो भक्तयः स्वाध्यायेषु संन्यासगे मुनौ ।**
**योगभक्तिर्विधातव्या योगग्रहणमोक्षयोः ॥६५॥**

**अन्वयार्थ**—(स्वाध्यायेषु) स्वाध्याय मे (मुनौ) मुनि के (सन्यासगे) संन्यास के प्राप्त होने पर (महत्यं) बडी (भक्तयः) भक्ति तथा (योगग्रहणमोक्षयो.) योग के ग्रहण और छोडने मे (योगभक्ति.) योग भक्ति (विधातव्या) करना चाहिये।

**भावार्थ**—स्वाध्याय मे, साधु के सन्यास मे बडी भक्ति करना चाहिये तथा योग के ग्रहण और मोचन मे योगभक्ति करना चाहिये ॥६५॥

**सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्तयः ।**
**चतुर्विंशतितीर्थेशभक्तिश्च नियमे यतेः ॥६६॥**

**अन्वयार्थ**—(यतेः) यति के (नियमे) नियम मे (सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणभक्तय.) सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, निष्ठितकरण भक्ति (च) और (चतुर्विंशतितीर्थेशभक्ति) चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करनी चाहिये।

**भावार्थ**—मुनि के नियम मे सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरणभक्ति और चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति करना चाहिये ॥६६॥

**पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिककर्मसु ।**
**प्रतिक्रमणसंज्ञेषु नियमोक्तक्रियैव तु ॥६७॥**

**पश्चाच्चारित्रभक्तिः स्यात्सिद्धभक्तेः क्रियान्तगा ।**
**चारित्रबृहदालोचनाख्याचार्यत्रिभक्तय ॥६८॥युग्मम्॥**

**अन्वयार्थ**—(प्रतिक्रमणसज्ञेषु) प्रतिक्रमण सज्ञक (पाक्षिकचातुर्मासिकसावत्सरिककर्मसु) पाक्षिक, चातुर्मासिक सावत्सरिक क्रिया मे (नियमोक्तक्रियैव) नियमो मे कही हुई क्रिया करनी चाहिये। (तु) परन्तु (सिद्धभक्ते) सिद्ध भक्ति के (पश्चात्) पश्चात् (चारित्रभक्ति·) चारित्र भक्ति (क्रियातगा) क्रिया के अन्त मे (चारित्रबृहदालोचनाध्वाचार्यत्रिभक्तय) चारित्र, बृहदालोचना, लघु आचार्य भक्ति यह तीन भक्ति करना चाहिये।

**भावार्थ**—पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति निष्ठितकरणवीरभक्ति, चतुर्विशति तीर्थंकर भक्ति, बृहदआलोचना, लघु आचार्य भक्ति करनी चाहिये ।।६७,६८।।

**चारित्रबृहदालोचगुरुभक्तिद्वयं विना ।**
**शेषा· शेषेषु कर्तव्याः स्यु प्रतिक्रमणेषु ताः ।।६९।।**

**अन्वयार्थ**—(शेषेषु) शेष (प्रतिक्रमणेषु) प्रतिक्रमण मे (चारित्रबृहदालोचगुरुभक्तद्वय) चारित्र, बृहदालोचना, गुरु भक्ति इन दो भक्ति के (बिना) विना (शेषा) शेष (ता:) वे भक्तिया (कतव्या) करनी (स्यु·) होती है।

**भावार्थ**—शेष व्रतारोपण आदि प्रतिक्रमण के समय चारित्रालोचना, बृहदालोचना, और गुरुभक्ति को छोड कर शेष भक्ति करना चाहिये अर्थात् दैवसिक रात्रिक आदि प्रतिक्रमण मे सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरण वीरभक्ति और चतुर्विशतितीर्थंकर भक्ति करना चाहिये ।।६९।।

**प्राक्सिद्धयोगभक्ती स्तो दीक्षाग्रहणलुंचने ।**
**तल्लुंचनावसाने तु सिद्धभक्तिर्विधीयते ।।७०।।**

**अन्वयार्थ**—(दीक्षाग्रहणलुंचने) दीक्षा ग्रहण के समय और केशलोच के समय (प्राक्) प्रथम (सिद्धयोग-भक्ती) सिद्धभक्ति, योगभक्ति (स्त) होती हैं (तु) और (तल्लुंचनावसने) दीक्षा और केशलोच की समाप्ति मे (सिद्धभक्ति) सिद्धभक्ति (विधीयते) की जाती है।

**भावार्थ**—दीक्षा के ग्रहण करने के समय और केशलोच के समय सिद्धभक्ति, योगभक्ति करना चाहिये तथा केशलोच और दीक्षा कें समाप्ति मे सिद्धभक्ति करना चाहिये ।।७०।।

**स्तः सिद्धयोगभक्ती द्वे प्रत्याख्यानेतदन्तगा ।**
**सूरिभक्तिर्भवेत्सिद्धभक्तिर्निष्ठापनेऽस्य तु ।।७१।।**

**अन्वयार्थ**—(प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान के प्रतिष्ठापन मे (सिद्धयोगभक्ती) सिद्ध योगभक्ति (द्वे) वह दो (स्त·) होती हैं और (तदन्तगा) उसके अन्त मे (सूरिभक्ति) आचार्यभक्ति (भवेत्) होती है (तु) और (अस्य) इस प्रत्या-ख्यान के (निष्ठापने) निष्ठापन मे (सिद्धभक्ति) सिद्धभक्ति होती है।

**भावार्थ**—प्रत्याख्यान प्रतिष्ठापन क्रिया मे सिद्धभक्ति, योगभक्ति, और आचार्य भक्ति करना चाहिये और इसके निष्ठापन मे सिद्धभक्ति करना चाहिये ।।७१।।

**ता: स्युर्मंगलगोचरप्रत्याख्याने तु भक्तय ।**
**महत्य शान्तिभक्तिश्च सूरिभक्तेरनन्तरम् ।।७२।।**

**अन्वयार्थ**—(मगलगोचरप्रत्याख्याने) मगलगोचर प्रत्याख्यान मे (ता) ऊपरकथित वडी (भक्तय·) भक्तिया

(च) और (सूरिभक्ते:) आचार्य भक्ति के (अनन्तरम्) अनन्तर (शातिभक्तिः) शाति भक्ति (स्युः) होती है।

**भावार्थ**—मगलगोचर प्रत्याख्यान मे बडी सिद्धभक्ति, योगभक्ति, आचार्य भक्ति और शान्तिभक्ति करना चाहिये ।।७२।।

**श्रुतसूरिभक्तिपूर्वं स्वाध्यायं प्रविधाय तु ।**
**निष्ठापयेदमुं काले श्रुतभक्त्या यथोदिते ।।७३।।**

**अन्वयार्थ**—(श्रुतसूरिभक्तिपूर्वं) श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति पूर्वक (स्वाध्याय) स्वाध्याय (प्रविधाय) करके (तु) और (यथोदिते) ऊपर कथित (काले) काल मे (अमु) इस स्वाध्याय को (श्रुतभक्त्या) श्रुतभक्ति सहित (निष्ठापयेत्) निष्ठापन करे।

**भावार्थ**—श्रुत और आचार्य भक्ति पूर्वक स्वाध्याय का आरम्भ करे और स्वाध्याय काल समाप्त हो जाने पर श्रुतभक्ति पढकर स्वाध्याय की समाप्ति करना चाहिये ।।७३।।

**भवेन्मंगलगोचारमध्याह्ने स्नपनस्तवः ।**
**सवर्षाकालयोगस्याऽऽदाननिष्ठापनेऽपि तु ।।७४।।**

**योगभक्तिर्भवेदत्र सिद्धभक्तेरनन्तरम् ।**
**सिद्धान्तवाचनायाः श्रुतपंचम्याः क्रियोदिताः ।।७५।।युग्मं।**

**अन्वयार्थ**—(मगलगोचरमध्याह्ने) मगलगोचर मध्याह्नक्रिया (स्नपनस्तवः) अभिषेक क्रिया मे की जाने वाली सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति और शातिभक्ति (भवेत्) होती है। (वर्षाकालयोगस्य) वर्षा काल योग के (आदाननिष्ठापने) आदान और निष्ठापन मे (सिद्धभक्ते) सिद्धभक्ति के (अनन्तरम्) अनन्तर (योगभक्ति) योगभक्ति (भवेत्) होती है (तु) और (सिद्धान्तवाचनायाः) सिद्धान्त वाचना मे (श्रुतपचम्याः) श्रुत पंचमी के अनुसार (क्रियोदिताः) क्रिया कही गई हैं।

**भावार्थ**—मगलगोचर मध्याह्नकाल मे सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति और शातिभक्ति पढना चाहिये वर्षायोग के ग्रहण और निष्ठापन मे सिद्धभक्ति, योगभक्ति, चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति और शातिभक्ति पढना चाहिये। सिद्धान्तशास्त्र के स्वाध्याय मे सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति और शांतिभक्ति करना चाहिये ।।७४,७५।।

**सिद्धान्तार्थाधिकाराणामादावन्ते च भक्तयः ।**
**तिस्रः सिद्धश्रुताऽऽचार्यसंश्रिताः परिकीर्त्तिताः ।।७६।।**

**कुर्याद् व्युत्सर्गमेकैकं समाप्तौ भक्तिपूर्वकम् ।**
**सिद्धान्तार्थाधिकाराणां विद्याविद्याफलाप्तये ।।७७।।**

**अन्वयार्थ**—(सिद्धान्तार्थाधिकाराणां) सिद्धान्त शास्त्र के अर्थाधिकार के (आदौ) आदि मे (च) और (अन्ते) अन्त मे (सिद्धश्रुताऽऽचार्यसंश्रिता.) सिद्ध, श्रुत, आचार्य से सम्बन्धित (तिस्र·) तीन (भक्तय·) भक्तियां (परिकीर्तिता) कही हैं। (सिद्धान्तार्थाधिकारणा) सिद्धान्त के अर्थाधिकार की (समाप्तौ) समाप्ति मे (विद्याविद्याफलाप्तये) विद्या और विद्या के फल के प्राप्ति के लिए (भक्तिपूर्वक) भक्ति पूर्वक (एकैक) एक एक (व्युत्सर्गं) कायोत्सर्ग (कुर्यात्) करना चाहिये।

भावार्थ—सिद्धान्त शास्त्र के अर्थाधिकारके प्रारम्भ और समाप्ति मे सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करना चाहिये तथा इसकी समाप्ति मे विद्या और विद्या के फल की प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक एक एक कायोत्सर्ग करना चाहिये ।।७६,७७।।

ज्ञानविज्ञानसंपन्नः स्थविरः प्रश्रयाश्रयः ।
गुरूणां सन्निधौ सिद्धसूरिभक्तो विधाय तु ।।७८।।

गुर्वाज्ञया समादाय गणेशपदवीं ततः ।
शान्तिभक्तिं यतिः कुर्याद्गुर्वादीनामपि स्तवम् ।।७९।।

अन्वयार्थ—(ज्ञानविज्ञानसपन्न.) ज्ञान विज्ञान मे सम्पन्न (स्थविर:) वयोवृद्ध (प्रश्रमाश्रय ) कषाय विजयी (यति ) साधु (गुरुणा) गुरुओ के (सन्निधौ) सानिध्य मे (सिद्धसूरिभक्ती) सिद्ध और आचार्यभक्ति (विधाय) करके (गुर्वाज्ञया) और गुरु के आज्ञा से (गणेशपदवी) आचार्य पदवी को (समादाय) स्वीकार कर (तत ) उसके बाद (शातिभक्ति) शान्तिभक्ति को (गुर्वादीना) गुरु आदि का (स्तवं) स्तवन (अपि) भी (कुर्यात्) करे।

भावार्थ—ज्ञान विज्ञान से सपन्न विनयी स्थविर साधु, गुरु के सान्निध्य मे सिद्धभक्ति, आचार्य भक्ति पढ करके गुरु के आज्ञा से आचार्य पदवी को स्वीकार कर शान्तिभक्ति पढे तथा गुरुओ की वदना स्तवन करे ।।७८,७९।।

## कायोत्सर्ग के ३२ दोष

ऋज्वंगस्थाने व्युत्सर्गे लीलाऽऽलंबितदोर्युगे ।
समांगुलीचतुष्कान्तरस्थपादेऽप्यकपिते ।।८०।।

कुड्याश्रित लतावक्र स्तभावष्टभकुंचिते ।
स्तनेक्षाकाकदृक्शीर्षकपित युगकधरम् ।।८१।।

भ्रूक्षेपोत्तरितोन्मत्तपिशाचाष्टदिशेक्षणम् ।
ग्रीवाऽवनमन मूकसज्ञा चांगुलिचालनम् ।।८२।।

निष्ठीवनं खलिनितं शबरीगुह्यगूहनम् ।
कपित्थमुष्टिग्रीवोन्नमन शृंखलिताह्वयम् ।।८३।।

मालिकोद्वहन स्वागस्पर्शन घोटकांघ्रि च ।
स्यान द्वात्रिशदित्येते त्याज्या दोषास्तथापरे ।।८४।।पचक।

अन्वयार्थ—(ऋज्वगस्थाने) सरल है अगस्थान जिसके (लीलाऽऽलंवितदोर्युगे; लीला से अवलवित हैं बाहु-युग जिसमे (समागुलीचतुष्कान्तरपादे) समान अगुली चतुष्प्रमाण अन्तर मे स्थित है पाद जिसके ऐसे (अकपिते) अकपित (व्युत्सर्गे) कायोत्सर्ग मे (१) (कुडयाश्रित) कुडयाश्रित (२) (लतावक्र) लतावक्र (३) (स्तंभावष्टभकुचिते) स्तभावष्टभ (४) अकुचित (५-६) (स्तनेक्षाकाकदृक्) स्तनईक्षा, काकदृक् (७) (शीर्षकपितं) शिर का कपन (८) (युगकधरम) युग-कधर (९-१०) भूक्षेपोत्तरितोन्मत्तपिशाचाष्टदिशेक्षणम्) भूक्षेप, उत्तरित उन्मत्तपिशाच के समान अष्ट दिशाओ का देखना

(११) (ग्रीवाऽवनमनं) ग्रीवा का झुकाना (१२) (मूकसज्ञा) मूकसज्ञा (१३) (अगुलिचालनम्) अगुलि का चलाना (१४) (निष्ठीवन) थूकना (१५) खलिनित) खलिनितं (१६) (शवरीगुह्यगूहनम्) शवरीगुह्यगूहन (१७) (कपित्थमुष्टिग्रीवोन्नमन) कपित्थमुष्टिग्रीवोन्नमन (१८) (शृंखलिताह्वयम्) शृ खलित नामक (२०) (मालिकोद्वहनम्) मालिक आरोहण (२१) (स्वाग-स्पर्शनम्) अपने अग का स्पर्श (२२) (घोटकाघ्रि) घोटक पाद (स्थानं) स्थान (इति) इसप्रकार (एते) यह (द्वात्रिंशत्) बत्तीस दोष (त्याज्या) छोडना चाहिये।

**भावार्थ**—(१) कुडयाश्रित दोष—मित्ति का सहारा लेकर कायोत्सर्ग करना कुडय दोष है।
(२) लतावक्र दोष—कायोत्सर्ग के समय लता के समान शरीर को कपायमान करना लता दोष है।
(३) स्तभावष्ट भ—स्तंभ का सहारा लेकर अथवा स्तभे के समान उदण्डता पूर्वक खडे होकर कायोत्सर्ग करना स्तभदोष है।
(४) अंकुचित दोष—शरीर को सकुचित करके खडा होना अकुचित दोष है।
(५) स्तनेक्षा—दोनो स्तनो पर दृष्टि रखकर कायोत्सर्ग करना स्तन दृष्टि दोष है।
(६) काकदृक्—कौवे के समान चचलदृष्टि रखकर कायोत्सर्ग करना काकदृक् दोष है।
(७) शीर्ष कंपित दोष—शिर को कपाते हुये कायोत्सर्ग करना शीर्ष कपित दोष है।
(८) युगकंधरम् जिसप्रकार वैल गर्दन को पसारकर चलता है उसीप्रकार गर्दन को तिरक्षा करके कायोत्सर्ग करना युग-कधरम् दोष है।
(९) भ्रूक्षेप -भ्रकुटी को चलाते हुये कायोत्सर्ग करना भ्रूक्षेप दोष है।
(१०) उत्तरितादि—उन्मत्त पिशाच के समान अष्ट दिशाओ को देखना उसे उत्तरित्तोन्मत्तपिशाचाष्टादिशेक्षणम् दोष कहते हैं।
(११) ग्रीवाऽवनमन—ग्रीवा झुकाकर कायोत्सर्ग करना ग्रीवाऽवनमन दोष है।
(१२) मूकसज्ञा—गूंगे के समान हुँकार करते हुये कायोत्सर्ग करना मूक दोष है।
(१३) अगुलिचालनम्—अगुली से इशारा करते हुये कायोत्सर्ग करना अगुलिचालनम् दोप है।
(१४) निष्ठीवन—कायोत्सर्ग करते समय बीच बीच मे थूकना निष्ठीवन दोष है।
(१५) खलिनित—जिसप्रकार मुख मे लगाम होने से घोडा मुख को चलाता है उसीप्रकार मुख चलाते हुये कायोत्सर्ग करना खलिनित दोष है।
(१६) शबरीगुह्यगूहनम्—भील की स्त्री के समान दोनो हाथ आगे पसार करके कायोत्सर्ग करना शबर दोष है।
(१७) कपित्थदोष—कपित्थ के समान मुठ्ठी बाधकर कायोत्सर्ग कपित्थ दोष है।
(१८) ग्रीवोनमनं—ग्रीवा का संकोच करके कायोत्सर्ग करना ग्रीवोनमन या प्रणयन दोष है।
(१९) शृंखलिताह्वय—बेडी मे पैर रक्खे हुये के समान पैर फैलाकर कायोत्सर्ग करना।
(२०) मालिकोद्वहनम्—तुला मे मस्तक का सहारा लेकर कायोत्सर्ग करना।
(२१) स्वागस्पर्शनम्—शरीर खुजलाते हुये कायोत्सर्ग करना।
(२२) घोटकाघ्रि—घोडे के समान एक पैर को स्थिर करके तथा दूसरे पैर को हिलाते हुये कायोत्सर्ग करने से घोटकदोष लगता है।

(२३ से ३२) दश दिशाओ को अवलोकन करते हुये कायोत्सर्ग करना दशदिशावलोकन १० दोष हैं।

ये कायोत्सर्ग के बत्तीस दोष हैं इनका त्याग करके शुद्ध कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा इनके समान और भी दोष है उनका भी त्याग करना चाहिये ।।८०,८१,८२,८३,८४।।

**वामान्तर्गुल्फवामस्य गुल्फो वाह्यः स्थितस्तयोः।**
**पादयोरूरूमूलस्थं पल्यंके पार्ष्णियुग्मकम् ।।८५।।**

गुल्फस्थोत्तानवामस्थोत्तानावामकरः समः ।
पल्यंकेऽत्रासने स्याच्चेत्कायोत्सर्गः सुसौष्ठवः ॥८६॥

**अन्वयार्थ**—(वामान्तर्गुल्फावस्य) वामपाद की अन्तर्गुल्फ मे दक्षिणपाद की (गुल्फ) गुल्फ (बाह्य) बाह्य (स्थित.) स्थित है (तयो) उन दोनो (पादयो) चरणो के (उरुमूलस्थ) उरुमूल मे स्थित (पार्ष्णियुग्मक) पाव की एडी है तथा (पल्यके) गोदी मे (गुल्फस्थोत्तानवामस्थोत्तानावामकर.) गुल्फ के उत्तान वाम मे स्थित है उत्तान दक्षिण हाथ जिसका ऐसा (सम) समान (चेत्) हो तो (अत्र) इस (पल्यके) पालथी (आसने) आसन मे (कायोत्सर्ग) कायोत्सर्ग (सुसौष्ठव.) सुस्थिति (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—वामपाद के जघा के ऊपर दक्षिण पाद हो और दोनो पैरो के मध्यभाग मे दोनो पैर की एडी हो तथा गोदी मे वामहाथ के ऊपर दक्षिण हाथ हो इसको पर्यकासन कहते हैं, इस आसन मे कायोत्सर्ग सुस्थित होता है ॥८५,८६॥

त्रिशुद्धौ द्वादशावर्त्ते द्विनिषण्णे चतुर्नतौ ।
बद्धाजुलौ त्यजेद्दोषान् कृतिकर्मव्रजेऽप्यमून् ॥८७॥

**अन्वयार्थ**—(त्रिशुद्धौ) मन, वचन, काय की शुद्धि (द्वादशावर्त्ते) बारह आवर्त्त (द्विनिषण्णे) दो निषद्या (चतुर्नतौ) चार शिरोनति (बद्धाजुलौ) बद्धाजुलि स्वरूप (कृतिकर्मव्रजे) कृति कर्म के समूह मे (अपि) भी (अमून्) इन (दोषान्) दोषो को (त्यजेत्) छोडे।

**भावार्थ**—मन, वचन, काय की शुद्धि बारह आवर्त्त, द्विनिषद्या चार शिरोणति पूर्वक अंजुलि जोडकर कृति कर्म करना चाहिये। इस कृति कर्म मे भी बत्तीस दोष होते हैं उनको छोडना चाहिये ॥७८॥

स्तब्धः प्रविष्टोऽनालब्धमालब्धं परिपीडितम् ।
दोलायित मनोदुष्ट मत्स्योद्वर्त्तनभेषितम् ॥८८॥

हीनाधिकर्द्धिगौरवशेषगौरवघर्घरम् ।
भेघ्यत्वं स्तनितंमूकमुन्मत्तकमनादृतम् ॥८९॥

तर्जित शब्दित सघकरमोचित कुचितम् ।
वेदिकाबद्धक्रोधादि शल्याचार्यादिदर्शनम् ॥९०॥

प्रत्यनीक सुललिताहष्टे कच्छपरिंगितम् ।
हलितं त्रिवलितं चेति द्वात्रिंशदमी मताः ॥९१॥चतुष्क।

**अन्वयार्थ**—१ स्तब्ध २ प्रविष्ट ३ अनालब्ध ४ आलब्ध ५ परिपीडनम् ६ दोलायित ७ मनोदुष्ट ८ मत्स्योद्वर्तन ९ भेषितम् १० हीन अधिक ११ ऋद्धिगौरव १२ शेषगौरव १३ घर्घर १४ भेघ्यत्व १५ स्तनित १६ मूक १७ उन्मुक्त १८ अनादृत १९ तर्जित २० शब्दित २१ संघकरमोचित २२ कुचितम् २२ वेदिका वद्ध २४ क्रोध २५ शल्य २६ आचार्यादि दर्शनम् २७ प्रत्यनीक २८ सुललित २९ अष्ट दोष ३० कच्छपरिंगिण ३१ हलित ३२ त्रिवलित ये बत्तीस दोष हैं।

**भावार्थ**—(१) स्तब्ध—विद्यादिक के गर्व से उद्दंड होकर देव वंदना करना स्तब्ध दोष है।
(२) प्रविष्ट—पचपरमेष्ठी के अत्यन्त निकट बैठकर देववदना करना प्रविष्ट दोष है।
(३) अनालब्ध—देववदना करने से उपकरण प्राप्त होगे इस बुद्धि से वंदना करना अनालब्ध दोष है।
(४) आलब्ध—पिच्छीका कमडलु आदि उपकरणो के प्राप्त करके वदना करना आलब्ध दोष है।
(५) परिपीडनम्—हाथ के द्वारा जानु आदि प्रदेशो का स्पर्श करके अथवा उनका पीडन करके वंदना करना परिपीडन दोष है।
(६) दोलायित—झूले (दोले के) समान शरीर को हिलाते हुए देववदना करना दोलायित दोष है।
(७) मनोदुष्ट—सक्लेशयुक्त मन से वदना करना मनोदुष्ट दोष है।
(८) मत्स्योद्वर्तन—मछली के समान कटिभाग का उद्वर्तन करके देववदना करना।
(९) भेषितत्—गुरु के भय से वदना करना भेषित दोष है।
(१०) हीन—शास्त्र के अनुकूल काल से रहित देववदना करना हीन दोष है।
(११) अधिक—वदना थोडे समय करना और चूलिका को अधिक समय लगाना अधिक दोष है।
(१२) ऋद्धिगौरव—देव वदना करने से चातुर्वण्य श्रमणसंघ मेरा भक्त बन जायेगा इस अभिप्राय से देव वदना करना ऋद्धि गौरव दोष है।
(१३) दुर्दर (घर्घर)—अपने शब्दो से अन्य वदना करने वाले के शब्दो का तिरस्कार करके महा उच्च स्वर मे देववदना करना दुर्दर दोष है।
(१४) स्तनित—चोर बुद्धि से गुरु आदि से छिपकर वदना करना स्तनित दोष है।
(१५) भेष्यत्व—किसी को भय दिखाकर वन्दना करना भेष्यत्व दोष है।
(१६) मूकदोष—हुकार अथवा अगुली आदि से मूकवत् सकेत करते हुए देव वदना करना मूक दोष है।
(१७) उन्मुक्त—एक ही स्थान पर बैठकर हाथ जोडकर सबकी वन्दना करना उन्मुक्त दोष है।
(१८) अनादरित—अनादर से देव वन्दना करना अनादरित दोष है।
(१९) तर्जितक्षेप—अन्य सघस्थ मुनियो के साथ कलह करके अथवा गुरु ने कहा है कि तुम देववन्दना नही करोगे तो संघ से निकाल दिये जाओगे इससे भयभीत होकर वन्दना करना।
(२०) शब्दित—मौन त्याग कर कुछ बोलते हुये देव वन्दना करना अथवा माया प्रपच से देव वन्दना शाठ्य दोष है।
(२१) सघकर मोचित दोष—सघ को माया चार से कोई अतिशय दिखाकर देववन्दना करना सघकर मोचित दोष है।
(२२) कुंचितम्—हाथ से मस्तक आदि अंगो का स्पर्श करते हुये अथवा घुटने के बीच मे मस्तक रखकर सकुचित शरीर से वन्दना करना कुंचित दोष है।

नष्टदुष्टाष्टकर्माणस्ते पुष्टाष्टगुणर्द्धय.।
त्रिलोकीमस्तकोत्तंसा. सिद्धा नः सन्तु सिद्धिदाः ॥९२॥

**अन्वयार्थ**—(नष्टदुष्टाष्टकर्माण) नष्ट हो गये हैं दुष्ट अष्ट कर्म जिन्होके (पुष्टाष्टगुणर्द्धय.) पुष्ट है अष्टगुण ऋद्धिया जिन्होकी (त्रिलोकीमस्तकोत्तंसा.) तीन लोक के शिखर के भूषण (ते) वे (सिद्धा) सिद्ध भगवान (न) हमारे लिए (सिद्धिदाः) सिद्धि के देने वाले (सन्तु) हो।

**भावार्थ**—जिन्होके ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अतराय यह आठ कर्म नष्ट हो गये हैं। सम्यक्त्व अनन्तदर्शनत्व, अनन्तज्ञानत्व अगुरु लघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व, निराबाधत्व इन आठ गुणो से जो युक्त है तथा लोक के अग्रभाग मे स्थित हैं ऐसे तीन लोक के शिरोमणि सिद्ध भगवान हमारे लिए सिद्धि को देने वाले हो ॥९२॥

श्रीपादेंदूदयस्यासीदमरीचिकुरोऽम्बरम् ।
यस्य स्याद्वादिनो विश्ववेदिनः पातु नो जिनः ॥९३॥

**अन्वयार्थ**—(यस्य) जिस (स्याद्वादिन) स्याद्वादी (विश्ववेदिन) विश्ववेदी के (श्रीपादेंदूदयस्य) शोभनीय पाद रूपी चद्रमा के उदय का (अम्बर) आकाश (अमरीचिकुर) देवियो का केशपाश (आसीत्) था वह (जिन) जिनेन्द्र भगवान (न) हमारी (पातु) रक्षा करे ।

**भावार्थ**—जिस स्याद्वादी विश्ववेदी के चरण रूपी चद्रमा के उदय का आकाश देवियो का केशपाश था वह जिनेन्द्र भगवान हमारी रक्षा करे ॥९३॥

विपक्षक्षयजानंतानंतज्ञानादिसद्गुणाः ।
दद्यादद्य स नः प्राज्यं वृजिनारिजयं जिनः ॥९४॥

**अन्वयार्थ**—(विपक्षक्षयजानतानतज्ञानादिसद्गुणा) विपक्ष के क्षय से उत्पन्न अनन्त ज्ञानादि सद्गुण वाले (स) वह (जिन) जिनराज (न) हमारे लिए (अद्य) आज (प्राज्य) उत्कृष्ट (वृजनारिजयं) पाप रूपी शत्रुओ के जीतने की शक्ति (दद्यात्) दें ।

**भावार्थ**—ज्ञानावरणी आदि विपक्षियो के नाश करने से उत्पन्न अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य के धारी जिनेन्द्र भगवान हमारे लिए पापरूपी शत्रुओ को नाश करने की शक्ति देवें ॥९४॥

निराकृत्यान्तर ध्वान्तं सूरिसूर. करोत्वरम् ।
सन्मानसाबुजानदममन्द वाक्करैर्वरैः ॥९५॥

**अन्वयार्थ**—(सूरिसूर) आचार्य रूपी सूर्य (वरै) श्रेष्ठ (वाक्करै) वचन रूपी किरणो के द्वारा (अन्तर) आतरिक (ध्वान्त) अधकार को (निराकृत्य) दूर करके (अर) शीघ्र ही (अमद) अमन्द (सन्मानसाबुजानंद) सत्पुरुषो के मन रूपी कमल को आनन्दित (करोतु) करे ।

**भावार्थ**—आचार्य रूपी सूर्य अपने वचन रूपी किरणो के द्वारा शीघ्र ही आंतरिक अधकार को दूर करके सत्पुरुषो के मन रूपी कमल को विकसित करे ॥९५॥

कुर्वन्नखर्वदुर्वादिमदद्विरदमर्दनम् ।
स्याद्वादाद्रावुपाध्यायसिन्धुरारिर्विजृंभताम् ॥९६॥

**अन्वयार्थ**—(अखर्वदुर्वादिमदद्विरदमर्दनम्) घमडी मिथ्यावादी रूपी मदोन्मत्त हाथियो के मद के निर्मद (कुर्वन्) करता हुआ (उपाध्यायसिन्धुरारि) उपाध्याय रूपी सिह (स्याद्वादाद्रौ) स्याद्वादरूपी पर्वत पर (विजृंभताम्) बढ़ता रहे ।

**भावार्थ**—घमडी कुवादी रूपी मदोन्मत्त हाथी के मान को मर्दन करने वाले उपाध्याय रूपी सिह स्याद्वाद रूपी पर्वत पर वृद्धि को प्राप्त हो ॥९६॥

रत्नत्रयामृतांभोधिविधव. साधवः श्रियम् ।
दद्युरात्मर्द्धिनिर्धूतदुरितध्वान्तवृत्तयः ॥९७॥

**अन्वयार्थ**—(आत्मर्द्धिनिर्धूततदुरितध्वान्तवृत्ताय ) आत्म सिद्धि से नष्ट कर दिया है पापरूपी अंधकार के समूह को जिसने ऐसा (रत्नत्रयामृतामोधिविवर्धन.) रत्नत्रय रूपी अमृत के समुद्र को वढाने वाले चन्द्रमा ऐसे (साधव:) साधु गण (श्रिय) श्री को (दद्यु:) देवे ।

**भावार्थ**—आत्मऋद्धि से पापरूपी अंधकार को नाश करने वाले रत्नत्रय रूपी अमृत के समुद्र को वढाने वाले साधु रूपी चन्द्रमा हमारे लिये श्री को देवे ॥९७॥

**त्रिजगद्गुरवः सर्वैर्गुणैर्गुरव इत्यमी ।**
**गुरव. पच न पान्तु पापापायनिकायतः ॥९८॥**

**अन्वयार्थ**—(सर्वै ) सर्व (गुणै.) गुणो के द्वारा (गुरव.) गुरु हैं (इति) इसलिये (त्रिजगद्गुरव.) तीन जगत के गुरु (अमी) ये (पंच.) पाच (गुरव ) पच परमेष्ठी गुरु (न:) हमारी (पापापायनिकायत ) पाप और अपाय के समूह से (पान्तु) रक्षा करें ।

**भावार्थ**—तीन जगत के गुरु सर्व गुणो मे श्रेष्ठ पचपरमेष्ठी पाप और अपाय के समूह से हमारी रक्षा करें ॥९८॥

**लोकत्रयेशदत्तार्घ्यमप्यनर्घ्यं महोदयम् ।**
**रत्नत्रयं पवित्रं नः पुनातु हृदयं सदा ॥९९॥**

**अन्वयार्थ**—(लोकत्रयेशदत्तार्घ्यं) तीन लोक के स्वामियो के द्वारा दिया गया है अर्घ्य जिसको (अपि) फिर भी (अनर्घ्यं) बहुमूल्य (महोदयं) महा उदय वाला (पवित्र) पवित्र (रत्नत्रय) रत्नत्रय (सदा) सदा (न ) हमारे हृदय को (पुनातु) पवित्र करे ।

**भावार्थ**—तीन लोक के अधिपतियो के द्वारा पूजनीय अनर्घ्य महोदय वाला पवित्र रत्नत्रय निरन्तर हमारे हृदय को पवित्र करे ॥९९॥

**स्तुत्यः स्तुतिशतैर्धर्म शर्मदो यो गुणाधिकः ।**
**गुणिनः सद्गुणाश्चैते भवन्तु मम मङ्गलम् ॥१००॥**

**अन्वयार्थ**—(य ) जो (स्तुतिशतै.) सैकडो स्तुतियो के द्वारा (स्तुत्य,) स्तुति करने योग्य (शर्मद ) सुख को देने वाला (गुणाधिक:) गुणाधिक (धर्म.) धर्म है (च) और (एते) ये (गुणिन.) गुणी (सद्गुणा ) और सद्गुण हैं वे (मम) मेरे लिये (मंगल) मगल कारक (भवन्तु) हो ।

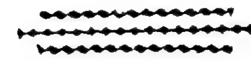
**भावार्थ**—सैकड़ो स्तुतिओ के द्वारा स्तुत्य, गुणाधिक स्तुति को देने वाला धर्म, धर्मी तथा धर्मियो के सद्गुण मेरे लिये मगल करे ॥१००॥

यत्कान्तकान्तिः कुमुदं वितन्वती ।
तनोत्यलं तत्कमलोत्सवं नव· ॥
निरस्तदोषाऽभ्युदयाक्षयश्रियं ।
क्रियात्स चंद्रप्रभदेववल्लभः ॥१०१॥

**अन्वयार्थ**—(यत्कान्तकान्ति) जिसकी सुन्दर कान्ति (कुमुद) पृथ्वी के हर्ष को (वितन्वती) विस्तरित करती हुयी (तत्कमलोत्सव) मुक्ति रूपी कमल के उत्सव को (तनोति) विस्तरित करती है (स) वह (नव) श्रेष्ठ (चन्द्रप्रभदेववल्लभ) चन्द्र प्रभु भगवान (निरस्तदोषाऽभ्युदयाक्षयश्रियं) दोष रहित अभ्युदय वाली अविनश्वर लक्ष्मी को (क्रियात्) प्रदान करे ।

**भावार्थ**—जिसकी सुन्दर कान्ति पृथ्वी के हर्ष को विस्तरित करती हुई मोक्षरूपी लक्ष्मी के उत्सव को विस्तरित करती है वह श्रेष्ठ चद्रप्रभ भगवान निर्दोष अभ्युदय और अविनाशी लक्ष्मी को देवे ।।१०१।।

**इति श्रीमद्वीरनदिसिद्धान्तचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसार**
**नाम्नि शास्त्रे नवमोऽधिकार ।।**



## दशमोऽधिकारः

**यद्वाक्यामृतमाजवंजवदवोत्तप्तात्मनामात्मनां**
**नानैनश्चिततापलोपनपर श्री शीतलः शीतलम् ।**
**यस्यांगस्य मरीचिमंडलमिलानंदेंदिरामन्दिर**
**पायात्पार्वणशीतरश्मिरुचिरः सोऽय जिनाधीश्वरः ।।१।।**

**अन्वयार्थ**—(यद्वाक्यामृत) जिसके वचन रूपी अमृत (आजवजवदवोत्तप्तात्मनामात्मना) संसार रूपी दावानल से सतप्त स्वरूप वाली आत्माओ के (नानैनश्चिततापलोपनपर) नाना प्रकार के पापो से उपार्जित ताप के लोपन करने के लिए तत्पर (शीतल) एव शीतल हैं, (यस्य) जिसके (अगस्य) शरीर की (मरीचिमडल) किरणो का समूह (इलानन्देंदिरामन्दिरं) पृथ्वी के उत्सव रूपी लक्ष्मी का स्थान है, (स) वह (अयं) यह (पार्वणशीतरश्मिरुचिर) पूर्णिमा के चन्द्र के समान शोभित (श्रीशीतल) श्री शीतल (जिनाधीश्वर) जिनाधीश्वर (पायात्) हमारी रक्षा कर ।

**भावार्थ**—जिनका वचन रूपी अमृत संसार रूपी दावानल से सतप्त प्राणियो के अशुभ परिणामो से उपार्जित नाना पाप रूपी ताप को नाश करने मे समर्थ है, जिसके शरीर की किरणो का समूह पृथ्वी के उत्सव रूपी लक्ष्मी का स्थान है, जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान अत्यन्त शोभनीय है ऐसे श्री शीतलनाथ जिनेश्वर हमारी रक्षा करें ।।१।।

**दीक्षां पीठिकयोदितेन विधिना शिक्षां गृहीत्वा समा-**
**चारेणानुमतो गणेन गणिना प्राप्तश्च सत्सूरिताम् ।**
**षट्त्रिंशद्गुणभूषणो व्यपगतव्यापद्गणं सद्गणं,**
**रक्षन् यः समयं नयत्यतितरां धन्यः स मान्यो मुनिः ।।२।।**

**अन्वयार्थ**—(पीठिकया) पीठिका के द्वारा (उदितेन) कथित (विधिना) विधि से (दीक्षा) दीक्षा और (शिक्षा) शिक्षा को (गृहीत्वा) ग्रहण करके (समाचारेण) समाचार (गणेन) समूह से (अनुमत) स्वीकृत (च) और (गणिना) सूरि के द्वारा (सत्सूरिता) सत्यसूरिपने को (प्राप्त) प्राप्त (षट्त्रिंशद्गुणभूषण) छतीस गुण के भूषण से युक्त

(व्यपगतव्यापद्‌गणं) नष्ट हो गये हैं आपत्तियो के समूह जिसके ऐसे (सद्‌गणं) अपने सघ को (रक्षन्) रक्षा करता हुआ (य) जो (समय) काल को (नयति) व्यतीत करता है (स) वह (मान्य·) माननीय (मुनि) मुनि (अतितरां) अत्यन्त (धन्य:) धन्य है।

**भावार्थ**—पीठिका के द्वारा कथित विधि से दीक्षा और शिक्षा को ग्रहण करके जो समाचार विधि से परिपूर्ण है तथा जिसको आचार्य ने सूरिपद दिया है, जो आचार्य के छत्तीस गुण से शोभित है, सर्व प्रकार से सद्‌गण की रक्षा करता हुआ आपत्ति रहित अपना समय व्यतीत करता है, वह सर्वमान्य मुनि धन्य हैं ।।२।।

ज्योतिः शास्त्रविनूतजातकमतान्नानानिमित्तक्षणात्
प्रश्नाच्चापचयग्रहावलिबलक्षीणत्वसंप्रेक्षणात् ।
प्रश्नस्याक्षरलक्षणेक्षणवशात्कालागमात्स्वायुषो-
मानं द्वादशवर्षसंमितमतो हीन च निश्चित्य सः ।।३।।

पश्चाच्चारुतरात्मसंस्करणधीर्धीरो मुमुक्षुर्गणी
प्रीत्या पालितमात्मनात्मनि महान्स्नेहानुबंधे महत् ।
वृन्दं तुन्दिलरोगिसुतपः शैक्षादिभिक्ष्वन्वितं ।
प्रारोप्यात्मभर वर गणधरे सद्वृत्तलक्ष्मीधरे ।।४।।

रक्षादक्षतमं गणस्य गणिनं सर्वंगणं चादरा-
दाहूय प्रियवाक्चयामृतरसासारेण चेतोगतम् ।
तापं तस्य निरस्य दुस्तरतरं जातं वियोगाद्‌गुरोः
स्वस्यातो नियत विहारमपरं कुर्वन्मुनीन्द्रोत्तमः ।।५।।त्रिकं।।

**अन्वयार्थ**—(ज्योति.शास्त्रविनूतजातकमतात्) ज्योतिषशास्त्र एव जातक मे कथित संकेतो से (नानानिमित्तक्षणात्) नानानिमित्त क्षणो से (प्रश्नात्) प्रश्न से (चापचयग्रहावलिबलक्षीणत्वसंप्रेक्षणात्) ध्वजादि समूह के ग्रहावलि केवल के क्षीणत्व देखने से (प्रश्नस्य) प्रश्न के (अक्षरलक्षणेक्षणवशात्) अलिंगित अत्रिधूमिलादि लक्षण परीक्षक, केवल प्रश्न चूडामणिशास्त्र कथित अक्षरों के लक्षणो के वश से (कालागमात्) काल के ज्ञान से (स्वायुष.) अपने आयुष के (मान) प्रमाण के (द्वादशवर्षसमित) वारह वर्ष प्रमाण (च) और (अत) वारह वर्ष से (हीन) हीन (निश्चित्य) जानकर (पश्चात) पश्चात् (चारुतरात्मसस्करणधी·) श्रेष्ठतर रत्नत्रय से अलकृत है बुद्धि जिसकी ऐसा (स.) वह (धीरः) धीर (मुमुक्षु) मुमुक्षु (गणी) आचार्य (आत्मनि) अपने मे (महास्नेहानुबन्धे) महान स्नेह रखने वाले (सद्‌वृत्तलक्ष्मीधरे) समीचीन व्रत रूपी लक्ष्मी के धारक (गणधरे) गणधर मे (प्रीत्या) आचार्य धर्मानुराग से (पालितं) पालित (तुन्दिलवालरोगिसुतप.शिक्षाभिक्ष्वन्वित) वृद्धावस्था के कारण वृद्धिगत उदर वाले एवं वाल, रोगी, वहूपवासी, शास्त्राभ्यासी, आदि मुनियो से युक्त ऐसे (महत्) महान (वृन्द) समूह वाले (आत्मभरे) अपने भार को (प्रारोप्य) आरोपण करके (गणस्य) गण की (रक्षादक्षतमं) रक्षा करने मे दक्षत्तम (गणिन) आचार्य को (च) और (सर्वं) सर्व (गणं) गण को (आदरात्) आदर पूर्वक (आहूय) वुलाकर (तस्य) उस (गुरोः) गुरु के (वियोगात्) वियोग से (जात) उत्पन्न (चेतोगतम्) चित्तगत (दुस्तरतर) दुस्तरतर (तापं) ताप को (प्रियवाक्चयामृतरसासारेण) प्रिय वचनो के सभूह रूपी अमृत रस की वर्षा से (निरस्य) दूर करके (अतः) इसके वाद (स्वस्य) अपना (अनियतं) अनियत (अपरं) अभिप्राय से (विहार) विहार को (कुर्वन्) करता हुआ (मुनीन्द्रोत्तम.) मुनीन्द्रो मे श्रेष्ठ होता है।

**भावार्थ**—ज्योतिषशास्त्र मे कथित लक्षणो से वा ग्रहो के बलाबल के क्षीणत्व देखने से, अथवा केवलप्रश्न-चूडामणि मे कथित दग्ध अभिधूमित आदि प्रश्नोत्तरो से अपनी आयु को बारह वर्ष प्रमाण या हीनजानकर रत्नत्रय से अलकृत धीरधी मुमुक्षु आचार्य, अपने धर्मानुराग से पालित अपने वृद्ध रोगी, नवीनदीक्षित, महोपवासी, शिक्षित आदि से समन्वित सघ के भार को अपने मे महान् स्नेह रखने वाले शिष्यो मे आरोपित करता है। तदनन्तर अपने संघ की रक्षा करने मे चतुर नूतन आचार्य को और सर्व सघ को बुलाकर उनके गुरु के वियोग से उत्पन्न चेतोगत दुख को, अपने वचनरूपी अमृत वर्षा की धारा से शात करता है। तदनन्तर मैं यहा ठहरूँगा, इस प्रकार के सकल्प से रहित होकर अनियत विहार करता है वह श्रेष्ठ मुनीन्द्र कहलाता है ॥३-४-५॥

**प्रेक्ष्यन्ते बहुदेशसंश्रयवशात्संवेगिताद्याप्तय-**
**स्तीर्थाधीश्वरकेवलोद्गममही निर्वाणभूम्यादयः।**
**स्थैर्यं धैर्यविरागतादिषु गुणेष्वाचार्यवर्ये क्षणा-**
**द्विद्यावित्तसमागमादधिगमो नूत्नार्थस्य च ॥६॥**

**अन्वयार्थ**—(बहुदेशसश्रयवशात्) बहुदेश के संश्रय के वश से (सवेगिताद्याप्तय) सवेग आदि की प्राप्ति (तीर्थाधीश्वरकेवलोद्गममहीनिर्वाणभूम्यादयः) तीर्थाधीश्वर केवलोद्गम भूमि निर्वाण भूमि, आदि के (प्रेक्ष्यन्ते) दर्शन होते हैं (आचार्यवर्ये) आचार्यवर्य के अवलोकन से (क्षणात्) क्षणमात्र मे (धैर्यविरागतादिषु) धीरता वीतरागादि (गुणेषु) गुणो मे (स्थैर्य) स्थिरता (च) और (विद्यावित्तसमागयात्) ज्ञान शास्त्रियो के समागम से (नूत्नार्थसार्थस्य) नूतन अर्थ के समूह का (अधिगयः) ज्ञान होत है।

**भावार्थ**—बहुदेश के सश्रय से सवेगादि की गुणो की प्राप्ति होती है, तीर्थाधीश्वरो के केवलज्ञान को उत्पत्ति के स्थान और निर्वाणभूमि आदि के दर्शन होते हैं। आचार्यवर्य के अवलोकन से धैर्य वीतरागादि गुणो मे स्थिरता आती है और ज्ञानियो के समागम से नूतन अर्थ के समूह का ज्ञान होता है ॥६॥

**सद्भूप बहुसूरिभाक्तिकयुत क्षामादिदोषोज्झित**
**क्षेत्रं पात्रमपीक्ष्यते तनुपरित्यागस्य निःसंगता।**
**सर्वस्मिन्नपि चेतनेतरवहिःसंगे स्वशिष्यादिके।**
**गर्वस्यापचय परीषहजय सल्लेखना चोत्तमा ॥७॥**

**अन्वयार्थ**—(बहुसूरिभाक्तिकयुत) बहु सूरि की भक्ति से युक्त (क्षामादिदोषोज्झित) क्रोधादि दोषो से हित (सद्भूप) योग्य राजा जिसमे हो ऐसा (क्षेत्र) क्षैत्र (पात्र) पात्र, (तनुपरित्यागस्य) शरीर के परित्याग की (नि सगता) न सगता, (सर्वस्मिन्) सर्व (चेतनेतरबहिसंगे) चेतन, अचेतन, वहिरंग परिग्रह मे (अपि) और (स्वशिष्यादिके) स्व शिष्या-दक मे (अपि) भी (गर्वस्य) गर्व का (अपचय) अभाव और (परीषहजय) परीपहो र विजय होने पर (उत्तमा) उत्तम सल्लेखना) सल्लेखना (ईक्ष्यते) देखी जाती है।

**भावार्थ**—जिस क्षेत्र मे आचार्य का भक्त क्षमाशील योग्य राजा हो वह सल्लेखना का क्षेत्र है। जिसकी ारीर मे निस्पृहता है, चेतन, अचेतन वहिरग परिग्रह मे निर्ममत्व है, अपने शिष्यादिक मे गर्व का अभाव है वही सल्लेखना ा उत्तम पात्र कहा जाता है ॥७॥

**सम्यक्कायकषायकार्श्यकरणं सल्लेखनाद्या वरं-**
**र्योगैर्वर्षचतुष्टयं रसपरित्यागैस्तथाब्दद्वयम्।**

सौवीरान्नरसोज्भनैरभिषवान्नेनाब्दमेतद्दल-
बाह्यैर्मन्दतपोभिरुग्रनियमैरब्दार्धमगार्दनम् ॥८॥

**अन्वयार्थ**—(सम्यक्कायकषायकार्श्यकरण) भली प्रकार काय और कषायो को कृश करना (संल्लेखना) सल्लेखना है। उसमे (वरै) उत्कृष्ट (योगै.) योगो के द्वारा (वर्षचतुष्टय) चार वर्ष पर्यन्त (रसपरित्यागै.) रस परित्याग के द्वारा (अब्दद्वय) चार वर्ष व्यतीत करना (तथा) इसके बाद (अब्दद्वय) दो वर्ष (सौवीरान्नरसोज्भनैः) काजी आहार और रस त्याग के द्वारा (अब्द) एक वर्ष (अभिषवान्नेन) वृष्य अन्न के सेवने से (एतत्) यह (दल) उससे आधा वर्ष (बाह्यै) बाह्य (मन्दतपोभि) मन्द मन्द तप के द्वारा (अब्दार्धं) आधा वर्ष (उग्रनियमैः) उग्र नियमो के द्वारा (अंगार्दन) शरीर को कृश करना (आद्या) प्रथम काय (संल्लेखना) सल्लेखना है।

**भावार्थ**—सम्यक् प्रकार से काय और कषाय को कृश करना सल्लेखना है उसमे प्रथम उत्कृष्ट योग के द्वारा चार वर्ष व्यतीत करना, उसके बाद रस परित्याग के द्वारा चार वर्ष, तदनतर काजी आहार रस के त्याग के द्वारा दो वर्ष, वृष्य (गरिष्ठ) पदार्थ का त्याग कर एक वर्ष तदनन्तर बाह्य मन्द तप के द्वारा आधा वर्ष तदनन्तर उग्रनियम के द्वारा आधा वर्ष व्यतीत करके शरीर को कृश करना काय सल्लेखना है ॥८॥

कालं कायवल च देशमशन पान प्रकृत्यादिक।
ज्ञात्वा पित्तकफानिलै· निजयतेर्न स्याद्यथा विक्रिया।
कर्त्तव्यविदुषा तथोक्तविधिभिर्बाह्यैस्तपः प्रक्रमै-
राचार्यानुमतै समाधिफलदैरेषांगसल्लेखना ॥९॥

**अन्वयार्थ**—(काल) काल (कायबल) शारीरिक बल (देशं) देश (अशन) अन्न (पान) पान (च) और (प्रकृत्यादिक) प्रकृत्यादिको (ज्ञात्वा) जानकर (यथा) जिससे (पित्तकफानिलै) पित्त, कफ, वायु के द्वारा (निजमते) निज-मति की (विक्रिया) विक्रिया (न) नही (स्यात्) हो (तथा) उस प्रकार (आचार्यानुमतैः) आचार्य के द्वारा अनुमत (समाधिफलदै) समाधि के फल को देने वाले (उक्तविधिभि) पूर्व कथित विधि वाले (बाह्यैः) बाह्य (तपक्रमै) तप क्रम से (विदुषा) विद्वानो के द्वारा (एषा) यह (अगसल्लेखना) अग सल्लेखना (कर्तव्या) करनी चाहिये।

**भावार्थ**—जिससे वात, पित्त और कफ से अपने ज्ञान मे विकृति नही हो ऐसे काल, शरीर, बल, देश, अन्न, पान और प्रकृति आदि को जान करके आचार्य के द्वारा अनुगत समाधिरूप फल के देने वाले पूर्व कथित विधि से बाह्य तप के द्वारा विद्वानो को यह काय सल्लेखना करनी चाहिये ॥९॥

सद्ध्यानप्रकरै कषायविषया सल्लेखना श्रेयसी-
स्वेष्टानिष्टवियोगयोगयुगजे बाधानिदानोद्भवे।
इत्यार्त्तस्य चतुर्विधस्य विजयो हिंसामृषास्तेयस-
रक्षानन्दविभेदतोऽशुभकृतो ध्यानस्य रौद्रस्य च ॥१०॥

**अन्वयार्थ**—(सद्ध्यानप्रकरैः) सद्ध्यान के समूह से (स्वेष्टानिष्टवियोगयोगयुगजे) स्व इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग से उत्पन्न (इति) इस प्रकार (चतुर्विधस्य) चार प्रकार के (आर्तस्य) आर्त ध्यान परिग्रह का (च) और हिंसाभृषास्तेयसरक्षानन्दविभेदत ) हिंसा, असत्य, स्तेय और मरक्षणानन्द के भेद से (अशुभकृत ) अशुभकृत (रौद्रस्य) रौद्र (ध्यानस्य) ध्यान की (विजय.) विजया(कषायविषया) कषाय को कृश करने वाली (श्रेयसी) कल्याणकारी उत्तम (सल्लेखना) सल्लेखना है।

**भावार्थ**—धर्म और शुक्ल ध्यान के द्वारा इष्टवियोग, अनिष्टसयोग, पीडाचितवन और निदानवध नामक चार प्रकार के आर्त्तध्यान पर विजय और हिंसा नन्द, मृषानन्द, स्तेयानन्द एव परिग्रहानन्द इन चार प्रकार के रौद्र ध्यान पर विजय प्राप्त करना कषाय को कृश करने वाली उत्तम सल्लेखना है ।।१०।।

**ध्यातृध्यानविचित्यचिंतनफलान्यंगानि चत्वारि तैः**
**स्याद् ध्यान सदसत्व तत्र भवति ध्यातोत्तमैरन्वितः।**
**आद्यैः संहननैस्त्रिभिस्त्रिभिरुपेतोऽन्त्यैः स नाऽस्मिन्पुनं**
**चिन्तातर्वहिरगकारणसृणिप्रेर्यो हि कार्यद्विप ।।११।।**

**अन्वयार्थ**—(ध्यातृध्यानविचित्यचिंतनफलानि) ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का फल (चत्वारि) चार (अगानि) अग हैं (तत्र) उन चारो मे (सदसत्) सद् और असत् (शुभ और अशुभ) (ध्यान) ध्यान (भवति) होता है (आद्यै) आदि (त्रिभि.) तीन (त्रिभि) तीन (तै) उन (उत्तमै) उत्तम (सहननै) संहननो से (अन्वित·) युक्त (ध्याता) ध्याता (भवति) होता है। (अन्त्यै) अन्तिम संहननो से [स] वह ध्यान [न] नही होता है। [हि] क्योकि [पुनः] पुन [अस्मिन्] इस [चिन्तान्तर्वहिरगकारणसृणि] चिन्ता अतरग बहिरग कारण रूप मार्ग मे [कार्यद्विप] कार्यरूपी हाथी [प्रेर्य] प्रेरित करने योग्य है।

**भावार्थ**—ध्यान, ध्याता, धेय और ध्यान का फल यह चार ध्यान के अग हैं। शुभ धर्म्य ध्यान, शुक्ल ध्यान, और अशुभ आर्त्त रौद्र ध्यान यह दो प्रकार का ध्यान है। आदि के उत्तम तीन संहनन से युक्त मुनि इनके ध्याता होते हैं। अन्त के तीन सहननवाला ध्याता नही है। क्योकि उत्तम संहनन से ही चितवन करने योग्य अन्तरग बहिरग कारणरूपी मार्ग मे कार्यरूपी हाथी प्रेरित होता है।

"ध्यान का लक्षण"

**एकस्मिन्विषयेऽग्रमाननमभूदस्या मतेरित्यसा**
**वेकाग्रा विषयोपयोगनिरता चिता निरोधोऽचला।**
**वस्था स्यान्निजगोचराचलमनो ध्यान तदन्तर्मुहू**
**र्त्तावस्थानमतीवदुर्धरतया नाऽतः पर तिष्ठति ।।१२।।**

**अन्वयार्थ**—(अस्या) इस (मते) मति का (एकस्मिन्) एक (विषये) विषय मे (अग्रमाननं) एकाग्रता (अभूत्) होती है (इति) इस प्रकार (असौ) यह (एकाग्रता) एकाग्रता (विषयोपयोगनिरता) विषयो मे उपयोग की लीनता (चितानिरोध) चिता का निरोध [अचलावस्था] अचल अवस्था [निजगोचराचलमन] अपने गोचर अचल मन [ध्यान] ध्यान है [तत्] वह ध्यान [अन्तर्मुहूर्त्तावस्थान] अन्तर्मुहूर्ताअवस्थानवाला [स्यात्] होता है [अतीवदुर्धरतया] अत्यन्त दुर्धर होने से [अत पर] इसके आगे यह ध्यान [न] नही [तिष्ठति] रहता है।

**भावार्थ**—एक विषय मे मन की एकाग्रता मे चित्त का स्थिर होना, विषय में उपयोग का लीन होना, चिन्ता का निरोध, अचल अवस्था, निजगोचर अचलमन होना ध्यान है। उस मन को एकाग्र करना अत्यन्त दुर्धर है, इसलिये अन्तर्मूहूर्त से अधिक समय तक मन स्थिर नही रह सकता है ।।१२।।

**मिथ्यात्वोरुतमस्तिरस्कृतसुदृग्ज्ञानोऽधिकक्रोधवान्**
**स्तब्ध सत्स्वपि टांचनांचितमतिर्लुब्धः परार्थेष्वपि।**

दुर्लेश्यापशगाशयश्च भवति ध्याताऽशुभध्यानयोः-
ध्येयं ध्यानविशेषलक्षणविनिर्देशक्षणे लक्ष्यते ॥१३॥

**अन्वयार्थ**—[मिथ्यात्वोरुतमस्तिरस्कृतसुदृग्ज्ञान.] मिथ्यात्व रूपी महान अन्धकार से तिरस्कृत है सम्यग्दर्शन और ज्ञान जिसका [अधिकक्रोधवान्] अधिक क्रोधी [स्तब्ध.] स्तब्ध [सत्सु] समीचीन वस्तु मे [अपि] भी [वञ्चनां चित्तामति:] वञ्चना से व्याप्त है मति जिसकी [परार्थेष्वपि] दूसरे के धन मे [लुब्ध] लुब्ध [दुर्लेश्यावशगाशय] दुर्लेश्या मे वशगत आशय वाला [अशुभध्यानयो.] अशुभ ध्यान का [ध्याता] ध्यान करने वाला [भवति] होता है [च] और [ध्यानविशेषलक्षणनिर्देशक्षणे] ध्यान विशेष लक्षण के विनिर्देशक्षण मे [ध्येयं] ध्येय [लक्ष्यते] कहा जायेगा ।

**भावार्थ**—मिथ्यात्वरूपी महान अन्धकार से तिरस्कृत है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र जिसका ऐसा अत्यन्त क्रोधी मूर्ख, सत्पदार्थों मे भी वंचनमति पर धन का लोलुपी, दुर्लेश्या के वशीभूत हुआ, प्राणी, आर्त्तरौद्र ध्यान का ध्याता होता है । अशुभ ध्यान का ध्येय ध्यान, विशेष लक्षण के वर्णन करने के क्षण मे कहेंगे ॥१३॥

जीवाजीवकलत्रपुत्रकनकाऽगारादिकादात्मनः
प्रेमप्रीतिवशात्मसात्कृतबहिः संगाद्वियोगोद्गमे ।
क्लेशेनेष्टवियोगजार्त्तमचलं तच्चिन्तनं मे कथ
न स्यादिष्टवियोग इत्यपि सदा मन्दस्य दुःकर्मणः ॥१४॥

**अन्वयार्थ**—(आत्मनः) अपने (जीवाजीवकलत्रपुत्रकनकाऽगारादिकात्) जीव अजीव, स्त्री, पुत्र, सुवर्ण घरादि से (प्रेमप्रीतिवशात्मसात्कृतबहि ) प्रेम और प्रीति के वश से आत्म स्वात्कृत वहिरंग परिग्रह के (वियोगोद्गमे) वियोग हो जाने पर (क्लेशेन) क्लेश से (मे) मेरा (इष्टवियोग ) इष्ट वियोग (कथ) किसी प्रकार (न) नही (स्यात्) होवे (इति) इसप्रकार (मन्दस्य) मन्द (कर्मण ) कर्म का (अचलं) अचल (तच्चितनं) चितवन करना (इष्टवियोगजार्तम्) इष्ट वियोग से उत्पन्न आर्त ध्यान है ।

**भावार्थ**—अपने चेतन, अचेतन, पुत्र, स्त्री, सोना, घर, आदि के प्रेम और प्रीति के वशीभूत होकर आत्मसात किये हुये वहिरग परिग्रह के वियोग के कारण मिलने पर अज्ञानी के दुष्कर्मो के उदय से ऐसा निरन्तर चितवन होता है कि मेरे किसी प्रकार से इष्ट का वियोग न होव । यह इष्ट वियोग जन्य आर्त्तध्यान है ॥१४॥

क्रूरैर्व्यन्तरचौरवैरिमनुजैर्व्यालैर्मृगैरापदि
प्राप्तायां गरलादिकैश्च महती तन्नाशचिन्ताऽऽपदा ।
संयोगो न भवेत् सदा कथमिति क्लेशातिनुन्नं मनः
श्चार्त्तध्यानमनिष्टयोगजनितं जातदुरन्तैनसः ॥१५॥

**अन्वयार्थ**—(क्रूरै ) क्रूर (व्यन्तरचौरवैरिमनुजै ) व्यन्तर, चौर, वैरी मनुष्य (व्यालै ) सिंह (मृगै.) पशु (च) और (गरलै.) विषादि के द्वारा (आपदि) आपत्ति (प्राप्ताया) आ जाने पर (महती) महान (तन्नाशचिंता) उसके नाश की चिन्ता (कथ) किसी प्रकार से भी (आपदासंयोग ) आपत्ति का सयोग (न) नही (भवेत्) होवे (इति) इसप्रकार (सदा) हमेशा (क्लेशातिनुन्न) क्लेश से पीडित (मन ) मन (दुरन्तैनसः) पाप से (जातं) उत्पन्न (इष्टवियोगजनितं) इष्ट वियोग जनित (आर्तध्यान) आर्त्तध्यान है ।

**भावार्थ**—क्रूर, व्यन्तर, चौर, वैरी मानव, व्याल, मृग, विष आदि पदार्थों के द्वारा आपत्ति आने पर, उस

आपत्ति के नाश की चिन्ता उत्पन्न होती है। मेरे अनिष्ट पदार्थों का सयोग न हो। इस प्रकार की चिन्ता से चित्त निरन्तर आकुलित रहता है। वह पापो का कारण भूत अनिष्ट संयोग नाम द्वितीय आर्त्तध्यान है ॥१५॥

बाधासंजनितार्तमर्तिनिहित स्वान्तं नितान्तस्थिर-
तीव्राद्विश्वपरीषहान्मम कदा विश्लेष इत्यगिनः।
दीनस्यास्तविशिष्टवस्तुविषयज्ञानस्य न स्यात्कथं
क्लेशाल्या मम जातु संगम इति क्लिष्टं च तस्त्यात्मनः ॥१६॥

**अन्वयार्थ**—(तीव्रात्) तीव्र (विश्वपरीषहात्, विश्वपरावह से (मम) मेरा (विश्लेषः) वियोग (कदा) कब (स्यात्) होता (वा) अथवा (क्लेशाल्या) क्लेशो के समूह का (मम) मेरे (जातु) कभी भी (सगम) संयोग (न) नही (स्यात्) होवे (इति) इसप्रकार (अस्तविशिष्टवस्तुविषयविज्ञानस्य) अस्त हो गया है विशिष्ट वस्तु विषय का विज्ञान जिसका ऐसे (दीनस्य) दीन (अगिन) प्राणी का (मन) मन (क्लिष्ट) क्लेशित होता है। (च) और (आर्त्तनिहितं) दु.ख मे क्षिप्त (स्वात) मन (नितान्तस्थिर) अत्यन्त स्थिर रहता है (तत्) वह (बाधासंजनितार्त्तमतिनिहित) रोग से उत्पन्न आर्त्त-ध्यान मे निहित ध्यान (स्यात्) होता है।

**भावार्थ**—तीव्र विश्व परीषहो से मेरा वियोग कब होगा। अथवा क्लेशो के सभूह का मेरे कभी सयोग न होवे इस प्रकार की चिन्ता से नष्ट हो गया है या विशिष्ट विज्ञान जिसका, ऐसे दीन प्राणी का मन जब क्लेशित होता है और दु ख मे मन अत्यन्त स्थिर रहता है वह रोगो से उत्पन्न (वेदना जन्य) आर्त्तध्यान है ॥१६॥

नानोपायचयेन नीचचरितैर्भ्रान्त्वा विशालामिला-
माभील मकराकर च वहुशो तुच्छोच्छया प्राप्य यत्।
प्राप्यं पुण्यवता जनेन कनक कान्तं च कान्तादिकं
तत्कांक्षाक्षुभिता मतिर्वत् निदानार्तं महार्तिप्रदम् ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—(नासोपायचयेन) नाना प्रकार के उपायो के समूह के द्वारा (नीचचरितै) नीच आचरणो के द्वारा (विशाला) विशाल (इला) पृथ्वी पर (भ्रान्त्वा) भ्रमण करके (च) और (बहुश) बहुत बार (तुच्छेच्छया) तुच्छा इच्छा से (आभील) भयकर (मकराकरं) समुद्र को (प्राप्य) प्राप्त करके (पुण्यवता) पुण्यवान (जनेन) मानव के द्वारा (प्राप्य) प्राप्त करने योग्य (यत्) जो (कनक) सुवर्ण (च) और (कान्त) मनोज्ञ (कान्तादिक) कान्ता आदि है (तत्कांक्षा-क्षुभिता) उस धनादि की इच्छा से क्षुभित (मति) मति है (महार्तिदं) महान अर्ति को देने वाला (निदानार्त) निदान नामक आर्त ध्यान है (वत) यह खेद की बात है।

**भावार्थ**—अनेक प्रकार के उपायो तथा नीच आचरणो के द्वारा विशाल पृथ्वी पर भ्रमण करके तथा भयकर समुद्रो की अवगाहना करके प्राप्त योग्य धन, धान्य, मनोज्ञ स्त्री आदि के प्राप्ति की वाछा से जो मन क्षोभित होता है मुझे ये ससारिक सुख प्राप्त हो ऐसी मानसिक आकुलता है। वह महान दुःख को देने वाला निदान नामक आर्त ध्यान है ॥१७॥

ग्लान्यश्रू दृगमशोकशोषजडतामूर्छागकपोत्कता
नि.श्वास स्वरभंगकार्ण्यकृशतामौनाऽभिवीक्षामृति।
प्रस्वेदाऽनिमिषेणास्थितिरुजायाञ्चामृषोक्त्यादयः
स्पष्टाः स्वस्य परस्य वाऽऽर्त्तजनितास्तज्ज्ञापकाः कायिकाः ॥१८॥

**अन्वयार्थ**—(ग्लान्यश्रूद्गमशोकशोषजडतामूर्च्छांगकपोत्कता) ग्लानि, अश्रुओं का निकालना, शोक, रोष, जड़ता, मूर्च्छा, अंग की कंपन (निःश्वासस्वरभंगकार्ष्ण्यकृशतामौनाऽभिवीक्षामृतिप्रस्वेदा अनिमेषणास्थिति रुजायाच्ञामृषोक्त्यादय) दीर्घ निश्वास, स्वर, भंग, कृष्ण, कृशता, मौन, वार बार देखना, मृत्यु, बार-बार पसीना आना, अनिमिषेण से देखना, अस्थिरता रोग, याचना, असत्य भाषण आदि (स्वस्य) अपने और (परस्य) पर के (तज्ज्ञापका) आर्तध्यान की ज्ञापक (वा) अथवा (आर्तजनिता) आर्त्तध्यान से जनित (कायिका) काय की चेष्टा (स्पष्टं) स्पष्ट देखी जाती है।

**भावार्थ**—ग्लानि, बार बार आँखो से अश्रुधारा निकलना, शोक, कंठ का शोष होना, जड़ता होना, मूर्च्छा होना, शरीर मे कम्पन होना, निश्वास चलना, स्वर देखना, मृत्यु होना, शरीर मे पसीना निकलना, विना निमेष देखना रोग याचना असत्य भाषण आदि, स्व के और पर के आर्तध्यान से उत्पन्न काय की चेष्टाए स्पष्ट हैं ॥१८॥

**अर्तिर्दुःखमसातजातजनितं स्यादार्त्तमर्तौ भवं**
**पापाऽऽदाननिदानमार्द्रसिचयं यद्वद्रजः संश्रयम् ।**
**मिथ्यादृष्टिगुणादिषड्गुणपदं येन प्रमादास्पदं**
**दुर्लेश्यात्रयजं सुदुःखजनकं तिर्यग्गतिप्रापकम् ॥१९॥**

**अन्वयार्थ**—(असातजातजनितं) असाता वेदनीय से उत्पन्न (दुःखं) दुख (अर्तिः) अर्ति है (अर्तौ) अर्ति मे (भवं) होने वाला (आर्तं) आर्त (स्यात्) होता है (यद्वद्) जिस प्रकार (आर्द्रसिचयं) गीला वस्त्र (रजःसंश्रयं) रज से संश्रय का कारण है उसी प्रकार आर्त्तध्यान (पापनिदान) पाप के आदान का कारण है (येन) जिससे (मिथ्यादृष्टिगुणादिषड्गुणपद) मिथ्यात्वादि षट् गुण स्थान होते है (प्रमादास्पदं) प्रमाद का स्थान है (दुःखजनकं) दुःख का जनक है (तिर्यग्गतिप्रापकम्) और तिर्यंच गति का प्रापक है।

**भावार्थ**—असाता वेदनीय से उत्पन्न होने वाले दु.ख को अर्ति कहते हैं। और आर्त से होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है। जिस प्रकार आर्द्र वस्त्र धूलि के संचय का कारण होता है उसी प्रकार आर्तध्यान पाप के आदान का कारण है। मिथ्यात्व गुण स्थान से लेकर प्रमत्त गुणस्थान तक आर्त्तध्यान का अस्तित्व है। यह प्रमाद का स्थान है, तीन अशुभ लेश्या से उत्पन्न होता है, दुःख जनक है और तिर्यंच गति मे ले जाने वाला है ॥१९॥

**हिंसानन्दमसातकारणगणैर्हिंसारुचिर्देहिनां**
**भेदच्छेद विदारणासुहरणैरन्यैश्च तैर्दारुणैः ।**
**शेषेर्ष्याद्युदितैरसत्यवचनैरन्यस्य हान्या मृषा-**
**नंदरौद्रमसातसन्ततिपदे मिथ्याप्रलापे रुचिः ॥२०॥**

**अन्वयार्थ**—(भेदच्छेदविदारणासुहरणैः) भेद, च्छेद, विदारण, प्राणहरण आदि के द्वारा (अन्यैः) अन्य भी (तैः) उन (दारुणैः) दारुण (असातकारणगणैः) असात कारणों के समूह के द्वारा (देहिनां) प्राणियो की (हिंसारुचिः) हिंसा मे रुचि करना (हिंसानंद) हिंसानन्द नामक प्रथम रौद्रध्यान है (शेषेर्ष्याद्युदितैः) शेष ईर्ष्या आदि से कथित (असत्यवचनैः) असत्य वचनो के द्वारा (अन्यस्य) दूसरे की (हान्या) हानि के लिए (असातसन्ततिपदे) असाता की सन्तति के स्थान (मिथ्या प्रलापे) मिथ्याप्रलाप मे (रुचि) रुचि रखना (मृषा) मृषानन्द नामक द्वितीय (रौद्र) रौद्र ध्यान है।

**भावार्थ**—दुःख के कारण भूत शस्त्र आदि के द्वारा छेदन, भेदन विदारण आदि दारूण कारणो से प्राणियो के हिंसा में आनन्द मानना हिंसानन्द नामक रौद्र ध्यान है। क्रोध, ईर्ष्या आदि के वशीभूत होकर किसी के धन, यश के घात करने के लिए असत्य प्रलाप मे रुचि करना मृषानन्द नामक द्वितीय आर्त्तध्यान है ॥२०॥

स्तेयानन्दमवाप्य यत्परधनं वध्यादिनिंद्यैहितै-
रानंदित्वमवाप्तुमुत्सुकतरं चेतश्च तैस्तद्भवेत्।
स्वं संरक्ष्य विपक्षदूरमुदिता तोषोग्रता या तु सं-
रक्षानन्दमपि स्ववस्तु निखिलं निर्वैरि कुर्वे इति ॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(तैः) उन (वन्ध्यादिनिंद्यहितैः) वन्ध्यादि निन्दनीय चेष्टाओं के द्वारा (परधनं) दूसरे के धन को (अवाप्य) प्राप्त करके (आनन्दित्वं) आनन्दत्व को (अवाप्तुं) प्राप्त करने के लिए (उत्सुकतरं) उत्सुकतर (चेतः) चित्त है (तत्) वह (स्तेयानंद) स्तेयानन्द (भवेत्) होता है (स्व) धन की (संरक्ष्य) रक्षा करके (या) जो (विपक्षदूरमुदितातोषोग्रता) विपक्ष के दूर करने मे हर्षित होकर उग्र सन्तोष है वह (संरक्षानन्द) संरक्षानन्द नामक रौद्र ध्यान है (अथवा) मैं (निखिलं) सारी (स्ववस्तु) अपनी वस्तु को (निर्वैरि) वैर रहित (कुर्वे) करता हूँ, (इति) इस प्रकार के विचार का नाम संरक्षानन्द रौद्रध्यान है।

**भावार्थ**—वध बंधन आदि निंदनीय चेष्टाओं के द्वारा दूसरे के धन को प्राप्त करके आनन्द को प्राप्त करने के लिए जो चित्त की उत्सुकता है उसको स्तेयानन्द रौद्रध्यान कहते हैं। अपने धन की रक्षा करने के लिए विपक्ष को दूर करने मे जो सन्तोष होता है अथवा मेरी समस्त वस्तुओं को वैरियों को दूर करके वस्तु को निर्विघ्न रखता हूँ, ऐसा चिंतवन है उसको संरक्षणानन्द रौद्रध्यान कहते हैं ॥२१॥

अक्षापाटवमाननाक्ष्यरुणता दाहश्च देहे महान्
हेत्युत्क्षेपविरुक्षवाग्भृकुटय शक्तिप्रशंसात्मनः।
स्वेदस्वाधरनिष्ठुरग्रहकराघातांगकंपादय
कायांकाः स्वपरावबोधविषयास्तद्रौद्रभावोद्भवाः ॥२२॥

**अन्वयार्थ**—(अक्षापाटव) इन्द्रिय के विकलता (आननाक्ष्यरुणता) आँख मुख का रक्त होना, (देहे) शरीर मे (महान्) महान (दाह) दाह (हेत्युत्क्षेपविरुक्षवाग्भृकुटय) शस्त्र का उत्क्षेपण, विरूक्ष वचन बोलना, भृकुटिका चढना (आत्मनः) अपनी (शक्तिप्रशंसा) शक्ति की प्रशंसा, (स्वेदस्वाधरनिष्ठुरग्रहकराघातांगकंपादय:) पसीना आना, अपने अधरो को निष्ठुरता से ग्रहण, हाथो का घात अंग का कम्पन आदि होना (स्वपरावबोधविषयाः) स्व और पर के दृष्टिगोचर होने वाले (तद्रौद्रभावोद्भवा) उस रौद्र भाव से उत्पन्न (कायांका) कायिक चिह्न है।

**भावार्थ**—इन्द्रियो की विकलता, आंख और मुख की लालिमा का होना, शरीर मे महादाह, शस्त्र का उत्क्षेपण कठोर वचन बोलना, भृकुटि का चढाना, अपनी शक्ति की प्रशंसा करना, शरीर मे पसीना आना, होठो का दशन (काटना) हाथो का घात प्रतिघात, अंगो का कम्पन आदि स्व और पर के दृष्टिगोचर होने वाले रौद्रध्यान जन्य शरीर के चिह्न है ॥२२॥

रुद्रः क्रूरताशयो गतदयो रौद्रं हि रुद्रं भवं
आर्द्रं चर्म यथोरुधूलिनिलयं तद्वत्कुकर्मालयम्।
पंचस्वादिगुणेषु तीव्रतरतत्कृष्णात्रिलेश्योद्गतं
प्रोद्यतीव्रतरार्त्तिनारकगतिप्राप्तेर्निमित्तं मनम् ॥२३॥

**अन्वयार्थ**—(क्रूरताशय) क्रूर चित्त वाला (गतदय) दया रहित भाव (रुद्र) रुद्र है (हि) निश्चय से

(रौद्रं) रौद्र मे (भवं) होने वाले परिणाम (रौद्रं) रौद्र ध्यान है (यथा) जैसे (आर्द्रं) आर्द्र (चर्म) चमडा (उरुधूलिनिलय) महान धूलि का स्थान होता है (तद्वत) उसी प्रकार (कुकर्मालयम्) कुकर्मों का स्थान है (पचसु) पाँच मिथ्यात्व आदि गुण स्थानो मे (तीव्रतरतत्कृष्णात्रिलेश्योद्गत) तीव्रतर कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या से उत्पन्न (प्रोद्यत्तीव्रतरार्त्तिनारकगतिप्राप्तः) और उत्पन्न तीव्रतर अर्त्ति से नारक गति प्राप्ति का (निमित्त) निमित्त (मत) माना है।

**भावार्थ**—निर्दयता सहित चित्त की क्रूरता रुद्र है और रुद्र मे होने वाला भाव रौद्र है। जिस प्रकार आर्द्र चर्म महान धूलि का स्थान होता है। उसी प्रकार रौद्रध्यान महान कुकर्मो का आलय (स्थान) है। मिथ्यात्वादि पाच गुण स्थानो मे रौद्र ध्यान होता है, तीव्रतर कृष्ण नील कापोत लेश्या इसकी जननी है। यह नरक गति का कारण है ॥२३॥

"शुभ ध्यान"

ध्याताऽपेतजनोक्तगीतविततातोद्यादिकोलाहले
स्थाने स्थावरजगमागिरहिते पूते नितांतं समे।
निश्छिद्रे निरुपद्रवे पृथुशिलेलाद्ये सुखस्पर्शिनि
प्रध्यानाभिरतः स्थितो न नियमः स्वभ्यस्तयोगे स्वयम्।२४॥

**अन्वयार्थ**—(अपेतजनोक्तगीतविततातोद्यादिकोलाहले) मनुष्यो के द्वारा गाये गये गीत का समूह वादित्र आदि कोलाहल से रहित (स्थावरजंगमागिरहिते) स्थावर और जगम प्राणियो से रहित (पूते) पवित्र (नितांत) अत्यन्त (समे) समान (निश्छिद्रे) निश्छिद्र (निरुपद्रवे) निरुपद्रव (सुखस्पर्शिनि) सुख स्पर्श वाली (पृथुशिलेलाद्ये) विस्तरित शिला, पृथ्वी आदि पर (स्थितः) स्थित (ध्याता) ध्यान करने वाला (प्रध्यानाभिरत) उत्कृष्ट ध्यान मे लीन होता है (तु) परन्तु (अभ्यस्तयोगे) अभ्यस्त योग मे (अयं) यह (नियम) नियम (न) नही है।

**भावार्थ**—मानवो के द्वारा गाये गये गीत वादित्र कोलाहल और त्रस स्थावर आदि जीवो से रहित पवित्र निश्छिद्र, निरुपद्रव, समान, सुख स्पर्श वाली शिला या पृथ्वी आदि पर बैठकर ध्याता ध्यान करता है। ऐसा स्थान ध्यान के योग्य माना है। परन्तु जो अभ्यस्त योगी है, उनके लिए विशेष स्थान का नियम नही है ॥२४॥

यानांगावयवप्रचालनवचोजृंभाद्यभावो मुनि-
र्व्युत्सर्गेण समावलवकशिलास्तभो निखातो यथा।
पर्यंकेन यथासुख स्वमनसः शय्यादिभिर्वा स्थितो
निःसगोऽस्तसमस्तवाह्यविषयव्यापृत्यशेषेन्द्रियः ॥२५॥

प्राणापानविनिग्रहादतितरां भ्रांतिमंतेरुच्छ्वस-
न्मन्द मन्दमतो न नेत्रयुगल सम्यग्निमीलन्न च।
प्रोन्मीलन्दशनैर्मनाग्दशनपंक्त्यग्राणि विस्रन्मनः-
शांति मूर्तिमतीमिवात्तिजयिनीं स्वां मूर्तिमप्यूर्जिताम्।२६।

सद्दृष्टिर्मृदुताऽर्जवादिसहितः श्रेण्योरशेषश्रु त·
स्याद्ध्याता दशपूर्वविच्च नवपूर्वज्ञो परश्चाऽपि च।

ध्येयन्यस्तमना निरस्तनियमः कालेषु संध्यादिषु
निर्वाणोचितमाद्यसहननमेवाऽस्मिन्पुनर्ध्यातरि ॥२७॥त्रिकं।

**अन्वयार्थ**—(यानागावयवप्रचालनवचोजृ भाद्यभाव ) गमन, अग के अवयव का प्रचालन, वचन, जंभाई आदि का अभाव है जिसके (यथा) जैसे (निखातः) खोदा हुआ (समावलंबकशिलास्तभो) स्थित शिला का स्तम्भ है उसी प्रकार (व्युत्सर्गेण) व्युत्सर्ग से (पर्यंकेण) पर्यंकासन से (वा) अथवा (स्वमनसः) अपने मन की (यथा) जैसे (सुख) शाति के अनुसार (शय्यादिभि ) शय्या (आसन) आदि से (स्थित ) स्थित (निःसग ) निसग (अस्तसमस्तबाह्यविषयव्यापृत्यशेषेन्द्रिय.) नष्ट हुये समस्त विषय से व्यावृत है अशेष इन्द्रियाँ जिसकी ऐसा (मुनि ) मुनि (प्राणापानविनिग्रहादतितरा) श्वासोच्छ्वास के निग्रह से (मन्द-मन्दं) मन्द मन्द (उच्छ्वसन) श्वास लेता हुआ (सते ) मति की (अतितरा) अत्यन्त (भ्रान्ति.) भ्रान्ति वाला (अत ) इसलिये (नेत्रयुगल) नेत्रयुगल को (सम्यग्) भली प्रकार (न) नही (निमीलन्) वन्द करता हुआ (दशनै.) दान्तो के द्वारा (मनाग्) थोडी सी (दशनपक्त्यग्राणि) दान्तो की पंक्ति के अग्रभाग को (च) और (स्वा) अपनी (ऊर्जिता) ऊर्जित (मूर्ति) शरीर को (अपि) भी (मूर्तिमती) मूर्तिमान के (इव) समान (आर्तिजयिनी) आर्त्त ध्यान के विजय को (विभ्रन्) धारण करता हुआ (सद्दृष्टि ) सम्यग्दृष्टि (मृदुताऽऽआर्जवादिसहित.) मृदुता आर्जव आदि से सहित (दशपूर्ववित्) दश पूर्व को जानने वाला (नवपूर्वज्ञः) नौ पूर्व का ज्ञाता (श्रेण्यो.) दोनो श्रेणी पर आरुढ (च) और (अशेष श्रु त।) अशेष श्रु त को जानने वाला केवली (परत्रापि) अन्यत्र भी (ध्येयन्यस्तमना) ध्येय मे स्थित है मन जिसका (सन्ध्यादिषु) तीन संध्याओ के (कालेषु) कालो मे (निरस्तनियम.) निरस्त नियम वाला (मुनि ) मुनि (ध्याता) ध्यान करने वाला (स्यात्) होता है (पुन.) और (अस्मिन्) इस (ध्यातरि) ध्यान करने वालो मे (निर्वाणोचित) निर्वाण के उचित (आद्य ) प्रथम (सहनन) सहनन (एव) ही होता है।

**भावार्थ**—जिसके गमन के समय अंग की चचलता, वचन, जंभाई आदि का अभाव है, जो शिला मे अकित स्तम्भ के समान कार्योत्सर्ग से अचल खडा है अथवा पर्यंकासन से बैठा है, यथायोग्य शय्या आदि से भी स्थित है, परिग्रह रहित है, समस्त इन्द्रियो के व्यापार से शून्य है, प्राणापान के निरोध से अत्यन्त मन्दमन्द श्वासोच्छ्वास ले रहा है, जिसके नेत्र अर्द्धोन्मीलित हैं दातो की पक्ति दातो पर धारण किये हुये है, मन अत्यन्त शात है, आर्तध्यान को जीतने वाली अत्यन्त सौम्य शरीर की आकृति को धारण करता है, क्षपक श्रेणी तथा उपशम श्रेणी पर आरूढ है। नव पूर्व या दशपूर्व का ज्ञाता सम्यग्दृष्टि आर्जवादि गुणो से युक्त होकर ध्येय मे व्यस्त है मन जिसका ऐसा मुनि तीनो काल की सध्या के समय मे निरस्त नियम से ध्याता होता है। इस ध्याता के निर्वाण के योग्य प्रथम सहनन होता है ॥२५,२६,२७॥

धर्म्यं शुक्लमिति द्विभेदमुदित सद्ध्यानमाद्यंतयो-
राज्ञाऽपायविपाकगाच्च विचयात्सस्थानगात्स्पाच्चतु।
र्भेद भूरि विकल्पजालकलित जैनान्नयान्नैगमा-
त्सर्वं सर्वविदो वचो न हि नयापेतयतो वस्तु च ॥२८॥

**अन्वयार्थ**—(सद्ध्यान) सद्ध्यान (धर्म्यं) धर्मध्यान (शुक्ल) शुक्ल ध्यान (इति) इस प्रकार (द्विभेद) दो प्रकार (उदित) कहा है (तयो ) उन दोनो मे (आद्य ) धर्मध्यान (आज्ञाऽपायविपाकगात्) आज्ञा, अपाय, विपाक (सस्थानगात्) सस्थान का (विचयात्) विषय होने से (चतुर्भेद) चार प्रकार का है (जैनात्) जिनेन्द्र भगवान के (नैगमात्) नैगम (नयात्) नय की अपेक्षा से (भूरिविकल्पजालकलितं) बहुत से विकल्प जाल से कलित है (यत.) क्योकि (सर्वविद ) सर्वज्ञ भगवान के (सर्वं) सब (वच) वचन (च) और (वस्तु) वस्तु (नयापेत) नय से रहित (न) नही है।

**भावार्थ**—सद्ध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान के भेद से दो प्रकार का है। आज्ञाविचय, अपायविचय

विपाकविचय और संस्थानविचय के भेद से धर्मध्यान चार प्रकार का है। नैगमनय की अपेक्षा धर्मध्यान अनेक प्रकार का है। सर्वज्ञ के वचन और अखिल वस्तु नय रहित नही है ॥२८॥

विज्ञातुं न तु शक्यमावृतियुताध्यक्षानुमानदिना-
त्यक्षानंतविपर्त्तवर्त्तिसकलं वस्त्वस्तदोषार्हताम्।
आज्ञावाग्विचयस्तयोक्तमनृतं नैवेति तद्वस्तुन-
स्चिन्ताज्ञाविचयो विदुर्नयचयः संज्ञानपुण्योदयः ॥२६॥

**अन्वयार्थ**—(अत्यक्षानंतविपर्त्तवर्त्तिसकल) इन्द्रियातीत अनन्त पर्यायवर्ति सकल (वस्तु) वस्तु (आवृतियुताध्यक्षानुमानादिना) आवरण युक्त प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमानादि के द्वारा (विज्ञातुं) जानने के लिए (शक्यम्) शक्य (न) नही है (तु) परन्तु (अस्तदोषार्हताम्) वीतरागो अर्हंत की (आज्ञावाग्विचयस्तयोक्तमनृत) आज्ञा से वचनो का विचार है कि (तया) भगवान की आज्ञा से (उक्त) कहा गया वस्तु का स्वरूप (अनृत) असत्य (नैव) नही है (इति) इस प्रकार (तद्वस्तुन) उस वस्तु का (चिता) चिन्तवन (सज्ञानपुण्योदय) सज्ञान और पुण्य का उदयभूत (नयचय:) नय का समूह (आज्ञाविचय:) आज्ञा विचय है।

**भावार्थ**—इन्द्रियातीत अनन्त पर्याय वर्ती सकल वस्तु, आवरण युक्त इन्द्रिय ज्ञान और अनुमान ज्ञान के द्वारा जानना शक्य नही है। परन्तु वीतराग अर्हंत भगवान की आज्ञा से निश्चय किया जाता है कि भगवान की आज्ञा से कथित वस्तु असत्य नही हो सकती ऐसा वस्तु का चिंतवन करना आज्ञाविचय नाम का धर्मध्यान है ॥२६॥

दुःकर्मात्मदुरीहितैरुपचित मिथ्याविरत्यादिभि-
र्व्यापज्जन्म जरामृतिप्रभृतयो वांऽपाय एनः कृताः।
जीवेनादिभवे भवेत्कथमतोऽपायादपायः कदा
कस्मिन्केन ममेत्यपायविचयः सत्कारणादीक्षणम् ॥३०॥

**अन्वयार्थ**—(जीवेन) जीव के द्वारा (आदिभवे) पूर्व भव मे (मिथ्याविरत्यादिभि:) मिथ्यात्व, अविरति आदि (आत्मदुरीहितै:) अपनी दुश्चेष्टाओ के द्वारा (उपचित) उपार्जित (दुष्कर्म) दुष्कर्म (वा) अथवा (एनःकृता:) पाप कृत (व्यापज्जन्मजरामृतिप्रभृतय:) आपत्ति, जन्म, जरा, मृत्यु प्रभृति (अपाय:) अपाय है (अत:) इस (अपायात्) अपाय से (मम) मेरा (अपाय.) निराकरण (कदा) कब (भवेत्) होगा (इति) इसप्रकार (सत्कारणात्) सत्कारणो से (ईक्षणं) चिंतवन करना (अपायविचय.) अपाय विचय है।

**भावार्थ**—अज्ञानी जनो के द्वारा भव भवों मे मिथ्यात्व, अविरति कषायादि के द्वारा उपार्जन किये हुये दुष्कर्मों का नाश कैसे होगा। अथवा पाप से उत्पन्न मेरी जन्म जरा, मृत्यु आदि व्याधियो का नाश कब होगा, कहा पर होगा, किस कारणो से होगा, ऐसा विचार करना अपाय विचय नामक धर्मध्यान है ॥३०॥

गत्यादौ परिणामतस्तनुभृतां प्राप्तोदयोदीरण।
क्लेशाश्लेषकरं सुखोत्करकरं कर्माशुभं तच्छुभम्।
शक्त्या युक्तमसंख्यलोकमितषट् स्थानान्वितस्थानया
इत्येगं विचयो विपाकविचयः प्रत्यस्तदोषोच्चयः ॥३१॥

**अन्वयार्थ**—(गत्यादौ) गति आदि मे (परिणामतः) परिणामो से (तनुभृता) प्राणियो के (प्राप्तोदयोदीरण) प्राप्त है उदय और उदीरणा जिन्हो की ऐसे (क्लेशाश्लेषकरं) क्लेशो को करने वाले और (सुखोत्करकरं) सुख को करने वाले (असख्यलोकमितषट्स्यानान्वितस्थानया) असंख्यात लोक प्रमाण, षट् स्थान से अन्वित (शक्त्या) शक्ति से (युक्त) युक्त (अशुभ) अशुभ (तच्छुभ) वह शुभ (कर्म) कर्म है (इत्येवं) इसप्रकार (विचया) विचार करना (प्रत्यस्तदोषोच्चय.) नष्ट हो गया है दोषो का समूह जिसका ऐसा (विपाकविचयः) विपाक विचय है।

**भावार्थ**—गति आदि मे अपने परिणामो से उपार्जन किये हुये जीव के शुभाशुभ कर्म सुख दुःख देने वाले हैं, वे असख्यात लोक प्रभाव शक्ति से युक्त है, ऐसा विचार करना निर्दोष विपाकविचय नामक धर्म ध्यान है। अर्थात् यह जीव अपने उपार्जन किये हूये कर्मो के अनुसार सुखी दुःखी होता है-ऐसा विचार करना भी विपाकविचय नामक ध्यान है ॥३१॥

**सस्थानं यदनित्यता ऽशरणता ससार एकाकिता-**
**ऽन्यत्वं चाशुचिताऽऽस्रवः सुनयतः स्यात्संवरो निर्जरा।**
**लोको बोध्यतिदुर्लभत्वमपरो धर्मस्तदित्यन्वित**
**भेदैः स्वैर्विचयोऽस्य चिंतनमनुप्रेक्षा स्मृत द्वादश ॥३२॥**

**अन्वयार्थ**—(अनित्यता) अनित्य (अशरणता) अशरण (ससारः) ससार (एकाकिता) एकत्व (अन्यत्व) अन्यत्व (अशुचिता) अशुचित्व (आस्रव) आस्रव (च) और (सुनयत) सुनय से (संवर) सवर (निर्जरा) निर्जरा (स्यात्) होती है (लोक.) लोक (बोध्यतिदुर्लभत्व) बोधि की अति दुर्लभता (अपरः) उत्कृष्ट (धर्मः) धर्म (इति) इसप्रकार (द्वादश) बारह (अनुप्रेक्षा) अनुप्रेक्षायें हैं (तत्) उसका (स्वै) अपने-२ (भेदै.) भेदो से (अन्वितं) युक्त (यत्) जो (चिंतवन) चिन्तवन करना है (सस्थानं) संस्थान विचय ध्यान है।

**भावार्थ**—अनित्य, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि आस्रव, सवर निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म ये बारह भावनाओ के द्वारा चिंतवन करना सस्थान विचय है। अथवा लोक के आकार का चिंतवन करना सस्थानविचय है ॥३२॥

**उत्पत्तिः प्रलयश्च पर्ययवशाद्द्रव्यात्मना नित्यता**
**वस्तूनां निचये प्रतिक्षणमिहाज्ञानाज्जनो मन्यते।**
**नित्यत्वं द्रवदंबुदीपकलिकास्थैर्यं यथार्थादिके**
**नष्टे नष्टधृतिः करोति बत शोकार्ती वृथाऽत्मीयके ॥३३॥**

**अन्वयार्थ**—(इह) इस लोक मे (वस्तूना) वस्तुओ के (निचये) समूह मे (प्रतिक्षणं) प्रतिक्षण (द्रव्यात्मना) द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा (नित्यता) नित्यता है (पर्ययवशात्) पर्याय की अपेक्षा (उत्पत्तिः) उत्पत्ति (च) और (प्रलय) विनाश है (अज्ञानात्) अज्ञान से (जनः) जन (द्रवदम्बुदीपकलिकास्थैर्यं) नष्ट होने वाले पानी और दीपक की कलिका मे स्थिरता (नित्यत्वं) नित्यत्व (मन्यते) मानता है (यथा) जिससे (आत्मीयके) अपने (अर्थादिके) धनादि के (नष्टे) नष्ट हो जाने पर (नष्टधृति.) नष्ट हो गया है धैर्य जिसका ऐसा मानव (वृथा) व्यर्थ (शोकार्ती) शोक और दुःख को (करोति) करता है।

**भावार्थ**—प्रतिक्षण मे वस्तु के समूह मे द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्यत्व है, और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उत्पत्ति और विनाश है। परन्तु अज्ञानीजन निकलते हूये पानी और दीपक की कलिका मे नित्यत्व मानता है जिससे

अपने धनादि के नाश होने पर व्यर्थ मे खेद खिन्न होता है अर्थात् पर्याय की अपेक्षा कोई वस्तु नित्य नही है। सर्व क्षणिक है ऐसा चितवन करना अनित्य भावना है ॥३३॥

मंत्रास्तत्रततिस्तदन्वितकृतिर्दुर्गा द्विषद्दुर्गमा
भृत्याः किं न भृताः सुहृत्ततिरपील्येतेषु सत्स्वप्यगुः ।
सर्वे पूर्वमहीभृतः क्षतिमतः कस्यापि कालत्रये-
त्राताऽत्रास्ति न नाशमीयुषि पुरा पुण्यार्जिते वाऽयुषि ॥३४॥

**अन्वयार्थ**—(मत्रा) मत्र (तत्रतति) तत्रो का समूह (तदन्वितकृति) मत्र तत्र के जानने वाले की कृति (द्विषद्दुर्गमाः) शत्रुओ से दुर्गम (दुर्गा) किले (सुहृत्तति.) मित्रो का समूह (भृत्या.) नौकर (भृताः) रक्षक थे (एतेषु) इनके (सत्सु) होने पर (अपि) भी (सर्वे) सर्व (पूर्वमहीभृतः) पूर्व राजा लोग (कि) क्या (क्षति) नाश को (न) नही (अगु) प्राप्त हुये (अत.) इसलिये (अत्र) इस लोक मे (कालत्रये) तीनो कालो मे (पूर्वोपार्जिते) पूर्व मे उपार्जित (आयुषि) आयु के (नाश) नाश (ईयुषि) हो जाने पर (कस्यापि) किसका का भी (त्राता) रक्षक (न) कोई नही (अस्ति) है।

**भावार्थ**—पूर्वोपार्जित आयु के नाश हो जाने पर, कोई किसी को मरण से बचा नही सकता। बडे-बडे नरेश, मत्र, तंत्र, भृत्यो के समूह, दुर्गम, किला आदि रक्षक नही होते हैं। अर्थात् मृत्यु से बचाने के लिए कोई समर्थ नही है। यह अशरण भावना है ॥३४॥

वृत्या जातिगतिष्वाप्तकरणोऽनंतांगहारः सदा
प्रोद्भूतिप्रलयो नरामरमृगाद्याहार्यपर्यायवान् ।
हित्वा सात्विकभावजातमितरैर्भावैः स्वकर्मोद्भवैः-
जीवोऽयं नटवद्भ्रमत्यभिनवः सर्वत्र लोकत्रये ॥३५॥

**अन्वयार्थ**—(वृत्या) पच परिवर्त्तन रूप परिभ्रमण से (जातिगतिषु) ८४ लाख जाति और चार गतियो मे (अवाप्तकरणः) प्राप्त किया है इन्द्रिय लाभ जिसने (अनतसागहार.) अपरिमित शरीर धारी (सदा) हमेशा (प्रोद्भूतिप्रलयो) उत्पत्ति और विनाशवान (नरामरमृगाद्याहार्यपर्यायवान्) नर, मानव, पशु आदि पर्यायो को धारण करने वाला (अय) यह (जीव) जीव (सात्विकभावजात) सात्विक भाव से उत्पन्न अनन्त ज्ञानादि को (हित्वा) छोडकर (इतरै) इतर (स्वकर्मोद्भवै) स्वकर्मों से उत्पन्न (भावै) मिथ्यात्वादि भावो के द्वारा (अभिनव) नूतन शरीर को धारण करके (सर्वत्र) सर्वत्र (लोकत्रये) तीन लोक मे (नटवत्) नट के समान (भ्रमति) भ्रमण करता है।

**भावार्थ**—जैसे नट अनेक प्रकार के स्वाग बना करके अनेक हाव, भाव विलासो से नृत्य के अखाडे मे नृत्य करता है, उसी प्रकार यह जीव अपनी स्वाभाविक सहजानन्द अवस्था को छोड कर मिथ्यात्वादि विभावभावो के वशीभूत होकर नर, नारकी, तिर्यंच, देव आदि अनेक प्रकार के स्वांग को धारण करके ८४०००० योनियो में भ्रमण करता है। तीन लोक मे ऐसा कोई क्षेत्र नही रहा जहा इसने जन्म नही लिया हो, और ऐसी कोई पर्याय नही जिसको धारण नही किया हो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप पाच परिवर्तनो को पूरा करता हुआ यह अनादि काल से ससार के दु खो को भोग रहा है। यह ससार भावना है ॥३५॥

कोऽप्याप्तः स्वजनोऽनुगोऽस्ति न परो वा याति जन्मांतरं
जीवे जन्मनिवाऽत्र मित्रनिकरैः किं नाशितं वा हृतम् ।

चित्र गात्ररुजादिजं हृदयजं वाऽसातमेकस्ततो
मृत्युत्पत्तिनिवृतिषु प्रणयिनोऽन्येऽर्थेष्वनर्थे निजः ।।३६।।

**अन्वयार्थ**—(आप्तः) आप्त (स्वजनः) स्वजन (अनुगः) साथ मे चलने वाले (पर) दूसरा (कः) कोई (अपि) भी (जन्मान्तर) जन्मान्तर मे (न याति) साथ नही जाता है (वा) अथवा (अत्र) इस (जन्मनि) जन्म मे (मित्रनिकरैः) मित्रो के समूह के द्वारा (चित्र) चित्र (गात्ररुजादिज) शरीर के रोगादि से उत्पन्न (वा) अथवा (हृदयज) मानसिक (असात) असाता (किं) क्या (नाशित) किसी के द्वारा नाश की गई है (ह्रत) अथवा हरी गयी है (मृत्यूत्पतिनिवृतिषु) मरण, जन्म और निर्वाण मे (एकक) जीव अकेला ही है (अर्थेषु) धन के समय (अन्ये) दूसरे (प्रणयिन,) प्यारे बनते हैं (अनर्थे) पाप मे (निज) स्वय ही जीव भागी होता है ।

**भावार्थ**—इस ससार मे इस जीव के माता-पिता, स्वजन, मित्र कोई भी परलोक मे साथ जाने वाले नही हैं। और न कोई मित्र आदि इस भव मे उत्पन्न हुये शारीरिक, मानसिक असाता के दूर करने मे समर्थ है। अकेला ही यह प्राणी दु.ख सुख को भोगता है, अकेला जन्मता है, अकेला मरता है और अकेला ही मोक्ष मे जाता है, धन पास मे हो तो मित्र बनते हैं, परन्तु दु ख तो अकेले को ही भोगना पडता है। यह एकत्व भावना है ।।३६।।

चैतन्यं जडतैकताऽवयविसंदोहोदिताऽनेकता
नित्यत्वं क्षयिता च मूर्तिवियतिर्मूर्तत्वमित्यादिभिः ।
भेद देहिशरीरयोरगणयन् किं नेक्षते वृद्धिम-
देहं खेदिनि देहिनि स्थितमतिकालेऽत्र दुर्भित्रवत् ।।३७।।

**अन्वयार्थ**—(अवयविसदोहोदिताऽनेकता) अवयवी के समूह मे प्रकट हुई (चैतन्यं) चैतन्य और (जडता) अचैतन्य (एकता) एकमेक है (नित्यत्वं) चैतन्य नित्य है (च) और (क्षयिता) क्षणध्वसी शरीर है इसलिये (अनेकता) शरीर और आत्मा मे अनेकता है (मूर्तिवियति) मूर्ति के आश्रय है इसलिए (मूर्तत्व) मूर्त है (इत्यादिभि.) इत्यादि के द्वारा (देहिशरीरयो) शरीर और आत्मा मे (भेद) भेद को (अगणयन्) नही मानता हुआ (खेदिनि) खेदकारी (देहिनि) आत्मा के (अतिकाले) निकल जाने पर (वृद्धिमत्) उत्कृषता को प्राप्त हुये (देह) शरीर को (दुर्भित्रवत्) दुर्भित्र के समान (अत्र) यहा पर (स्थित) स्थित (किम्) क्या (न) नही (नेक्षते) देखता है।

**भावार्थ**—अवयवी के समूह से प्राप्त हुआ शरीर और आत्मा के एकता है। लक्षण की अपेक्षा भिन्नता है, क्योकि आत्मा चैतन्य है और शरीर जड है। परन्तु मूर्तिमान आत्मा के साथ एकमेक हो रहा है। भिन्न दृष्टि गोचर नही होता है। आत्मा के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है ऐसा शरीर आत्मा के निकल जाने के बाद क्या यहा पडा हुआ नही दीखता है। दीखता ही है, साथ मे नही जाता है, दूध पानी के साथ एक क्षेत्रावगाही होकर रहने वाला शरीर भी परलोक मे साथ नही जाता है। वह भी आत्मीय नही है, तो पुत्र पौत्रादिक अपने कैसे हो सकते हैं। ऐसा विचार करना अन्यत्व भावना है ।।३७।।

रेतः शोणि जातिधातु निचित प्रच्छादित चर्मणा
सान्द्रोद्रिक्तगलन्मल वहुविलैरश जुगुप्सानुगाम् ।
भीति किं न तनोत्यसंस्कृति बहिश्चर्मात्रगात्रे न चेत्
स्पृष्टुं द्रष्टुमपि क्षमोऽस्ति किमिद त्रातु पतज्यादित ।।३८।।

**अन्वयार्थ**—(रेत. शोणित जाति धातु निचित) वीर्य, रक्त, जाति आदि धातुओ से व्याप्त (चर्मणा) चमड़े के द्वारा (प्रच्छादितं) आच्छादित (वहुविलैः) नाक, आंख, कर्ण आदि वहुत से विलो से (सान्द्रोद्रिक्तगलन्मल) अत्यन्त प्रवाह से वह रहा है मल जिसमे ऐसा (अगं) यह शरीर (जुगुप्सानुगां) ग्लानि का अनुकरण करने वाली (भीतिं) भय को (किं) क्या (न) नही (तनोति) विस्तरित करता है (चेत्) यदि (अत्र) इस (गात्रे) शरीर मे (असस्कृवत्तिर्हिश्चर्म) संस्कार रहित वहिर का चर्म (न) नही हो तो (किं) क्या (इद) इस शरीर की (स्पृष्टु) स्पर्श करने के लिए (द्रष्टु) देखने के लिए (पतत्रयादित) पक्षी आदि से (त्रातु) रक्षा करने के लिए (क्षमः) कौन समर्थ (अस्ति) है अर्थात् नही है।

**भावार्थ**—यह शरीर माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न, सप्त धातुओ से निर्मित और चर्म से आच्छादित है, निरन्तर नव द्वारो से मल वहता रहता है, ग्लानि का स्थान है। यदि इस वाहर मनोज्ञ चर्म से आच्छादित नही होता तो इसका स्पर्श करने के लिए, देखने के लिए तथा काक आदि पक्षियो से रक्षा करने के लिये कौन समर्थ है अर्थात् कोई नही इस प्रकार चिंतवन करना अशुचि भावना है ॥३८॥

**देहे स्नेहयुते लगत्यविरत रेणोर्गणोऽय यथा**
**मिथ्यावृत्तकषाययोगकलुषेऽजस्त्रं सजत्यंगिनि।**
**तद्वत स्वैक शरीरगाः सुमिलिताऽनंताणवो वर्गणा**
**विश्वात्मावयवेष्वनंतगणना नो कर्मणा कर्मणाम् ॥३९॥**

**अन्वयार्थ**—(यथा) जैसे (स्नेहयुते) तेल सहित (देहे) शरीर मे (रेणो.) रेणु का (गण) समूह (अविरत) निरन्तर (लगति) लगता है (तद्वत्) उसी प्रकार (मिथ्यावृत्यकषाययोगकलुषे) मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग से कलुषित (अंगिनि) ससारी आत्मा मे (विश्वात्मावयवेषु) सारे आत्मा के अवयवो पर (अजस्त्र) निरन्तर (स्वैकशरीरगा) अपने एक शरीर को प्राप्त होने वाली (कर्मणा) कर्मो की (नोकर्मणा) नो कर्मो की (सुमिलिताऽनंताणव) सम्यकप्रकार से मिली हुई अनन्त अणु जिसमे ऐसी (अनन्तगणना) अनन्त संख्या वाली (वर्गणा) वर्गणा (सजन्ति) प्राप्त होती है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार तैल लिप्त शरीर में निरन्तर धूलि आकर चिपकती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूपी तैल लिप्त संसारी आत्मा के सर्व प्रदेशो में कर्म और नोकर्म रूप अनन्त पुद्गल परमाणुओ का पिण्ड रूप वर्गणा निरन्तर आत्मा के साथ सम्वन्ध को प्राप्त होती है और कषाय आदि भावो के द्वारा निरन्तर कर्मो का आश्रव होता है ऐसा चितवन करना आश्रव भावना है ॥३९॥

**दष्टे दुष्टविषाहिनांऽगिनि यथा नष्टप्रचेष्टेविषं**
**पुष्पज्जांगुलिकेन मंत्रबलिना संस्तंमित तिष्ठति।**
**सम्यक्त्व व्रत निष्कषाय परिणामाऽयोगताभिस्तथा**
**मिथ्यात्वादित्तुः स्वहेतु विगमान्नूत्नेन सा नागमः ॥४०॥**

**अन्वयार्थ**—(यथा) जैसे (दुष्टविषाहिना) दुष्ट विष वाले सर्प के द्वारा (दष्टे) काटने पर (नष्टप्रचेष्टे) नष्ट चेष्टा वाले (अगिनि) प्राणी के हो जाने पर (पुष्यज्जागुलिकेन) विष वैद्य के द्वारा अथवा (मंत्रवलिना) मन्त्र की शक्ति के द्वारा (विषं) विष (संस्तमित) कीलित हो जाता है (तथा) उसी प्रकार- (सम्यक्त्वव्रतनिष्कषायपरिणामाऽयोगताभि.) सम्यक्त्व, व्रत, निष्कषायपरिणाम और अयोगता के द्वारा (मिथ्यात्वादिचतु. स्वहेतुविगमात्) मिथ्यात्वादि अपने चार कारणो के नाश हो जाने से (नूत्नेनसा) नूतन पापो का (आगम) आगमन (न) नही (तिष्ठति) रहता है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार भयकर विषैले सर्प के काटने पर मूर्च्छित हुये मानव के विष को विष की चिकित्सा जानने वाला वैद्य वा मत्रवादी कीलित कर देते हैं। अर्थात् उनके द्वारा विष का वेग दूर कर दिया जाता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन व्रत का निष्कषाय परिणाम योग का भावादि परिणामो के द्वारा मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग रूप कर्मो के आने के द्वार के नाश हो जाने पर नवीन कर्मो का आगमन नही होता है ऐसा चितवन करना सवर भावना है ।।४०।।

**संश्लिष्टात्मललस्य निर्गलनतो निःशेषविश्लेषत-**
**श्चान्तर्बाह्यचतुःस्वहेतुवशतः स्वर्णोपले स्वर्णता ।**
**यद्वद्देहिनि कर्मणोऽशगलनान्निःशेषविश्लेषतः**
**सम्यक्त्वग्रहणाद्यनेककरणैस्तद्वद्विशुद्धात्मता ।।४१।।**

**अन्वयार्थ**—(यद्वत्) जैसे (अन्तर्बाह्यचतु स्वहेतुविगमात्) अन्तरग, बहिरग चार अपने का कारणो के कारण (संलिष्टात्मबलस्य) सश्लेप को प्राप्त अपनी शक्ति का (निर्गलनता) स्तोक स्तोक निर्गलन होने से (नि.शेषविश्लेषत.) सारी कालिमा नष्ट हो जाने से (स्वर्णोपले) सुवर्ण पाषाण मे (स्वर्णता) शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति होती है (तद्वत्) उसी प्रकार (देहिनि) प्राणी मे (सम्यक्त्वग्रहणाद्यनेककरणैः) सम्यग्दर्शन को ग्रहण करना आदि अनेक कारणो के द्वारा (कर्मण) कर्म के (अशगलनात्) कर्मो के अश का गलन होने से (नि शेषविश्लेषत) सम्पूर्ण कर्मो का नाश हो जाने से (विशुद्धात्मता) निर्मल आत्मा की प्राप्ति होती है।

**भावार्थ**—जिस प्रकार कर्षण, छेदन, तापन आदि कारणो के द्वारा अनादि कालीन सुवर्ण की कालिमा नष्ट हो जाती है और सुवर्ण शुद्ध बन जाता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि गुणो के द्वारा आत्मा की पाप कालिमा दूर हो जाती है और आत्मा शुद्ध बन जाती है ऐसा चितवन करना निर्जरा भावना है ।।४१।।

**मध्यांशः परितोऽनन्तवियतो लोकस्त्रिवाताऽवृतः**
**पंचद्रव्यचितः प्रकर्तृ रहितो नित्यः सदाऽवस्थितः ।**
**सस्थानेन तु सुप्रतिष्ठकसमोऽसख्यप्रदेशप्रमो**
**मध्यस्थत्रसनालिरत्र भविना स्पृष्टं न दृष्ट पदम् ।।४२।।**

**अन्वयार्थ**—(अनन्तवियत) अनन्त लोकाकाश के (मध्याश) मध्यम अश (लोक) लोक है (परित) वह चारो तरफ (त्रिवातावृत) तीन वायुओ से वेष्टित है (पचद्रव्यचित) जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाच द्रव्यो से भरा हुआ है (प्रकर्तृ रहित) दूसरे कर्ता से रहित है (नित्य) नित्य (सदा) सदा (अवस्थित) अवस्थित (लोक.) लोक है (तु) और वह (सस्थानेन) सस्थान से (सुप्रतिष्ठकसमे.) सुप्रतिष्ठक के समान है (असंख्यप्रदेशप्रम) असख्यात प्रदेश प्रमाण है (अत्र) इसमे (मध्यस्थत्रसनालिः) मध्यस्थ त्रस नाली है (भविना) ससारी प्राणियो के द्वारा (स्पृष्ट) स्पष्ट (दृष्ट) देखने का (पद) स्थान (न) नही है।

**भावार्थ**—अनतानत प्रदेशी, अखण्ड, सर्वव्यापी, आकाश के मध्य मे घनवातवलय घनोदधिवातवलय और तनुवातवलयो से वेष्टित जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल से भरे हुये सस्थान से सुप्रतिष्ठाकार, नित्य, सदा व स्थित, स्वयसिद्ध, असख्यात, प्रदेशी, लोकाकाश है। उसके मध्य मे एक राजू चौडी, चौदह राजू ऊँची, त्रसनाली है। संसारी प्राणी इस लोक को अपनी चर्म चक्षु के द्वारा पूर्णरूप से देखने के लिये समर्थ नही है। इसप्रकार चिन्तन करना लोक भावना है ।।४२।।

नैकाक्षैर्विकलाक्षपंचकरणासंज्ञव्रजैः जातु या
लब्धा बोधिरगण्यपुण्यवशतः संपूर्णपर्याप्तिभिः ।
भव्यैः सञ्ज्ञिभिराप्तलब्धिविधिभिः कैश्चित्कदाचित्क्वचित्
प्राप्या सा रमतां मदीयहृदये स्वर्गापवर्गप्रदा ।।४३।।

**अन्वयार्थ**—(एकाक्षैः) एकेन्द्रिय के द्वारा (विकलाक्षपचकरणासंज्ञव्रजैः) विकलेन्द्रिय, असज्ञी, पंचेन्द्रियो के द्वारा (या) जो (जातु) कभी (न) नहीं (लब्धा) प्राप्त होती है (अगण्यपुण्यवशत.) महान पुण्य के कारण (सम्पूर्णपर्याप्तिभि) सम्पूर्णपर्याप्त (सज्ञिभि) सज्ञी (आप्तलब्धिविधिभि.) प्राप्त की है क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि जिन्होने ऐसे (कैश्चित्) किन्ही (भव्यैः) भव्यो के द्वारा (क्वचित्) किसी स्थान पर (प्राप्या) प्राप्त करने योग्य (सा) वह (स्वर्गापवर्गदा) स्वर्गमोक्ष को देने वाली (बोधिः) रत्नत्रय की प्राप्ति रूप बोधि (मदीयहृदये) मेरे हृदय मे (रमता) रमण करे।

**भावार्थ**—वह बोधि, हीन पुण्य वाले एकेन्द्रिय. दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पचेन्द्रिय के द्वारा कभी भी प्राप्त करने योग्य नही है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति को बोधि कहते हैं। जिसको क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि प्राप्त हो गई है, जो संज्ञी है, पचेन्द्रिय है, पर्याप्त है, भव्य है, उसी को ही बोधिकी प्राप्त होती है। वह बोधि निरन्तर मेरे हृदय मे वास करे। ऐसा निरन्तर चितवन करना बोधि दुर्लभ भावना है।।४३।।

दाताऽभीष्टविशिष्टवस्तुनिचयस्याकांक्षिणोऽपिक्षणा-
द्धर्त्तार्त्तेर्नरनारकादिभवसम्भूतेः स्मृतेर्भीकृतेः ।
हंताऽऽक्रान्त जगत्त्रयांतक रिपोर्यः स्वान्तगः संस्तुत-
स्त्राताऽत्राणशरीरिणां न हि परो धर्मात्सुशर्मप्रदात् ।।४४।।

**अन्वयार्थ**—(स्वांतगः) स्वातगत (संस्तुतः) सस्तुत (यः) जो धर्म (आकाक्षिणे) आकाक्षा करने वाले के लिए (क्षणात्) एक क्षणभर मे (अभीष्टवस्तुनिश्चयस्य) अभीष्ट वस्तु के समूह को (दाता) देने वाला है (स्मृते) जो स्मरणमात्र से (भीकृते।) भयभीत करने वाली (नरनारकादिभवसभूते.) नरनारकादि से उत्पन्न (अर्त्ते) दुःख का (हर्त्ता) हरण करने वाला है (आक्रातजगत्त्रयातकरिपो.) आक्रात किया है तीन जगत को जिसने ऐसे यमराज रूपी रिपु का (हता) जो घातक है (अत्राणशरीरिणा) अशरण ससारी प्राणियो का (त्राता) रक्षक है ऐसे (सुशर्मप्रदात्) सुशर्म को देने वाले (धर्मात्) धर्म से (परः) दूसरा (न) कोई नही है (हि) पादपूर्ण।

**भावार्थ**—ससार मे अभीष्ट वस्तु को देने वाला धर्म है। स्मृति मात्र से भय देने वाली, नरनारकादि आपत्तियो से बचाने वाला जिन धर्म ही है। तीन जगत के जीवो को दु.ख देने वाले यमराज रूपी शत्रु का नाशक धर्म है। अशरण ससारियो को शरण देने वाला धर्म है, वह धर्म वस्तु का स्वभाव है। वह हृदय मे रहता है तब ही जीव की रक्षा होती है। धर्म को छोडकर इष्ट वस्तु को देने वाला, आपत्तियो से बचाने वाला यमराज का नाशक, प्राणियो का रक्षक, दूसरा कोई नही है यह धर्म भावना है।।४४।।

श्रद्धानं सदशंकितादिसदनं तत्वार्थसचिन्तनं
संवेगः प्रशमोदयेन्द्रियदमः प्राण्योद्यम संयमः ।

वैराग्यं वरगुप्तिताऽतिमृदुता निर्मायिताऽसंगता
धर्मस्येति समस्तवस्तुपरमोपेक्षा च लक्ष्मोदितम् ॥४५॥

**अन्वयार्थ**—(अशंकितादिसदन) अशंकित आदि के स्थान (सत्) समीचीन (श्रद्धान) श्रद्धान (तत्वार्थ-संचिंतन) तत्वार्थ का चिंतवन (संवेग) संवेग (प्रशमः) प्रशम (दया) दया (इन्द्रियदमः) इन्द्रिय मन (प्राज्योद्यम) उत्कृष्ट उद्यम (संयमः) संयम (वैराग्य) वैराग्य (वरगुप्तिता) उत्कृष्ट गुप्ति पना (अतिमृदुता) अत्यन्त कोमलता (निर्मायिता) माया से रहित (असंगता) परिग्रह से रहित (च) और (समस्तवस्तुपरमोपेक्षा) समस्त वस्तुओं में परम उपेक्षा (इति) इस प्रकार (धर्मस्य) धर्म का (लक्ष्म.) लक्षण (उदित) कहा है।

**भावार्थ**—तत्वार्थ श्रद्धान, नि.शंकत्व तत्वार्थ चिंतवन, संवेग, प्रशम, दया, इन्द्रियदमन, उत्कृष्टउद्यम, संयम, वैराग्य, उत्कृष्टगुप्ति, परिणामों की अतिकोमलता, निर्मायित्व, असंगता, समस्त वस्तु के प्रति परम उपेक्षिता यह धर्म का लक्षण कहा है ॥४५॥

धर्म्यं स्यान्निखिलार्थसार्थनिहितं चित्तं समं संस्थितं
सम्यग्दृष्ट्ययतादिसप्तमगुणांतेषु प्रवृद्धं क्रमात् ।
साक्षात्संवरनिर्जरादिकरणं नानात्मनां कर्मणां
सल्लेश्यात्रयजं च नाकसुखदं प्राग्र्यं क्रमात्सिद्धिदम् ॥४६॥

**अन्वयार्थ**—(निखिलार्थसार्थनिहित) समस्त अर्थों के समूह से निहित (सम) समान (संस्थित) स्थित (चित्तं) चित्त (धर्म्यं) धर्मध्यान (सम्यग्दृष्ट्ययतादिसप्तमगुणांतेषु) अविरत सम्यग्दृष्टि गुण स्थान से लेकर अप्रमत गुणस्थानों में (क्रमात्) क्रम से (प्रवृद्ध) प्रवर्धमान है। (नानात्मना) नाना प्रकार के (कर्मणा) कर्मों का (साक्षात्) साक्षात् (संवर-निर्जरादिकरण) संवर और निर्जरा का कारण है (सल्लेश्यात्रयज) तीन शुभ लेश्याओं से उत्पन्न होने वाला है, (प्राग्र) उत्कृष्ट (नाकसुखद) स्वर्ग के सुखों का देने वाला है (च) और (क्रमात्) कर्म से (सिद्धिद) सिद्धि को देने वाला है।

**भावार्थ**—सकल पदार्थों के समूह में चित्त समान स्थित हो अर्थात् सुख दुःख आदि में समान भाव और राग-द्वेष का अभाव धर्मध्यान है। यह धर्मध्यान अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चौथे गुण स्थान से लेकर अप्रमत नामक सातवें गुण स्थान तक क्रम से वृद्धि को प्राप्त होता है। साक्षात् नानात्मक कर्मों की निर्जरा का कारण है, पीत, पद्म, शुक्ल इन तीन शुभ लेश्या वाले के ही होता है। उत्कृष्ट स्वर्ग के सुखों का दाता है और क्रम से मोक्ष फल को देता है ॥४६॥

शुक्लध्यानमतश्चतुर्विधमिदं प्रोक्तं वितर्कौ पृथ-
क्त्वैकत्वानुगतावुभावपि सवीचारेतरौ स्तः क्रमात् ।
कार्यस्यातिशयेन जातपरमाह्वानं तु सूक्ष्मक्रियं
ध्यानं ह्यप्रतिपाति तादृशसमुच्छिन्नक्रियं चेत्यपि ॥४७॥

**अन्वयार्थ**—(अतः) इसके बाद (इद) यह (शुक्लध्यान) शुक्ल ध्यान (चतुर्विध) चार प्रकार का (प्रोक्त) कहा है (पृथक्त्वैकत्वानुगतौ) पृथक्त्व और एकत्व से अनुगत (उभौ) दोनों ही (वितर्कौ) वितर्क (क्रमात्) क्रम से (सवी-चारेतरौ) सवीचार और अवीचार (स्त.) है (कार्यस्य) कार्य के (अतिशयेन) अतिशय से (जातपरमाह्वान) उत्पन्न है उत्कृष्ट नाम जिसका ऐसा (सूक्ष्मक्रिय) सूक्ष्म क्रिया (अप्रतिपाति) अप्रतिपाति (ध्यान) ध्यान है (च) और (हि) निश्चय से (तादृशसमुच्छिन्नक्रिय) सूक्ष्म क्रिया का भी जिसमें उच्छेद हो गया है (इति) इसप्रकार सूक्ष्म क्रिया उच्छिन्न ध्यान है।

**भावार्थ**—पृथक्त्व वितर्क वीचार, एकत्व वितर्क अवीचार, सूक्ष्म क्रिया, प्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृति इसप्रकार चार प्रकार का शुक्ल ध्यान है ॥४७॥

आद्यं शुक्लमनेकधा स्वविषये वृत्या पृथक्त्वेन यत्
सर्वद्रव्यगतश्रुतस्य परमस्यास्मिन् वितर्कस्य यः।
सचारोऽर्थवचस्त्रियोगगहने वीचार एषो भवे-
द्ध्यानं सार्थकनामधाम तदिदं स्यादिष्टसंपत्प्रदम् ॥४८॥

**अन्वयार्थ**—(अस्मिन्) इस (त्रियोग गहने) तीन योग से गहन (स्वविषये) अपने विषय मे (पृथक्त्वेन) अनेक प्रकार की (वृत्या) वृति से (पर) केवल (अस्य) इस (सर्वद्रव्यगतश्रुतस्य) सर्वद्रव्यगतश्रुत रूप (वितर्कस्य) श्रुत के (य) जो (अर्थवच.) अर्थ, व्यजन, योग का (संचार) सचार ही (एष) यह (वीचार.) वीचार (भवेत्) होता है (यत्) इसलिये (तत्) वह [इद] यह [आद्य] प्रथम [शुक्लं] शुक्ल [ध्यान] ध्यान [इष्टसम्पत्प्रद] इष्ट सम्पदाओ को देने वाला [सार्थक नामधाम] सार्थक नाम का स्थान [अनेकधा] अनेक प्रकार का होता है।

**भावार्थ**—इस तीन योग से गहन शुक्ल ध्यान अपने विषय मे अनेक प्रकार की पृथक् पृथक् वृति से सर्वद्रव्यगत श्रुत का अर्थ, व्यजन, योग के निमित्त से संचार होता है। वह पृथक्त्व वितर्क यह सार्थक नाम है और यह अनेक प्रकार का है। तथा इष्ट सम्पदाओ को देने वाला है ॥४८॥

एकत्वेन न पर्ययान्तरतया जातो वितर्कस्य य-
द्यो वीचार इहैकवस्तुनि वचस्येकत्र योगेऽपि च।
नार्थव्यंजनयोगजालचलनं तत्सार्थनामेत्यदो
ध्यानं घातिविघातजातपरमार्हन्त्यं द्वितीयं मतम् ॥४९॥

**अन्वयार्थ**—[य] जो [एकत्वेन] एक रूप से [इह] इस [एकवस्तुनि] एक वस्तु मे [वचसि] एक वचन में [च] और [एकत्र] एक [योगे] योग मे [वीचार.] सचार है [वितर्कस्य] श्रुत का [पर्ययान्तारतया] पर्यायान्तर से सचार [न] नही है [अर्थ व्यजनयोगजालचलन] इसमे अर्थ, व्यंजन, योग के समूह का चलन [अपि] भी [न] नही है [यत्] इसलिये [इति] इस प्रकार [अद] यह [सार्थनाम] एकत्व वितर्क अविचार इस सार्थक नाम वाला [घातिविघातजातपरमार्हन्त्यं] घातिया कर्मो के विनाश से उत्पन्न, परम अर्हन्त्य पद को देने वाला [द्वितीयं] दूसरा [ध्यानं] शुक्ल ध्यान [मतं] माना है।

**भावार्थ**—इस ध्यान मे द्रव्य से द्रव्यातर, पर्याय से पर्यायान्तर मे, अर्थ से अर्थान्तर मे और योग से योगान्तर मे संचार नही है। एक वचन, एक अर्थ, एक द्रव्य, एक पर्याय और एक योग मे ही इसकी प्रवृति होती है, इसलिए एकत्व वितर्क अवीचार यह इसका सार्थक नाम है और यह घातिया कर्मों का नाशक और अर्हन्त पद का प्रदायक है। पृथक्त्ववितर्क के समान यह प्रतिपाति नही है ॥४९॥

शुक्लेऽभ्यन्तरबाह्यकारणगणो व्यक्तं च तल्लक्षणं
धर्म्यो वा प्रथम क्षयोपशमयोर्मोहस्य हेतुर्द्वयोः।
श्रेण्योर्मोक्षविनाकदं विलयकृद्घातित्रयस्यापर
वर्यं क्षीणकषाय एव यमलं तच्छुक्लेश्योद्भवम् ॥५०॥

**अन्वयार्थ**—[शुक्ले] शुक्ल ध्यान मे [अभ्यतरबाह्यकारणगण] अभ्यन्तर और बाह्य कारणो का समूह [धर्म्ये] धर्मध्यान के [वा] समान है [च] और [तल्लक्षणं] उसका लक्षण [त्यक्ष] इन्द्रियातीत है [प्रथम] प्रथम शुक्ल ध्यान [द्वयोः] दोनो [श्रेण्याः] उपशम तथा क्षपक श्रेणियो मे [मोहस्य] मोह के [क्षयोपशमयो] क्षय और उपशम का [हेतुः] कारण है [मोक्षविनाकदं] मोक्ष और उत्कृष्ट स्वर्ग को देने वाला है [अपर] दूसरा शुक्लध्यान [घातित्रयस्य] तीन घातिया कर्मो का [विलयकृत्] नाश करने वाला है [वर्ष] श्रेष्ठ है [क्षीणकषाये] क्षीण-कषाय मे [एव] ही होता है [तत्] वह [यमल] दोनो ध्यान [शुक्ललेश्योद्वय] शुक्ल लेश्या से उत्पन्न होते हैं।

**भावार्थ**—शुक्लध्यान मे बाह्याभ्यन्तर सामग्री धर्मध्यान के समान है और इसका लक्षण इन्द्रियातीत है। प्रथम शुक्लध्यान उपशम श्रेणी मे चारित्र मोहनीय के उपशम का कारण है और क्षपक श्रेणी मे दर्शन मोह के क्षय का कारण है। उपशम श्रेणी मे होने वाला यह ध्यान स्वर्ग देने वाला है और क्षपक श्रेणी मे मोक्ष को देने वाला है। द्वितीय शुक्लध्यान तीन घातिया कर्मों का नाश करने वाला है- श्रेष्ठ है। यह ध्यान बारहवे गुण-स्थान मे होता है यह दोनो ही ध्यान शुक्ल लेश्या से उत्पन्न होते हैं।।५०।।

**ध्यानं चिन्तनमेकवस्तुनि कियत्काल मतं तच्छ्रुत—**
**ज्ञानं स्वावरणक्षयोपशमजं ध्यानोपचारस्ततः।**
**शश्वद्विश्वनिरन्तरावृतिहतिप्रत्यक्षबोधेऽर्हति**
**कर्मस्थित्यनुभागघातगलनाद्यर्थस्य तत्रेक्षणात्।।५१।।**

**अन्वयार्थ**—(कियत्काल) कुछ काल पर्यंत (एक वस्तुनि) एक वस्तु मे (चिंतवन) एकाग्र चिंतवन (ध्यान) ध्यान (मतं) माना गया है (तत्) वह ध्यान (स्वावरणक्षयोपशमजं) अपने आवरण के क्षयोपशम से उत्पन्न (श्रुतज्ञान) श्रुत ज्ञान है (शश्वद्विश्वनिरन्तरावृतिहतिप्रत्यक्षबोधे) नित्य सकल वस्तु का व्यवधान रहित आवरण के क्षय से प्रत्यक्ष ज्ञान है, जिसके ऐसे (अर्हति) अर्हंत भगवान मे (कर्मस्थित्यनुभाघातगलनाद्यर्थस्य) कर्मों की स्थिति अनुभाग के नाश आदि प्रयोजन का (ईक्षणात्) अवलोकन होने से (तत्र) उस अर्हंत भगवान में है ऐसा उपचार से कहा जाता है।

**भावार्थ**—अन्तर्मुहूर्त पर्यंत एक वस्तु मे स्थिर रहना ध्यान है और वह ध्यान श्रुतज्ञानावरणी कर्म के क्षयो-पशम से होता है। इसलिए श्रुतज्ञान है तथा सम्पूर्ण ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय से उत्पन्न केवलज्ञानी सर्व वस्तुओ को प्रत्यक्ष देखने वाले अर्हंत भगवान मे ध्यान कार्य कर्मों का स्थिति-खडन अनुभाग खडन और निर्जरा देखी जाती है। इसलिए सर्वज्ञ मे उपचार से ध्यान है।।५१।।

**सूक्ष्मा कृष्टिगता क्रियेति तनुगो योगोऽत्र सूक्ष्मक्रियं**
**ध्यानं ह्यप्रतिपात्यनश्वरमिदं नामाऽस्य तत्सार्थकम्।**
**तन्नात्युद्यतराघघातनसमुघातक्रियाऽनन्तरं**
**योगिन्यर्हति जीविते समुदभूदन्तर्मुहूर्ते स्थिते।।५२।।**

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इस ध्यान मे (तनुग) शरीरगत (योग) योग और (क्रिया) क्रिया (सूक्ष्मा) सूक्ष्म (कृष्टिगता) कृष्टि को प्राप्त हुई है (इदं) यह ध्यान (अनश्वर) अनश्वर है (इति) इसलिये (अस्य) इस ध्यान का (सूक्ष्मक्रियं) सूक्ष्म क्रिया (अप्रतिपात्ति) अप्रतिपात्ति (नाम) नाम (सत्सार्थकं) वह सार्थक है (तत्) वह ध्यान (अत्युद्यतराघघातनस-मुघातक्रियाऽनन्तरं) अत्यन्त उत्कृष्ट पाप के घातने वाली समुघात क्रिया के अनन्तर (अर्हति) अर्हत (योगिनि) योगी का (जीविने) जीवन (अन्तर्मुहूर्त) अन्तर्मुहूर्त (स्थिते) बाकी रहने पर (समुदभूत) उत्पन्न होता है।

**भावार्थ**—इस ध्यान मे शरीरगत क्रिया और योग सूक्ष्म कृष्टि को प्राप्त हो जाते है और यह ध्यान अविनश्वर है इसलिये सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति इसका यह नाम सार्थक है। यह ध्यान अपूर्व, अति प्रशस्त, अघाति कर्मो की स्थिति और अनुभाग का घातक है। दण्ड कपाट प्रतर और लोक पूर्ण समुद्धात क्रिया के अनन्तर अर्हत जिनेन्द्र की आयु के अन्तर्मूहूर्त शेष रहने पर सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामक तृतीय शुक्ल ध्यान उत्पन्न होता है ।।५२।।

**योगोऽस्मिन्प्रहतो वभूव हि समुच्छिन्नक्रियं सुस्थितं**
**ध्यानं ह्यप्रतिपाति तेन तदमूदन्वर्थनामास्पदम् ।**
**लेश्यातीतमयोगकेवलिजिने शुक्ल चतुर्थं वरं**
**निर्मूलप्रविलीनसंसृतिगदं स्वात्मोपलब्धिप्रदम् ।।५३।।**

**अन्वयार्थ**—(अस्मिन्) इस ध्यान मे (योग.) योग (प्रहत) नष्ट हो जाता है (च) और (अप्रतिपाति) यह अविनश्वर है (तेन हि) इसलिए ही (सुस्थित) स्फुट (समुच्छिन्नक्रिय) समुछन्न क्रिया (तद्) वह नाम (अन्वर्थनामास्पद) सार्थक नाम का आस्पद (अभूत) हुआ है और यह (लेश्यातीतं) लेश्याओ से रहित है (निर्मूल प्रविलीनसंसृतिगद) निर्मूल से नष्ट किया है ससार व्याधि को जिसने ऐसा (स्वात्मोपलब्धिप्रदम्) स्वात्मोपलब्धि का प्रदायक (चतुर्थं) चौथा (वरं) श्रेष्ठ (शुक्लध्यान) शुक्ल ध्यान होता है।

**भावार्थ**—इस ध्यान मे योग का निरोध हो जाने से कायगत क्रिया सूक्ष्म कृष्टि को प्राप्त हो जाती है और इस ध्यान का पतन नही होता है। इसलिये सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति इस सार्थक नाम का चतुर्थ शुक्लध्यान है। यह ध्यान लेश्यातीत है। संसार व्याधि का नाशक है और स्वात्मोपलब्धि का देने वाला है। यह शुक्लध्यान अयोग केवलि जिन मे ही होता है ।।५३।।

**संस्कारातिशयः प्रसन्नहृदयस्त्यागी क्षमी प्रोद्यमी**
**प्रव्यक्तस्वपरस्थितिः शुभवचोरत्नावलीराजितः ।**
**शूरः शीलपरो गुणस्थिररुचिर्भव्योऽभिमानी पर**
**साध्वीं साधयति स्वभावसुभगामाराधनां नायिकाम् ।।५४।।**

**अन्वयार्थ**—(संस्कारातिशय.) उत्तम सस्कार वाला (प्रसन्नहृदयस्त्यागी) प्रसन्न हृदय वाला, समस्त परिग्रह का त्यागी (क्षमी) क्षमावान (प्रोद्यमी) आत्म पुरुषार्थी (प्रव्यक्तस्वपरस्थिति.) प्रव्यक्त है स्वपर स्थिति जिसको (शुभवच:) शुभ वचन बोलने वाला (रत्नावलीराजित:) सम्यग्दर्शनादिरत्नो से शोभित (शूर.) शूरवीर (शीलपर) शीलवान (गुणस्थिररुचि.) गुणो मे स्थिर रुचि रखने वाला (भव्य.) भव्य (अभिमानी) स्वाभिमानी मानव ही (पर) केवल (स्वभावसुभगाम्) स्वभाव से मान्य (साध्वी) प्रशसनीय (नायिका) सिद्धि की प्राप्त कराने वाली (आराधना) आराधना को (साधयति) सिद्ध करता है।

**भावार्थ**—उत्तम संस्कार वाला, प्रसन्न हृदय वाला, समस्त परिग्रह का त्यागी, क्षमावान, आत्मपुरुषार्थी, प्रव्यक्त है स्वपर स्थिति जिसकी, शुभ वचन बोलने वाला, सम्यग्दर्शनादि रत्नो से शोभित, शूरवीर, शीलवान, गुणो मे स्थिर रुचि रखने वाला, भव्य, स्वाभिमानी मानस ही केवल स्वभाव से मान्य प्रशंसनीय सिद्धि की प्राप्त कराने वाली आराधना को साधन करता है ।।५४।।

**शेषेऽल्पे निजजीवने जनहितं देशं महीशान्वित**
**नाना जैनजनास्पदं सुखपदं सत्सङ्गिनां योगिनाम् ।**

संप्राप्यात्ममनोगत बहुमत सम्यग्निवेद्य स्थितः
सूरिभ्यः सकलैश्च तैः सुविदितः सघान्वितैः स्वीकृतः ।५४।

**अन्वयार्थ**—(निजजीवने) अपने जीवन के (अल्पे) अल्प (शेषे) शेष रहने पर (जनहित) जनता का हित करने वाला (महीशान्वित) राजा से युक्त (नानाजैनजनास्पद) नाना प्रकार जैन जातियो का आस्पद (सत्सगिता) सत्सगति वाले (योगिना) योगियो के (सुखप्रद) सुख का स्थान (बहुमत) बहुजनो के द्वारा सम्मत (देश) देश को (सप्राप्य) प्राप्त करके (आत्ममनोगत) वह आत्मीय विचारो को (सम्यग्)भलीप्रकार (सूरिभ्य )आचार्य के लिये (निवेद्य)निवेदन कर (स्थितः)सुस्थित, होता है (च) और (तै ) उस (सकलै ) सकल (संघान्वितै ) सघ के द्वारा (स्वीकृत ) स्वीकार किया जाता है ।

**भावार्थ**—मेरे आयु अल्प है, ऐसा जानकर यतिराज जनता का हित करने वाले राजा से शोभित, नाना जैन लोगो से भरे हुये, सत्पुरुष योगिजनो के रहने का स्थान ऐसे देश मे जाकर बहुजनो के द्वारा माननीय अपने मनोगत विचारो को आचार्य के समक्ष भली प्रकार निवेदन करता है । तदनन्तर सकल संघ के द्वारा स्वीकृत किया जाता है ॥५५॥

आचार्यैः परिचर्ययाऽऽहितहितैः सद्व्यूनपचाशता
द्वाभ्यां वाऽतिजघन्यतः परिवृतः प्रीत्योत्तमार्थार्थ्यतः ।
आलोच्याऽऽत्मकृत कृती त्रिकरणैर्दोष विशुद्धाशयः
श्रुत्वातः प्रवर प्रतिक्रमणमप्यारुह्य सत्सस्तरम् ॥५६॥

प्राज्ञोऽसौ क्रमशोऽशन परिहरन्नेकैकमास्वाद्यत-
त्सम्यग्दर्शितमिष्टमिष्टमसकृत्काक्षाक्षयार्थं बुधैः ।
हित्वाऽतस्त्रिविधाशनं धृतिकर किं स्तोकमेतन्मया
भुक्तात्पूर्वमनेकमेरुमहतो मे तृप्तिकस्येत्यत. ॥५७॥

त्यक्त्वाऽतः कुशलः क्रमेण विविध धीरः समाध्याप्तये
पान सिक्थयुत विलेपि सरस निःस्नेहमच्छं पयः ।
किं तृप्तिर्भवतीयतो भवभवे पीतादजातेत्यतो
नानानीरधिनीरतोऽतिमहतो मे कर्मघर्मातिनः ॥५८॥

ज्ञाताऽऽस्वादसमस्तवस्तुभिरल वाह्यैरसारै परं
जैनेन्द्रं वचनामृतं जननमृत्यातकनाशीति तत् ।
धृत्वा पंचगुरून्मनस्यविचल तन्मन्त्रमुच्चारयन्
धर्म्यं शुक्लमपि प्रकृष्टफलद ध्यायंस्तनुं व्युत्सृजेत् ।५९चतुष्कं।

**अन्वयार्थ**—(परिचर्ययाहितहितै ) परिचर्या [सेवा] मे लीन है हित जिन्होका ऐसे (आचार्यै) आचार्य के द्वारा तथा उत्कृष्ट (सद्व्यूनपचाशता) दो कम पचास अर्थात् ४८ (वा) अथवा (जघन्यत ) जघन्य से (द्वाभ्या) दो मुनियो के द्वारा (प्रीत्या) प्रीति से (परिवृत) घेरा हुआ (उत्तमार्थार्थ्यत ) उत्तम प्रयोजन का काक्षी (त्रिकरणै ) मन, वचन, काय से

(विशुद्धाशय) विशुद्धाशयवाला (कृती) पुण्यात्मा (आत्मकृत) अपने किये हुये (दोष) दोषो को (आलोच्य) आलोचना करके (प्रवर) उत्तमार्थ (प्रतिक्रमणं) प्रतिक्रमण को (श्रुत्वा) सुनकर (सत्सस्तर) सस्तर पर (आरुह्य) आरूढ होकर (असौ) यह (प्राज्ञ) बुद्धिमान (बुधै) बुद्धिमानो के द्वारा (काक्षाक्षयार्थं) काक्षा को क्षय करने के लिये (असकृत्) वार-वार (सम्यग्दर्शित) सम्यक्प्रकार से दर्शित (इष्टमिष्ट) इष्ट और मिष्ट पदार्थो को (एकैक) एक एक का (आस्वाद्य) आस्वादन करके (क्रमश) क्रमशः (अशन) अशन को (परिहरन्) परिहार करता हुआ (अत.) इसके बाद (मया) मेरे द्वारा (पूर्वं) पूर्वं (अनेक) अनेक (मेरुममहत:) मेरु प्रमाण (भुक्तात्) भोगे हुये पदार्थो से (अतृप्तिकस्य) अतृप्तिकारी मेरे (किं) क्या (एतत्) यह (स्तोक) स्तोक पदार्थ (धृतिकर) तृप्तिकारी है (इति) इस प्रकार विचार करके (त्रिविधाशन) तीन प्रकार के आहारो को (हित्वा) छोडकर (अत) तदनन्तर (कुशल) बुद्धिमान (धीर) धीर, वीर (समाध्याप्तये) समाधि की प्राप्ति के लिये (भवभवे) भव भव मे (कर्मधर्मार्तिन) कर्म रूपी धर्म से दु खी (मे) मेरे (अतिमहत:) अति महान (पीतात्) पिये हुये (नानानीरधिनीरत) नाना समुद्र के नीर से (अजाता) नही होने वाली (तृप्ति:) तृप्ति (किं) क्या (इयत) इतने पानी पीने मात्र से, तृप्ति (भवति) होती है (इति) इस प्रकार विचार करके (सिक्थयुत) सिक्थयुत (विलेपि) लेप सहित (सरस) सरस (पान) दुग्धादि पेय पदार्थो को (हित्वा) छोडकर (अत:) इसके बाद (नि.स्नेह) चिक्कणत्वरहित (अक्षपय:) स्वच्छ जल को (त्यक्त्वा) छोडकर (असारं) असार (वाह्यं) वाह्य (ज्ञाताऽऽस्वादसमस्तवस्तुभि) ज्ञात स्वाद वाली समस्त वस्तुओ से (अल) वश करो (इति) इस प्रकार विचार कर (पर) उत्कृष्ट (जननमृत्यातंकनाशे) जन्म-मृत्यु और आतक का नाश करने वाले (जैनेन्द्रवचनामृतं) जिनेन्द्र के वचनरूपी अमृत को और (पंचगुरुन्) पचपरमेष्ठी को (अविचल) अविचल रूप से (मनसि) मनमे (धृत्वा) धारण कर और (तन्मंत्रमुच्चारयन्) पंच परमेष्ठी के मंत्र का उच्चारण करता हुआ तथा (प्रकृष्टफलदं) उत्कृष्ट फल को देने लाले (धर्म्य) धर्मध्यान (अपि) और (शुक्ल) शुक्लध्यान का (ध्यायन्) ध्यान करता हुआ (तनु) शरीर को (व्युत्सृजेत्) छोडे।

**भावार्थ**—उत्कृष्ट अडतालीस और जघन्य दो आचार्य (साधु) जिसकी प्रीति से परिचर्या करते हैं तथा विशुद्ध आशयवाला क्षपक पुण्यात्मक उत्तमार्थ के लिये अपने दोषो को मन वचन काय से आलोचना करे तथा उत्तमार्थ प्रतिक्रमण सुन कर समीचीन सस्तर पर आरूढ हो अर्थात् सल्लेखना धारण करे। तदनन्तर आहार की काक्षा को क्षय करने के लिये बुद्धिमान आचार्य के द्वारा वार वार दिखाये गये इष्ट और स्वाद युक्त आहार का एक-एक आस्वादन करके अशन का त्याग करे। तदनन्तर अहो मैंने पूर्व मे वहुत पदार्थों को भक्षण किया है, अवतक उनसे तृप्ति नही हुई तो इन स्तोक पदार्थों से क्या तृप्ति हो सकती है, कदापि नही, ऐसा विचार कर क्षपक स्वाद्य और लेह्य इन पदार्थों का त्याग कर देता है। तदनन्तर कर्मरूपी ताप से दु खी मेरी प्यास समुद्रो के पानी पीने से शात नही हुई तो क्या? इस अल्प पेय से मेरी तृप्ति हो सकती है कदापि नही हो सकती, ऐसा विचार कर क्रमश दूध, छाछ, स्वच्छ पानी का भी त्याग करता है। जिसने वस्तु का स्वरूप जान लिया है, अनादिकाल से अनुभूत दृष्ट, श्रुत वाह्य वस्तुओ से क्या प्रयोजन है। वाह्य पदार्थो का संयोग ही दु खदायक है, इस प्रकार की भावनाओ से पवित्रात्मा, क्षपक, जन्म, जरा, मृत्यु के नाशक जैनेन्द्र भगवान के वचनरूपी अमृत का पानकर और पचपरमेष्ठी को अविचल रूप से मन मे धारण करता हुआ तथा पंचपरमेष्ठी वाचक मन्त्र को वचन से उच्चारण करता हुआ उत्तम स्वर्ग और मोक्ष फल को देने वाले धर्मध्यान और शुक्लध्यान मे लीन होता हुआ शरीर को छोडे ॥५६-५७-५८-५९॥

देवैस्तिर्यगचेतनैश्च मनुजैः प्राप्तोपसर्गस्तदा
त्यक्त्वाऽऽहारशरीरसगमखिलं वाधाऽविरामावधि।
सावद्य सकल च निर्मलमना ध्याने प्रशस्ते स्थित-
स्तिष्ठेत्पंचगुरूनभिमतफलप्राप्त्यभ्युपायानपि ॥६०॥

**अन्वयार्थ**—(देवै:) देवो के द्वारा (तिर्यगचेतनै.) तिर्यंच और अचेतन के द्वारा (च) और (मनुजै)

मनुष्यो के द्वारा (प्राप्तोपसर्ग) प्राप्त है उपसर्ग जिसको ऐसा यति (तदा) उस समय (बाधाविरामावधि) उपसर्ग की निवृत्ति पर्यंत (अखिल) सारे (आहारशरीरसग) आहार शरीर और परिग्रह को (च) और (सकल) समस्त (सावद्य) सावद्य को (त्यक्त्वा) छोडकर (प्रशस्ते) प्रशंसनीय (ध्याने) ध्यान मे (स्थितः) स्थित होकर (निर्मलमना) निर्मलन मन वाला साधु (अभिमतफलप्राप्त्यभ्युपायान्) अभिमत फल की प्राप्ति के उपाय भूत (पचगुरुन्) पंचपरमेष्ठी का ध्यान करता हुआ (तिष्ठेत्) रहे।

**भावार्थ**—देवकृत, तिर्यचकृत, मानवकृत और अचेतन कृत उपसर्ग के आ जाने पर, जब तक उपसर्ग दूर न हो तब तक अखिल आहार, परिग्रह और सकल सावद्य का त्याग करके योगीगण अभिमत फल के प्राप्ति के कारणभूत पचपरमेष्ठी का निर्मल चित से चिंतवन करते हुये धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान में स्थिर हो ॥६०॥

**इगिन्यां चान्यसंपादितहितविरतौ वर्णितो योऽत्र भक्त-**
**प्रत्याख्याने क्रमोऽसौ निरतिशयमृतौ स्वोपकारप्रवृत्तौ ।**
**ज्ञेयः प्रायोपगत्यां स्वपरहितकृत्यक्तवाच्छाप्रवृत्तौ**
**ताभिः सप्ताष्टजन्मस्वपगतदुरितां मोक्षलक्ष्मी लभन्ते ।६१।**

**अन्वयार्थ**—(य) जो (अत्र) इस (निरतिशयमृतौ) निरतिशय रूप (प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान मे (क्रमः) क्रम (वर्णित) वर्णित है वही क्रम (स्वोपकारप्रवृतौ) अपने उपकार की जिसमे प्रवृत्ति है और (अन्यसपादितहितविरतौ) दूसरे के द्वारा की जाने वाली वैय्यावृत्ति से रहित है ऐसे (इगिन्या) इगिनीमरण मे (च) और (स्वपरहितकृत्यक्तवाच्छाप्रवृत्तौ) स्वपर वैय्यावृत्ति की वाछा से रहित ऐसे (प्रायोपगत्या) प्रायोपगमन (प्रत्याख्याने) प्रत्याख्यान मे (ज्ञेय) जानना चाहिये (ताभि) उन भक्त प्रत्याख्यान इगिनी मरण और प्रायोपगमन मरणो के द्वारा क्षपक (सप्ताष्टजन्मसु) सात आठ भव मे (अपगतदुरिता) पाप रहित (मोक्षलक्ष्मी) मोक्ष लक्ष्मी को (लभन्ते) प्राप्त करता है।

**भावार्थ**—जब यह ज्ञान हो जाय कि अब मेरा जीवन अल्प है, तब क्रम से अन्न का त्याग, दूध आदि स्निग्ध पदार्थो का त्याग तदनन्तर समस्त आहार का त्याग किया जाता है, शरीर की वैय्यावृत्ति का त्याग नही किया जाता है, वह भक्तप्रत्याख्यान मरण है। उसका उत्कृष्ट काल बारह वर्ष है जघन्य काल अन्तर्मूहूर्त है। और जिसमे आहार पानी के त्याग के साथ अपने शरीर की वैय्यावृत्ति भी दूसरो से नही कराता है, वह इगिनी मरण है। जिस सन्यास मे अपने शरीर की वैय्यावृत्ति दूसरे से भी नही कराता है और अपने हाथो से भी नही करता है, केवल ध्यान मे मग्न रहता है, उसको प्रायोपगमन प्रत्याख्यान कहते हैं। आहार पानी के त्याग की विधि तीनो मे समान है, इन तीनो प्रकार के संन्यास पूर्वक मरण करने वाला यतिराज सात आठ भव मे निश्चय से मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है ॥६१॥

**दीक्षामादाय शिक्षामथ गणधरतां रक्षणार्थं गणस्य**
**सस्कारं स्वस्य भावैः शमदमविभवैर्योऽत्र सल्लेखनां च ।**
**क्रोधादीनां विधाय प्रथितपृथुयशाः साधयेदुत्तमाथ-**
**स स्यातसद्भव्यसस्योत्पलनिकरमुदे मेघचन्द्रो मुनीन्द्रः ॥६२॥**

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इसके बाद (गणस्य) गण की (रक्षार्थं) रक्षा के लिए (गणधरता) आचार्य पद की (दीक्षा) दीक्षा (शिक्षा) शिक्षा को (आदाय) ग्रहण करके (अथ) इसके बाद (पृथितपृथुयश) विख्यात है विस्तरित यश जिसका ऐसा (य) जो यति (अत्र) यहा पर (स्वस्य) अपने (शमदमविभवै) शमदम के विभवो के द्वारा (क्रोधदीना) क्रोधादि के (सस्कार) सस्कार को (संल्लेखना) कृश (विधाय) करके (उत्तमार्थं) उत्तमार्थ को (साधयेत्) सिद्ध करता है

(स) वह (सद्भव्यसस्योत्पलनिकरमुदे) सद्भव्यरूपी धान्य और कमलो के समूह को प्रमुदित करने के लिए (मेघचन्द्र.) मेघ और चन्द्रमा के समान वाला मेघचन्द्र (मुनीन्द्र.) मुनि (स्यात) हो।

**भावार्थ**—प्रथम दीक्षा शिक्षा और गण की रक्षा के लिये आचार्य पद को धारण करके विख्यात यश का धारी मुनिराज तदनन्तर अपने समता इन्द्रिय मन आदि विभवो के द्वारा क्रोधादि कषायो के सस्कार को कृश करके उत्तमार्थ को सिद्ध करते हैं। वह मुनि भव्य जीव रूपी धान्य के लिए मेघ और भव्य कमलो के लिए चन्द्रमा के समान होते हैं इसमे अपने गुरु मेघ चन्द्र का स्मरण भी किया है ॥६२॥

**श्रेयोनाथ ! सरस्वतीश्वरतया रत्नाकरेत्वेन तु**
**गांभीर्येण वरेण निर्मलतया वार्द्धिः समोऽस्तु त्वया।**
**किं वंद्या जलधेः सदा प्रमुदितत्रैलोक्यसंसेव्यता–**
**लक्ष्मीश्चाक्षयसंगमाऽस्ति परमा मूर्तिर्मनोहारिता ॥६३॥**

**अन्वयार्थ**—(श्रेयोनाथ) हे श्रेयांस जिन (जिनसरस्वतीश्वरतया) सरस्वती के ईश्वर होने से (समुद्रपक्षे सरस्वती नामक नदी के स्वामी) (रत्नाकरत्वेन) तीन रत्नो के निधि होने से (समुद्रपक्षे) रत्नो का स्थान होने से (वरेण) श्रेष्ठ (गाभीर्येण) गम्भीरता से (निर्मलतया) निर्मल होने से (वार्द्धिः) समुद्र (त्वया) तेरे साथ समानता है। परन्तु (सदा) निरन्तर (प्रमुदितत्रैलोक्यमसेव्यता) प्रमुदित तीन लोक के द्वारा ससेव्य (परमा) श्रेष्ठ (च) और (मनोहारिता) मनोहर (मूर्त्तिः) मूर्त्ति (अक्षयसगमाऽस्ति) अक्षय सगम वाली (वंद्या) वदनीय (लक्ष्मी.) लक्ष्मी (किं) क्या (जलधेः) समुद्र के (अस्ति) है, अर्थात् नही है।

**भावार्थ**—हे श्रेयासनाथ समुद्र भी रत्न से पूरित होने से रत्नाकर है और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र से परिपूर्ण होने से आप भी रत्नाकर है। सरस्वती नामक नदी का पति होने से समुद्र भी सरस्वतीश्वर है और आप भी सरस्वती के ईश्वर हो इसलिए रत्नाकरत्व और सरस्वतीश्वरत्व-गंभीरत्व निर्मलत्व की अपेक्षा समुद्र तेरे समान हो तो हो, परन्तु वदनीय लोक के द्वारा सेवनीय श्रेष्ठ मनोहर मूर्त्ति अविनश्वर केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी का सगम (प्राप्ति) क्या जलधि से हो सकता है अर्थात् नही हो सकता। इसलिए हे भगवान, आप केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी के निवास स्थान अपूर्व समुद्र हो ।६३।

**इति श्रीमद्वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिते श्रीआचारसारनाम्नि ग्रन्थे ध्यानवर्णनात्मको दशमोऽधिकारः**

## एकादशमोऽधिकारः

**श्रियं समंनरितमिरक्षयोज्ज्वलां**
**सन्मार्गगः श्रीविमलः क्रियात्सदा।**
**जिनो निजानंतवरैर्गुणोत्करैः–**
**विराजमानो जनताब्जभास्करः ॥१॥**

**अन्वयार्थ**—(सन्मार्गग ) सन्मार्गगामी (निजानन्तवरैः) अपने अनन्त श्रेष्ठ (गुणोत्करैः) गुणो के समूह से (विराजमान ) शोभायमान (जनताब्जभास्करः) जनता रूपी कमल के लिए सूर्य (श्रीविमल.) श्री विमलनाथ (जिन.) जिनेन्द्र (मम) मेरे लिए (सदा) हमेशा (एनस्तिमिरक्षयोज्ज्वला) पाप रूपी अन्धकार के क्षय हो जाने से उज्ज्वल (श्रिय) लक्ष्मी को (क्रियात्) करें।

**भावार्थ**—स्वकीय अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्यादि अनन्त गुणो के धारी, भव्य जीवो के हृदय रूप कमल को विकसित करने के लिए सूर्य ऐसे श्रीविमल जिनेश्वर मेरे लिए पापत्तिमिर के नाश से उज्ज्वल मुक्ति रूपी लक्ष्मी को प्रदान करें ।।१।।

**जीवस्य कर्मणो भेदवेदनायेदमुच्यते ।**
**संक्षेपेणाज्ञसंज्ञप्त्यै जीवकर्मप्ररूपणम् ।।२।।**

**अन्वयार्थ**—(अज्ञसज्ञप्त्यै) अज्ञानी जनो के ज्ञान कराने के लिए (संक्षेपण) सक्षेप से (जीवस्य) जीव (कर्मण ) कर्म के (भेदवेदन य) भेद का ज्ञान कराने के लिए (इदम्) यह (जीवकर्मप्ररूपणम्) जीव और कर्म की प्ररूपणा (उच्यते) कही जाती हे ।

**भावार्थ**—अनादि काल से अज्ञ प्राणी, जीव और कर्म के भेद को नही जानता है, इसलिए अज्ञ प्राण को जीव और कर्म के भेद का ज्ञान कराने के लिए जीव और कर्म के स्वरूप का कथन किया जाता है ।।२।।

**जीवो गुणोऽस्य पर्याप्तिः प्राणः सज्ञा तु मार्गणाः ।**
**चतुर्दशोपयोगश्चेत्याद्य विंशतिभेदगम् ।।३।।**

**अन्वयार्थ**—(अस्य) इस जीव प्ररूपणा के (जीव ) जीवसमास (गुण ) गुणस्थान (पर्याप्ति ) पर्याप्ति (प्राण ) प्राण (सज्ञा) सज्ञा (चतुर्दश) चौदह (मार्गणा ) मार्गणा (तु च) और (उपयोग ) उपयोग (इति) इस प्रकार (आद्य ) आदि की जीव प्ररूपणा (विंशतिभेदग) बीस भेद रूप है ।

**भावार्थ**—जीव और कर्म की प्ररूपणा मे प्रथम भेद जीव है। उस जीव के जीवसमास, गुणस्थान, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग यह बीस भेद है ।३।।

**त्रसादीनां चतुर्युग्मेष्व विरुद्धोदयान्वितात् ।**
**जातिकर्मोदयाज्जीवसमासा स्युश्चतुर्दश ।।४।।**

**अन्वयार्थ**—(त्रसादीना) त्रसादि के (चतुर्युग्मेषु) चार युगल मे (अविरुद्धोदयान्वितात्) अविरुद्ध उदय से युक्त (जातिकर्मोदयात्) जाति नाम कर्म के उदय से (जीवसमास ) जीव समास (चतुर्दश) चौदह प्रकार के हैं ।

**भावार्थ**—जातिनामकर्म के उदय से होने वाले तिर्यग्सामान्य और ऊर्ध्वतासामान्य धर्मो को जीव समास कहते हैं। त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त और प्रत्येक साधारण इन अविरुद्ध त्रसादि कर्मों से युक्त जाति नाम कर्म के उदय से जीव समास चौदह प्रकार के हैं ।।४।।

**त एते स्थूलसूक्ष्मैकाक्षद्वित्रिचतुरिन्द्रिया ।**
**संज्ञ्यसंज्ञ्यगिपंचाक्षपर्याप्तेतरसज्ञका ।।५।।**

संगृहीतविशेषद्विसामान्यत्वादितीरिता ।
नैगमाश्रयणादेवमन्यत्राऽपि निरूपयेत् ॥६॥ युग्मम्॥

**अन्वयार्थ**—(ते) वे (एते) यह चौदह जीवसमास हैं (नैगमाश्रयणात्) नैगम नय के आश्रय से (सगृहीतविशेषद्विसामान्यत्वात्) सगृहीत विशेष और दो सामान्य होने से (स्थूलसूक्ष्मंकक्षद्वित्रिवतुरिन्द्रिया।) स्थूल, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, (मज्यमज्यगिपचाक्षपर्याप्तेतरसज्ञक ) सज्ञी, असज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त सज्ञा वाली (इति) इस प्रकार (ईरिता·) कहे गये हैं (एव) इस प्रकार (अन्यत्र) अन्य स्थलो मे अपि) भी (निरूपयेत्) निरूपण किया जायगा ।

**भावार्थ**—प्रत्येक वस्तु सामान्य विशेषात्मक है । जो सबमे रहता है वह सामान्य है । और जो किसी एक मे रहता है वह विशेष है । ऊर्ध्वतासामान्य और तिर्यग्सामान्य भेद से सामान्य दो प्रकार का है । एक पदार्थ की काल क्रम से होने वाली अनेक पर्यायो मे रहने वाले समान धर्म को ऊर्ध्वतासामान्य अथवा तद्भवसामान्य कहते है । एक समय मे अनेक पदार्थगत सदृश धर्म को तिर्यक् सामान्य अथवा सादृशसामान्य कहते हैं । यह ऊर्ध्वतासामान्य रूप या तिर्यक्सामान्य रूप धर्म, त्रसादि युगलो मे से अविरुद्ध कर्मो से युक्त एकेन्द्रियादि जातिनामकर्म का उदय होने पर उत्पन्न होता है । इसी को जीवसमास कहते हैं ।

जीवसमास से सम्बन्धित कर्मो मे से किस किसके उदय के साथ किस किस कर्म के उदय का विरोधाविरोध है, यह नीचे लिखे अनुसार समझना चाहिये ॥५,६॥

| क्रमाक | किसके साथ | विरुद्ध | अविरुद्ध |
|---|---|---|---|
| १ | एकेन्द्रिय | त्रस | शेष सभी कर्मो का ७८ |
| २ | द्वीन्द्रियादि | स्थावर, सूक्ष्म, साधारण | ,, |
| ३ | त्रस | ,, ,, ,, | ,, |
| ४ | स्थावर | त्रस नामकर्म | ,, |
| ५ | वादर | सूक्ष्म नामकर्म | ,, |
| ६ | सूक्ष्म | त्रस, वादर, प्रत्येक | ,, |
| ७ | पर्याप्त | अपर्याप्त | ,, |
| ८ | अपर्याप्त | पर्याप्त | ,, |
| ९ | प्रत्येक | साधारण | ,, |
| १० | साधारण | प्रत्येक, त्रस | ,, |

सक्षेप से जीवसमास के चौदह भेदो को गिनाते हैं। एकेन्द्रिय के दो भेद हैं वादर और सूक्ष्म तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय । पचेन्द्रिय के दो भेद हैं--सज्ञीपचेन्द्रिय और असज्ञीपचेन्द्रिय । इस तरह ये सातो ही प्रकार के जीव पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो ही तरह के हुआ करते हैं, इसलिए जीवसमास के सामान्यतया सव मिलकर चौदह भेद होते हैं ॥५,६॥

सचित्ताऽचित्तमिश्रोष्णा शीता मिश्रा च सवृता ।
विवृतेत्यगिनामष्टौ स्यु सन्मूर्च्छनयोनयः ॥७॥

**अन्वयार्थ**—(सचित्ताऽचित्तमिश्रा) सचित्त, अचित्त, मिश्र, (उष्णा) उष्ण (शीता) शीत (मिश्रा) [illegible] (सवृता) संवृत (च) और (विवृता) विवृत (इति) इसप्रकार (अंगिना) प्राणियो की (सन्मूर्च्छनयोनय ) सन्मूर्च्छन योनिया (अष्टौ) आठ (स्यु ) हैं ।

**भावार्थ**—सन्मूर्च्छन जीवो के आठ प्रकार की योनि होती है। सचित्त, अचित्त, मिश्र, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सवृत और विवृत ॥७॥

**सचित्ताचित्तयोर्मिश्रा संवृतेतरयोरपि ।**
**शीतोस्णमिश्रा पचैव जीवानां गर्भयोनय ॥८॥**

**अन्वयार्थ**—(सचित्ताचित्तयो.) सचित्त अचित्त का (मिश्राः) मिश्र (सवृतेतरयो) संवृत विवृत का मिश्र (शीतोष्णमिश्राः) शीत उष्ण और मिश्र (एव) इस प्रकार (जीवाना) जीवो की (गर्भयोनय) गर्भयोनि (पच) पाच है।

**भावार्थ**—सचित्ताचित्त, सवृतविवृत, शीत, उष्ण, शीतोष्ण यह गर्भज जीवो की पाच प्रकार की योनि होती है ॥८॥

**उपपादयोनयः स्युः शीतोष्णाचित्तसंवृताः ।**
**संवृतैकेन्द्रियेऽन्येषु विवृतोष्णा त्वग्निकायिके ॥९॥**

**अन्वयार्थ**—(शीतोष्णाचित्तसवृता) शीत, उष्ण, अचित्त और सवृत (उपपादयोनय.) उपपाद योनि (स्युः) हैं। (एकेन्द्रिये) एकेन्द्रिय मे (संवृता) संवृत योनि है (अन्येषु) दो इन्द्रियादि मे (विवृता) विवृत योनि है (तु) और (अग्निकायिके) अग्नि काय की (उष्णा) उष्ण योनि है।

**भावार्थ**—उपपाद जन्म की अचित्त ही योनि होती है। गर्भ जन्म की मिश्र योनि ही होती है। तथा सम्मूर्च्छन जन्म की सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनो तरह की योनि होती है। उपपाद जन्म मे शीत और उष्ण दो प्रकार की योनि होती है। शेष गर्भ और सम्मूर्छन जन्मो मे शीत, उष्ण, मिश्र तीनो ही योनि होती है। उपपाद जन्म वालो की तथा एकेन्द्रिय जीवो की योनि सवृत ही होती है और विकलेन्द्रियो की विवृत ही होती है ॥९॥

गर्भज जीवो की योनि नियम से मिश्र-सवृत-विवृत की अपेक्षा मिश्रित ही होती है। पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन जीवो की विकलेन्द्रियो की तरह विवृत योनि ही होती है। पूर्वोक्त क्रमानुसार सामान्य से योनियो के नियम से नव ही भेद होते हैं। विस्तार की अपेक्षा इनके चौरासी लाख भेद होते हैं। आत्म प्रदेशो से युक्त पुद्गल पिंड को सचित और उनसे रहित पुद्गल को अचित्त कहते है। जन्म के आधार भूत स्थान के कुछ पुद्गल सचित्त और कुछ अचित्त हो तो उसको सचित्ता सचित्त की मिश्रयोनि समझना चाहिये। शीत, उष्ण और उसकी मिश्र का अर्थ स्पष्ट है। सवृत का अर्थ ढका हुआ और विवृत का अर्थ खुला हुआ है। तथा कुछ ढका हुआ कुछ खुला हुआ हो तो उसको संवृत, विवृत का मिश्र समझना चाहिये ॥९॥

**जराय्वडजपोताः स्युर्गर्भेऽप्येवोपपादिका. ।**
**नाकिनो नारकाश्चान्ये स्युः सम्मूर्च्छनयोनयः ॥१०॥**

**अन्वयार्थ**—(जराय्व ढजपोता.) जरायुज, अडज और पोतज जीव (गर्भे) गर्भ मे (एव) ही होते है (नाकिन) देव (नारकाः) नारकी (उपपादिका.) उत्पाद जन्म वाले है (अपि) और (अन्ये) शेप जीव (सम्मूर्च्छनयोनय) सम्मूर्च्छन जन्म वाले (स्यु) हैं।

**भावार्थ**—पोत प्रावरण रहित और उत्पन्न होते ही जिनमे चलने फिरने आदि की सामर्थ्य हो जैसे—सिंह, बिल्ली, हिरण आदि। जरायुज जो जेर के साथ उत्पन्न होते हो। अण्डज जो अण्डे मे उत्पन्न, इन तीन प्रकार के जीवो का गर्भजन्म ही होता है। देव नारकियो का उपपाद जन्म ही होता है, शेप जीवो का सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है ॥१०॥

सप्तसप्तनिगोदद्वयोर्वीतोयाग्निवायुषु ।
प्रत्येके दशयोनीनां षडपिंडाद्विकलेन्द्रिये ॥११॥

पंचाक्षे नारके देवे चत्वारि तु चतुर्दश ।
नरे चतुरशीतिः स्युर्लक्षाण्येव विशेषतः ॥१२॥

**अन्वयार्थ**—(सप्तसप्तनिगोदद्वयोर्वीतोयाग्निवायुषु) नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय वायु की सात सात लाख योनि हैं। (प्रत्येके) प्रत्येक वनस्पति मे (योनीना) योनियो की संख्या (दश) दश लाख है। (षडपिंडा-द्विकलेन्द्रिये) विकलेन्द्रियो की पिंड रूप छह लाख (पंचाक्षे) पचेन्द्रिय मे (नारके) नारकी मे (देवे) देवो मे (चत्वावि) चार चार लाख (नरे) मनुष्य मे (चतुर्दश) चौदह लाख (विशेपत) विशेष से (चतुरशीति) चौरासी लाख योनि (स्यु) हैं।

**भावार्थ**—नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इनमे से प्रत्येक की सात-सात लाख तक अर्थात् प्रत्येक, वनस्पति की दश लाख द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इनमे से प्रत्येक की दो-दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की सब मिलाकर छह लाख, देव नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय प्रत्येक की चार-चार लाख, मनुष्य की चौदह लाख सब मिलाकर चौरासी लाख योनि होती हैं ॥११,१२॥

न जन्म शंखावर्त्तायां तीर्थेशाश्चक्रिणोबला. ।
कूर्मोन्नतायां स्युश्चान्ये वंशपत्राकृतौ परे ॥१३॥

**अन्वयार्थ**—(शखावर्त्ताया) शंखावर्त्त योनि मे (जन्म) जन्म (न) नही होता है। (कूर्मोन्नताया) कूर्मोन्नत योनि मे (तीर्थेशा) तीर्थंकर (चक्रिण.) चक्रवर्ती (बला) वलभद्र (स्यु) उत्पन्न होते हैं (च) और (परे) दूसरे (अन्ये) शेप सारे ससारी जीव (वशपत्राकृतौ) वशपत्राकृति वाली योनि मे उत्पन्न होते हैं।

**भावार्थ**—आकार योनि के तीन भेद हैं। १ शखावर्त्त २ कूर्मोन्नत ३ वशपत्र इनमे से शंखावर्त योनि:मे गर्भ नियम से वर्जित है। जिसके भीतर शख के समान चक्कर पडे हो उसको शखावर्त योनि कहते हैं। जो कछुआ की पीठ की तरह उठी हुई हो उसको कूर्मोन्नत योनि कहते हैं। जो वास के पत्ते के समान लम्बी हो उसको वंशपत्र योनि कहते हैं। ये तीन तरह की आकार योनि है। इनमे से पहली शखावर्त योनि मे नियम से गर्भ नही रहता है। कूर्मोन्नत योनि मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती तथा वलभद्र, अपि शब्द की सामर्थ्य से अन्य भी महान् पुरुष उत्पन्न होते हैं। तीसरी वंशपत्र योनि मे साधारण पुरुष ही उत्पन्न होते हैं ॥१३॥

आदीन्द्रके त्रिहस्ता. स्युराद्युर्व्यामन्तिमेन्द्रके ।
सप्तचापास्त्रिहस्ताश्च षडगुल्यस्तनूच्छ्रयः ॥१४॥

द्वितीयाद्युर्वेरान्तेन्द्रकेषु स्याद्द्विगुणः क्रमात् ।
नारकाणामयं हानिवृद्धी स्यातां परेषु तु ॥१५॥

**अन्वयार्थ**—(आद्युर्व्याम्) प्रथम नरक के (आदीन्द्रके) प्रथम इन्द्रक विल मे (नारकाणा) नारकियो के (तनूच्छ्रय:) शरीर की ऊँचाई (त्रिहस्ता) तीन हाथ प्रमाण है (च) और (अन्तिमेन्द्रके) प्रथम नरक के अन्तिम इन्द्रक विल मे (सप्तचापा·) सात धनुप (त्रिहस्ता) तीन हाथ (षडगुल्य.) छह अगुल है (द्वितीयाद्युर्वेरान्तेन्द्रकेषु) द्वितीय आदि नरको

के अन्तिम बिल मे (क्रमात्) क्रम से (द्विगुणा) द्विगुणी (स्यात्) होगी (तु) और (नारकाणा) नारकियो के (अयम्) यह (परेषु) शेष नरको मे भी (हानिवृद्धी) हानि वृद्धि (स्याताम्) होगी।

**भावार्थ**—घर्मा पृथिवी के अन्तिम इन्द्रक मे नारकियो के शरीर की ऊचाई सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल है। इसके आगे शेष पृथिवियो के अन्तिम इन्द्रको मे रहने वाले नारकियो के शरीर की ऊचाई का प्रमाण उत्तरोत्तर इससे दुगुणा दुगुणा होता गया है। धर्मा पृथिवी मे शरीर की ऊचाई सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल है। वशा पृथिवी मे पन्द्रह धनुष, दो हाथ, बारह अगुल है। मेघा पृथिवी मे इकतीस धनुष, एक हाथ, अजना पृथिवी मे बासठ धनुष दो हाथ, अरिष्टा मे एक सौ पच्चीस धनुष, मघवी मे दो सौ पच्चास, धनुष, माधवी पृथिवी मे पाच सौ धनुष ऊंचाई है। रत्नप्रभा पृथिवी के सीमन्त नामक पटल मे जीवो के शरीर की ऊचाई तीन हाथ है। इसके आगे शेष पटलो मे शरीर की ऊचाई हानि वृद्धि को लिये हुये हैं। अन्त मे से आदि को घटाकर शेष मे एक कम अपने इन्द्रक के प्रमाण का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रथम पृथिवी मे हानि वृद्धि का प्रमाण है इसे उत्तरोत्तर मुख मे मिलाने अथवा भूमि मे से कम करने पर अपने अपने पटलो मे ऊचाई का प्रमाण ज्ञात होता है।

**उदाहरण**—अन्त ७ धनुष, ३ हाथ, ६ अगुल। आदि ३ हाथ, इसे हाथो मे परिवर्तित करके $३१\frac{1}{4}$—३—(१३—१)=२ हाथ $८\frac{1}{2}$ अ, हानि वृद्धि। धर्मा पृथिवी मे इस हानि वृद्धि का प्रमाण दो हाथ आठ अंगुल और एक अगुल का दूसरा भाग ($\frac{1}{2}$) है। हा. २ अगुल ($८\frac{1}{2}$)। प्रथम पृथिवी के निरय नामक द्वितीय पटल मे एक धनुष, एक हाथ और सत्रह अंगुल के आधे अर्थात् साढे आठ अगुल प्रमाण तथा रौरुक पटल मे एक धनुष, तीन हाथ और सत्रह अंगुल प्रमाण शरीर की ऊचाई है। भ्रान्त पटल मे दो धनुष, दो हाथ और डेढ अगुल तथा उद्भ्रान्त पटल मे तीन धनुष और दस अगुय प्रमाण शरीर का उत्सेध है। प्रथम पृथिवी के सम्भ्रान्त नामक इन्द्रक मे शरीर की ऊचाई तीन धनुष, दो हाथ और साढे अठारह अगुल है। प्रथम पृथ्वी के असम्भ्रात नामक इन्द्रक में शरीर की ऊँचाई का प्रमाण चार धनुष और सत्ताईस अगुल है।

विभ्रान्त नामक पटल में चार धनुष, तीन हाथ और तेईस अगुल के आधे अर्थात साढे ग्यारह अंगुल प्रमाण उत्सेध है। प्रथम पृथिवी के तप्त इन्द्रक मे शरीर का उत्सेध पाच धनुष, एक हाथ और वीस अंगुल प्रमाण कहा गया है। त्रसित नामक पटल मे नारकियो के शरीर की ऊचाई छह धनुष और अर्ध अंगुल सहित चार अंगुल प्रमाण जानना चाहिये। प्रथम पृथिवी के वक्रान्त नामक पटल मे शरीर का उत्सेध छह धनुष, दो हाथ और तेरह अगुल है। अवक्रान्त नामक पटल मे सात धनुष और साढे इक्कीस अगुल प्रमाण शरीर का उत्सेध है। प्रथम पृथिवी के विक्रान्त नामक अन्तिम इन्द्रक मे उत्सेध शरीर का उत्सेध सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल हैं।

—वंशा पृथिवी मे दो हाथ, बीस अगुल और ग्यारह से भाजित दो भाग प्रमाण प्रत्येक पटल मे वृद्धि होती है। इस वृद्धि को मुख अर्थात् प्रथम पृथिवी के उत्कृष्ट उत्सेध प्रमाण मे 'उत्तरोत्तर' मिलाते जाने से क्रमश. द्वितीय पृथिवी के प्रथमादि पटलो मे उत्सेध का प्रमाण निकलता है। द्वितीय पृथिवी के (स्तनक नामक प्रथम इन्द्रक मे) नारकियो के शरीर का उत्सेध आठ धनुष, दो हाथ और ग्यारह से भाजित चौबीस अगुल प्रमाण है। दूसरी पृथिवी के तनक नामक द्वितीय पटल मे नौ धनुष, बाईस अगुल और ग्यारह से भाजित चार भाग प्रमाण शरीर का उत्सेध है। मन इन्द्रक मे जीवो के शरीर का उत्सेध नौ धनुष, तीन हाथ और ग्यारह से भाजित दो सौ चार अंगुल प्रमाण है

दूसरी पृथिवी के वनक इन्द्रक मे शरीर का उत्सेध दस धनुष दो हाथ चौदह अगुल और आठ अंगुलो का ग्यारहवा भाग है। द्वितीय पृथिवी के घात इन्द्रक मे ग्यारह धनुष, एक हाथ, दस अगुल ग्यारह से भाजित दश भाग प्रमाण शरीर का उत्सेध है। सघात इन्द्रक मे नारकियो के शरीर का उत्सेध बारह धनुष, ग्यारह से भाजित अठहत्तर अंगुल प्रमाण है। द्वितीय पृथिवी के जिह्व इन्द्रक मे शरीर का उत्सेध बारह धनुप तीन हाथ तीन अगुल और ग्यारह मे भाजित तान भाग

प्रमाण है। जिह्वक पटल मे शरीर का उत्सेध तिरेपन हाथ तेईस अगुल के ग्यारह भागो मे से पाँच भाग मात्र है। लोल नामक पटल में शरीर का उत्सेध चौदह धनुष और ग्यारह से भाजित दो सौ सोलह अंगुल मात्र है। लोलक नामक पटल मे नारकियो के शरीर की ऊंचाई उनसठ हाथ पन्द्रह अगुल और ग्यारह से भाजित अगुल के नौ भाग प्रमाण है। द्वितीय पृथ्वी के स्तनक लोलक अन्तिम पटल मे पन्द्रह धनुष दो हाथ और बारह अंगुल प्रमाण शरीर का उत्सेध है। मेघा पृथिवी मे एक धनुष, दो हाथ बाईस अंगुल और तीन से भाजित एक अंगुल के दो भाग प्रमाण हानि वृद्धि जानना चाहिये।

—मेघा पृथिवी के तप्त इन्द्रक मे जीवो के शरीर का उत्सेध सत्रह धनुप, चौंतीस अंगुल और तीन से भाजित अंगुल के दो भाग प्रमाण है। तीसरी पृथिवी के शीत इन्द्रक मे नारकियो का उत्सेध उन्नीस धनुप और तीन से भाजित अट्ठाईस अगुल मात्र है। तीसरी पृथिवी के तपन इन्द्रक बिल मे शरीर का उत्सेध बीस धनुष सहित अस्सी अगुल प्रमाण है। मेघा पृथिवी के तापन इन्द्रक मे स्थित जीवो के शरीर को उत्सेध नब्बे हाथ और तीन से भाजित बीस अगुल मात्र है। निदाघ नामक पटल मे नारकी जीवो के शरीर की ऊंचाई सत्तानबे हाथ और तीन से भाजित सोलह अंगुल मात्र है। मेघा पृथिवी के प्रज्वलित नामक पटल मे स्थित जीबो के शरीर का उत्सेध छब्बीस धनुष और चार अगुल प्रमाण है। उज्वलित इन्द्रक मे नारकियो के शरीर का उत्सेध सत्ताईस धनुष, तीन हाथ और तीन से भाजित आठ अंगुल मात्र है। तीसरी पृथिवी के संज्वलित इन्द्रक मे शरीर का उत्सेध उनतीस धनुष, दो हाथ और तीन से भाजित चार अगुल मात्र है। तीसरी पृथिवी के सप्रज्वलित नामक अन्तिम इन्द्रक मे नारकियो के शरीर का उत्सेध इकतीस धनुष और एक हाथ प्रमाण है।

—चतुर्थ पृथिवी मे चार धनुष एक हाथ बीस अगुल और सात से भाजित चार भाग प्रमाण हानि वृद्धि है। आर पटल मे स्थित जीवो के शरीर का उत्सेध पैंतीस धनुष, दो हाथ, बीस अगुल और सात से भाजित चार भाग प्रमाण है। चतुर्थ पृथिवी के मार नामक पटल मे रहने वाले जीवो के शरीर की ऊचाई चालीस धनुष और सात से भाजित एक सौ बीस अंगुल प्रमाण है। चतुर्थ पृथिवी के तार इन्द्रक मे स्थित जीवो के शरीर का उत्सेध चवालीस धनुष, दो हाथ और सात से भाजित छयानबे अगुल मात्र है। चतुर्थ पृथिवी मे तत्व (चर्चा) इन्द्रक में नारकियो के शरीर का उत्सेध उनचास धनुष और सात से भाजित बहत्तर अगुल मात्र है। तमक इन्द्रक मे स्थित जीवो के शरीर का उत्सेध तिरेपन धनुष दो हाथ और सात से भाजित अडतालीस अगुल प्रमाण है। चतुर्थ पृथिवी के बाद इन्द्रक मे नारकियो के शरीर का उत्सेध अट्ठावन धनुष और सात से भाजित चौबीस अंगुल है। चतुर्थ पृथिवी के खलखल नामक अन्तिम इन्द्रक में नारकियो के शरीर का उत्सेध बासठ धनुष और दो हाथ प्रमाण है।

—वीतराग देव ने पाचवी पृथिवी में क्षय व वृद्धि का प्रमाण बारह धनुष और दो हाथ बतलाया है। पाचवी पृथिवी के तम नामक प्रथम इन्द्रक मे स्थित जीवो के शरीर की ऊंचाई पचहत्तर धनुष प्रमाण है। पाचवी पृथिवी के भ्रम नामक पटल मे नारकी जीवो के शरीर काउत्सेध सत्यासी धनुष और दो हाथ प्रमाण है। झष नामक पटल मे एक सौ धनुष तथा अधक पटल मे एक सौ बारह धनुष और दो हाथ प्रमाण नारकियो के शरीर की ऊचाई है। धूमप्रभा पृथिवी के तिमिश्र नामक अन्तिम इन्द्रक मे नारकियो के शरीर का उत्सेध पच्चीस अधिक एक सौ अर्थात् एक सौ पच्चीस धनुप मात्र है।

—छठी पृथिवी मे हानि वृद्धि का प्रमाण इकतालीस धनुष, दो हाथ और सोलह अगुल है। हिम पटल गत जीवों के शरीर की ऊचाई एक सौ छयासठ धनुष, दो हाथ और सोलह अगुल प्रमाण है। छठी पृथिवी के बर्दल पटल मे स्थित जीवो के शरीर का उत्सेध दो सौ आठ धनुष और बत्तीस अंगुल प्रमाण है। लल्लक नामक इन्द्रक मे स्थित जीवो के शरीर का उत्सेध दो सौ पचास धनुष मात्र हे।

—सातवी पृथिवी के अवधिस्थान इन्द्रक मे पाच सौ धनुष प्रमाण नारकियो के शरीर का उत्सेध है। इस प्रकार जिन भगवान ने सम्पूर्ण नारकियो के शरीर का उत्सेध कहा है। इस प्रकार रत्नप्रभादिक पृथिवियो के प्रत्येक इन्द्रको मे जो शरीर का उत्सेध है वही उत्सेध उन उन पृथिवियो के श्रेणीबद्ध और विश्रेणीगत प्रकीर्णक बिलो मे भी जानना चाहिये ॥१५॥

ऋज्वा गत्या समुत्पन्नस्तृतीयसमयेऽवरः।
देहः सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य च ॥१६॥

पल्याऽसंख्येयभागेन विभक्तं स्याद्घनांगुलं।
चतुर्वृद्धियुतोऽप्यस्मादालापादीदृशो मतः ॥१७॥

**अन्वयार्थ**—(ऋज्वा) ऋजु (गत्या) गति से (समुत्पन्न) उत्पन्न (सूक्ष्मनिगोदस्य) सूक्ष्मनिगोदिया (लब्ध्यपर्याप्तकस्य) लब्ध्यपर्याप्त का (तृतीयसमये) तीसरे समय मे (देह.) शरीर (अवर) जघन्य (पल्याऽसंख्येयभागेन) पल्यके असख्यात भाग से (विभक्तं) भाजित (घनागुल) घनागुल प्रमाण है (चतुर्वृद्धियुत) चतुस्थान वृद्धि से युक्त होता हुआ (अपि) भी (अस्मात्) इस (आलापात्) आलाप से (ईदृश:) ऐसा (मत) माना है।

**भावार्थ**—ऋजुगति से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवो की उत्पत्ति के तीसरे समय मे शरीर की जघन्य अवगाहना घनागुल के असख्यातवें भाग प्रमाण है। उत्पत्ति के प्रथम समय मे आयत चतुरस्त्र और दूसरे समय मे समचतुरस्त्र होती है। इसलिये प्रथम द्वितीय समय मे जघन्य अवगाहना नही होती है। परन्तु तीसरे समय मे गोल हो जाने से जघन्य अवगाहना होती है। इसके आगे चतुस्थान वृद्धियुक्त होने से आलाप इस प्रकार माना है ॥१६,१७॥

लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तपर्याप्तेष्ववरो वरः।
निर्वृत्यपूर्णपूर्णेषु विशेषः क्वेषुचिद्यथा ॥१८॥

घनांगुलस्य संख्यभागः स्यादवरः क्रमात्।
पूर्णद्वित्रिचतुः पचाक्षाणां संख्ययतसंगुणः ॥१९॥

तज्जघन्यमणुंधर्यां कुंथावप्यवगाहनम्।
स्यात्काणमक्षिकायां च सिक्थमत्स्ये यथाक्रमम् ॥२०॥

वर त्रिचतुर्द्वक्षा प्रतिष्ठितेंगमपूर्णके।
पंचाक्षे च ततः पूर्णेऽमीषां संख्यातसगुणम् ॥२१॥

**अन्वयार्थ**—(लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तपर्याप्तेषु) लब्धिअपर्याप्त, निवृत्तिअपर्याप्त, 'पर्याप्त' मे (अवर') जघन्य (वर') उत्कृष्ट (केषुचित्) किसी (निवृत्यपूर्णपूर्णेषु) निवृत्ति अपर्याप्त, पर्याप्त मे (विशेष') विशेष है (यथा) जैसे (क्रमात्) क्रम से (पूर्णद्वित्रिचतु पचाक्षाणा) पर्याप्त दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की (अवर) जघन्य अवगाहना (सख्यातगुण') संख्यात गुणी (घनागुलस्य) घनागुल के (सख्येयभाग:) सख्यातवें भाग है। (यथाक्रमम्) यथाक्रम से (अणुधर्यां) दो इन्द्रिय अनुधरी मे (कुथौ) तीन इन्द्रिय कुन्थु मे (काणमसिकाया) चतुरिन्द्रिय काणमक्षिका में (च) और (सिक्थमत्स्ये) पचेन्द्रिय सिक्थ मत्स्य में (जघन्यं) जघन्य (अवगाहनम्) अवगाहना (सख्यातसंगुणा) परस्पर में सख्यात गुणी विशेष (स्यात्) होती है। (अपूर्णके) अपर्याप्त (त्रिचतुर्द्वक्षा') तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, दो इन्द्रिय (प्रतिष्ठिते) प्रतिष्ठ में (पचाक्षे) पचेन्द्रिय मे (अग) शरीर की अवगाहना (सख्यातगुणं) सख्यात गुणित है। (अमीषा) इन तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय दो इन्द्रिय, प्रतिष्ठित (पूर्णे) पूर्ण मे (तत') उससे (सख्यातसगुणम्) सख्यात गुणित है'

**भावार्थ**—सूक्ष्म निगोदिया से सूक्ष्म वायुकाय का प्रमाण आवली के असख्यातवे भाग से गुणित है। इसी प्रकार सूक्ष्म वायु काय से सूक्ष्म तेज काय का और सूक्ष्म तेज काय से सूक्ष्म जलकाय का तथा सूक्ष्म जलकाय से सूक्ष्म पृथ्वी काय का प्रमाण उत्तरोत्तर आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित है। परन्तु सूक्ष्म पृथिवी काय से बादर वातकाय का प्रमाण पर स्थान होने से पल्यके असख्यातवे भाग गुणित है। इसी प्रकार बादर वातकाय से वादर तेज काय का और वादर तेजकाय से वादर जलकायादि का प्रमाण उत्तरोत्तर क्रम से पल्यके असख्यातव भाग २ गुणा है। इसीप्रकार आगे के स्थान भी समझना चाहिये। क्योकि जितने सूक्ष्म स्थान है वे आवली के एक असख्यातवें भाग से गुणित है। और जितने वादर अवगाहनाओ के स्थान है वे सव पल्यके एक असख्यातवे भाग से गुणित है। परन्तु श्रेणीगत बाईस स्थानो मे गुणाकार नही है किन्तु वे सव स्थान उत्तरोत्तर अधिक अधिक है। अर्थात् वाईस स्थानो मे जो सूक्ष्म है वे आवली के एक एक असंख्यातवें भाग अधिक है और जो वादर है वे पल्यके एक एक असख्यातवे भाग अधिक है। इस तरह किसी भी विवक्षित स्थान की अवगाहना का प्रमाण उससे पूर्व के अवगाहना प्रमाण को अपने, अपने गुणाकार से गुणित करने पर अथवा उसमे अधिक प्रमाण जोड देने पर निष्पन्न होता है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो में अनुन्धरी, कुंथु काणमक्षिका सिक्थक मत्स्य के क्रम से जघन्य अवगाहना होती है। जघन्य अवगाहना के ऊपर प्रदेशोत्तर वृद्धि के क्रम से असख्यात भागवृद्धि, संख्यातभाग वृद्धि सख्यातगुणवृद्धि, असख्यातगुणवृद्धि को क्रम से असख्यात २ बार हो जाने पर और इन वृद्धियो के मध्य मे अवक्तव्य वृद्धियो को भी प्रदेशोत्तर वृद्धि के क्रम से ही असंख्यात २ बार हो जाने पर जब असंख्यात गुणवृद्धि होते होते अन्त मे अपर्याप्त वायु काय की जघन्य अवगाहनाओ को उत्पन्न करने मे योग्य समर्थ आवली के असंख्यातवे भाग प्रमाण असख्यात का गुणाकार आ जाय तब उसके साथ जघन्य अवगाहना का गुणा करने से अपर्याप्त वायुकाय की जघन्य अवगाहना प्रमाण निकलता है। यह सब पूर्वोक्त कथन अकसंदृष्टि के बिना अच्छी तरह से समझ मे नही आ सकता इसलिए यहा पर अकसदृष्टि लिख देना उचित समझते हैं। वह इस प्रकार है कल्पना कीजिये कि जघन्य अवगाहना का प्रमाण ९६० है और जघन्य सख्यात का प्रमाण २ तथा उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण १५ और जघन्य परीतासख्यात का प्रमाण १६ है। इस जघन्य अवगाहना के प्रमाण मे जघन्य अवगाहना का ही भाग देने से १ लब्ध आता है उसको जघन्य अवगाहना मे मिलाने से असख्यात भाग वृद्धि का आदि स्थान होता है और जघन्य परीतासख्यात अर्थात् १६ का भाग देने से ६० लब्ध आते हैं उनको जघन्य अवगाहना मे मिलाने से असख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। उत्कृष्ट सख्यात का अर्थात् १५ का जघन्य अवगाहना में भाग देने से लब्ध ६४ आते हैं इनको जघन्य अवगाहना मे मिलाने से सख्यात भाग वृद्धि का आदि स्थान होता है। जघन्य म २ का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको अर्थात् जघन्य के आवे (४८०) को जघन्य में मिलाने से संख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान(१४४०) होता है। परन्तु उत्कृष्ट असख्यातभाग वृद्धि के आगे और जघन्य सख्यातभागवृद्धि के पूर्व जो तीन स्थान हैं, अर्थात् जघन्य के ऊपर ६० प्रदेशो की वृद्धि तथा ६४ प्रदेशो की वृद्धि के मध्य में जो ६१-६२ तथा ६३ प्रदेशो के वृद्धि के तीन स्थान हैं वे न तो असंख्यातभाग वृद्धि मे ही आते हैं और न संख्यातभागवृद्धि मे ही। इसलिये इनको अवक्तव्य वृद्धि मे लिया है। इसके आगे गुणवृद्धि का प्रारम्भ होता है। जघन्य को दूना करने से संख्यातगुणवृद्धि का आदि स्थान (१९२०) होता है। इसके पूर्व में उत्कृष्ट संख्यातभाग वृद्धि के स्थान से आगे अर्थात् १४४० से आगे जो १४४१ तथा १४४२ आदि १९१९ पर्यन्त स्थान है वे सम्पूर्ण ही अवक्तव्य वृद्धि के स्थान है। इस ही प्रकार जघन्य को उत्कृष्ट संख्यात मे गुणित करने पर संख्यातगुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है और इसके आगे जघन्य परीतासख्यात का जघन्य अवगाहना के साथ गुणा करने पर असंख्यात गुणवृद्धि का आदि स्थान होता है तथा इन दोनो के मध्य मे भी पूर्व की तरह अवक्तव्यवृद्धि होती है। इस असख्यातगुण वृद्धि में ही प्रदेशोत्तर वृद्धि के क्रम से वृद्धि होते होते सूक्ष्म वातकाय की जघन्य अवगाहना की उत्पत्ति के योग्य गुणाकार प्राप्त होता है तब उसका जघन्य अवगाहना के साथ गुणा करने पर सूक्ष्म वातकाय की जघन्य अवगाहना उत्पन्न होती है। इस अंकसंदृष्टि के अनुसार अर्थ सदृष्टि भी समझनी चाहिये, परन्तु अंकसंदृष्टि को ही अर्थ सदृष्टि नही समझ लेना चाहिये ॥१८,१९,२०,२१॥

# चौसठ अवगाहनाओं का यन्त्र

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सूक्ष्म निगोद १ | वादर वात ६ | अप प्रत्येक १२ | सूक्ष्म निगोद १७ | वादर वात ३२ | अप्र प्रत्येक ५० | तेइद्री ५५ | तेइन्द्री ६० |
| वात २ | तेज ७<br>अप् ८ | वेन्द्री १३ | वात २० | तेज ३५<br>अप ३८ | वेइन्द्री ५१ | चौइन्द्री ५६ | चौइन्द्री ६१ |
| तेज ३ | पृथ्वी ९ | तेइन्द्री १४ | तेज २३ | पृथ्वी ४१ | तेइन्द्री ५२ | वेइन्द्री ५७ | वेइन्द्री ६२ |
| अप् ४ | निगोद १० | चतुरिन्द्रिय १५ | अप २६ | निगोद ४४ | चौइन्द्रिय ५३ | अप्रतिष्ठित ५८ | अप्र.प्रत्येक ६३ |
| पृथ्वी ४ | प्र. प्रत्येक ११ | पचेन्द्रिय १६ | पृथ्वी २९ | प्र प्रत्येक ४७ | पंचेन्द्रिय ५४ | पंचेन्द्रिय ५९ | पचेन्द्रिय ६४ |
| अप. जघन्य | अप जघन्य | अप जघन्य | पर्याप्त ज. | पर्याप्त ज. | पर्याप्त ज | अपर्याप्त उत्कृष्ट | अपर्याप्त उत्कृष्ट |

| | |
|---|---|
| सूक्ष्म निगोद १८ | वादर वात ३३ |
| वात २१ | तेज ३६ |
| तेज २४ | अप ३९ |
| अप २७ | पृथ्वी ४२ |
| पृथ्वी ३० | निगोद ४५ |
| अपर्याप्त उत्कृष्ट | प्रति प्रत्येक ४८ |
| | अपर्याप्त उत्कृष्ट |

| | |
|---|---|
| सूक्ष्म निगोद १९ | वादर वात ३४ |
| वात २२ | तेज ३७ |
| तेज २५ | अप ४० |
| अप २८ | पृथ्वी ४३ |
| पृथ्वी ३१ | निगोद ४६ |
| पर्याप्त उत्कृष्ट | प्रति प्रत्येक ४९ |
| | पर्याप्त उत्कृष्ट |

जम्बूद्वीपः सुवृतोऽसौ मध्यलोकाऽतिमध्यगः ।
लक्षयोजनविस्तारस्ततः स्याल्लवणार्णवः ।।२२।।

धातकीखंडद्वीपोऽतः स्यात्कालोदकवारिधिः ।
स्तः पुष्करवरौ द्वीपसागरौ वारुणीवरौ ।।२३।।

तथा क्षीरघृतक्षौद्रवरनन्दीश्वरादयः ।
मध्ये प्रशस्तनामानोऽसंख्येयाः समनामकाः ।।२४।।

स्वयम्भूरमणद्वीपसागरावन्तसंस्थितौ ।
सर्वे सार्द्धद्विकोद्धारसागरोपमसम्मिताः ।।२५।।

**अन्वयार्थ**—(मध्यलोकाऽतिमध्यग.) मध्य लोक के अत्यन्त बीच मे (सुवृत॰) गोलाकार (लक्षयोजनविस्तार॰) एक लाख योजन विस्तार वाला (असौ) यह (जम्बूद्वीप॰) जम्बूद्वीप है। (तत) उसके बाद (लवणार्णवः) लवण समुद्र है। (तत॰) उसके बाद (धातकीखण्डद्वीपः) धातकीखण्ड द्वीप है (स्यात्) है। (ततः) उसके बाद (कालोदकवारिधि॰) कालोदधि समुद्र है। (पुष्करवरौ) पुष्करवर (द्वीपसागरौ) द्वीप सागर (स्त॰) है। (वारुणीवरौ) वारुणीवर (द्वीपसागरौ) द्वीप समुद्र है। (तथा) उसीप्रकार (मध्ये) मध्य मे (क्षीरघृतक्षौद्रवरनन्दीश्वरादय) क्षीरवर घृतवर क्षौद्रवर, नन्दीश्वरादि (प्रशस्तनामान) प्रशस्त नाम वाले (समनामकः) समान नामक (असख्येया॰) असंख्यात द्वीप हैं। (अन्तस्थितौ) अन्त मे स्थित (स्वयंभूरमणद्वीपसागरौ) स्वयभूरमणद्वीप और समुद्र है। (सर्वे) सर्व द्वीप समुद्र (सार्द्धद्विकोद्धारसागरोपमसम्मिता.) अर्द्ध सहित दो सागरोपम प्रमाण है। अर्थात् ढाई सागर प्रमाण हैं।

**भावार्थ**—मध्यलोक के बीचोबीच एक लाख योजन विस्तार वाला सुवृत जम्बूद्वीप है। उसके बाद लवण समुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्करवर द्वीप, पुष्करवरसमुद्र वारुणीद्वीप, वारुणी समुद्र, क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरसमुद्र, धृतवरद्वीप, घृतवरसमुद्र, क्षौद्रवरद्वीप, क्षौद्रवरसमुद्र, नन्दीश्वरद्वीप, नन्दीश्वरसमुद्र आदि स्वयभूमरण द्वीप, स्वयभूमरण समुद्र पर्यन्त शुभनाम वाले असख्यात द्वीप समुद्र हैं। सारे द्वीप समुद्रो की सख्या साढे दो सागरोपम है। अर्थात् पच्चीस कोड़ाकोडी पल्यके समय प्रमाण द्वीप समुद्र हैं ।।२२,२३,२४,२५।।

जम्बूद्वीपात्तु विष्कम्भा द्विगुणद्विगुणाः क्रमात् ।
पूर्वं पूर्वं परिक्षिप्ता वलयाकृतयोऽखिलाः ।।२६।।

**अन्वयार्थ**—(जम्बूद्वीपात्) जम्बूद्वीप से लेकर (क्रमात्) क्रम से (विष्कम्भा) विष्कम्भ (द्विगुणद्विगुणा) द्विगुण द्विगुण है। (अखिला) सारे द्वीप और समुद्र (पूर्वं पूर्वं) पूर्व पूर्व को (परिक्षिप्ताः) घेरे हुये (वलयाकृतय) चूडी के आकार है।

**भावार्थ**—जम्बूद्वीप से लेकर सारे द्वीप और समुद्र द्विगुण द्विगुण विस्तार वाले हैं। जैसे जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तार का है। लवण समुद्र उससे द्विगुण अर्थात् दो लाख विस्तार का है। पूर्व पूर्व के द्वीप समुद्र को वलयाकृति से वेष्टित किये हुये हैं ।।२६।।

स्वस्वनामरसास्वादा लवणो वारुणीवरः ।
वार्द्धी क्षीरघृतवरौ चत्वार इति कीर्त्तिताः ।।२७।।

अन्वयार्थ—(लवण) लवण (वारुणीवर.) वारुणीवर (क्षीरघृतवरौ) क्षीरवर और घृतवर (वार्द्धी) समुद्र (इति) इस प्रकार (चत्वार) चार समुद्र (स्वस्वनामरसास्वादा·) अपने नाम रस स्वाद वाले (कीर्त्तिता:) कहे गये है।

भावार्थ—लवणसमुद्र, वारुणीवर समुद्र, क्षीरसमुद्र और घृतवर समुद्र अपने नाम के अनुसार स्वाद वाले है। अर्थात् लवण समुद्र के जल का स्वाद लवण के समान है। वारुणी का वारुणी के, घृतवर का घृत के समान और क्षीरवर का क्षीर के समान रस स्वाद है ॥२७॥

**कालोदकपुष्करवरस्वयभूरमणार्णवाः।**
**जलास्वादास्त्रयः क्षौद्ररसाः शेषास्तु सागराः ॥२८॥**

अन्वयार्थ—(कालोदकपुष्करवरस्वयभूरमणार्णवा:) कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र, स्वयभूरमण समुद्र, (त्रय·) तीन (जलस्वादा) जल स्वाद है (तु) और (शेषा:) शेष (सागरा·) समुद्र (क्षौद्ररसा·) क्षौद्र रस वाले हैं।

भावार्थ—कालोदधि समुद्र, पुष्करवर समुद्र और स्वयभूरमण समुद्र यह तीनो समुद्र जल स्वाद वाले हैं और शेष समुद्र क्षौद्र रस वाले है ॥२८॥

**आमानुषोत्तरान्मर्त्या यतः सोन्वर्थसञ्ज्ञकः।**
**पुष्करद्वीपमध्यस्थः स गिरिर्वलयाकृतिः ॥२९॥**

अन्वयार्थ—(आमानुषोत्तरात्) मानुषोत्तरपर्यन्त (मर्त्या:) मनुष्य हैं (यत) इसलिये (स:) वह (अन्वर्थसञ्ज्ञक:) सार्थक नाम वाला (पुष्करद्वीपमध्यस्थ) पुष्करद्वीप मे स्थित (वलयाकृति:) बलयाकृति (स:) वह मानोषोत्तर (गिरि.) पर्वत है।

भावार्थ—मानुषोत्तर पर्वत तक मनुष्य है। इसलिये पुष्करद्वीप के मध्यस्थ बलयाकृति सार्थ नामक मानुषोत्तर पर्वत है ॥२९॥

**स्वयंभूरमणद्वीपमध्यस्थाद्वलयाकृतेः।**
**स्वयप्रभाचलात्सर्वा कर्मभूमिर्बहिः स्थिताः ॥३०॥**

अन्वयार्थ—(वलयाकृते.) वलयाकृति (स्वयभूरमणद्वीपमध्यस्थात्) स्वयभूरमण द्वीप के मध्यस्थ (स्वयंप्रभाचलात्) स्वयप्रभ अचल से (बहि) बाहर (सर्वा) सब (कर्मभूमि) कमभूमि (स्थिता) स्थित हैं।

भावार्थ—स्वयभूरमण द्वीप के मध्यस्थ बलयाकृति स्वयप्रभ पर्वत से बाहर कर्मभूमि स्थित है।

**स्वयप्रभाचलादारात्परतो मानुषोत्तरात्।**
**मध्याभूरन्तरद्वीपा जघन्या भोगभूमयः ॥३१॥**

अन्वयार्थ—(मानुषोत्तरात्) मानुषोत्तर पर्वत से (परत) आगे (स्वयंप्रभाचलात्) स्वयप्रभाचल से (आरात्) पूर्व (मध्याभू) मध्य भूमियो के (अन्तरद्वीपा.) अन्तर द्वीपो मे (जघन्या) जघन्य (भोगभूमय:) भोग भूमिया हैं।

भावार्थ—मानुषोत्तर पर्वत से लेकर स्वयप्रभ पर्वत तक मध्य के असख्यात द्वीप समुद्र मे जघन्य भोगभूमिया पाई जाती हैं ॥३१॥

कोशोनं योजन दैर्घ्यमेकं द्वादश साधिकम् ।
सहस्रयोजनं गोभ्यां भृंगे शखेऽम्बुजे वरम् ।।३२।।

**अन्वयार्थ**—(गोभ्या) गोभी मे (वरं) उत्कृष्ट (दैर्घ्यम्) दीर्घता (क्रोशोनं) एक कोश कम (योजन) एक योजन है। (शखे) शख मे (द्वादश) बारह योजन है। (भृगे) भ्रमर मे (एक) एक (योजन) योजन है। (अम्बुजे) कमल मे (साधिकं) कुछ अधिक (सहस्रयोजन) हजार योजन है।

**भावार्थ**—तीन इन्द्रिय मे गोभी (कसला) की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश है। चतुरिन्द्रिय मे भ्रमर की उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन है। द्विइन्द्रिय मे शख की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है और एकेन्द्रिय मे कमल की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से कुछ अधिक है ।।३२।।

सम्मूर्च्छनजपर्याप्ते स्वयंभूरमणाम्बुधौ ।
सहस्रयोजनं मत्स्ये सरित्सखेऽस्य तद्दलम् ।।३३।।

लवणाब्धौ सरित्संगमेऽस्याष्टादशतद्दलम् ।
कालोदकाब्धौ सरित्सधुसगे च द्विगुणं ततः ।।३४।।

**अन्वयार्थ**—(स्वयभूरमणाम्बुधौ) स्वयंभूरमण समुद्र के मध्य मे (सम्मूर्च्छनजपर्याप्ते) सम्मूर्च्छन से उत्पन्न होने वाले पर्याप्त (मत्स्ये) मगरमच्छ मे उत्कृष्ट अवगाहना (सहस्रयोजन) एक हजार योजन की है। (सरित्संगे) नदी के सयोग मे (अस्य) इस मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना (तद्दलम्) इससे आधी है। (लवणाब्धौ) लवण समुद्र मे (अस्य) मगर की (अष्टादश) अठारह योजन (सरित्संगे) नदी सयोग के स्थान मे (तद्दलम्) उससे आधी है। (कालोदकाब्धौ) कालोदधि समुद्र मे (च) और (सरित्सगे) नदी के सयोग मे (तत.) लवण समुद्र मे (द्विगुण) दुगुणी है।

**भावार्थ**—स्वयंभूरमण समुद्र के मध्य मे सम्मूर्च्छन से उत्पन्न पर्याप्त मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन है। स्वयंभूरमण समुद्र मे जहा नदी का प्रवेश होता है, वहा पर मगरमच्छ की अवगाहना पाच सौ योजन की है। लवण समुद्र के मध्य मे मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना अठारह योजन की है और नदी के सयोग के स्थान मे नव योजन अवगाहना वाला मगरमच्छ है। कालोदधि समुद्र के मध्य मे मगरमच्छ की उत्कृष्ट अवगाहना छत्तीस योजन है और नदी के संग मे अठारह योजन है ।।३३,३४।।

जलस्थलखगापूर्णे खगपूर्णे च गर्भजे ।
सम्मूर्च्छनस्थलखगे पूर्णे चापपृथक्त्वगः ।।३५।।

जलस्थलखगापूर्णे स्यात्सम्मूर्च्छनजन्मनि ।
वरो वितस्तिर्देहोल्पः कुंथुमात्रः पयश्चरे ।।३६।।

जलगे गर्भजे पूर्णे स्यात्पचशतयोजनम् ।
स्थलगे गर्भजे पूर्णे त्रिक्रोशं तिर्यंगंगिनि ।।३७।।

**अन्वयार्थ**—(जलस्थलखगापूर्णे) जलचर, स्थलचर, नभचर अपर्याप्त (च) और (खगपूर्णे) नभचर पर्याप्त (गर्भजे) गर्भज मे (सम्मूर्च्छनस्थलखगे) सम्मूर्च्छन स्थलचर, नभचर (पूर्णे) पर्याप्त मे (चापपृथक्त्वग) पृथक्त्व धनुष प्रमाण

अवगाहना है। (सम्मूर्च्छनजन्मनि) सम्मूर्च्छन जन्म वाले (जलस्थलखगापूर्णे) जलचर थलचर नभचर अपर्याप्त मे (वर) उत्कृष्ट अवगाहना (वितस्ति) वितस्ति प्रमाण है। (अल्प) जघन्य (देह) शरीर (पयश्चरे) जलचर मे (कुंथुमात्रः) कुंथु मात्र है (गर्भजे) गर्भज (पूर्णे) पर्याप्त (जलचरे) जलचर मे उत्कृष्ट अवगाहना (पंचशत योजनम्) पांच सौ योजन (स्यात्) है। (गर्भजे) गर्भज (पूर्णे) पर्याप्त (तिर्यंगगिनि) तिर्यञ्च योनि मे (त्रिकोश) तीन कोश की उत्कृष्ट अवगाहना है।

**भावार्थ**—अपर्याप्त जलचर, थलचर, नभचर की, पर्याप्त गर्भज नभचर की, पर्याप्त सम्मूर्च्छन स्थलचर नभचर की उत्कृष्ट अवगाहना पृथक्त्व धनुष प्रमाण है। सम्मूर्च्छन जन्म वाले अपर्याप्त जलचर, स्थलचर, नभचर की उत्कृष्ट अवगाहना वितस्ति (१२ अगुल प्रमाण) है और जलचर अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना कुथु मात्र है। पर्याप्त गर्भज जलचर की उत्कृष्ट अवगाहना पाच सौ योजन प्रमाण है। पर्याप्त गर्भज स्थलचर तिर्यञ्चो की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश की है ॥३५,३६,३७॥

**त्रिभोगभूजे त्रिद्वयेकक्रोशाः स्युः कर्मभूमिजे।**
**चापाः पंचशतं पचविंशतिश्च नरे वरम् ॥३८॥**

**अन्वयार्थ**—(त्रिभोगभूजे) तीन भोग भूमि मे उत्पन्न (नरे) मानव मे (वर) उत्कृष्ट अवगाहना (त्रिद्वयेक-क्रोशा) तीन, दो, एक कोश (स्युः) है (च) और (कर्मभूमिजे) कर्म भूमि मे उत्पन्न (नरे) मानव मे (वर) उत्कृष्ट (पचविंशति.) पच्चीस अधिक (पचशत) पाच सौ (चापा) धनुष प्रमाण है।

**भावार्थ**—उत्तम भोग भूमि मे मनुष्यो की उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोश है। मध्यम भोगभूमि मे मनुष्यो की अवगाहना उत्कृष्ट दो कोश है और जघन्य भोगभूमि मे मनुष्यो की अवगाहना एक कोश है। कर्मभूमिज मनुष्यो के शरीर की उत्कृष्ट ऊचाई पाचसौ पच्चीस धनुष प्रमाण है ॥३८॥

**चापाः स्युरसुरे पंचविंशतिः शेषभावन।**
**व्यन्तरेषु दशोत्सेधो ज्योतिष्के सप्त देहगः ॥३९॥**

**कल्पेषु द्विद्विचतुर्षु स्युश्चतुर्षु द्वयोर्द्वयोः।**
**सप्त षट् पंच चत्वारस्त्रयः सार्द्धाः करास्त्रय. ॥४०॥**

**त्रित्रित्रिग्रैवेयकेष्वनुदिशानुत्तरेष्वत।**
**स्यु सार्द्धद्विद्विद्वयर्द्धैककरा काये दिवौकसाम् ॥४१॥**

**अन्वयार्थ**—(असुरे) असुर कुमार देवो का (उत्सेध) उत्सेध (पचविंशति.) पच्चीस (चापा) धनुष है (शेषभावनव्यन्तरेषु) शेष भवनवासी और व्यन्तरो का उत्सेध (दश) दश धनुष है। (ज्योतिष्के) ज्योतिष देवो मे (देहग) देहगत (उत्सेध.) उत्सेध (सप्त) सात धनुष (स्यु) है। (द्विद्विचतुर्षु) दो दो और चार (कल्पेषु) कल्पवासी मे सप्त, षट्, पच सात, छह, पाच (चतुर्षु) चार मे (चत्वार) चार (द्वयो) दो मे (सार्द्धा) आधे सहित (त्रय) तीन (द्वयो) दो मे (त्रय) तीन (कराः) हाथ (उत्सेध) उत्सेध (स्युः) है। (अत) इसके वाद (त्रित्रित्रिग्रैवेयकेषु) तीन, तीन, तीन ग्रैवेयको मे (अनुदिशानुत्तरेषु) अनुदिश और अनुत्तरो मे (दिवौकसां) देवो की (काये) काय मे (सार्द्ध द्विद्विद्वयर्द्धैककरा) अर्ध सहित दो हाथ, दो हाथ, डेढ हाथ और एक हाथ (स्यु) ऊचाई है।

**भावार्थ**—भवन वासियो मे, असुर कुमार देवो के शरीर की ऊचाई पच्चीस धनुष है। शेष नव प्रकार के

भवनवासी और व्यन्तरो के शरीर की ऊंचाई दश धनुष है और ज्योतिषी देवो के शरीर की ऊंचाई सात धनुष है । सौधर्म और ऐशान स्वर्ग मे शरीर की ऊंचाई सात अरत्नि, सानत्कुमार और माहेन्द्र में छह अरत्नि, ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लातव और कापिष्ठ मे पाच अरत्नि, शुक्र महाशुक्र शतार और सहस्रार मे चार अरत्नि, आनत और प्राणत मे साढे तीन अरत्नि और आरण और अच्युत मे तीन अरत्नि शरीर की ऊचाई है । प्रथम तीन ग्रैवेयको मे ढाई अरत्नि, मध्यग्रैवेयक मे दो अरत्नि ऊर्ध्व ग्रैवेयक और नव अनुदिश मे डेढ अरत्नि, शरीर की ऊंचाई है । पाच अनुत्तर विमानो मे शरीर की ऊंचाई केवल एक हाथ है । [मुंडे हाथ को अरत्नि कहते हैं] ।।३९,४०,४१।।

कुलानां कोटिलक्षाणि स्युर्भूतोयाग्निवायुषु ।
द्वयुत्तरा विंशतिः सप्त त्रीणि सप्त यथाक्रमम् ।।४२।।

**अन्वयार्थ**—(भूतोयाग्निवायुषु) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु मे (यथाक्रमम्) क्रम से (द्वयुत्तराः) दो उत्तर (विंशतिः) बीस (सप्त) सात (त्रीणि) तीन (सप्त) सात (कुलाना) कुलो की (कोटिलक्षाणि) कोटि लाख (स्यु.) है ।

**भावार्थ**—पृथिवीकायिक जीवो के कुल बाईस लाख कोटि हैं । जलकायिक जीवो के कुल सात लाख कोटि हैं । अग्निकायिक जीवो के कुल तीन लाख कोटि हैं और वायु कायिक जीवो के कुल सात लाख कोटि हैं ।।४२।।

अष्टाविंशतिः सप्ताष्टौ नवार्द्धोनित्रयोदश ।
वनस्पतौ द्वयक्षे त्र्यक्षे चतुरक्षे पयश्चरे ।।४३।।

नव दश द्वादशोरः परिसर्पे चतुष्पदे ।
विहगे द्वादश नरे नारके पंचविंशतिः ।।४४।।

देवे षड्विंशतिस्तेषां कोटिलक्षाणि पिंडतः ।
सार्द्धसप्तनवत्यग्रशतमात्राणि देहिनाम् ।।४५।।

**अन्वयार्थ**—(वनस्पतौ) वनस्पति मे (अष्टाविंशति.) अट्ठावीस (द्वयक्षे) दो इन्द्रियो मे (सप्त) सात (त्र्यक्षे) तीन इन्द्रियो मे (अष्टौ) आठ (चतुरक्षे) चार इन्द्रिय मे नौ लाख कुल कोटि (पयश्चरे) जलचर मे (अर्द्धोनत्रयोदश) साढे बारह (उर परिसर्पे) उर परिसर्पो मे (नव) नवलक्ष कोडाकोडी (चतुष्पदे) चतुष्पद गाय भैंसादि में (दश) दश लक्ष कोडा कोडी (विहगे) नभश्चरों मे (द्वादश) बारह लक्ष कोडा कोडी (नरे) मानव मे (द्वादश) बारह लक्ष कोडी (नरके) नरक मे (पंचविंशति.) पच्चीस लक्ष कोडी (देवे) देव मे (षड्विंशति.) छब्बीस लक्ष कोडी (तेषां) उन (देहिना) प्राणियो की (पिंडतः) पिंड करने पर (सारी जोडने पर) (सार्द्धसप्तनवत्यग्रशतमात्राणि) आधे सहित एक सौ सतानवे (कोटिलक्षाणि) लक्ष करोड़ होती हैं ।

**भावार्थ**—द्वीन्द्रिय जीवो के कुल सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीवो के कुल आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीवो के कुल नौ लाख कोटि और वनस्पति कायिक जीवो के कुल २८ लाख कोटि कुल हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे जलचर जीवो के साढे बारह लाख कोटि, पक्षियो के बारह लाख कोटि पशुओ के दश लाख कोटि और छाती के सहारे से चलने वाले दुमुही आदि के नव लाख कोटि कुल है । देव नारकी तथा मनुष्य इनके कुल क्रम से छब्बीस लाख कोटि, पच्चीस लाख कोटि, तथा बारह लाख कोटि है । इस प्रकार पृथिवीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण जीवो के समस्त कुलो की सख्या एक कोडा कोडी सत्तानवे लाख तथा पचास हजार कोटि है ग्रन्थान्तरो मे मनुष्यो के १४ लाख कोटि कुल गिनाये हैं उस हिसाब से सम्पूर्ण कुलो का जोड़ एक करोड़ निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि होता है ।४३,४४,४५।।

भौमभावनयोरायुर्जघन्यं चादिमेन्द्रके ।
दशाब्दानां सहस्त्राणि घर्मायां नवतिर्वरम् ।।४६।।

लक्षाणां नवतिः पूर्वकोट्योऽसख्या दशांशकः ।
रत्नाकरोपमस्यास्यां द्वितीयादीन्द्रकत्रये ।।४७।।

एकत्रिसप्ताद्युपमा दश सप्तदश क्रमात् ।
द्वाविंशतिस्त्रयस्त्रिंशदायुर्व्याद्यन्तिमेन्द्रके ।।४८।।

प्रथमादिवरायुष्यं समयोत्तरमीरितम् ।
द्वितीयादि जघन्यायुरिति कल्पेष्वयं क्रमः ।।४९।।

**अन्वयार्थ**—(भौमभावनयोः) भवनवासी और व्यन्तरो मे (घर्माया) प्रथम नरक के (आदिमेन्द्रके) प्रथम इन्द्रक बिल मे (जघन्य) जघन्य (आयु) आयु (दश) दश (सहस्त्राणि) हजार (अब्दाना) वर्ष की है । (आदिमेन्द्रके) प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तार मे (वर) उत्कृष्ट आयु (नवतिः) नब्वे (सहस्त्राणि) हजार वर्ष की है । (अस्या) इस प्रथम नरक मे (द्वितीयादीन्द्रकत्रये) दूसरे तीसरे और चतुर्थ प्रस्तार मे (क्रमात्) क्रम से (लक्षाणि) लाख की (नवति) नब्वे [नब्वे लाख वर्ष] (असंख्याः) असंख्यात (पूर्वकोट्यः) पूर्व कोटी, (रत्नाकरोपमस्य) एक सागर का (दशाशक) दशवाँ भाग है । (उर्व्याद्यन्तिमेन्द्रके) नरक की पृथ्वियो के अन्तिम इन्द्रक बिल में (वर) उत्कृष्ट (आयु) आयु (एकत्रिसप्ताद्युपमा) एक सागर, तीन सात सागर (दश) दश सागर (सप्तदश) सत्रह सागर (द्वाविंशति) बावीस सागर (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस सागर है (द्वितीयादिजघन्यायु) दूसरे आदि नरको मे जघन्य आयु (समयोत्तरं) एक समय अधिक (प्रथमादिवरायुष्य) प्रथमादि की उत्कृष्ट आयु (ईरितं) कही है । (इति) इस प्रकार (अय) यह (क्रम) क्रम (कल्पेषु) स्वर्ग के कल्पो मे भी है ।

**भावार्थ**—भवनवासी व्यन्तर और प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तार मे जीवो की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है । तथा प्रथम नरक के प्रथम प्रस्तार मे उत्कृष्ट आयु नब्वे हजार वर्ष की है । द्वितीय प्रस्तार मे नब्वे लाख वर्ष की है । तीसरे प्रस्तार मे असंख्यात पूर्व कोटि की है । चतुर्थ प्रस्तार मे एक सागर का दशवां भाग है ।

"रत्नप्रभा पृथिवी के चतुर्थ पचमादि इन्द्रको में क्रमश दश से भाजित एक, दो, तीन, चार, पाच, छह, सात आठ, नौ और दश सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है । भ्रान्त ई $\frac{1}{10}$, उद्भ्रान्त ई $\frac{2}{10}$, म $\frac{3}{10}$, अस $\frac{4}{10}$, विभ्रा $\frac{5}{10}$, तप्त $\frac{6}{10}$, असित $\frac{7}{10}$, वक्रा $\frac{8}{10}$, अव $\frac{9}{10}$, विक्रा $\frac{10}{10}$, सा उपरिम पृथिवी की उत्कृष्ट आयु को नीचे की पृथिवी की उत्कृष्ट आयु में से कम करके शेष में अपने अपने इन्द्रको की संख्या का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना विवक्षित पृथिवी म आयु की हानि वृद्धि का प्रमाण जानना चाहिये ।

**उदाहरण**—द्वि. उ आयु सा ३–१–११=$\frac{2}{11}$ द्वि पृ में आयु की हानि वृद्धि द्वितीय पृथिवी के ग्यारह इन्द्रको में से प्रथम इन्द्रक में ग्यारह से भाजित तेरह ($\frac{13}{11}$) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है इसमे तेतीस ($\frac{33}{11}$) प्राप्त होने तक ग्यारह से भाजित दो दो ($\frac{2}{11}$) को मिलाने पर क्रमश. द्वितीय पृथिवी के शेष द्वितीयादि इन्द्रको की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण होता है । स्तनक इ $\frac{13}{11}$ त $\frac{15}{11}$ व $\frac{19}{11}$ घा $\frac{21}{11}$ स $\frac{23}{11}$, जिह्वा $\frac{25}{11}$ जिह्वक $\frac{27}{11}$ लोल $\frac{28}{11}$ लोलक $\frac{31}{11}$ स्त. लो $\frac{33}{11}$ सा ।

तृतीय पृथिवी मे नौ से भाजित इकतीस ($\frac{31}{9}$) सागरोपम प्रभव या आदि है । इसके आगे प्रत्येक पटल में नौ से भाजित ($\frac{4}{9}$) की तिरेसठ ($\frac{63}{9}$) तक वृद्धि करने पर उत्कृष्ट आयु का प्रमाण निकलता है । तप्त $\frac{31}{9}$ शी $\frac{35}{9}$ तपन $\frac{39}{9}$ तापन $\frac{43}{9}$ नि. $\frac{47}{9}$ प्रज्व $\frac{51}{8}$ उज्व $\frac{55}{9}$ सज्व $\frac{59}{9}$ संप्रज्व $\frac{63}{9}$ सा. । चतुर्थ पृथिवी में सात से भाजित बावन सागरोपम प्रभव है । इसके आगे

प्रत्येक पटल मे सत्तर पर्यन्त सात से भाजित तीन ($\frac{3}{7}$) की वृद्धि करने पर उत्कृष्ट आयु का प्रमाण निकलता है। आर, $\frac{52}{7}$, मार $\frac{55}{7}$, तार $\frac{58}{7}$, चर्चा $\frac{61}{7}$, तमक $\frac{64}{7}$, वाद $\frac{67}{7}$, ख स्व $\frac{77}{7}$, सा पाचवी पृथिवी मे पांच से भाजित सतावन सागरोपम आदि है। अनन्तर प्रत्येक पटल मे पचासी तक पाच से भाजित सात सात ($\frac{7}{5}$) के जोड़ने पर उत्कृष्ट आयु का प्रमाण जाना जाता है। तमक $\frac{57}{5}$, भ्र $\frac{64}{5}$, झ $\frac{71}{5}$, अध $\frac{78}{5}$, ति $\frac{85}{5}$, सा।

मघवी पृथिवी के तीन पटलो मे नारकियो की उत्कृष्ट आयु क्रमश तीन से भाजित छप्पन, इकसठ और छ्यासठ सागरोपम है। हिम. $\frac{56}{3}$, वर्दल $\frac{61}{3}$, लल्लक $\frac{66}{3}$ सा.। सातवी पृथिवी के जीवो की आयु तेतीस सागरोपम प्रमाण है। ऊपर ऊपर के पटलों मे जो उत्कृष्ट आयु है, उसमे एक समय मिलाने पर वही नीचे के पटलो मे जघन्य आयु हो जाती है। अवधिस्थान ३३ सा.। इस प्रकार सातो पृथिवियो के प्रत्येक इन्द्रक मे जो उत्कृष्ट आयु कही गई है, वही वहा के श्रेणीबद्ध और विश्रेणी गत प्रकीर्णक बिलो की भी आयु समझना चाहिये ॥४६,४७,४८,४९॥

आयुरन्तर्मुहूर्त्तः स्यादेषोऽप्यष्टादशांशकः।
उच्छ्वासस्य जघन्य नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ॥५०॥

**अन्वयार्थ**—(नृतिरश्चा) मनुष्य और तिर्यञ्चों के लब्ध्यपूर्णके) लब्ध्यपर्याप्तक में (जघन्यं) जघन्य (आयु) आयु (उच्छ्वासस्य) उछ्वास का (अष्टादशांशकः) अठारहवा भाग (एष) यह (अन्तर्मुहूर्त्त) अन्तर्मुहूर्त (स्यात्) है।

**भावार्थ**—लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य और तिर्यञ्चो की जघन्य आयु एक उच्छ्वास का अठारहवां भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है ॥५०॥

शुद्धोर्व्यायुः सहस्राणि द्वादश द्व्यग्रविंशतिः।
खरोर्व्यां सप्त वर्षाणां तोयेऽग्नौ स्याद्दिनत्रयम् ॥५१॥

त्रीण्यब्दानां सहस्राणि वायुजीवे वनस्पतौ।
सहस्राणि दश द्व्यक्षे द्वादशाब्दानि केवलम् ॥५२॥

दिनान्येकोनपचाशत् त्र्यक्षे स्युश्चतुरिन्द्रिये।
मासाः षड्विहगेऽब्दानां सहस्राणि द्विसप्ततिः ॥५३॥

द्विचत्वारिंशदब्दानां सहस्राणि भुजंगमे।
नवोऽरः परिसर्पाणां पूर्वांगानि वरायुषि ॥५४॥

पूर्वकोट्यवरे संज्ञिन्यप्येतौ भोगभूमिषु।
त्रसाः सम्मूर्च्छिनो ये च न भवन्ति स्वभावतः ॥५५॥

**अन्वयार्थ**—(शुद्धोर्व्यायु) शुद्ध (मृदु) भूमि की (वर) उत्कृष्ट (आयु) आयु (द्वादश) बारह (सहस्राणि) हजार वर्ष है (खरोर्व्यां) कठोर भूमि की आयु (द्व्यग्रविंशति) बावीस (सहस्राणि) हजार (वर्षाणां) वर्षों की है (तोये) जलकाय मे (आयु) आयु (सप्त) सात हजार (वर्षाणां) वर्षो की है (अग्नौ) अग्निकाय मे (दिनत्रय) तीन दिन की है (वायुजीवे) वायु कायिक जीवो की (त्रीणि) तीन (सहस्राणि) हजार (अब्दाना) वर्षो की है (वनस्पतौ) वनस्पति में (दशसहस्राणि) दश हजार वर्ष की है (द्व्यक्षे) द्वीन्द्रिय मे (केवल) केवल (द्वादशाब्दाना) बारह वर्ष की है (त्र्यक्षे) तीन्द्रिय मे

(केवल) केवल (एकोनपंचाशत्) एक कम पच्चास (दिनानि) दिन की (स्यु) है (चतुरिन्द्रिये) चतुरिन्द्रिय मे (षड्) छह (मासा) महीने की है (विहगे) पक्षियो मे (द्विसप्तति.) बहत्तर (सहस्राणि) हजार (अब्दाना) वर्षों की है (भुजंगमे) सर्प की (द्विचत्वारिंशत्) व्यालीस (सहस्राणि) हजार (अब्दाना) वर्षों की है (उर परिसर्पाणा) सरिसर्पो की (वरायुषि) उत्कृष्ट आयु (नव) नौ (पूर्वागानि) पूर्वांग की है (एतौ) कर्मभूमिया जलचर थलचर (असज्ञिनी) असंज्ञी तिर्यञ्च पचेन्द्रियो की उत्कृष्ट आयु (पूर्वकोटि) पूर्व कोटी की है (भोगभूमिषु) भोग भूमि मे (स्वभावत.) स्वभाव से ही (सम्मूर्च्छन) सम्मूर्च्छन (त्रस.) त्रस (न) नही (भवन्ति) होते हैं।

भावार्थ—मृदु भूमि कायिक की अर्थात् गेरू हरताल आदिक पृथ्वीकायिक जीवो की उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष की है और खरभूकाय की अर्थात् रत्न पत्थर आदि कठोर पृथ्वीकायिक जीवो की २२ हजार वर्ष की है। जल कायिक जीवो की ७ हजार, वायु कायिक की तीन हजार, तरुकायिक की जीवो की दश हजार, पक्षिओ की बहत्तर हजार, सर्पों की व्यालीस हजार वर्ष की उत्कृष्ट आयु है। अग्निकायिक की तीन दिन, शंख आदि दो इन्द्रिय, जीवो की बारह वर्ष, बिच्छू आदि तेइन्द्रिय जीवो की उनपचास दिन, भौरा आदि चौइन्द्रिय जीवो की छह महीना, सरीसृप (पेट के बल सरकने वाला) जीवो की नौ पूर्वांग होती है और असज्ञी संज्ञी जलचर की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की है। स्वभाव से भोगभूमि मे सम्मूर्च्छन नही होते हैं ॥५१,५२,५३ ५४,५५॥

जघन्यमध्यमोत्कृष्टभोगभूमिष्ववस्थितम् ।
स्यादेकद्वित्रिपल्यायुर्नित्यास्वन्यासु तद्वरम् ॥५६॥

अन्वयार्थ—(नित्यासु) नित्य रहने वाली देवकुरु, उत्तरकुरु आदि (अन्यासु) प्रथम द्वितीय कालादि (जघन्य मध्यमोत्कृष्टभोगभूमिषु) जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भोगभूमि मे (अवस्थितं) अवस्थित (तद्वर) उन जीवो की उत्कृष्ट (एकद्वित्रिपल्यायु) एक दो तीन पल्योपम आयु (स्यात्) है।

भावार्थ—नित्य भोग भूमि देवकुरु, उत्तरकुरु, हेमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत् हैं। अनित्य भोगभूमि प्रथम, द्वितीय, तृतीय काल मे होती है देवकुरु, उत्तरकुरु सुषमा सुषमा प्रथम काल उत्तमभोगभूमि है। इसमे जीवो की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की है। हरि रम्यक और द्वितीय काल मे मध्यम भोग भूमि है इनमे उत्कृष्ट आयु दो पल्य की है। हैमवत हैरण्य और तृतीय काल मे जघन्य भोगभूमि है इनमे जीवो की उत्कृष्ट आयु एक पल्य की है ॥५६॥

पूर्वकोट्येकपल्य च पल्यद्वयमिति त्रयम् ।
समयेनाधिकं तासु नृतिर्यक्ष्वस्वर क्रमात् ॥५७॥

अन्वयार्थ—(तासु) उन्ही भोगभूमियो मे (नरतिर्यक्षु) मनुष्य और तिर्यञ्चो मे (अवर) जघन्य आयु (क्रमात) क्रम से (समयेनाधिक) एक समय अधिक (पूर्वकोटि) पूर्वकोटि (एक पल्य) एक समय अधिक एक पल्य (च) और (पल्य द्वय) समयाधिक दो पल्य है (इति) इस प्रकार (त्रय) तीनो जघन्य आयु है।

भावार्थ—उनमे जघन्य भोगभूमि मे जघन्य आयु एक समय अधिक एक कोटि पूर्व की है। मध्यम भोगभूमि में जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य की है। उत्तम भोगभूमि मे जघन्य आयु एक समय अधिक दो पल्य की है ॥५७॥

कर्मभूमिषु सर्वासु पूर्वकोटी मता स्थितिः ।
वरार्यम्लेच्छखडोत्थवियच्चरनरेषु तु ॥५८॥

---

१ चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग होता है।

**अन्वयार्थ**—(सर्वासु) सर्व (कर्मभूमिपु) कर्म भूमियो मे (आर्यम्लेच्छखण्डोत्थवियच्चरनरेषु) आर्य, म्लेच्छ और विद्याधर मनुष्यो मे (वर) उत्कृष्ट (स्थितिः) आयु (पूर्वकोटी) पूर्वकोटि (मता) मानी गई है (तु) शब्द से भरत ऐरावत मे भी उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की है।

**भावार्थ**—सम्पूर्ण कर्मभूमियो के आर्य खण्ड, म्लेच्छ खण्ड मे उत्पन्न विद्याधरो मे उत्कृष्ट आयु पूर्वकोटी वर्ष की है ।।५८।।

**पूर्वकोटी वरं कर्मभूष्वायुस्तुर्यकालवत् ।**
**अनित्यकर्मभूषु स्यान्म्लेच्छविद्याधरक्षितौ ।।५९।।**

**अन्वयार्थ**—(कर्मभूपु) कर्मभूमियो (विदेहक्षेत्र) मे (अनित्यकर्मभूमिषु) अनित्य कर्मभूमियो (भरत,ऐरावत) मे (म्लेच्छविद्याधरक्षितौ) म्लेच्छ विद्याधर भूमियो मे (वर) उत्कृष्ट (आयु·) आयु (तुर्यकालवत्) चौथे काल के समान (पूर्वकोटी) पूर्वकोटी की है ।

**भावार्थ**—नित्य कर्मभूमि विदेह क्षेत्र मे अनित्य कर्म भूमि भरत और ऐरावत मे आर्य खण्ड म्लेच्छ खण्ड मे और विद्याधर पृथ्वी मे उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि वर्ष की है ।।५९।।

**असुरेऽर्णवोपमः स्यान्नागे पल्यत्रयं क्रमात् ।**
**सुपर्णद्वीपशेषेषु भौमे चार्द्धार्द्धहीनकम् ।।६०।।**

**अन्वयार्थ**—(असुरे) असुर कुमारो मे उत्कृष्ट आयु (अर्णवोपम.) एक सागर की है (नागे) नाग कुमारो मे (पल्यत्रयं) तीन पल्य की है (सुपर्णद्वीपशेषेषु) सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भावनवासियो मे (च) और (भौमे) व्यन्तरो मे (क्रमात्) क्रम से (अर्द्ध हीनक) आधा पल्य हीन हीन है।

**भावार्थ**—असुरकुमारो मे उत्कृष्ट आयु एक सागर की है। नागकुमारो की तीन पल्य है। सुपर्णकुमार की ढाई पल्य की है। द्वीप कुमार की दो पल्य है। शेष छह प्रकार के भवनवासियो की उत्कृष्ट आयु डेढ पल्य की है, और व्यन्तरो की एक पल्य की है ।।६०।।

**लक्षसहस्रशताब्दैर्युक्तं पल्यं विधाविने ।**
**शुक्रे क्रमाद्गुरौ पल्यं ग्रहेष्वन्येषु तद्दलम् ।।६१।।**

**अन्वयार्थ**—(विधौ) चन्द्रमा मे (इने) सूर्य मे (शुक्रे) शुक्र मे (क्रमात्) क्रम से (लक्षसहस्रशताब्दै) लक्ष, सहस्र और सौ वर्ष (युक्त) सहित (पल्यं) पल्य प्रमाण है (गुरौ) गुरु मे (पल्यं) पल्य प्रमाण है (अन्येपु) अन्य (शेष-ग्रहेषु) शेष ग्रहो मे (तद्दलं) आधा पल्य है।

**भावार्थ**—चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक लक्ष वर्ष अधिक एक पल्य प्रमाण है। सूर्य की उत्कृष्ट आयु हजार वर्ष अधिक एक पल्य की है। शुक्र की उत्कृष्ट आयु एक पल्य और सौ वर्ष प्रमाण है। अन्य शेष ग्रहो की उत्कृष्ट आयु आधा पल्य प्रमाण है ।।६१।।

**परापल्यचतुर्भागः स्थितिस्तारासु तद्दलम् ।**
**जघन्या पल्यमेकं स्यात्सौधर्मेशानकल्पयोः ।।६२।।**

**अन्वयार्थ**—(तारासु) ताराओ मे (परा:) उत्कृष्ट (स्थितिः) आयु (पल्यचतुर्भाग ) पल्य के चतुर्थ भाग है

(जघन्याः) जघन्य आयु (उससे) आधी है (सौधर्मेशानयोः) सौधर्म और ऐशान कल्प मे (जघन्या) जघन्य आयु (एकं) एक (पल्यं) पल्य है।

**भावार्थ**—ताराओ की उत्कृष्ट आयु पल्य का चतुर्थांश है। ताराओ की जघन्य आयु पल्य का आठवा भाग है। सूर्यादि की जघन्य आयु पल्य की चतुर्थांश है। सौधर्म और ऐशान स्वर्ग मे जघन्य आयु एक पल्य प्रमाण है ।।६२।।

**देवेषु द्वौ वरा सप्त स्थितिर्दश चतुर्दशः।**
**कल्पे द्वाविंशतिर्यावत् द्वयुत्तराः सागरोपमाः ।।६३।।**

**उपर्येकोत्तरस्तावत्स्युस्त्रयस्त्रिंशदन्तिमे।**
**सौधर्मेशानजा एव देव्यः स्युः स्वस्वकल्पगाः ।।६४।।**

**अन्वयार्थ**—(कल्पे) कल्पवासियो के आठ युगल (देवेषु) देवो मे (वरा) उत्कृष्ट (स्थितः) स्थिति (द्वौ) दो (सागरोपमा) सागरोपम है (सप्त) सात (दश) दश (चतुर्दशः) चौदह सागरोपम है (द्वयुत्तरा) दो दो अधिक (यावत्) जब तक (द्वाविंशति) बावीस सागर तक अर्थात् सोलह, अठारह, बीस, बावीस सागर तक है (उपरि) ऊपर नव ग्रैवेयकादि मे (तावत्) तब तक (एकोत्तर) एक एक उत्तर (स्यु) है।। (अन्तिमे) अन्त मे (त्रयस्त्रिंशत्) तैंतीस सागर है (सौधर्मेशानजा) सौधर्म और ऐशान मे उत्पन्न होने वाली (एव) ही (देव्य) देविया (स्वस्वकल्पगाः) अपने अपने कल्पो मे जाती है।

**भावार्थ**—सौधर्म और ऐशान स्वर्ग मे उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागर है। (अधिक का प्रमाण आधा सागर है) सनतकुमार और माहेन्द्र स्वर्ग मे सात सागर से कुछ अधिक है। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे दश सागर से कुछ अधिक। लान्तव और कापिष्ट स्वर्ग मे चौदह सागर से कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र मे सोलह सागर से कुछ अधिक, शतार और सहस्त्रार मे अठारह सागर से कुछ अधिक है। आनत और प्राणत मे बीस सागर और आरण और अच्युत मे बावीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। आरण और अच्युत स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयको मे, नव अनुदिशो मे और विजय आदि विमानो मे एक एक सागर बढती हुई आयु है। इस प्रकार प्रथम ग्रैवेयक में तेईस सागर और क्रमश एकएक सागर बढती हुई नव मे ग्रैवेयक मे इकतीस सागर की आयु है। नव अनुदिशो मे बत्तीस सागर और विजय आदि पाच विमानो मे तेतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। देवियो की उत्पत्ति सौधर्म और ऐशान स्वर्ग तक ही है देव उनको अपने अपने स्वर्गो मे ले जाते है ।।६३,६४।।

**अल्पं कल्पद्वये पल्य साधिकं जीवन वर।**
**सौधर्मे पंच पल्यानि तानीशानादिषु क्रमात् ।।६५।।**

**एकादश सु कल्पेषु द्वयधिकानि तु चतुर्ष्वतः।**
**सप्तोत्तराणि देवीनामहमिन्द्रस्ततः परम् ।।६६।।**

**अन्वयार्थ**—(कल्पद्वये) सौधर्म ऐशान स्वर्ग मे देवियो की (अल्प) जघन्य (जीवन) आयु (साधिक) किंचित् अधिक (पल्य) पल्य प्रमाण है (वर) उत्कृष्ट आयु (पच) पाच (पल्यानि) पल्य की है (क्रमात्) क्रम से (ईशानादिषु) ईशानादि से लेकर (एकादशषु) एकादश (कल्पेषु) कल्पो मे (देवीना) देवियो की उत्कृष्ट आयु (तानि) उन पाच पल्य (द्वयधिकानि) दो दो पल्य अधिक है (अत) इसके आगे (चतुर्षु) चार कल्पो मे (सप्तोत्तराणि) सात सात पल्य अधिक है (तत) उसके (सोलह स्वर्ग से आगे) (परम्) केवल (अहमिन्द्र) अहमिन्द्र है। देविया नही है।

**भावार्थ**—सौधर्म स्वर्ग मे देवागनाओ की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है और उत्कृष्ट आयु पाच पल्य की है। इसके ऊपर बारहवे स्वर्ग तक आयु दो दो पल्य अधिक है। अर्थात् द्वितीय स्वर्ग मे देवागनाओ की उत्कृष्ट आयु सात पल्य, तृतीय स्वर्ग मे नौ पल्य, चतुर्थ स्वर्ग मे ग्यारह पल्य, पंचम स्वर्ग मे तेरह पल्य, छठे स्वर्ग मे पन्द्रह पल्य, सप्त मे स्वर्ग सत्तरह पल्य है। अष्टम स्वर्ग मे उन्नीस पल्य है। नवमें स्वर्ग मे इक्कीस पल्य है दशवे में तेबीस पल्य है ग्यारहवे मे पच्चीस पल्य, बारहवे में सत्तावीस पल्य की आयु है। इसके आगे चार कल्पो मे सात सात पल्य अधिक है। अर्थात् तेरहवें स्वर्ग मे देवागनाओ की उत्कृष्ट आयु चौतीस पल्य है। चौदहवे स्वर्ग मे इकतालीस पल्य। पन्द्रहवे स्वर्ग मे अडतालीस पल्य है। और सोलहवें स्वर्ग मे पचपन पल्य की उत्कृष्ट आयु है। अच्युत स्वर्ग से आगे केवल अहमिन्द्र है वहा देविया नही हैं ।।६५,६६।।

**यत् किल्विषिकसम्मोहा लान्तवान्त भवन्ति ते।**
**अच्युतावधि कंदर्पा आभियोग्यसुरा अपि ।।६७।।**

**अन्वयार्थ**—(यत्) जो (किल्विषिकसम्मोहा) किल्विषक और वाद्यवादक है (लान्तवान्तं) लान्तवत तक (भवन्ति) होते हैं (च) और (कन्दर्पा) कन्दर्प (आभियोग्यसुराः) आभियोग्य देव (अपि) भी (अच्युतावधि) अच्युत स्वर्ग तक ही है।

**भावार्थ**—किल्विषक जाति और वाद्यवादक देवो का सद्भाव लान्तव स्वर्ग तक है। कन्दर्प और आभियोग्य जाति के देव अच्युत स्वर्ग तक ही होते हैं ।।६७।।

**सारस्वतादयोब्रह्मलोके लौकान्तिकामराः।**
**तेषामष्टावरिष्टे तु नवायुः सागरोपमाः ।।६८।।**

**अन्वयार्थ**—(सारस्वतादय) सारस्वतादि (लौकान्तिकामरा) लौकान्तिक देव (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोक मे है (तेषा) सारस्वतादि की (आयु) आयु (अष्टौ) आठ (सागरोपमा) सागरोपम है (तु) परन्तु (अरिष्टे) अरिष्ट विमान मे आयु (नव) नौ सागरोपम है।

**भावार्थ**—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट नामक लौकान्तिक देव ब्रह्म नाम स्वर्ग के अन्त मे ईशान आदि आठो दिशाओ मे क्रम से आठ विमानो मे रहते हैं। यह अरिष्टादि श्रेणीवद्ध है और प्रकीर्णक विमान में कुछ लौकान्तिक देव रहते हैं। उनमे सारस्वतादि सात विमानस्थ देवो की और प्रकीर्णक मे स्थित देवो की उत्कृष्ट आयु आठ सागर की है परन्तु अरिष्ट नामक विमान मे स्थित लौकान्तिक देवो की उत्कृष्ट आयु नौ सागर की है। स्वर्ग के देवो मे सौधर्म ऐशान की जघन्य आयु एक पल्य से कुछ अधिक है और शेष स्वर्गो की जघन्य आयु नीचे के स्वर्ग की आयु में एक समय अधिक है। जसे तृतीय चतुर्थ स्वर्ग में जघन्य आयु ढाई सागर से एक समय अधिक है। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर मे देवो की जघन्य आयु साढे सात सागर से एक समय अधिक है। इसीप्रकार सर्व स्वर्गो में जघन्य आयु का विधान है। परन्तु सर्वार्थ सिद्धि मे जघन्य आयु नही है ।।६८।।

## देवों के आहार और स्वासोच्छ्रवास का वर्णन

**आहारस्मृतिरुच्छ्रवासः सागरोपम संख्यकैः।**
**समासहस्त्रैः पक्षैश्च यथासख्यं सुरायुषि ।।६९।।**

**अन्वयार्थ**—(यथासख्य) यथासख्य (सुरायुषि) देवो की आयु में(सागरोपमसख्यकै) सागरोपम संख्या प्रमाण (समासहस्त्रै) हजार वर्षो से (आहारस्मृति) आहार का मानसिक विचार है (च) और (पक्षै) उतने ही पक्षो के द्वारा (उच्छ्वास) स्वासोच्छ्वास है।

**भावार्थ**—देवो मे जिस स्वर्ग मे जितने सागर की आयु है, उतने ही हजार वर्ष बाद एक बार मानसिक आहार होता है तथा उतने ही पक्ष बाद एक बार उच्छ्वास होता है। जैसे सर्वार्थसिद्धि मे तेतीस सागर प्रमाण आयु है, इसलिये वहा पर तेतीस हजार वर्ष बाद एक बार आहार तथा तेतीस पक्ष बीत जाने के बाद एक बार श्वासोच्छ्वास होता है। यही नियम सब स्वर्गों मे है ॥६९॥

## गुण स्थानों का स्वरूप

**मिथ्यादृष्टिः सासादनो मिश्रः सुदृगसयतः ।**
**देशव्रती प्रमत्तः स्यादप्रमत्तश्च संयतः ॥७०॥**

**स्यातामपूर्वकरणानिवृत्तिकरणौ ततः ।**
**स्यु सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तक्षीणकषायकाः ॥७१॥**

**जिन सयोगोऽयोग स्युश्चतुर्दश गुणा इति ।**
**मोहयोगसमुद्भूता सिद्धास्तद्गुणनिर्गताः ॥७२॥**

**अन्वयार्थ**—(मिथ्यादृष्टि.) मिथ्यादृष्टि (सासादन) सासादन (मिश्र) मिश्र (सुदृगसयत) अविरत सम्यग्दृष्टि (देशव्रती) देशव्रती (प्रमत्त) प्रमत संयत (च) और (अप्रमत्त) अप्रमत्त (सयत) संयत (स्यात्) है (अपूर्वकरणानिवृत्ति-करणौ) अपूर्वकरण और अनिवृतिकरण (स्याता) है (ततः) इसके बाद (सूक्ष्मसाम्परायोपशान्तक्षीणकषायका:) सूक्ष्म साम्पराय, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय (संयोग) सयोगी (जिन) जिन (अयोग) अयोगी (जिन) जिन (इति) इसप्रकार (मोहयोगसमुद्भूता.) मोह और योग से समुद्भूत (चतुर्दश) चौदह (गुणा) गुणस्थान है (तद्गुणनिर्गता) गुण स्थानो मे रहित (सिद्धा) सिद्ध (स्यु) होते हैं।

**भावार्थ**—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्त मोह क्षीणमोह, सयोगकेवलिजिन और अयोगकेवलिजिन ये चौदह गुण स्थान है और सिद्ध इन गुणस्थानो से रहित है।

१ मिथ्यात्व—तत्त्वार्थ का यथार्थ श्रद्धान न होकर विपरीत श्रद्धान होने को मिथ्यात्व नाम का प्रथम गुणस्थान कहते हैं। २ सासादन—उपशम सम्यक्त्व के काल मे उत्कृष्ट छह आवली और जघन्य एक समय शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ मे से किसी एक का उदय होने पर तथा और मिथ्यादर्शन के कारणो का उदयाभाव होने पर सासादन गुणस्थान होता है। ३ मिश्र गुणस्थान—इस गुणस्थान मे सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के उदय होने से उभय रूप (सम्यक्त्व और मिथ्यात्व) परिणाम होते हैं। जिनके कारण तत्त्वार्थों मे जीव श्रद्धान और अश्रद्धान दोनो करता है। ४ अविरत-सम्यग्दृष्टि—इस गुणस्थान मे चारित्र मोहनीय कर्म के उदय होने से सम्यग्दृष्टि जीव सयम पालन करने मे नितान्त असमर्थ होता है। केवल सम्यग्दर्शन सहित होता है इसलिए अविरत सम्यग्दृष्टि है। ५ देशविरत—इस गुण स्थान मे जीव श्रावक के व्रतो का पालन करता है। लेकिन प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से मुनि व्रतो का पालन नही कर सकता है। संकल्प पूर्वक त्रस जीवो का घात नही करता है, इसलिये सयमी है और स्थावर घात का त्यागी नही है इसलिये असंयमी है और दोनो अवस्थाये एक साथ होती है इसलिये सयमासयम हैं। ६ प्रमत्तसयत—इस गुणस्थान में अप्रमत्त जीव भी अन्तर्मुहूर्त के लिये प्रमत्त हो जाता है अतः छठवे गुण स्थान का नाम प्रमत्त सयत है। अथवा इस गुण स्थान मे चार कषाय, चार विकथा, पाच इन्द्रिय, स्नेह और निद्रा यह पन्द्रह प्रमाद रहते हैं। ७ अप्रमत्तसयत इस गुण स्थान मे निद्रा आदि प्रमाद का अभाव होने से सातवे गुण स्थान का नाम अप्रमत्त है। ८ अपूर्वकरण—इस गुणस्थान मे

उपशमक और क्षपक जीव नूतन २ परिणामो को प्राप्त करते हैं। अत. इसका नाम अपूर्वकरण है। ९ अनिवृत्तिबादर-साम्पराय—इस गुणस्थान में कषाय का स्थूल रूप से उपशम और क्षय होता है। तथा एक समय वर्ती उपशमक और क्षपक नाना जीवो के परिणाम सदृश ही होते हैं तथा कषाय बादर रहती है। अत इस गुणस्थान का नाम अनिवृत्तिबादर साम्पराय है। १० सूक्ष्मसाम्पराय—साम्पराय कषाय को कहते हैं, इस गुणस्थान में कषाय का सूक्ष्म रूप से उपशम या क्षय हो जाता है, अत इस गुणस्थान का नाम सूक्ष्म साम्पराय है। ११ उपशान्तमोह—इस गुणस्थान में मोह का उपशम हो जाता है, अत इसका नाम उपशान्त मोह है। १२ क्षीणमोह—इस गुणस्थान मे मोह का पूर्ण क्षय हो जाता है, अत· इसका नाम क्षीण मोह है। १३ सयोगकेवली—इस गुणस्थान मे जीव केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तथा योग सहित होता है अत इसका नाम सयोग केवली है १४ अयोगकेवली—अ,इ,उ,ऋ,लृ इन पाच लघु अक्षरो के उच्चारण करने मे जितना काल लगता है, उतना ही काल अयोग केवली नामक चौदहवे गुणस्थान का है। इसमे योग नष्ट हो जाता है, केवलज्ञान रहता है, इसलिए इसको अयोग केवली कहते हैं ॥७०,७१,७२॥

स्युराहारशरीराक्षोच्छ्वासभाषामनस्त्विमा.।
पर्याप्तयः समन्तादात्मस्थशक्तिसमृद्धय ॥७३॥

**अन्वयार्थ**—(आहारशरीराक्षोच्छ्वासभाषामन ) आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास, भाषा और मन (इमा.) यह (समन्तात्) चारो ओर से (आत्मस्थशक्तिसमृद्धय ) आत्मस्थ शक्ति के समृद्ध मे कारणभूत (पर्याप्तय·) पर्याप्ति (स्यु·) हैं।

**भावार्थ**—आत्मस्थ शक्ति की वृद्धि मे कारणभूत आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन यह छह पर्याप्ति हैं ॥७३॥

सादिदेहोदयादासां प्रारंभोऽक्रमत· क्रमात्।
अन्तर्मुहूर्ते निष्पत्तिरपर्याप्तिस्त्वपूर्णता ॥७४॥

**अन्वयार्थ**—(सादिदेहोदयात्) आदि सहित नाम कर्म के उदय से (आसा) इन पर्याप्तियो का (प्रारभ ) प्रारम्भ (अक्रमत·) अक्रम से होता है और (निष्पत्तिः) निष्पत्ति (अन्तमुहर्ते) अन्तर्मुहूर्त मे (क्रमात्) क्रम से होती है (तु) और इनकी (अपूर्णता) अपूर्णता (अपर्याप्ति) अपर्याप्ति कहलाती है।

**भावार्थ**—सादि औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, शरीर नाम कर्म के उदय से छह पर्याप्ति होती हैं। इनका प्रारम्भ युगपत्त होता है। परन्तु इनकी निष्पत्ति क्रम से होती है इनकी निष्पत्ति का काल अन्तर्मुहूर्त है। जिनकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है उनको अपर्याप्त कहते हैं। एक शरीर को छोडकर दूसरे नवीन शरीर के लिए कारणभूत जिनको कर्म वर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है उनको खलरस भाग रूप परिणमने की, पर्याप्त नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को आहार पर्याप्ति कहते हैं और उनमे से खल भाग को हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा रस भाग को खून आदि द्रव (नरम पतले) अवयव रूप परिणमाने की शक्ति के पूर्ण होने को शरीर पर्याप्ति कहते हैं। तथा उसी नोकर्म वर्गणाओं के स्कन्धो में से कुछ वर्गणाओं को अपनी अपनी इन्द्रिय के स्थान पर उस उस द्रव्येन्द्रिय के आकार परिणमाने की (ज्ञानावरण दर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा जाति नामकर्म के उदय से युक्त) जीव की शक्ति के पूर्ण होने को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं। इसी प्रकार कुछ स्कन्धो को श्वासोच्छ्वास रूप परिणमाने की जीव की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं। वचन रूप होने के योग्य पुद्गल स्कन्धो (भाषा वर्गणा) को वचनरूप परिणमाने की स्वर नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण होने को भाषा पर्याप्ति कहते हैं। तथा द्रव्य मनरूप होने के योग्य पुद्गल स्कन्धों को (मनो वर्गणाओं) को द्रव्य मन के आकार परिणमाने की नोइन्द्रियावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से युक्त जीव की शक्ति पूर्ण होने को मन पर्याप्ति कहते हैं ॥७४॥

एकाक्षे विकलाक्षेषु चासज्ञिनी सज्ञिनि ।
चतस्रः पंच पंचैताः षड् भवन्ति यथाक्रमम् ॥७५॥

**अन्वयार्थ**—(यथाक्रमम्) क्रम से (एकाक्षे) एकेन्द्रिय मे (चतस्र) चार (विकलाक्षेषु) विकलेन्द्रिय मे (च) और (असंज्ञिनि) असज्ञी मे (पच) पाच (सज्ञिनि) सज्ञी मे (एता) यह (षड्) छहो पर्याप्ति (भवन्ति) होती है।

**भावार्थ**—इन छह पर्याप्तियो मे से एकेन्द्रिय जीवो के आदि की चार ही पर्याप्ति होती है और दो इन्द्रिय से लेकर असज्ञी पचेन्द्रिय तक जीवो के मन पर्याप्ति छोडकर शेष पाच पर्याप्ति होती हैं। संज्ञी जीवो के छहो पर्याप्ति होती हैं। जिन जीवो की पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है उनको पर्याप्त और जिनकी पूर्ण नही उनको अपर्याप्त कहते हैं ॥७५॥

नारकाणा रवरः कायोऽत्यशुभाभिन्नविक्रियः ।
करालः कालो दुर्गन्धो धातुनोन्तमुं हूर्ततः ॥७६॥

**अन्वयार्थ**—(नारकाणा) नारकियो का (कायः) शरीर (रवर) तीक्ष्ण (अत्यशुभाभिन्नविक्रिय.) अत्यन्त, अशुभ, अभिन्न, विक्रिया वाला है (कराल) विकराल है (कालः) कृष्णवर्ण है (दुर्गंधः) दुर्गन्ध युक्त है (धातून.) धातु से रहित (अन्तर्मु हूर्तत) अन्तर्मु हूर्त मे परिपूर्ण होने वाला है।

**भावार्थ**—नारकियो का शरीर अत्यन्त तीक्ष्ण और दुर्गन्धित होता है। कृष्ण वर्ण का है। अत्यन्त, अभिन्न, अशुभ, विक्रिया वाला है। सप्त धातु से रहित है और अन्तर्मु हूर्त प्रमाण काल मे परिपूर्ण हो जाता है ॥७६॥

अणिमादिगुण सप्तधात्वपेत मनोहरम् ।
जायतेऽन्तर्मुहूर्तेन देवागे नवयौवनम् ॥७७॥

**अन्वयार्थ**—(देवागे) देवो के शरीर (अणिमादिगुण) अणिमादि गुण सहित (सप्तधात्वपेत) सप्त धातु रहित (मनोहरम्) मनोहर (अन्तर्मु हूर्तेन) अन्तर्मु हूर्त मात्र मे (नवयौवनम्) नव यौवन को (जायते) प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—देवो का शरीर सप्त धातु से रहित है। अणिमा, महिमा आदि गुणो से युक्त है, अत्यन्त मनोहर है और अन्तर्मु हूर्त मात्र समय मे नव यौवन को प्राप्त हो जाता है ॥७७॥

पचाक्षायुर्मनोवाक्कायऽऽनापाना दशांगिनः ।
प्राणन्त्येभिरिति प्राणा बाह्य रन्नादिभिर्यथा ॥७८॥

**अन्वयार्थ**—(यथा) जिसप्रकार जीव (बाह्य ) बाह्य (अन्नादिभि ) अन्नादि के द्वारा (प्राणन्ति) जीवित रहता है उसी प्रकार (एभि ) इन प्राणो के द्वारा (प्राणन्ति) जीवित रहता है (इति) इस प्रकार (अगिन ) प्राणियो का (पंचाक्षायुर्मनोवाक्कायाऽऽनापाना ) पाच इन्द्रिय, आयु, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास ये (दश) दश (प्राणा ) प्राण हैं।

**भावार्थ**—जिस प्रकार अन्न पानी के द्वारा प्राणी जीवित रहता है। उसी प्रकार पाच इन्द्रिय, मन बल, वचन बल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास के द्वारा प्राणी जीवित रहता है। इसलिए प्राणियो के ये दश प्राण हैं ॥७८॥

सज्यादौ स्युर्दशैकैकहीनास्तेन्त्ये द्विवर्जित ।
पूर्णे त्वपूर्णके सप्त सप्तैकैकविहीनकः ॥७९॥

**अन्वयार्थ**—(सञ्ज्ञ्यादौ) सञ्ज्ञी आदि (पूर्णे) पर्याप्त मे (दशैकैकहीना ) दश से एक एक हीन है (ते) वह प्राण (अन्त्ये) अन्त मे (द्विवर्जिता ) दो रहित है (तु) और (अपूर्णके) अपर्याप्त (संज्ञ्यादौ) सञ्ज्ञी आदि मे (सप्त) सात (सप्तैकैक-विहीनक ) सात से एक एक हीन है ।

**भावार्थ**—पर्याप्त सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय के दश प्राण होते हैं । असञ्ज्ञी के मनोबल प्राण को छोड़कर नव प्राण होते हैं । चतुरिन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय को छोडकर आठ तीन इन्द्रिय के चक्षु और कर्ण इन्द्रिय रहित सात प्राण होते हैं । द्वीन्द्रिय के घ्राण को छोडकर छह और एकेन्द्रिय के रसनेन्द्रिय तथा वचन को छोड़कर चार प्राण होते हैं । यह पर्याप्त की अपेक्षा से कथन है । अपर्याप्त की अपेक्षा संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के श्वासोच्छ्वास, वचोबल, मनोबल को छोडकर पाच इन्द्रिय, कायवल आयु प्राण सात प्राण होते हैं । आगे एक एक कम होता गया है । अर्थात् चतुरिन्द्रिय के श्रोत्र को छोड़कर छह प्राण, त्रीन्द्रिय के चक्षु को छोडकर पाच प्राण,द्वीन्द्रिय के घ्राण को छोडकर चार प्राण तथा एकेन्द्रिय के रसना को छोड़कर तीन प्राण होते हैं ।।७९।।

**सञ्ज्ञावाञ्छाश्चतस्त्रः स्युरत्रामुत्र च दुखदाः ।**
**आहारे भयतो मैथुनेगिनां ताः परिग्रहे ।।८०।।**

**अन्वयार्थ**—(अंगिना) प्राणियो को (आहारे) आहार मे (भयत.) भय मे (मैथुने) मैथुन मे (परिग्रहे) परिग्रह मे (अत्र) इस लोक मे (च) और (अमुत्र) परलोक मे (दुःखदा ) दुख देने वाली (ता) वे (चतस्त्र) चार (वाञ्छा) वाञ्छा (सञ्ज्ञा) सञ्ज्ञा (स्यु·) होती हैं ।

**भावार्थ**—संज्ञा नाम वाञ्छा का है । जिसके निमित्त से दोनो ही भवो मे दारुण दु.ख की प्राप्ति होती है । उस वाञ्छा को सञ्ज्ञा कहते हैं । उसके चार भेद होते हैं । आहार संज्ञा, भय सञ्ज्ञा, मैथुन सञ्ज्ञा और परिग्रह सञ्ज्ञा । उत्तम रसयुक्त विशिष्ट आहार के देखने से, पूर्वानुभूत भोजन का स्मरण से, पेट के खाली होने से और असाता वेदनीय कर्म के तीव्र उदय और उदीरणा होने से आहार सञ्ज्ञा होती है । भयकर पदार्थ के देखने से, पहले देखे हुये भयंकर पदार्थ के स्मरणादि से, शक्ति के हीन होने से और भय कर्म का तीव्र उदय और उदीरणा होने पर भय सञ्ज्ञा होती है ।

कामोत्तेजक स्वादिष्ट पदार्थों का भोजन करने से, काम कथा सुनने अथवा पहले भुक्त विषयो को स्मरण करने से कुशील पुरुषो की सगति गोष्ठी करने से, वेद कर्म का तीव्र उदय अथवा उदीरणा आदि से मैथुन सञ्ज्ञा होती है । भोजन, वस्त्र स्त्री, धन, धान्यादि, भोगोपभोग के साधनभूत, वाह्य पदार्थों को देखने से, पहले के भुक्त पदार्थों का स्मरण, उनकी कथा का श्रवणादि से और ममत्व परिणामो के तीव्र गृद्धि भाव होने से अथवा लोभ कर्म का तीव्र उदय या उदीरणा होने से परिग्रह सञ्ज्ञा उत्पन्न होती है ।।८०।।

**ते गताविन्द्रिये काये योगे वेदकषाययोः ।**
**सयमे दर्शने ज्ञाने लेश्याभव्यत्वयोरपि ।।८१।।**

**सम्यक्त्वसञ्ज्ञित्वाहारे गुणिनो मार्गणा इति ।**
**मृग्यन्त एभिरिति वा स्वकर्मभ्यश्चतुर्दश ।।८२।।युग्मम्।।**

**अन्वयार्थ**- (गुणिन ) गुणीजन (गतौ) गति मे (इन्द्रिये) इन्द्रिय मे (काये) काय मे (योगे) योग मे (वेदकषाययो ) वेद और कषाय मे (सयमे) सयम मे (दर्शने) दर्शन मे (ज्ञाने) ज्ञान मे (लेश्याभव्यत्वयो ) लेश्या और भव्यत्व मे (सम्यक्त्वसंज्ञित्वाहारे ) सम्यक्त्व, सञ्ज्ञित्व, आहारकत्व मे (एभि ) इन मार्गणाओं के द्वारा (मृग्यन्ते) अन्वेषण किये जाते हैं (इति) इस प्रकार (ते) वे (स्वकर्मभ्य.) अपने अपने कर्मो से होने वाली (चतुर्दश) चौदह (मार्गणा) मार्गणा हैं ।

भावार्थ—प्रवचन मे जिस प्रकार से सुना हो उसी प्रकार से जीवादि पदार्थों का जिन भावो के द्वारा अथवा जिन पर्यायो मे विचार अन्वेषण किया जाय उनको ही मार्गणा कहते हैं। उनके चौदह भेद हैं। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय-ज्ञान, सयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञा, आहार ये चौदह मार्गणा हैं ॥८१,८२॥

गतयो नारकतिर्यङमनुष्यामरपर्ययाः।
चतस्त्रो गतिकर्माणि तत्तन्निर्मापकानि वा ॥८३॥

अन्वयार्थ—(नारकतिर्यङमनुष्यामरपर्यया॰) नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव पर्याय (चतस्त्र) चार (गतय) गतिया हैं (वा) अथवा (तत्तन्निर्मापकानि) उन उन गतियो का निर्मापक (गतिकर्माणि) गति नाम कर्म है।

भावार्थ—अपने अपने गति नामकर्म से उत्पन्न नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के भेद से चार गति होती हैं। तिर्यञ्च गति नामकर्म के उदय से तिर्यञ्च, मनुष्य गतिनाम कर्म के उदय से मनुष्य,नरक गति नाम कर्म के उदय से नारकी,देव गति नाम कर्म के उदय से देवगति होती है ॥८३॥

स्पर्शनादीन्द्रियैर्युक्ता रसनाद्येकवृद्धिभिः।
एकद्वित्रिचतुः पचाक्षांगिन॰ स्वोक्तकर्मभिः ॥८४॥

अन्वयार्थ—(स्पर्शनादीन्द्रियै) स्पर्शनादि इन्द्रियो से (रसनाद्येकवृद्धिभि.) रसनादि एक वृद्धि से (स्वोक्त-कर्मभि) अपने उक्त कर्मो से (युक्ता) युक्त (एकद्वित्रिचतुर्पंचाक्षागिन.) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय प्राणी होते हैं।

भावार्थ—स्पर्शनादि अपने अपने कर्म से निर्मित्त एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव होते हैं ॥८४॥

भूवारिवह्निवातांगा ये वनस्पतिकायिकाः।
स्थूलाः सूक्ष्माश्च ते सर्वे भवंत्येकेन्द्रियांगिन ॥८५॥

अन्वयार्थ—(ये) जो (भूवारिवह्निवातागा) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु (वनस्पतिकायिका) वनस्पति कायिक (सर्वे) सर्व (एते) ये (एकेन्द्रियागिन) एकेन्द्रियादि प्राणी (स्थूला) स्थूल (सूक्ष्माः) सूक्ष्म (भवन्ति) होते हैं।

भावार्थ—पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक ये सभी एकेन्द्रियादि प्राणी स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं ॥८५॥

शखशुक्तिनखक्षुल्लकक्षेदिककपर्दिकाः।
गड्ढूपदोदरकृम्याद्याश्च ते द्वीन्द्रियागिन ॥८६॥

अन्वयार्थ—(शख, शुक्ति, नख, क्षुल्लक, क्षेदिक, कर्पादिका) शंख, सीप, नख, क्षुल्लक, क्षेदिक, कोडी (च) और (गंडूपदोदरकृम्याद्या) गडूप, उ र, कृमि आदि (ते) वह (द्वीन्द्रियागिन) दो इन्द्रिय प्राणी है।

भावार्थ—शख, सीप, नख, क्षुल्लक, क्षैदिक, कोडी, गंडूप, उदरकृमि आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं ॥८६॥

गोभीन्द्रगोपवृश्चिक यूकालिक्षापिपीलिका।
कुन्थुस्त्रीमत्कुणाद्याश्च जिनेन्द्रै स्त्रीन्द्रिया स्मृता ॥८७॥

**अन्वयार्थ**—(गोभीन्द्रगोपवृश्चिकयूकालिक्षापिपीलिका.) गोभी (कसला) इन्द्रगोप, बिच्छू, जूं, लीख, चिउंटी (च) और (कुन्थुस्त्रीमत्कुणाद्या:) कुन्थुस्त्री, खटमल आदि को (जिनेन्द्रैः) जिनेन्द्र भगवान ने (त्रीन्द्रिया) तीन इन्द्रिय प्राणी (स्मृता.) कहा है।

**भावार्थ**—गोभी, इन्द्रगोप (वर्षाकाल मे होने वाला रक्त वर्ण का कीडा) विच्छू, जू, लीख, चिउटी, कुथु. खटमल आदि को जिनेन्द्र भगवान ने तीन इन्द्रिय जीव कहा है ॥८७॥

**भृंग पतंग कीटश्च दंशो मशकमक्षिके।**
**मधुगोमक्षिकाद्याश्च देहिनश्चतुरिन्द्रियाः ॥८८॥**

**अन्वयार्थ**—(भृग) भंवरा (पतग) पतगा (कीट) कीडा (दंश) डास (मशक मक्षिके) मच्छर मक्खी (मधुगोमक्षिकाद्या) मधुमक्खी, गो मक्षिका आदि (देहिन·) प्राणी (चतुरिन्द्रिया·) चतुरिन्द्रिय हैं।

**भावार्थ**—भ्रमर, पतंगा, कीट, मच्छर, मक्षिका आदि प्राणी चतुरिन्द्रिय हैं ॥८८॥

**जलस्थलखगास्ते ये मीननागशुकादयः।**
**ज्ञेयाः पंचेन्द्रियाः सर्वे नारकाश्च नराः सुराः ॥८९॥**

**अन्वयार्थ**—(जलस्थलखगा) जलचर, थलचर, नभचर (ये) जो (मीननागशुकादय·) मच्छली, हाथी, तोता आदि (च) और (नारका) नारकी (नरा:) मानव (सुरा) देव (ते) वे (सर्वे) सब (पचेन्द्रिय·) पचेन्द्रिय (ज्ञेया:) जानना चाहिये।

**भावार्थ**—पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे हाथी, सिंह, भैस आदि थलचर। मच्छली, मगर आदि जलचर, तोता, कबूतर मयूर आदि नभचर पंचेन्द्रिय हैं। तथा नारकी, देव और मनुष्य भी पचेन्द्रिय होते हैं ॥८९॥

**पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकाः।**
**जीवा षडिति पृथ्व्यादिनामकर्मविशेषजाः ॥९०॥**

**अन्वयार्थ**—(पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिका·) पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, और त्रसकाय (पृथ्व्यादिनामकर्मविशेषजा:) पृथ्वी आदि नाम कर्म विशेष से उत्पन्न (इति) इसप्रकार (षट्) छह प्रकार के (जीवा) जीव हैं।

**भावार्थ**—पृथिवी आदि नाम कर्म से उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पति और त्रसकाय यह छह काय के जीव हैं ॥९०॥

**मसूरिकापयोविन्दूसूचीवृन्दध्वजोपमाः।**
**कायाश्चतुर्षु पृथ्व्यादिष्वन्त्ययोर्विविधाः स्मृताः ॥९१॥**

**अन्वयार्थ**—(पृथ्व्यादिषु) पृथ्वी आदि (चतुर्षु) चार मे आकृति क्रमश. (मसूरिकापयोविन्दुसूचीवृन्द--ध्वजोपमा) मसूरिका, पयोविन्दु सूचिका समूह, ध्वजोपम हैं (अन्त्ययो·) अन्त के दो (विविधा.) विविध प्रकार के (स्मृता) माने हैं।

**भावार्थ**—पृथ्वीकाय का आकार मसूरिका के समान है, अग्निकाय का आकार सूची के आकार है, जलकाय

का आकार जलविन्दु के समान है, वायुकाय के जीवो का आकार ध्वजा के समान है, वनस्पति काय का और त्रसकाय के जीव अनेक प्रकार के हैं ।।९१।।

समचतुरस्त्रं न्यगोधस्वाती द्वे च वामनम् ।
कुब्ज हुंडमिति प्रोक्तं संस्थानं षड्विधं जिनैः ।।९२।।

**अन्वयार्थ**—(समचतुरस्त्र) समचतुरस्त्र सस्थान (न्यगोधस्वाती) न्यगोध, स्वाति (द्वे) दो (वामन) वामन (कुब्ज) कुब्ज (च) और (हुंड) हुडक (इति) इस प्रकार (षड्विधं) छह प्रकार के (सस्थान) संस्थान (जिनै) जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं ।

**भावार्थ**—समचतरस्त्र संस्थान, न्यगोध्र परिमडल सस्थान, स्वाति संस्थान, वामन संस्थान, कुब्जक संस्थान और हुडक सस्थान के भेद से जिनेन्द्र भगवान ने छह प्रकार के सस्थान कहे हैं । जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरो के आकार बने वह सस्थान नाम कर्म है । वह छह प्रकार का है । ऊपर नीचे और मध्यम मे कुशल शिल्पी के द्वारा बनाये गये समचक्र की तरह समान रूप से शरीर के अवयवो की रचना होना समचतुरस्त्र संस्थान है । बड के पेड की तरह नाभि के ऊपर भारी और नीचे लघु प्रदेशो की रचना का होना न्यगोध्र परिमडल सस्थान है । इससे उल्टा ऊपर लघ और नीचे भारी वामी की तरह रचना का होना स्वाति सस्थान है । पीठ पर बहुत पुद्गलो का पिड हो जाना अर्थात् कुवडापन कुब्जक संस्थान है । सभी अंग और उपागो को छोटा बनाने मे कारण वामन सस्थान है । सभी अंग और उपागो की वेतरतीव हुड की तरह रचना हुडक सस्थान है ।९२।।

हुंड पु नारकैकाक्षाद्यसज्ञ्यतेषु सामरे ।
भोगभूजे भवेदाद्य सर्वाण्यन्येषु देहिषु ।।९३।।

**अन्वयार्थ**—(पु नारकैकाक्षाद्यसज्ञ्यंतेषु) कुभोगभूमि नपुंसक नारकी एकेन्द्रिय से लेकर असज्ञि पर्यन्त जीवो मे (हुड) हुडक संस्थान है (सामरे) देवो मे (भोगभूमिजे) और भोगभूमि मे (आद्य) प्रथम (समचतरस्त्रसस्थान) होता है (अन्येषु) शेष सर्व (देहिषु) प्राणियो मे (सर्वाणि) सर्व सस्थान होते हैं ।

**भावार्थ**—कुभोग भूमियो मे मनुष्य, नारक, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पचेन्द्रियो मे एक हुडक सस्थान होता है । देव और भोगभूमि जीवो मे समचतुरस्त्र सस्थान है । शेष जीवो मे छहो सस्थान होते हैं ।।९३।।

रसरत्नशिलालोहवालुकागैरिकादयः ।
मृदश्च पृथ्वीतत्कायाः पृथिवीकायिकांगिन ।।९४।।

**अन्वयार्थ**—(रसरत्नशिलालोहवालुकागैरिकादय) रस (पारद) रत्नशिला, लोह, वालू, गैरिक आदि (मृदश्च) मिट्टी (च) और (पृथ्वी) पृथ्वी (पृथिवीकायिकागिन) पृथ्वी कायिक प्राणी है (तत्काया) पृथ्वीकाय हैं ।

**भावार्थ**—मिट्टी आदि पृथिवी, वालू, तिकोन, चौकोन रूप, शर्करा, गोल पत्थर, बडा पत्थर समुद्रादिकालवण, नमक, लोहा, ताम्बा, जस्ता, सीसा, चादी सोना, हीरा ।।१३।। हरिताल, इगुल, मैनसिल, हरा रग वाला, सस्यक सुरमा-मूंगा, भोडल (अभ्रक) चमकती रेती ।।२१।। गोरोचन वर्णवाली, कर्केतनमणि अलसी पुष्पवर्ण, राजवर्तकमणि, पुष्प-वर्णमणि, स्फटिकमणिक पद्मरागमणि, चन्द्रकान्तमणि, वैडूर्य, (नील) मणि जलकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि ।।३०।। गेरुवर्ण रुधिराक्षमणि, चन्दनगध मणि, विलाव के नेत्र समान मरकतमणि, पुखराज, नीलमणि तथा विद्रुमवर्ण वाली मणि ।३६। इसप्रकार पृथिवी के छत्तीस भेद है । ये सब जीव पृथ्वी कायिक हैं ।।९४।।

नदीनदसमुद्रादिजलवर्षाम्बुसीकरा· ।
स्यु प्रालेयादयश्चापस्तदप्कायाः स्वकायिकाः ।।६५।।

**अन्वयार्थ**—(नदीनदसमुद्रादिजलवर्षाम्बुसीकरा ) नदी, नद, समुद्रादि का जल वर्षा का पानी, जलकरण (प्रालेयादय ) हिम (बर्फ) आदि (अप्) जल (स्यु·) हैं (च) और (तदपकायाः) वह जल जिनका शरीर है (स्वकायिकाः) वह जलकायिक हैं।

**भावार्थ**—ओस, बर्फ, धु आ के समान पाला, स्थूल बिन्दु रूप जल सूक्ष्मादि बिन्दु रूप जल, चन्द्रकान्तमरिण से उत्पन्न शुद्ध जल, झरना से उत्पन्न जल, मेघकाजल वा घनोदधिवात जल ये सब जलकायिक जीव हैं। पूर्वाभिमुख मे निकलने वाली सरिता का नाम नदी है। पश्चिमाभिमुख से निकलने वाली नदी को नद कहते हैं ।।६५।।

स्युरंगाराः स्फुलिंगाश्च ज्वालाश्चाप्यन्यवन्हयः ।
तेजांसि तच्छरीरा ये ते तेजस्कायिकाः स्मृता ।।६६।।

**अन्वयार्थ**—(अंगारा ) अगार (स्फुलिंगा.) स्फुलिंग (ज्वाला ) ज्वाला (च) और (अपि) भी (अन्य-वह्नय:) अन्य अग्निया (तेजासि) अग्नि हैं (ये) जो (तच्छरीराः) अग्नि जिनका शरीर है (ते) वे (तेजस्कायिकाः) तेजकाय (स्मृताः) कहे गये हैं।

**भावार्थ**—धुआ रहित अगार, ज्वाला, दीपक की लौ, कंडा की आग और वज्राग्नि, बिजली आदि से उत्पन्न शुद्ध अग्नि, सामान्य अग्नि ये तेज कायिक जीव हैं ।।६६।।

वातोवात्या महावाता व्यजनादिभवाश्च ये ।
ते वातास्तच्छरीरा· स्युरंगिनो वातकायिकाः ।।६७।।

**अन्वयार्थ**—(वातः) वात (वात्या) वात्या (महावाता) महावात (व्यजनादिभवा ) पखे आदि से उत्पन्न होने वाली (ये) जो (वात) वायु हैं (तच्छरीराः) वह वायु जिसका शरीर है (ते) वे (अंगिन ) प्राणी (वातकायिकाः) वातकायिक हैं।

**भावार्थ**—सामान्य वायु का नाम वात है, वातूलिका का नाम वात्या है। घनोदध्यादि महावात है। भ्रमता हुआ ऊचा जाने वाला, वहुत रज सहित, आवाज वाला, पृथ्वी मे लगता हुआ, चक्कर वाला, गूंजता हुआ चलने वाला पवन है ।।६७।।

ते वनस्पतयो वृक्षक्षुपवल्लीतृणादयः ।
उद्वेजनक्रियाभाजस्त्रसाः स्युर्द्वीन्द्रियादयः ।।६८।।

**अन्वयार्थ**—(वृक्षक्षुपवल्लीतृणादय.) वृक्ष, क्षुप, वल्ली (लता) तृणादि (ते) वह (वनस्पतय.) वनस्पति कायिक हैं (उद्वेजनक्रियाभाज·) उद्वेजन क्रिया के भागी (द्वीन्द्रियादय ) द्वीन्द्रियादि (त्रस) त्रस (स्यु) हैं।

**भावार्थ**—विशाल वृक्ष को वृक्ष कहते हैं। छोटे को क्षुप कहते हैं। वेल (लता) को वल्लरी कहते हैं। घास फूंस को तृण कहते हैं। वृक्ष, क्षुप, वल्लरी, तृणादि, वनस्पति कायिक जीव हैं। जो भयभीत होते हैं वा जिसके त्रस नाम कर्म का उदय है वे द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस होते हैं ।।६८।।

कर्मादाननिमित्तात्मप्रयत्नो योग इष्यते ।
देहनामैनसः पाकात्प्रदेशस्पदलक्षणः ॥९९॥

**अन्वयार्थ**—(कर्मादाननिमित्तात्मप्रयत्नः) कर्म के ग्रहण करने मे निमित्तभूत जो आत्मा का व्यापार विशेष अथवा (देहनामैनस.) शरीर नाम कर्म पाप के (पाकात्) उदय से (प्रदेशस्पंदलक्षण) आत्म प्रदेशो का परिस्पद लक्षण (योग) योग (इष्यते) कहा जाता है।

**भावार्थ**—कर्मों के ग्रहण करने मे निमित्त जो व्यापार विशेष है उनको योग कहते हैं। अथवा शरीर नाम कर्म रूपी पाप कर्म के उदय से जो आत्म प्रदेशो का परिस्पदन होता है उनको योग कहते है। ९९॥

मनोयोगः स वाग्योगः काययोग इति त्रिधा ।
मनोवचनपर्याप्तिकायवत्सु क्रमेण नुः ॥१००॥

**अन्वयार्थ**—(नु) मानव के (मनोवचनपर्याप्तिकायवत्सु) मन, वचन, काय पर्याप्ति वालो के (क्रमेण) क्रम से (मनोयोगः) मनोयोग (वाग्योग·) वचन योग (काययोगः) काययोग (इति) इसप्रकार (स) वह योग (त्रिधा) तीन प्रकार का है।

**भावार्थ**—मन, वचन, काय के भेद से योग जीवो के मन पर्याप्ति मे मनोयोग वचन पर्याप्ति मे वचनयोग और कायपर्याप्ति मे काय योग होता है ॥१००॥

स्त्री पुमान् षण्ढ इत्येवं भावावेदास्त्रयोऽगिषु ।
ते स्त्रीपुंषण्ढवेदैनः प्रदेशोदयसंभवाः ॥१०१॥

**अन्वयार्थ**—(स्त्री) स्त्री (पुमान्) पुरुष (षण्ढ) नपुसक (इत्येव) इस प्रकार (अगिषु) प्राणियो मे (स्त्री-पुंषण्ढवेदैन.) स्त्री पुरुष और नपुसक वेद रूप पाप कर्म के (प्रदेशोदयसभवा·) प्रदेशोदय से उत्पन्न (भावा) भाव (वेदा) वेद (त्रय) तीन प्रकार है।

**भावार्थ**—स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद के उदय से उत्पन्न स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुसक वेद हैं इस प्रकार प्राणियो मे भावभेद तीन प्रकार का है।१०१।

स्त्रीपुवेदाः सुरा भोगभूमिजाताश्च नारकाः ।
षण्ढाः सम्मूर्च्छिनश्चान्ये नृतिर्यञ्च स्त्रिवेदिनः ॥१०२॥

**अन्वयार्थ**—(सुराभोगभूमिजाता) देव और भोगभूमि मे उत्पन्न स्त्री पुरुष के (स्त्रीपुवेदा) स्त्री पुरुष दो वेद होते है (नारका) नारकी (च) और (सम्मूर्च्छित) समूर्च्छिनो को (षण्ढा) नपुसक वेद होता है (च) और (अन्ये) अन्य (नृतिर्यञ्च) मनुष्य और तिर्यञ्च (त्रिवेदिन) तीनो वेद वाले हैं।

**भावार्थ**—देव और भोगभूमि मे उत्पन्न जीवो के स्त्री और पुरुष दो वेद होते हैं। नारकी और सम्मूर्च्छिन जीवो के नपुसक वेद होता है। शेष बचे मनुष्य और तिर्यञ्च तीनो वेद वाले होते है।१०२।

इशानान्ते प्रवीचारः स्याद् द्वयोस्त्रिचतुर्ष्वत.।
शरीरे स्पर्शे रूपे च शब्दे चित्ते ततो न सः ॥१०३॥

**अन्वयार्थ**—(ईशानान्ते) ईशान स्वर्ग तक देवो मे (शरोरे) शरीर मे (अंतः) इसके आगे (द्वयोः) दो स्वर्ग मे (स्पर्शे) स्पर्श से (त्रिचतुर्षु) तीन, चार, चार स्वर्ग मे क्रम से (रूपे) रूप से (शब्दे) शब्द से (चित्ते) मन से (प्रवीचारः) प्रवीचार (स्यात्) है (तत.) उसके बाद (स·) वह प्रवीचार (न) नही है।

**भावार्थ**—ऐशान स्वर्ग पर्यन्त देव अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और पहले दूसरे स्वर्ग के देव मनुष्यो के समान शरीर से काम सेवन करते हैं। शेष स्वर्ग के देव, देवियो के स्पर्श से, रूप देखने से, शब्द सुनने से और मन के विचारने से काम सेवन करते हैं। अर्थात तीसरे चौथे स्वर्ग के देव, स्पर्श से, पाचवे-छठवे सातवे और आठवे स्वर्ग के देव रूप देखने से, नवमे दशवें ग्यारहवें और बारहवे स्वर्ग के देव शब्द सुनने से, तेरहवे, चौदहवें, पन्द्रहवे और सोलहवे स्वर्ग के देव मन के विचारने मात्र से तृप्त हो जाते हैं। सोलहवे स्वर्ग के आगे देव काम सेवन से रहित होते हैं।१०३।

चतुः कषायाः क्रुन्मानमायालोभा विपाकजाः।
चतु कषायाः सामान्यक्रोधादिद्रव्यकर्मणः ॥१०४॥

**अन्वयार्थ**—(सामान्यक्रोधादिद्रव्यकर्मण) सामान्य क्रोधादि द्रव्य कर्मो के (विपाकजा.) विपाक से होने वाली (क्रुन्मानमायालोभा) क्रोध, मान, माया और लोभ रूप (चतु कषाया.) चार कषाय हैं (चतु कषाया.) एक एक कषाय के चार चार भेद हैं।

**भावार्थ**—सामान्य क्रोधादि द्रव्य कर्म के उदय से क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय होती हैं और एक एक कषाय के विशेष चार चार भेद होते हैं। क्रोध चार प्रकार है एक पत्थर की रेखा के समान, दूसरा पृथ्वी के रेखा के समान, तीसरा धूलि रेखा के समान, चौथी जल रेखा के समान है। मान चार प्रकार है, पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान तथा वेंत के समान है। माया चार प्रकार होती है। वास की जड के समान, मेडे के सीग के समान, गोमूत्र के समान, खुरपा के समान है। लोभ भी चार प्रकार है। किमि राग के समान, चक्रमल के समान, (ओगन) है। शरीर के मल के समान, हल्दी के रंग के समान होती है। अथवा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान,माया और लोभ अप्रत्याखान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये भी एक एक कषाय के चार चार भेद होते हैं ॥१०४॥

ज्ञानमष्टविधं ज्ञातं पुरा स्युः सप्त संयमाः।
चारित्रपंचकं देशसंयमासयमान्वितम् ॥१०५॥

**अन्वयार्थ**—(पुरा) पहिले (ज्ञानं) ज्ञान (अष्टविध) आठ प्रकार का (ज्ञात) कहा है (चारित्रपंचकम्) पाच प्रकार का चारित्र (देशसंयमासयमान्वित) देशसंयम और असयम से युक्त (सप्तसयमा.) सात प्रकार सयम (स्यु) है।

**भावार्थ**—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञान, कुमति, कुश्रुति और कुअवधि, यह आठ प्रकार के ज्ञान है। सामायिक छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापरायिक, और यथाख्यात पाच प्रकार का चारित्र तथा देशसंयम और असयम के भेद से संयम सात प्रकार का है। कर्मों के आस्रव मे कारणभूत बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओ के त्याग करने को चारित्र कहते हैं। सम्पूर्ण पापो का त्याग करने को सामायिक कहते हैं। प्रमाद के वश से अहिंसा आदि व्रतो मे दूषण लग जाने पर आगमोक्त विधि से उस दोष का प्रायश्चित करके पुन व्रतो का ग्रहण करना छेदोपस्थापना चारित्र है।

जिस चारित्र मे जीवो की हिंसा का त्याग होने से विशेष शुद्धि हो उसको परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। जन्म से लेकर तीस वर्ष तक सदा सुखी रहकर पुनः दीक्षा ग्रहण करके तीर्थंकर भगवान के पादमूल मे आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व का अध्ययन करने वाले जीव के यह संयम होता है। इस संयम वाला जीव तीन संध्याकालो

को छोडकर प्रतिदिन दो कोस पर्यन्त गमन करता है, रात्रि को गमन नही करता है, वर्ष काल में गमन करने या न करने का कोई नियम नही है। जिस चारित्र मे अति सूक्ष्म लोभ कषाय का उदय रहता है, उसको सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं। सम्पूर्ण मोहनीय के उपशम या क्षय होने पर आत्मा के अपने स्वरूप मे स्थिर होने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं ॥१०५॥

**प्रत्याख्यानकषायोदयेन स्याद्देशसंयमः।**
**विविधाऽसंयमो भावोप्रत्याख्यानकषायतः ॥१०६॥**

**अन्वयार्थ**—(प्रत्याख्यानकषायो येन) प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से (देशसंयम) देशसयम (स्यात्) होता है (अप्रत्याख्यानकषायत) अप्रत्याख्यान कषाय के उदय से (विविधासयम) विविध प्रकार के असयम (भावः) भाव होते हैं।

**भावार्थ**—सकलसयम घातक प्रत्याख्यानावरणीकषाय के उदय से देश सयम होता है। तथा देश सयम घातक अप्रत्याख्यानकषाय के उदय से अनेक प्रकार का असयम भाव होता है ॥१०६॥

**दर्शन ग्रहणं सामान्यात्मनस्तच्चतुर्विधम्।**
**अचक्षुश्चक्षुरवधि· केवल चेति वर्णितम् ॥१०७॥**

**अन्वयार्थ**—(सामान्यात्मन.) सामान्य आत्मा का (ग्रहण) ग्रहण (दर्शन) दर्शन है (तत्) वह दर्शन (अचक्षु) अचक्षुदर्शन (चक्षु) चक्षुदर्शन (अवधि) अवधि दर्शन (केवल) केवलदर्शन (इति) इसप्रकार (चतुर्विध) चार प्रकार का (वर्णित) कहा है।

**भावार्थ**- सामान्य आत्मा का दर्शन अवलोकन है। वह चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवल दर्शन के भेद से चार प्रकार का है। चक्षु इन्द्रियो से होनेवाले सामान्य अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते हैं। चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष इन्द्रियो तथा मन से पदार्थ का सामान्य अवलोकन हो उसको अचक्षुदर्शन कहते है।

अवधिज्ञान से पहिले होनेवाले सामान्य अवलोकन को अवधि दर्शन कहते हैं। केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को केवल दर्शन कहते हैं ॥१०७॥

**चक्षु शेषेन्द्रियज्ञानहेत्वचक्षु रचक्षुषी।**
**विभगावधिहेतु स्योदकं त्ववधिदर्शनम् ॥१०८॥**

**अन्वयार्थ**—(चक्षु शेषेन्द्रियज्ञानहेतु) चक्षु और शेष इन्द्रियो के ज्ञान मे कारण (चक्षुरचक्षुषी) चक्षु और अचक्षु दर्शन है (तु) और (विभगावधि हेतु.) विभंगावधि का कारण अवधिज्ञान का हेतु (अवधिदर्शन) अवधिदर्शन (एक) एक (स्यात्) है।

**भावार्थ**—चक्षु दर्शन और शेष इन्द्रियो के ज्ञान मे कारण चक्षु और अचक्षु दर्शन है और विभगावधि और अवधिज्ञान का कारण अवधि दर्शन है ॥१०८॥

**चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणेनसाम्।**
**क्षयोपशमतश्चक्षुर्दर्शनादित्रय भवेत् ॥१०९॥**

**अन्वयार्थ**—(चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानाम्) चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण पाप के (क्षयोपशमत) क्षयोपशम से (चक्षुदर्शनादित्रय) चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन (भवेत्) होते हैं।

**भावार्थ**—चक्षुदर्शनावरणीकर्म के क्षयोपशम से चक्षुदर्शन होता है। अचक्षुदर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से अचक्षुदर्शन होता है। अवधि दर्शनावरणी कर्म के क्षयोपशम से अवधि दर्शन होता है।१०९।

**समं केवलबोधेन केवलं दर्शनं भवेत्।**
**निजावरणनिःशेषक्षयात्क्षायिकमक्रमात्॥११०॥**

**अन्वयार्थ**—(क्षायिकक्रमात्) क्षायिक क्रम से (निजावरणनिशेषक्षयात्) अपने अपने आवरण के सम्पूर्ण कर्म के क्षय होने से (केवलबोधेन) केवलज्ञान के (सम) साथ (केवल) केवल (दर्शनं) दर्शन (भवेत्) होता है।

**भावार्थ**—क्षायिक क्रम से अपने अपने आवरण के सम्पूर्ण कर्म के क्षय होने से केवलज्ञान के साथ केवल दर्शन होता है।११०।

**कृष्णनीलकपोताख्याः लेश्यास्तिस्त्रोऽशुभाः शुभाः।**
**स्युस्तेजः पद्मशुक्लाख्याः कषायोन्मिश्रयोगजाः॥१११॥**

**अन्वयार्थ**—(कृष्णनीलकपोताख्या) कृष्णनील और कपोत नाम की (तिस्त्र.) तीन (अशुभाः) अशुभ लेश्या है (तेजपद्मशुक्लाख्याः) तेज पद्म शुक्ल नाम की (तिस्त्र।) तीन (शुभा) शुभ लेश्या है। यह लेश्या (कषायोन्मिश्र-योगजा) कषाय से उन्मिश्रित योग से उत्पन्न होती है।

**भावार्थ**—कृष्ण नील और कापोत नाम की लेश्या तीन अशुभ लेश्याए होती हैं तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या शुभ लेश्या होती हैं। तीव्र क्रोध करने वाला हो, वैर को नही छोडने वाला, लडने के स्वभाव वाला, धर्म दया से रहित, दुष्ट किसी के वश नही होने वाला जीव कृष्ण लेश्या के चिह्नों वाला होता है, काम करने मे मन्द, कार्य करने मे विवेक रहित, इद्रियो के विषयो मे लम्पट मानी, मायाचारी, आलसी, अतिनिद्रालु, धनधान्य मे अति लालसा का करना ये नील लेश्या के परिणाम हैं। दूसरे पर क्रोध करना, दूसरे की निन्दा करना, वैर करना, शोकाकुल रहना, दूसरे से ईर्ष्या रखना, तिरष्कार करना, अपनी प्रशंसा करना, अपनी स्तुति करने वाले पर संतुष्ट होना,अपनी हानिवृद्धि कुछ न समझना ये कापोत लेश्या के परिणाम हैं। अपने कार्य, अकार्य, सेव्य, असेव्य को समझता, दयादान से तत्पर होना, मन, वचन, काय के विषय मे कोमल परिणामी होना वह पीत लेश्या के परिणाम है। दान देने वाला,भद्र परिणामी,उत्तम कार्य करने वाला ये परिणाम पद्म लेश्या वाले के हैं। पक्षपात नही करना, निदान नही बाधना, सबके प्रति समदर्शी होना, इष्ट मे राग, अभीष्ट मे द्वेष न करना, स्त्री पुत्र, मित्र आदि में स्नेहरहित होना ये सब परिणाम शुक्ल लेश्या के हैं।१११।

**निर्वाणयोग्यता भव्यताऽन्याऽनिर्वाणयोग्यता।**
**अष्टकर्मोदयाज्जाते अप्येते परिणामिकौ॥११२॥**

**अन्वयार्थ**—(निर्वाणयोग्यता) निर्वाण की योग्यता (भव्यता) भव्यता है (अनिर्वाणयोग्यता) अनिर्वाण-योग्यता (अभव्यता) अभव्यता है (ऐते) यह भव्यता, अभव्यता (अष्टकर्मोदयात्) अष्टकर्म के उदय से (जाते) होने पर (अपि) भी (परिणामिकौ) पारिणामिक भाव है।

**भावार्थ**—जिसमे सम्यदर्शनादि निर्वाण के योग्य शक्ति के व्यक्त होने का सामर्थ्य है, वह भव्यता है और जिसमे निर्वाण पद प्राप्त करने की योग्यता नही है, वह अभव्य है। यद्यपि वह भव्याभव्यता अष्ट प्रकार कर्म के उदय से है,

क्योंकि मुक्तावस्था मे भव्यताभव्यता नही है, तथापि किसी मुख्य कर्म का उदय कारण नही होने से यह दोनो भाव पारिणामिक है ।।११२।।

षट् सम्यक्त्वानि पूर्वोक्तवेदकादिरुचित्रयम् ।
मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्व सासादनगुणैः सह ।।११३।।

**अन्वयार्थ**—(पूर्वोक्तवेदकादिरुचित्रयम्) पूर्व मे कहे गये वेदकादि तीन सम्यक्त्व (मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सासादनगुणैः) मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सासादन गुण स्थान के (सह) साथ (षट्) छह (सम्यक्त्वानि) सम्यक्त्व हैं।

**भावार्थ**—पूर्वोक्त कथित क्षायिक सम्यक्त्व, क्षयोपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सासादन यह छह प्रकार सम्यक्त्व है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व सातो प्रकृति का विल्कुल क्षय हो जाना, क्षायिक सम्यक्त्व है। सातो प्रकृतियो का उपशम हो जाना, उपशम सम्यक्त्व कहलाता है। वर्तमान मे उदय आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धको का उदयाभावी क्षय तथा उन्ही का आगामी काल मे उदय आने वाले निषेको का सदवस्थारूप उपशम और देशघाति स्पर्द्धको का उदय होने को क्षयोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।।११३।।

मिथ्यात्वकर्मणः पाकान्मिथ्यात्व मिश्रता भवेत् ।
सम्यग्मिथ्यात्वकर्मोदयात्तु श्रद्धानघातिनः ।।११४।।

दृङ्मोहस्योदयादिभ्यो यत्र सासादनो गुणः ।
जात औदयिकोऽपि स्यात्तदयं पारिणामिकः ।।११५।।

**अन्वयार्थ**—(मिथ्यात्व र्मण) मिथ्यात्व कर्म के (पाकात्) उदय से (मिथ्यात्व) मिथ्यात्व (सम्यग्मिथ्यात्व कर्मोदयात्) सम्यक्मिथ्यात्व कर्म के उ य से (मिश्रता) मिश्रता (भवेत्) होती है (श्रद्धानघातिन) श्रद्धान का घात करने वाले (दृङ्मोहस्य) दर्शन मोहनीय के (उदयादिभ्यो) उदयादि से (सासादनगुणः) सासादन गुण स्थान (न) नही होता है (यत्) यद्यपि (औदायिक) अनन्तानुबन्धी के उदय से (जात) उत्पन्न है (तत.) तथापि (अय) यह (पारिणामिक.) पारिणामिक है।

**भावार्थ**—मिथ्यात्व कर्म के उदय से मिथ्यात्व होता है। सम्यग्मिथ्यात्व कर्म के उदय से सम्यक्त्वमिथ्यात्व होता है। जिससे न सम्यक्त्व रूप परिणाम होते हैं और न मिथ्यात्व रूप परिणाम होते हैं, वह मिश्र भाव है। जो अनन्तानुबन्धी कर्म के उदय से सम्यक्त्व से च्युत हो गया है और मिथ्यात्व मे पहुचा नही है मध्य की अवस्था सासादन है। यद्यपि इसमे अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय है। तथापि दर्शन मोहनीय के उदय का अभाव होने से इसको पारिणामिक भाव कहा है ।।११४,११५।।

सञ्ज्ञित्वं समनस्कत्व शिक्षाऽऽदानादियोग्यता ।
भवेदसंज्ञिता सञ्ज्ञिलक्षणालक्षिततत्वतः ।।११६।।

**अन्वयार्थ**—(शिक्षादानादियोग्यता) शिक्षादि ग्रहण करने की योग्यता (सञ्ज्ञित्व) सञ्ज्ञित्व (समनस्कत्व) समनस्कत्व है (संज्ञिलक्षणालक्षिततत्वतः) संज्ञी लक्षण से अलक्षितवान (असञ्ज्ञिता) असंज्ञिता (भवेत्) होती है।

भावार्थ—हित अहित की परीक्षा तथा गुण दोष का विचार वा स्मरणादिक करने को संज्ञी कहते हैं। हिताहित का विचार करने की जिसमे योग्यता नही है उसको असज्ञी कहते है ॥११६॥

नोकर्मादानमाहारः सादिदेहत्रयोदयात् ।
नोकर्माहरणाभावस्त्वनाहारः प्ररूपितः ॥११७॥

अन्वयार्थ—(सादिदेहत्रयोदयात) सादि तीन देह के उदय से (नोकर्मादानम्) नोकर्म वर्गणा को ग्रहण करना (आहार.) आहारकत्व है (तु) और (नोकर्माहरणाभाव) नोकर्म के वर्गणा के अभाव से (अनाहारः) अनाहार (प्ररूपितः) प्ररूपण किया गया है।

भावार्थ—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा छह पर्याप्तियो के योग्य पुद्गल परमाणुओ के ग्रहण को आ ार कहते हैं। इस प्रकार का आहार जिसके न हो वह अनाहारक कहलाता है ॥११७॥

साकार उपयोगः स्यादुपयोगोऽष्टबोधजः ।
अनाकारश्चतुर्दर्शनोत्थस्तौ जीव लक्षणम् ॥११८॥

अन्वयार्थ—(अष्टबोधज) आठ प्रकार के ज्ञान से उत्पन्न (साकार) ज्ञान (उपयोग) उपयोग (चतुर्दर्शनोत्थ.) चार प्रकार के दर्शन से उत्पन्न (अनाकार) अनाकार (दर्शन) (उपयोग.) उपयोग (स्यात्) है (तौ) वह दोनो उपयोग (जीवलक्षण) जीव का लक्षण है।

भावार्थ—मतिश्रुतादि आठ प्रकार के ज्ञान से उत्पन्न मतिज्ञानोपयोग श्रुतज्ञानोपयोगादि आठ प्रकार का ज्ञानोपयोग है। चक्षुदर्शनादि चार दर्शन से उत्पन्न चक्षुदर्शनोपयोग आदि चार प्रकार का दर्शन उपयोग है। आत्मा मे ज्ञानावरणी कर्म के क्षय और क्षयोपशम से होने वाली अर्थ ग्रहण करने की शक्ति का नाम ज्ञान है। आत्मा का अर्थ को जानने के लिए जो व्यापार है वह उपयोग है। बाह्य और अभ्यन्तर निमित्तो के कारण आत्मा के चैतन्य स्वरूप का ज्ञान और दर्शन रूप से परिणमन होता है उसे उपयोग कहते हैं।११८।

नृतिर्यक्सज्ञिपर्याप्त कर्मभूगर्भजेजनिः ।
सुराणां नारकाणा च सप्तम्याः स्यात्तिरश्चिसु ॥११९॥

अन्वयार्थ—(सुराणा) देवो की (नारकाणा) नारकियो की (जनि) उत्पत्ति (नृतिर्यक्सज्ञिपर्याप्तकर्मभूगर्भजे) मनुष्य, तिर्यञ्च, सज्ञि, पर्याप्त, कर्म भूमि के गर्भज जीवो मे (स्यात्) है (तु) परन्तु (सप्तम्या) सातवें नरक से निकल कर जीव (निरश्चि) तिर्यञ्च मे ही (जनि.) उत्पन्न होता है।

भावार्थ—देव और नारकी वहा से च्युत होकर कर्मभूमिया गर्भज, मनुष्य और संज्ञि पर्याप्त गर्भज कर्म भूमिया तिर्यञ्च होते हैं। परन्तु सातवें नरक से निकला हुआ नारकी नियम से गर्भज कर्मभूमियां तिर्यञ्च ही होता है।११९।

तीर्थेशाश्चरमांगाश्च संयता देशसंयता. ।
तुर्यादिसप्तम्यंतान्यश्च्युत्ता नो नारकाः क्रमात् ।१२०।

नारकोऽनन्तर न स्याच्चक्रेशः केशवोबलः ।
शलाकपुरुषा नैव नृतिर्यग्भावनत्रयम् ॥१२१॥

च्युतो न केशवोऽनुदिशानुत्तरविमानतः।
सञ्ज्ञि पूर्णेषु जायन्ते आसहस्रारतश्च्युताः ॥१२२॥

भवन्त्यनन्तरं देवा ये आईशानतश्च्युताः।
अप्रतिष्ठितप्रत्येक स्थूल भूतोयपूर्णगाः ॥१२३॥

**अन्वयार्थ**—(तुर्यादिसप्तम्यन्ताभ्य:) चौथे नरक से लेकर सप्तमी पृथ्वी से (च्युता।) निकले हुए (नारका) नारकी (क्रमात्) क्रम से (तीर्थेशा:) तीर्थंकर (चरमागा) चरम शरीरी (सयता:) मुनि (च) और (देशसयत:) देश संयत (नो) नही होते हैं। (नारक:) नारकी (अनन्तरं) नरक से निकलकर (चक्रेश:) चक्रवर्ती (केशव) नारायण, प्रतिनारायण (वल.) और वलभद्र (श्लाकापुरुषा.) त्रेसठ श्लाका पुरुष (न) नही (स्यात्) होते हैं, (नृतिर्यग्भावनत्रयम्) मनुष्य, तिर्यंच और भवनत्रियक देव मे भी (नैव) श्लाका पुरुष नही होते हैं (अनुदिशानुत्तरविमानत) अनुदिश और अनुत्तर विमान से (च्युता) च्युत हुये जीव (सज्ञिपूर्णेषु) संज्ञि पर्याप्त जीवो मे (जायन्ते) उत्पन्न होते हैं (आईशानत:) दूसरे स्वर्ग तक से (च्युता.) च्युत हुये (ये) जो (देवा) देव (अनन्तरं) अनन्तर भव मे (अप्रतिष्ठितप्रत्येकस्थूलभूतोयपूर्णगा:) अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति स्थूल पृथ्वीकाय, जलकाय पर्याप्तो मे (भवन्ति) उत्पन्न होते हैं।

**भावार्थ**—सातवें नरक से निकला हुआ जीव तिर्यंच ही होता है। और पुन नरक मे जाता है। छठवे नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य हो सकता है और सम्यग्दर्शन को भी प्राप्त कर सकता है लेकिन देशव्रती नही हो सकता। पचम नरक से निकला हुआ देशव्रती हो सकता है लेकिन महाव्रती नही होता। चौथे नरक से निकला हुआ जीव केवली भी हो सकता है। परन्तु तीर्थंकर नही हो सकता, तीसरे दूसरे और प्रथम नरक से निकले हुए तीर्थंकर हो सकते हैं। नरक से निकलकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, वलभद्र और त्रेसठ श्लाका पुरुष नही होते हैं। मनुष्य, तिर्यंच और भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिष्क देव भी श्लाका पुरुष नही होते हैं। अनुदिश और अनुत्तर विमान से च्युत हुये जीव नारायण नही होते हैं। वारहवें के ऊपर से आये हुये जीव मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते हैं। दूसरे स्वर्ग से च्युत हुये जीव अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति स्थूल पृथ्वीकाय, जलकाय पर्याप्तो मे उत्पन्न हो सकते है ॥१२०,१२१,१२२,१२३॥

तिर्यक्षु मर्त्यतिर्यञ्चस्ते तेजोवायुवर्जिताः।
नृषु पचेन्द्रियाः पूर्णा नारकेष्वमरेष्वपि ॥१२४॥

**अन्वयार्थ**—(तेजोवायुवर्जिता) तेज काय, वायुकाय को छोडकर (मर्त्यतिर्यञ्च) मनुष्य और तिर्यञ्च (नृषु) मनुष्यो मे (तिर्यक्षु) तिर्यञ्चो मे जाते हैं (पूर्णा:) पर्याप्त (पंचेन्द्रिया:) पचेन्द्रिय (नरकेषु) नरक मे (अपि) और (अमरेषु) देवो मे भी जाते हैं।

**भावार्थ**—एकेन्द्रियादि सम्पूर्ण तिर्यंच तेजकाय और वायुकाय को छोडकर शेष तिर्यंच मनुष्यो मे भी आ सकते है। पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच, देव और नारकियो मे भी जाते हैं। परन्तु तीर्थंकर तो स्वर्ग या नरक से ही आकर होते हैं ॥१२४॥

अष्टवाराद्द्विवारान्त घर्मोर्व्यादिष्वसंज्ञिनः।
सरीसृपाः खगा. सर्पाः सिहाः कान्ता नराप्चराः ॥१२५॥

**अन्वयार्थ**—(घर्मोर्व्यादिषु) घर्मादि पृथ्वियो मे (असंज्ञिन) असज्ञी (सरीसृपा) सरीसृप (खगा) पक्षी (सर्पा:) सर्प (सिंहा) सिंह (कान्ता) स्त्री (नराप्चरा) मनुष्य और मगरमच्छ (अष्टवारात्) आठ वार से लेकर (द्विवारान्त) दो वार तक जा सकते है।

**भावार्थ**—प्रथम नरक मे असंज्ञी अव्यवधान से आठ बार तक जा सकता है। दूसरे नरक में सरीसृप सात बार जाता है। तीसरे नरक मे पक्षी छह बार, चौथे मे सर्प पाच बार, पाचवे नरक मे सिंह चार बार, छठवे नरक मे स्त्री तीन बार और सातवें नरक मे मनुष्य और मगरमच्छ दो बार जा सकते हैं ॥१२५॥

**भौमभावनयो पूर्णो असंज्ञि भोगभूमिजाः।**
**तापसप्रवराश्चापि जायन्ते भवनत्रये ॥१२६॥**

**अन्वयार्थ**—(भौमभावनयो.) भवनवासी और व्यन्तर देवो मे (पूर्ण) पर्याप्त (असज्ञि) असज्ञी (च) और (तापसप्रवरा) तापसी (भोगभूमिजा.) भोग भूमि के जीव (भवनत्रये) भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क मे उत्पन्न होते है।

**भावार्थ**—असज्ञि, पर्याप्त, पचेन्द्रिय, भवनवासी और व्यन्तरो मे उत्पन्न होते हैं। ताप्सी और मिथ्यादृष्टि भोग भूमि के जीव भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होते हैं ॥१२६॥

**सद्दृष्टिभोगभूजाता· सौधर्मेशानकल्पयो ।**
**पर्याप्ता· कर्मभूसज्ञिमानवा भोगभूमिषु ॥१२७॥**

**अन्वयार्थ**—(सद्दृष्टिभोगभूजाता) सम्यग्दृष्टि भोगभूमिया जीव (सौधर्मेशानकल्पयो) सौधर्म और ईशान कल्प मे उत्पन्न होते हैं (भोगभूमिषु) भोगभूमि मे (पर्याप्ता:) पर्याप्त (कर्मभूसज्ञिमानवा) कर्मभूमि सज्ञि और मानव उत्पन्न होते हैं।

**भावार्थ**—सम्यग्दृष्टि भोगभूमिया जीव सौधर्म और ईशान स्वर्ग मे उत्पन्न होते हैं। और कर्मभूमि के पर्याप्त सज्ञी मनुष्य भोगभूमि मे उत्पन्न होते हैं ॥१२७॥

**परिव्राड् ब्रह्मकल्पान्त यात्युग्राचारवानपि ।**
**आजीवक: सहस्रारकल्पान्त दर्शनोज्झित ॥१२८॥**

**यान्त्यच्युतान्तमुत्कर्षात्तिर्यञ्चो मानवा अपि ।**
**सम्यग्दर्शनसम्पन्नाऽसयता देशसंयताः ॥१२९॥**

**मर्त्यासयतसद्दृष्टि देशव्रति कुदृष्टय ।**
**येन्त्यग्रैवेयकान्त ते यान्ति सद्द्रव्यसयमात् ॥१३०॥**

**अन्वयार्थ**—(उग्राचारावान) उत्कृष्ट आचारवान (अपि) भी (परिव्राड्) एकदडी त्रिदडी लक्षण परिव्राड् (ब्रह्मकल्पान्त) ब्रह्म स्वर्ग तक जाते हैं (दर्शनोज्झिता) मिथ्यादृष्टि (आजीवक) परम हस (सहस्रारकल्पान्त) सहस्त्र कल्प तक (उत्कर्षात्) उत्कृष्टता से (सम्यग्दर्शनसम्पन्ना) सम्यग्दर्शन मे सम्पन्न (असयत.) असयत (तिर्यञ्च) तिर्यंच (मानवा:) मानव (अपि) भी (सहस्रारकल्पान्त) बारहवें स्वर्ग तक और (देशसंयता·) देश सयत सम्यदृष्टि (असयतसद्दृष्टिदेशव्रति-कुदृष्टय·) सम्यग्दर्शन मे सम्पन्न देशव्रती, मिथ्यादृष्टि देशव्रती (मर्त्या) मानव (अच्युतं) अच्युत स्वर्ग तक (यान्ति) जाते हैं (ये) जो (अन्त्यग्रैवेयकान्तं) अन्तिम ग्रैवेयक तक (यान्ति) जाते हैं (ते) वे (सद्द्रव्यसंयमात्) उत्तम द्रव्य महाव्रत के सयोग से जाते है।

**भावार्थ**—उत्कृष्ट आचारवान भी एकदडी, त्रिदंडी लक्षण परिव्राट् ब्रह्म स्वर्ग तक अथवा पाचवे स्वर्ग तक जाते हैं। मिथ्यादृष्टि काजी आहार करने वाले सहस्रार कल्प तक जाते हैं। उत्कृष्टता से सम्यग्दर्शन से सम्पन्न असयत

तिर्यञ्च और मानव बारहवे स्वर्ग तक जाते हैं और देशसयत सम्यग्दृष्टि सम्यग्दर्शन से सम्पन्न देशव्रती, मिथ्यादृष्टि देशव्रती, मनुष्य और तिर्यंच अच्युत वर्ग तक जाते हैं। उत्तम द्रव्य म ाव्रत के सयोग से मनुष्य अन्तिम ग्रैवेयक जाते हैं ॥१३०॥

यान्ति सर्वार्थसिध्यन्तं नराः संयमिनश्च्युताः।
सर्वार्थसिद्धिजा मोक्षगाः स्युर्लौकान्तिका अपि ॥१३१॥

सलोकपालाः शक्रादिदक्षिणेन्द्रा दिवश्च्युताः।
शक्राग्रमहिषीयुक्ता नृषु निर्वान्त्यनन्तरम् ॥१३२॥

**अन्वयार्थ**—(सयमिन:) सम्यग्दृष्टि महाव्रती (सर्वार्थसिध्यन्तं) सर्वार्थ सिद्धि पर्यन्त (यान्ति) जाते हैं।(च्युता.) वहा से च्युत होकर (सर्वार्थसिद्धिजा) सर्वार्थसिद्धि के देव (मोक्षगा·) मोक्षगामी (स्यु) होते हैं। (अपि) और (लोकान्तिका:) लौकान्तिक देव (सलोकपाला·) लोकपाल (शक्रादिदक्षिणेन्द्रा) दक्षिण दिशा के छह इन्द्र (शक्राग्रमहिषीयुक्ता) मुख्य इन्द्राणी सहित प्रथम स्वर्ग का इन्द्र (दिवश्च्युता) स्वर्ग से च्युत होकर (नृषु) मनुष्य पर्याय मे जन्म लेकर (अनन्तर) अनन्तर भव मे (निर्वान्ति) मोक्ष चले जाते हैं।

**भावार्थ**—सम्यग्दृष्टिमहाव्रती, सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं वहा से च्युत होकर सर्वार्थसिद्धि के देव मोक्ष को जाते हैं और लौकान्तिक देव, लोकपाल, दक्षिणदिशा के छह इन्द्र, मुख्य शची इन्द्राणी सहित प्रथम स्वर्ग का इन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य पर्याय मे जन्म लेकर अनन्तर मोक्ष मे चले जाते हैं ॥१३१,१३२॥

यस्यां जातिजरामृत्युक्लेशाश्लेषो न विद्यते।
सोक्ता सिद्धगतिर्यान्ति तां मर्त्या गुणभूषणाः ॥१३३॥

**अन्वयार्थ**—(यस्या) जिसमे (जन्मजरामृत्युक्लेशाश्लेष) जन्म बुढापा, मृत्यु और क्लेश का आश्लेष (स्पर्श) (न) नही (विद्यते) हैं (सा) वह (सिद्धगतिः) सिद्धगति (उक्ता) कही जाती है (ता) उसको (गुणभूषणा) गुण भूषण (मर्त्या) मनुष्य ही (यान्ति) प्राप्त करते हैं।

**भावार्थ**—जिसमे जन्म, बुढापा, मृत्यु और क्लेश का स्पर्श भी नही है वह सिद्धगति कही जाती है। उसको गुणभूषण मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं ॥१३३॥

प्ररूपणानामन्योन्ययोजनक्रमबुद्धये।
गुणस्थानानि योज्यन्ते मार्गणादिषु केषुचित् ॥१३४॥

**अन्वयार्थ**—(प्ररूपणानाम्) प्ररूपणाओ का (अन्योन्ययोजनक्रमबुद्धये) अन्योन्य योजना क्रम से जानने के लिए (केषुचित्) किन्ही (मार्गणादिषु मार्गणाओ मे (गुणस्थानानि) गुणस्थान (योज्यन्ते) युक्त करते हैं।

**भावार्थ**—किस प्ररूपणा मे और किस मार्गणा मे कौन सा गुणस्थान होता है। इसका ज्ञान करने के लिए मार्गणाओ मे गुणस्थान घटित करते हैं ॥१३४॥

चत्वारि पच सर्वाणि चत्वारि नरकादिषु।
पचेन्द्रिये त्रसे सर्वाण्याद्य त्वन्याक्षकाययोः ॥१३५॥

(नरकादिषु) नरकादि मे क्रम से (चत्वारि) चार (पच) पाच (सर्वाणि) सब (चौदह) (चत्वारि)

**अन्वयार्थ**—

चार गुण स्थान हैं। (पचेन्द्रिये) पचेन्द्रिय मे (तु) और (त्रसे) त्रसकाय मे (सर्वाणि) सब गुणस्थान है। (अन्याक्षकाययोः) एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक और स्थावर काय मे (आद्यं) प्रथम गुण स्थान है।

**भावार्थ**—नरकगति मे मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरत चार गुणस्थान होते हैं। तिर्यंच मे देश सयत तक पाच गुणस्थान होते हैं। मनुष्यो मे चौदह गुणस्थान होते हैं। देवो के आदि के चार गुणस्थान होते हैं। त्रसकाय के और पचेन्द्रिय के चौद गुणस्थान होते हैं। पाच स्थावर काय एकेन्द्रिय और दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय के एक मिथ्यात्व गुण स्थान होता है ॥१३५॥

**संज्ञयाद्याः क्षीणमोहान्ताः सयोगान्ताश्च ते क्रमात् ।**
**मोषोभयमनोवाक्षु मनोवाक्ष्वपरेष्वपि ॥१३६॥**

**अन्वयार्थ**—(सज्ञयाद्या) संज्ञी पंचेन्द्रिय प्रथम गुणस्थान से लेकर (क्षीणमोहान्ताः) बारहवे गुणस्थान तक हैं। (मोषोभयमनोवाक्षु) असत्य और उभय मन वचन मे (क्षीणमोहान्ता) बारहवें गुणस्थान तक है। (अपि) और (अपरेषु) सत्य और अनुभय (मनोवाक्षु) मन वचन में (क्रमात्) क्रम से (ते) वे प्रथम से बारहवें तक और (सयोगान्ताः) सयोगकेवली तक हैं।

**भावार्थ**—सज्ञी पचेन्द्रिय के प्रथम से लेकर क्षीणमोह तक गुणस्थान हैं। चार मनोयोग और चार वचन योग प्रथम गुण स्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक हैं। सयोग केवली गुणस्थान मे सत्य और अनुभय मन वचन योग है ॥१३६॥

**पर्याप्तद्वीन्द्रिया आदिस्तुरीयवचने पुनः ।**
**स्थावरादिसयोगान्ताः पूर्णा औदारिके मताः ॥१३७॥**

**अन्वयार्थ**—(पर्याप्तद्वीन्द्रियाः) पर्याप्त दो इन्द्रिय आदि के (आदिस्तुरीयवचने) प्रथम गुणस्थान और चतुर्थ (अनुभय) वचन योग है (पुन ) और (औदारिके) औदारिक काययोग मे (पूर्णाः) पर्याप्त (स्थावरादिसयोगान्ताः) स्थावर आदि सयोगकेवली तक है।

**भावार्थ**—पर्याप्त दो इन्द्रिय के प्रथम गुणस्थान और अनुभय वचन योग है। औदारिक काय योग में पर्याप्त स्थावर आदि के प्रथम गुणस्थान से लेकर तेरह गुणस्थान हैं ॥१३७॥

**कुदृक्सासादनोऽपूर्णः सुदृक् पुंवेद्यसयतः ।**
**कवाटयोगी तन्मिश्रे मर्त्यतिर्यक्षु तद्द्वयम् ॥१३८॥**

**अन्वयार्थ**—(तन्मिश्रे) औदारिकमिश्र काययोग मे (अपूर्णः) अपर्याप्त (कुदृक्सासादनाः) मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान वर्ती हैं। (सुदृक्) सम्यग्दृष्टि (पु वेदी) पुरुषवेदी (असयतः) चौथे गुणस्थान वर्ती होते हैं। (कवाटयोगी) कपाट योगी तेरहवें गुणस्थान मे (कपाट योग मे) औदारिक मिश्र काययोग है (तद्द्वयम्) औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग (मर्त्यतिर्यक्षु) मनुष्य और तिर्यचो मे ही होता है।

**भावार्थ**—औदारिक मिश्र काय योग मे अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान वर्ती होते हैं। सम्यग्दृष्टि पुरुष वेदी चौथे गुणस्थान वर्ती है। तेरहवें गुणस्थान में कवाट योग में औदारिक मिश्र काय योग है अर्थात् औदारिक मिश्र काय योग प्रथम द्वितीय चतुर्थ और त्रयोदश गुणस्थान मे होता है। चतुर्थ गुणस्थान मे औदारिक मिश्र काययोगी पु वेदी

ही होते हैं। तेरहवें गुणस्थान मे औदारिक मिश्र काययोग कपाट समुद्धात मे ही होता है। औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग मनुष्य और तिर्यंचो मे ही होता है ॥१३८॥

पूर्णे वैक्रियिकोऽपूर्णे तन्मिश्रः सुरनारके।
मिश्रे न मिश्रः सासादनोत्पत्तिर्नरकेषु न ॥१३९॥

अन्वयार्थ—(सुरनारके) देव और नारकियो मे (पूर्णे) पर्याप्त अवस्था मे (वैक्रियिकः) वैक्रियिक काय योग है। (अपूर्णे) निर्वृत्यपर्याप्त मे (तन्मिश्रः) वैक्रियिक मिश्रकाय योग होता है। (मिश्रे) मिश्र गुणस्थान मे (मिश्र) वैक्रियिक मिश्र (न) नही है। (नरकेषु) नरक मे (सासादनोत्पत्तिः) सासादन गुण स्थान से उत्पत्ति (न) नही होती है।

भावार्थ—देव और नारकियो मे पर्याप्त अवस्था में वैक्रियिक काययोग होता है। निर्वृत्यपर्याप्त मे वैक्रियिक मिश्र काययोग होता है। मिश्र गुणस्थान मे वैक्रियिक मिश्र नही है। नरक मे सासादन गुणस्थान से उत्पत्ति नही है ॥१३९॥

आहारदेहपर्याप्त्या पूर्णापूर्णप्रमत्तयोः।
अन्तर्मुहूर्तकालौ तु आहाराहारमिश्रकौ ॥१४०॥

अन्वयार्थ—(आहारकदेहपर्याप्त्या) आहारक शरीर पर्याप्ति से (पूर्णापूर्णप्रमत्तयो) पूर्ण और अपूर्ण प्रमत्त गुणस्थान में (अन्तर्मुहूर्तकालौ) अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त (आहाराहारमिश्रकौ) आहारक और आहारक मिश्र योग होता है।

भावार्थ—प्रमत्त गुणस्थान मे देह पर्याप्ति की अपूर्ण अवस्था मे अन्तर्मुहूर्तकाल तक आहारक मिश्र काय योग है। आहारक शरीर पर्याप्ति की पूर्ण अवस्था में प्रमत्त गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त काल तक आहारक काय योग होता है ॥१४०॥

कुदृक्सासादनसुदृक्चतुर्गतिगविग्रहे।
कार्मणस्तु सयोगस्य प्रतरे लोकपूरणे ॥१४१॥

अन्वयार्थ—(कुदृक्सासादनसुदृक्चतुर्गतिगविग्रहे) मिथ्यात्व, सासादन और चतुर्थ गुणस्थान मे चारो गति के जीवो के विग्रह गति में (तु) और (सयोगस्य) सयोग केवली के (प्रतरे) प्रतर (लोकपूरणे) और लोकपूरण मे (कार्मणः) कार्माणकाय योग होता है।

भावार्थ—प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थान मे चारोगतियो के जीवो के विग्रहगति मे कार्माणकाय योग होता है। परन्तु नरकगति में सासादन गुणस्थान मे कार्माणकाययोग नही है। तथा सयोगकेवली के प्रतर और लोकपूरण अवस्था में कार्माणकाययोग होता है। (मनुष्य तिर्यञ्च के निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था मे प्रथम द्वितीय चतुर्गुणस्थान मे औदारिक मिश्र काययोग होता है। देव नारकियो मे निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था मे प्रथम, द्वितीय चतुर्गुणस्थान मे वैक्रियक मिश्रकाययोग होता है, परन्तु नारकियो के दूसरे गुणस्थान मे वैक्रियक मिश्रकाययोग नही होता है) ॥१४२॥

स्थावरादिस्ववेदाऽनिवृत्त्यन्ताः स्युर्नपुंसके।
असंज्ञ्यादिस्ववेदानिवृत्त्यन्ताः शेषवेदयोः ॥१४२॥

अन्वयार्थ—(नपुंसके) नपुसक वेद मे (स्थावरादिस्ववेदानिवृत्त्यन्ता) स्थावरादि मे अपने मे मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिगुणस्थान तक हैं। (शेषवेदयो) शेष स्त्री पुरुष वेद मे (असंज्ञ्यादिस्ववेदानिवृत्त्यन्ता) असंज्ञी आदि से लेकर अपने वेद के अनिवृत्ति गुणस्थान पर्यन्त हैं।

**भावार्थ**—नपु सक वेद मे एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय सम्मूर्च्छन से लेकर नवें गुणस्थान पर्यन्त है। गर्भज असज्ञी से लेकर-सवेद भाव नववें गुणस्थान तक स्त्री पुरुष वेद है।१४२।

**कुदृगाद्यनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्भागगा गुणाः।**
**क्रोधत्रये क्रमाल्लोभे सूक्ष्मलोभान्तिका दश ॥१४३॥**

**अन्वयार्थ**—(क्रोधत्रये) क्रोध, मान, माया मे (कुदृगाद्यनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्भागगाः) मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अनिवृतिकरण गुणस्थान के दो भाग भाग, तीन भाग, चार भाग तक (गुणाः) गुणस्थान है (लोभे) लोभकषाय मे (सूक्ष्मलोभान्तिकादश) मिथ्यात्व से लेकर सूक्ष्मलोभ तक १० गुणस्थान है।

**भावार्थ**—क्रोधकषाय नवमे गुणस्थान के द्वितीय भाग तक, मान तृतीय भागतक,माया चतुर्थ भाग तक और लोभकषाय दशवें गुणस्थान तक है ॥१४३॥

**एकेन्द्रियादिपर्याप्तसंज्ञ्याद्याद्यगुणद्वये।**
**स्यातां मतिश्रुताज्ञाने विभंगोऽपि यथाक्रमम् ॥१४४॥**

**अन्वयार्थ**—(एकेन्द्रियादिपर्याप्तसंज्ञ्याद्याद्यगुणद्वये) एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि पर्याप्त, सज्ञी, आदि को, आदि के दो गुणस्थान मे (यथाक्रम) यथाक्रम से (मतिश्रुताज्ञाने) मति अज्ञान,श्रुत अज्ञान (स्याता) होते है (विभग.) तथा विभगावधिज्ञान (अपि) भी होता है।

**भावार्थ**—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय के आदि के दो गुणस्थान मे मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान होता है और पंचेन्द्रिय सैनी के आदि के दो गुणस्थान मे मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभगावधिज्ञान भी होता है ॥१४४॥

**चतुर्थषष्ठप्रभृतिक्षीणमोहान्तगा. क्रमात्।**
**ज्ञानत्रये मनः पर्यये ऽर्हत्सिद्धेषु केवलम् ॥१४५॥**

**अन्वयार्थ**—(ज्ञानत्रये) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तीन ज्ञान मे (मनःपर्यये) मनःपर्ययज्ञान मे (क्रमात्) क्रम से (चतुर्थषष्ठप्रभृतिक्षीणमोहान्तगा) चौथे और छह से लेकर क्षीणकषायगुणस्थानतक है। (अर्हत्सिद्धेषु) अरिहन्त और सिद्ध अवस्था मे (केवल) केवलज्ञान है।

**भावार्थ**—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान तीन ज्ञान मे चौथे सेलेकर क्षीणकषायगुणस्थान तक हैं। मन पर्यय ज्ञान में छठे से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान है। अरिहन्त और सिद्ध मे केवलज्ञान है ॥१४५॥

**असंयमे चतुर्थान्ताः पंचमो देशसंयमे।**
**प्रमत्ताद्यनिवृत्यंता यमे सामायिकद्वये ॥१४६॥**

**अन्वयार्थ**—(असयमे) असयममें (चतुर्थान्ताः) चौथे गुणस्थान तक है। (देशसंयमे) देशसंयम में (पचमः) पाचवां गुणस्थान है। (सामायिकद्वयें) सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो (यमे) सयमो में (प्रमत्ताद्यनिवृत्यन्ताः) प्रमत्तगुणस्थान से लेकर अनिवृतकरण गुणस्थान तक है।

**भावार्थ**—असयम मे चौथे गुणस्थान तक है। देश संयम में पाचवा गुणस्थान है। सामायिक और छेदोपस्थापना सयम में ६ से लेकर ९ तक गुणस्थान होते हैं।१४६।

परिहारर्द्धौ प्रमत्ताप्रमत्तौ सूक्ष्मलोभकः।
स्यात् सूक्ष्मसाम्परायेऽन्यो यथाख्यातेऽतनौ न सः ॥१४८॥

**अन्वयार्थ**—(परिहारर्द्धौ) परिहार विशुद्धि सयम मे (अप्रमत्ताप्रमत्तौ) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान है (सूक्ष्मसाम्पराये) सूक्ष्म साम्पराय मे (सूक्ष्मलोभकः) सूक्ष्म लोभ अथवा दशवा गुणस्थान है। (यथाख्याते) यथाख्यात सयम मे (अन्ये) अन्य उपशान्त मोह से लेकर अयोग केवली तक गुणस्थान हैं और (अतनौ) सिद्धो मे (स) वह सयम (न) नही (स्यात्) है।

**भावार्थ**—परिहारविशुद्धि संयम मे प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान है। सूक्ष्मसाम्पराय में दशवा गुणस्थान है। यथास्यात मे उपशान्त से लेकर अयोगकेवली तक गुणस्थान हैं। सिद्धो मे सयम नही है ॥१४७॥

चक्षुरक्षैकाक्षायतसद्दृष्ट्याद्यास्तु दर्शने।
छद्मस्थान्ता स्मृताश्चक्षुष्यवधौ क्रमात् ॥१४८॥

**अन्वयार्थ**—(चक्षुषि) चक्षु (अचक्षुषि) अचक्षु (अवधौ) अवधि (दर्शने) दर्शन मे (क्रमात्) क्रम से (चक्षुरक्षैकाक्षायतसद्दृष्ट्याद्या:) चार इन्द्रिय,एकेन्द्रिय,असयत सम्यग्दृष्टि से लेकर (छद्मस्थान्ता) छद्मस्थ (बारहवें गुणस्थान तक) (स्मृता:) कहे गये हैं।

**भावार्थ**—चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय से लेकर सब जीवो के होते हैं और मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक है। अचक्षुदर्शन एकेन्द्रिय से लेकर बारहवें गुणस्थान तक है। अवधि दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक है ॥१४८॥

केवले जिनसिद्धा स्यु स्थावराद्याश्चतुर्गुणा:।
अप्रशस्तत्रिलेश्यासु प्रमत्तान्ताश्च कीर्तिता ॥१४९॥

**अन्वयार्थ**—(केवले) केवलदर्शन मे (जिनसिद्धा) जिन और सिद्ध (स्यु) हैं। (अप्रशस्तत्रिलेश्यासु) अप्रशस्त तीन लेश्याओं मे (स्थावराद्या:) स्थावर आदि के (चतुर्गुणा) चार गुणस्थान (च) और (प्रमत्तान्ता:) छट्ठे गुणस्थान तक (कीर्तिता:) कहे हैं।

**भावार्थ**—केवल दर्शन मे अरिहन्त और सिद्ध है। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या एकेन्द्रिय से लेकर सब जीवो के होती है और इनके मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर चौथे गुणस्थान तक हैं। किसी आचार्य के अभिप्राय से प्रमत्त गुणस्थान तक भी तीन अशुभ लेश्याये होती है ॥१४९॥

शुभलेश्यासु संज्यादिसप्तमान्तास्ततोऽपरे।
शुक्लाया स्यु सयोगान्ता: लेश्यातीतास्तत परे ॥१५०॥

**अन्वयार्थ**—(शुभलेश्यासु) शुभ लेश्या मे (सञ्ज्यादिसप्तमान्तन्ता) संज्ञी पचेन्द्रिय के मिथ्यात्व से लेकद सप्तम गुणस्थान पर्यन्त हैं। (तत) इसके बाद (अपरे) आठवे से लेकर (सयोगान्ता) सयोग केवली तक (शुक्लाया) शुक्ल लेश्याएं (स्यु:) होती है (तत) इसके बाद (परे) चौदहवे गुणस्थान में और सिद्धो में (लेश्यातीता) लेश्या से रहित हैं।

**भावार्थ**—पीत पद्म शुक्ल लेश्या सज्ञी पचेन्द्रिय के होती है और प्रथम गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक हैं। आठवे गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली तक एक शुक्ल लेश्या है। चौदहवें गुणस्थान में और सिद्धो में लेश्या का अभाव है ॥१५०॥

भव्ये सर्वगुणस्थानान्यभव्ये प्रथमो गुण ।
मिथ्यात्वादित्रये मिथ्यादृष्ट्याद्याः स्युस्त्रयो गुणा ॥१५१॥

वेदकाद्यौपशमयोश्चतुर्थाद्याश्चतुर्गुणाः ।
चतुर्थाद्युपशान्तान्ता द्वितीयोपशमे मताः ॥१५२॥

सिद्धान्ताः स्युश्चतुर्थाद्याः सम्यक्त्वे क्षायिके वरः ।
सञ्ज्ञिनि द्वादश गुणा मिथ्यादृष्टिरसञ्ज्ञिनि ॥१५३॥

अन्वयार्थ—(भव्ये) भव्य जीव मे (सर्वगुणस्थानानि) सर्व गुणस्थान हैं। (अभव्ये) अभव्य में (प्रथम) प्रथम (गुण·) गुणस्थान है। (मिथ्यात्वादित्रये) मिथ्यात्वादि तीन मे (मिथ्यादृष्ट्याद्या) मिथ्यादृष्टि आदि (त्रय.) तीन (गुणा) गुणस्थान हैं। (वेदकाद्योपशमयः) वेदक सम्यक्त्व और प्रथमउपशमसम्यक्त्व में (चतुर्थाद्या) चतुर्थ आदि (चतुर्गुणा.) चार गुणस्थान हैं। (द्वितीयोपशमे) द्वितीयोपशम में (चतुर्थाद्युपशान्तान्ता·) चौथे से लेकर उपशान्तकषाय तक गुणस्थान (मता) माने हैं। (वरे) उत्तम (क्षायिके) क्षायिक (सम्यक्त्वे) सम्यक्त्व मे (चतुर्थाद्या) चतुर्थ गुणस्थान को लेकर (सिद्धान्ता) सिद्धपर्यन्त हैं। (सञ्ज्ञिनि) सञ्ज्ञी में (द्वादशगुणा) बारह गुणस्थान हैं। (असंज्ञिनि) असञ्ज्ञी मे (मिथ्यादृष्टिः) मिथ्यादृष्टि एक गुणस्थान है।

भावार्थ—भव्य जीव में सर्वगुणस्थान होते हैं। अभव्यो मे प्रथम गुणस्थान है। मिथ्यात्वादि तीन में मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थान है। वेदक सम्यक्त्व और प्रथम उपशम सम्यक्त्व में चतुर्थ, पाचवा, छठा और सातवा ये चार गुणस्थान हैं। द्वितीयउपशम सम्यक्त्व मे चौथे से लेकर उपशान्तकषाय तक गुणस्थान माने हैं। उत्तम क्षायिकसम्यक्त्व मे चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धपर्यन्त गुणस्थान हैं। सञ्ज्ञी मे बारह गुणस्थान हैं और असञ्ज्ञी में मिथ्यात्व गुणस्थान है।
॥१५१,१५२,१५३॥

कुदृष्ट्यादिसयोगान्ता आहारे कार्मणे स्थिताः ।
अयोगिनश्चानाहारे सिद्धाः निर्धूतकार्मणाः ॥१५४॥

अन्वयार्थ—(आहारे) आहारक मार्गणा मे (कुदृष्ट्यादिसयोगान्ता·) मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त है (च) और (अनाहारे) अनाहारक मार्गणा मे (कार्मणे) कार्माण काययोग मे (स्थिता) मिथ्यात्व सासादन असयत और प्रतर लोक पूरण गत (सयोगकेवली) सयोग केवली (अयोगिन·) अयोग केवली गुणस्थान है। (निर्धूतकार्मणा) समस्त कर्मों के नाश करने वाले (सिद्धा) सिद्ध परमेष्ठी है।

भावार्थ—आहारक अवस्था मे मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली तक त्रयोदश गुणस्थान है। अनाहारक अवस्था मे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ त्रयोदश और चौद वा गुणस्थान है और सिद्ध अवस्था मे भी अनाहारक अवस्था है।१५४॥

चतुर्दशसु मिथ्यादृक् पूर्णेऽपूर्णे च संज्ञिनि ।
सासादनायतसुदृक्प्रमत्तास्तु गुणास्त्रयः ॥१४४॥

पूर्णे जीवसमासे स्युः संज्ञिनोऽन्येजिनो विना ।
एव जीवसमासेषु मार्गणा अपि योजयेत् ॥१५६॥

**अन्वयार्थ**—(चतुर्दशसु) चौदह जीव समासो मे (मिथ्यादृक्) मिथ्यात्व गुण स्थान होता है (अपूर्णे) निवृति पर्याप्त (सञ्ज्ञिनि) सैनी मे (सासादनायतसुदृक्प्रमत्ता:) सासादन, असयत सम्यग्दृष्टि और प्रमत्त (त्रय) तीन गुणस्थान हैं (सञ्ज्ञिन:) सञ्ज्ञी के (पूर्णे) पर्याप्त (जीवसमासे) जीवसमास मे (जिनौ) सयोग केवली और अयोग केवली के (विना) बिना (अन्ये) शेष सर्व गुणस्थान हैं (एव) इसप्रकार (जीवसमासे) जीव समास मे (मार्गणा:) मार्गणा (अपि) भी (योजयेत्) लगाना चाहिये।

**भावार्थ**—प्रथम गुणस्थान मे चौदह जीवसमास हैं। सञ्ज्ञी निवृत्यपर्याप्त के प्रथम द्वितीय चतुर्थ और प्रमत्त गुणस्थान हैं। सञ्ज्ञी पर्याप्त के प्रथम गुणस्थान से लेकर क्षीण कषाय गुणस्थान पर्यन्त हैं। सयोगकेवली, अयोगकेवली, सञ्ज्ञी असञ्ज्ञी व्यपदेश से रहित है। इर प्रकार जीव समास मे मार्गणा भी लगाना चाहिये। जैसे संज्ञी पचेन्द्रिय मार्गणा को छोड कर शेष तेरह मार्गणा मे एक तिर्यञ्च गति है। सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त मे चारो गति है इत्यादि रूप से घटित करना चाहिये ॥१५५,१५६॥

सप्तम्याः श्रेण्यसंख्यातभागमात्रास्ततः क्रमात्।
धर्माया नारका यावदसंख्यातगुणाः स्मृताः ॥१५७॥

**अन्वयार्थ**—(सप्तम्या) सातवें नरक के (नारका) नारकी (श्रेण्यसंख्यातभागमात्रा) जगत श्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण है। (तत) वहा से (क्रमात्) क्रम से (यावत्) जब तक (धर्माया) प्रथम नरक है तब तक (असख्यातगुणा) असख्यात गुणे (मता:) माने है।

**भावार्थ**—सातवे नरक मे नारकियो की सख्या जगत्श्रेणी के असंख्यातवे भाग प्रमाण है और उससे असख्यात गुणे अधिक छठ्ठे नरक मे है। उससे असख्यात गुणे चौथे मे, उससे असख्यात गुणे तीसरे में, उससे असख्यात गुणे दूसरे में, उससे असख्यातगुणे पहिले नरक में नारकी है ॥१५७॥

पचाक्षा प्रतराऽसख्यभागमात्रास्ततोऽधिका।
चतुस्त्रिद्वीन्द्रिया जीवा· क्रमात्ते त्रसकायिका ॥१५८॥

असंख्यलोका· स्युस्तेजस्कायिका· क्रमशोऽधिका:।
तदसख्येयभागेन पृथ्व्यप्पवनकायिका ॥१५९॥

अनन्तानन्तसंख्याता निगोदा क्रमशोऽधिका।
वनस्पतय एकाक्षास्तिर्यञ्चश्च यथोचित ॥१६०॥

**अन्वयार्थ**—(पचाक्षा) पचेन्द्रिय जीव (प्रतराऽसख्यातभागमात्रा) जगत्प्रतर के असंख्यात भाग मात्र प्रमाण हैं। (तत:) उससे (अधिका) अधिक (क्रमात्) क्रम से (चतुस्त्रिद्वीन्द्रिया) चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय हैं। (ते) वे (त्रसकायिका:) त्रस कायिक के जीव हैं। (तेजस्कायिका) तेजकाय के जीव (असख्यलोका) असख्यात लोक प्रमाण (स्यु:) हैं। (तत) उससे (पृथ्व्यप्पवनकायिका असख्येयभागेन) तेजकाय से असख्यात भाग से अधिक क्रम मे पृथिवी, जल और अग्निकायिक जीव हैं (निगोदा) निगोद (अनन्तानन्तसख्याता) अनन्तानन्त सख्यात हैं। उससे (क्रमात्) क्रम से (यथोचित) यथोचित (वनस्पतय) वनस्पति (एकाक्षा:) एकेन्द्रिय (तिर्यञ्च) तिर्यञ्च हैं।

**भावार्थ**—पचेन्द्रिय जीव जगतप्रतर के असख्यात भाग मात्र हैं, उससे अधिक क्रम से चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय त्रसकायिक के जीव हैं। तेज कायिक के जीव असंख्यात लोक प्रमाण हैं। तेजकायिक से अधिक

असख्यात भाग से क्रम से पृथिवी जल और अग्निकायिक जीव हैं। निगोद अनन्तानन्त सख्यात है। उससे क्रम से यथोचित अधिक वनस्पति एकेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव है।

**शंका**—निगोद से वनस्पति अधिक कैसे हैं।

**उत्तर**—निगोद तो केवल साधारण है और निगोद साधारणवनस्पति और प्रत्येक वनस्पति इन तीनो को मिलाने से वनस्पतिकाय जीव अधिक हो जाते हैं ।।१५८,१५९,६०।।

अन्तरद्वीपकुनरा संख्याता गुणिताः क्रमात्।
सख्यातरूपैः कुरुषु हरिरम्यकवर्षयोः ।।१६१।।

हैमवतभूहैरण्यवतोर्व्योर्भोगभूमिजाः।
भरतरावतक्षेत्रे विदेहे पूर्णमानवाः ।।१६२।।

लब्ध्यपूर्णा जगच्छ्रेण्यसख्यभागमिता मता ।
भरतादिषु कर्मावनीषु तेभ्योऽधिका नरा· ।।१६३।।

**अन्वयार्थ**—(अन्तरद्वीपकुनरा) अन्तरद्वीप के कुमानुष (क्रमात्) क्रम से (सख्याता) संख्यात गुणित हैं। (तत·) उससे (सख्यातरूपै) सख्यात रूप से (गुणिता) गुणित (कुरुषु) देव कुरु और उत्तरकुरु मे हैं। उससे संख्यात गुणित (हरिरम्यकवर्षयो) हरिक्षैत्र और रम्यक क्षेत्र में है। उससे अधिक हैमवतभूमि, हिरण्यवत भूमि मे (भोगभूमिजा) भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले मानव हैं उससे अधिक (भरतैरावतक्षेत्रे) भरत, ऐरावत क्षेत्र मे (पूर्णमानवा) पर्याप्त मानव है। उससे अधिक (विदेहे) विदेह क्षेत्र मे पर्याप्त मानव है। (तेभ्य) उससे (अधिका·) अधिक (भरतादिषु) भरतादि (कर्मावनीषु) कर्मभूमियो में (लब्ध्यपूर्णा.) लब्ध्यपर्याप्त (नरा) मानव (जगच्छ्रेण्यसख्यभागमिता) जगत श्रेणी के असाख्यातवें भाग प्रमाण (मता) माने हैं।

**भावार्थ**—अन्तर द्वीप के कुमानुष क्रम से असाख्यात गुणित है उससे असाख्यात रूप से गुणित देवकुरु, उत्तर कुरु में है, उससे सख्यात गुणित हरिक्षैत्र और सम्यक क्षेत्र में है, उससे हैमवतभूमि और हिरण्यवत भोगभूमि मे उत्पन्न होने वाले मानव हैं। उससे अधिक भरत और ऐरावत क्षेत्र में पर्याप्त मानव हैं, उससे अधिक विदेह क्षेत्र मे मानव हैं, उससे अधिक भरतादि कर्मभूमिया में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य जगतश्रेणी के असाख्यातवे भाग प्रमाण माने हैं।

।।१६१, १६२, १६३।।

असख्यश्रेणिवैमानिकेभ्योऽसख्यगुणा क्रमात्।
भावना वाना ज्योतिष्कास्तेभ्य सख्यातसगुणा·।१६४।

**अन्वयार्थ**—(क्रमात) क्रम से(असाख्यश्रेणिवैमानिकेभ्य.) असाख्यात श्रेणी विमानिको से(असाख्यातगुणा·) असाख्यात गुणे (भावना) भवनवासी (वाना) व्यन्तर हैं। (तेभ्य) उससे (सख्यातसंगुणा) सख्यातगुणित (ज्योतिष्का) ज्योतिषी देव हैं।

**भावार्थ**- असंख्यात श्रेणी विमानो से असख्यात गुणे भवनवासी देव हैं। भवनवासी से असंख्यात गुणे व्यन्तर देव हैं। व्यन्तर देवो से संख्यात गुणे ज्योतिषी देव हैं ।।१६४।।

मर्त्येभ्योऽसंख्यगुणिता असख्यश्रेणिनारकाः ।
तेभ्यो देवास्ततः सिद्धाश्चासख्यानतसगुणा ॥१६५॥

तिर्यञ्चोऽनन्तगुणितास्तेभ्यः संसारिणोऽधिकाः ।
सिद्धराशिप्रमाणेन सर्वे जीवास्ततोऽधिकाः ॥१६६॥

आधारे बादराः सूक्ष्माः सर्वत्र त्रसनालिगाः ।
त्रसास्तु विकलाक्षाः स्युस्तिर्यग्लोके व्यवस्थिताः ॥१६७॥

**अन्वयार्थ**—(मर्त्येभ्यः) मनुष्यो से (असख्यगुणिता) असख्यगुणित (असख्यश्रेणिनारकाः) असख्य श्रेणी प्रमाण नारकी है (तेभ्यः) उन नारकियो से (अधिकाः) अधिक (देवा.) देव हैं (तत) उन देवो से (असंख्यानन्तसंगुणाः) असख्यात अनन्त सगुणित (सिद्धा.) सिद्ध है (तेभ्यः) उन सिद्धो से (अनन्तगुणिता) अनन्त गुणित (तिर्यञ्च) तिर्यञ्च हैं (तेभ्य·) उन तिर्यञ्चो से अधिक (संसारिणः) संसारी जीव है (सिद्धराशिप्रमाणेन) सिद्ध राशि प्रमाण के साथ (संसारिणः) ससारी जीवो के मिलाने से (सर्वे) सम्पूर्ण (जीवा.) जीव राशि होती है (आधारे) आधार से रहने वाले (बादराः) बादर जीव हैं (सूक्ष्मा) सूक्ष्म जीव (सर्वत्र) सर्व लोक मे व्याप्त है (तु) उपपाद, मारणान्तिक समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात को छोडकर (त्रसा,) त्रस जीव (त्रसनालिगा) त्रसनालि मे ही रहते हैं (विकलाक्षा) विकलेन्द्रिय (तिर्यग्लोके) तिर्यग्लोक मे (व्यवस्थिता) व्यवस्थित हैं।

**भावार्थ**—मनुष्यो से असख्यगुणित, असंख्य श्रेणी प्रमाण नारकी हैं। उन नारकियो से अधिक देव हैं, उन देवो से असंख्यात अनन्त संगुणित सिद्ध हैं। उन सिद्धो से अनन्त गुणित तिर्यञ्च हैं, उन तिर्यञ्चो से अधिक ससारी जीव हैं, सिद्ध प्रमाण के साथ संसारी जीव मिलाने से सर्व जीव राशि है। आधार से रहने वाले बादर जीव हैं सूक्ष्म जीव सर्वलोक में भरे हुए हैं और उपपाद,मारणान्तिक, समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात को छोडकर त्रस जीव त्रस नालि मे ही रहते हैं। विकलेन्द्रिय तिर्यग्लोक मे व्यवस्थित है ॥१६५,१६६,१६७॥

## कर्मों का वर्णन

कर्मायत्तश्चिरं जीवः संसारे पर्यटत्यसौ ।
प्रकृत्याऽष्टविध त्वष्टचत्वारिंशच्छत च तत ॥१६८॥

**अन्वयार्थ**—(कर्मायत्तः) कर्मो के वशीभूत हुआ (असौ) ये (जीव) जीव (चिर) अनादिकाल से (ससारे) ससार मे (पर्यटति) घूमता है (तत्) वह कर्म (प्रकृत्या) प्रकृति से (अष्टविध) आठ प्रकार है (च) और (अष्ट-चत्वारिशच्छतं) एक सौ अडतालीस प्रकार का भी है।

**भावार्थ**—कर्मो के वशीभूत हुआ यह जीव अनादि काल से ससार मे भ्रमण करता है। वह कर्म प्रकृति से आठ प्रकार है और उनकी उत्तर प्रकृति एक सौ अडतालीस प्रकार की भी होती है ॥१६८॥

यत्तत्राष्टविधं ज्ञानदर्शनावरणीयतः ।
स्याद्वेदनीयमोहायुर्नामगोत्रान्तरायतः ॥१६९॥

**अन्वयार्थ**—(तत्र) उसमे (यत्) जो (ज्ञानदर्शनावरणीयत) ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय (वेदनीयमोहायु-र्नामगोत्रान्तरायतः) वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय के भेद से (अष्टविध) आठ प्रकार का (स्यात्) है।

**भावार्थ**—जो आत्मा के ज्ञान गुण को घाते उसको ज्ञानावरण कहते हैं। जो आत्मा के दर्शनगुण को घाते उसे दर्शनावरण कहते हैं। जिसके उदय से जीव को सुख दुःख होवे उसे वेदनीय कहते हैं। जिसके उदय से जीव अपने स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं। जिस जीव को किसी नरक आदि शरीर मे रोक रखे उसे आयुकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर आदि की रचना हो उसे नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से यह जीव ऊंच नीच कुल मे पैदा होवे उसे गोत्र कर्म कहते हैं। जिसके उदय से दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य मे विघ्न आवे उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

**ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलम् ।**
**आवृणोतीति तज्ज्ञानावरणं पंचभेदगम् ॥१७०॥**

**अन्वयार्थ**—(मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलम्) मति, श्रुत, अवधि, मन' पर्यय और केवल (ज्ञान) ज्ञान को (आवृणोति) आवरण (आच्छादन) करती है (इति) इसप्रकार (तत्) वह (ज्ञानावरण) ज्ञानावरणी प्रकृति (पचभेदगं) पाँच प्रकार की है।

**भावार्थ**—मतिज्ञानावरण (मतिज्ञान को ढाकनेवाला) श्रुतज्ञानावरण (श्रुतज्ञान को ढाकने वाला) अवधिज्ञानावरण (अवधिज्ञान को ढाकने वाला) मन पर्ययज्ञानावरण(मन पर्यय ज्ञान को ढाकने वाला और)केवलज्ञानावरण (केवलज्ञान को ढाकने वाला) ये पाच ज्ञानावरण के भेद हैं ॥१७०॥

**स्त्यानगृद्धिर्निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाद्वयम् ।**
**निद्रा च प्रचला चक्षुरचक्षुर्दर्शनावृती ॥१७१॥**

**अवधे· केवलस्यापि दर्शनस्यावृती इति ।**
**चतुर्विधेऽपि स्वावार्ये दर्शनावृतयो नव ॥१७२॥**

**अन्वयार्थ**—(स्त्यानगृद्धिः) स्त्यानगृद्धि (निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाद्वयम्) निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला (निद्रा) निद्रा (प्रचला) प्रचला (चक्षुरचक्षुर्दर्शनावृती) चक्षुदर्शनावरणी, अचक्षु दर्शनावरणी (अवधे·) अवधि (केवलस्य) केवल (दर्शनस्य) दर्शन की (आवृती) आवृत करने वाली (आवरण) (इति) इसप्रकार (चतुर्विधं) चार प्रकार (अपि) भी (स्वावार्ये) अपने आवरण मे (दर्शनावृतय.) दर्शनावरणी (नव) नव प्रकार की है।

**भावार्थ**—जो चक्षु कर्म चक्षु इन्द्रियो से होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। जिस कर्म के उदय से चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष इन्द्रियो तथा मनसे पदार्थ का सामान्य अवलोकन न होने दे उसेअचक्षु दर्शनावरण कहते हैं। जो कर्म अवधिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे अवधि दर्शनावरण कहते हैं। जो कर्म केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे केवल दर्शनावरण कहते हैं।

निद्रा—मद खेद श्रम आदि को दूर करने के लिए जो शयन करते हैं वह कर्म निद्रा दर्शनावरण है। निद्रा-निद्रा—नीद के बाद फिर फिर नींद आने को निद्रानिद्रा कहते हैं। निद्रानिद्रा के वशीभूत होकर जीव अपनी आँखो को नही खोल सकता है। प्रचला—बैठे बैठे नेत्र शरीर आदि में विकार करने वाली शोक आदि से उत्पन्न हुई नीद प्रचला कहलाती है। उसके वशीभूत सोता हुआ भी जागता रहता है। प्रचलाप्रचला—प्रचला के ऊपर प्रचला आने को प्रचलाप्रचला कहते हैं। इसमे शयन अवस्था मे मुह मे लार बहने लगती है, आंगोपांग चलने लगते हैं। स्त्यानगृद्धि—निद्रा के द्वारा सोती अवस्था मे भी नाना तरह के भयंकर कार्य कर डालते हैं और जागने पर कुछ मालूम ही नही हो सकता कि मैंने क्या किया है उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं ॥१७१,१७२॥

सातासातद्वयं वेद्यं मोहोऽष्टाविंशतिर्मतः।
मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्व दृग्विमोहनम् ।।१७३।।

क्रोधादिभेदानंतानुबधी संज्वलनस्तथा।
प्रत्याख्यानः कषायः स्यादप्रत्याख्यान इत्यमी ।।१७४।।

चारित्रमोहनीयं स्युर्नोकषायाश्च ते नव।
पुरुषस्त्रीषण्ढवेदत्रयं रत्यरती तथा ।।१७५।।

हास्यशोकौ भयं चापि जुगुप्सायुश्चतुर्विधम्।
निरयायुस्तिर्यग्मिर्त्यसुरायूंषीति वर्णितम् ।।१७६।।

अन्वयार्थ—(वेद्य) वेदनीय के (सातासातद्वयं) साता असाता दो भेद हैं (मोहः) मोहनीय (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस प्रकार का (मतः) है (मिथ्यात्व) मिथ्यात्व (सम्यग्मिथ्यात्वं) सम्यग्मिथ्यात्व (सम्यक्त्व) सम्यक्त्व (दृग्विमोहनम्) दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं (क्रोधादि भेदाअनन्तानुबधी) क्रोध, मान, माया, लोभ (प्रत्याख्यान) प्रत्याख्यान क्रोध, मान माया, लोभ (अप्रत्याख्यान) अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ (सज्वलन. कषाय) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ (च) और (पुरुषस्त्रीषण्ढवेदत्रय) पुरुष, स्त्री, नपु सक ये तीन वेद (तथा) तथा (रत्यरती) रति, अरति, (हास्यशोकौ) हास्य, शोक (जुगुप्सा) जुगुप्सा (भय) भय (ते) वे (नव) नौ (नोकषाया.) नोकषाय (स्यु) है (इति) इस प्रकार (अमी) यह (चारित्रमोहनीय) चारित्र मोहनीय (स्यात) है (निरयायु) नरक आयु (तिर्यञ्च मर्त्य सुरायूंषीति) तिर्यञ्च आयु, मनुष्य आयु, देव आयु (इति) इस प्रकार (आयु) आयु (चतुर्विधं) चार प्रकार (वर्णितम्) कही गयी है।

भावार्थ—वेदनीय कर्म साता और असाता के भेद से दो प्रकार है। जिसके उदय से देव आदि गतियो मे शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त हो उसको साता वेदनीय कर्म कहते है। जिसके उदय से नरकादि गतियो मे तरह तरह के दुःख प्राप्त हो उसे असाता वेदनीय कर्म कहते है। दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय इन चार भेद रूप मोहनीय कर्म क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद रूप हैं। जिनमे से सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्-मिथ्यात्व ये तीन दर्शन मोहनीय कर्म के भेद हैं। अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद चारित्र मोहनीय के हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पु वेद और नपु सक वेद ये नौ अकषाय वेदनीय के भेद हैं। और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन इन चार भेदरूप क्रोध, मान, माया, लोभ ये सोलह भेद कषाय वेदनीय के हैं। मिथ्यात्व प्रकृति—जिस कर्म के द्वारा सर्वज्ञ कथित मार्ग मे अश्रद्धान हो उसे मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं। सम्यक्त्व-प्रकृति—जिस प्रकृति के उदय से आत्मा के सम्यग्दर्शन मे दोष उत्पन्न हो उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं। सम्यग्मिथ्यात्व-प्रकृति के उदय से मिले हुए दही गुड के स्वाद की तरह उभय रूप परिणाम हो उसे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं। हास्य जिसके उदय से हसी आवे वह हास्य नो कषाय है। रति-जिसके उदय से विषयो मे प्रेम हो वह रति है। अरति-जिसके उदय से विषयो मे प्रेम नही हो वह अरति है। शोक-जिसके उदय से शोक चिन्ता हो व शोक है। भय-जिसके उदय से डर लगे वह भय है। जुगुप्सा-जिसके उदय से ग्लानि हो वह जुगुप्सा है। स्त्रीवेद-जिसके उदय सेपुरुष के साथ रमने का भाव हो स्त्री-वेद है। पु वेद-किसके उदय से स्त्री के साथ रमने को भाव हो पुरुष वेद है। नपु सक वेद—जिसके उदय से स्त्री पुरुष दोनों से रमने की इच्छा हो वह नपु सक वेद है। अनन्तानुबन्धी—जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण को घाते उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं। अप्रत्याख्यानावरण—जिससे उदय से देश चारित्र न हो उसे अप्रत्याख्यान कहते हैं। प्रत्याख्यानावरण—जिसके उदय से सकल चारित्र न हो उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। सज्वलन—जिसके उदय मे यथाख्यात चारित्र न हो उसे सज्वलन कहते हैं

नरकायु, तिर्यञ्चायु, मानुषायु और देवायु ये चार आयुकर्म के भेद हैं। नरकायु जिस कर्म के उदय से जीव नारकी के शरीर मे रुका रहे उसे नरकायु कहते हैं इस तरह सब भेदों मे समझना चाहिये ॥१७३,१७४,१७५,१७६॥

नाम त्रिनवतिर्भेदैर्गतिस्तत्र चतुर्विधा ।
जातिः पंचविधा पंचभेदभगं च वन्धनम् ॥१७७॥

पंचभेदोंऽगसंघातः स्युः संस्थानानि षट् तनोः ।
त्रीण्यगोंपागनामानि देह संहननानि षट् ॥१७८॥

वर्णाः पंच द्विगन्धौ स्युः पंच रसाः स्पर्शाष्टकम् ।
आनुपूर्व्यश्चतस्त्रोऽगुरु लघ्वेकं शरीरगम् ॥१७९॥

उपघात परघातोच्छ्वासातापचतुष्टयम् ।
उद्योतमेक द्विविधं विहायोगतिकर्म यत् ॥१८०॥

त्रसवादरपर्याप्तप्रत्येकं स्यात् स्थिरं शुभम् ।
सुभगं सुस्वरादेययशस्कीर्ति च सेतरम् ॥१८१॥

निर्माणमेकं स्यात्तीर्थंकरनामाप्यनुत्तर ।
उच्चनीचद्विभेदस्य पात्र तद्गोत्रकर्म यत् ॥१८२॥

स्याद्दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायतः ।
पंचभेदोऽन्तरायोऽय दानाद्यन्तरमेति यत् ॥१८३॥

**अन्वयार्थ**—(त्रिनवतिभेदै) तिरानवे भेद (नाम) नाम कर्म के हैं (तत्र) उसमे (गति) गति (चतुर्विधा:) चार प्रकार की है (जाति.) जाति (पचविधा) पाच प्रकार की है (च) और (पचभेदग:) पच भेद वाला (वन्धनं) बन्धन (अंगसघात) शरीर और सघात (पचभेद) पाच भेद वाले (स्यु) हैं। (संस्थानानि) सस्थान (षट्) छह हैं। (तनो) शरीर के (आंगोपागनामानि) आगोपाग नाम (त्रीणि) तीन हैं (देहसहननानि) शरीर के सहनन (षट्) छह है (वर्णा) वर्ण (पंच) पाच हैं (द्वि) दो (गन्धौ) गन्ध (पंचरसा) पाच रस (स्पर्शाष्टकम्) स्पर्श आठ (आनुपूर्व्या) आनुपूर्वी (चतस्त्र) चार (स्यु) है (शरीरग) शरीरगत (अगुरुलघ्वेक) अगुरु लघु एक (अपघातपरघातोच्छ्वासातापचतुष्टयम्) अपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप चतुष्टय है (उद्योत) उद्योत (एक) एक (विहायोगतिकर्म) विहायोगति कर्म (द्विविधं) दो प्रकार है (त्रसवादरपर्याप्तप्रत्येक) त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक (स्थिरशुभम्) स्थिर, शुभ (सुभगसुस्वरादेययशस्कीर्ति) सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति (स्यात) हैं (च) और (सेतरम्) इनसे विपरीत अर्थात् स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति (निर्माणं) निर्माण (एक) एक (अनुत्तरं) सर्वोत्कृष्ट (तीर्थंकरनामा) तीर्थंकर नाम (अपि) भी है (उच्चनीचद्विभेदस्य) उच्च नीच भेद का (पात्र) पात्र (तद्गोत्रकर्म) वह गोत्र कर्म (स्यात्) है (दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायत) दान, लाभ, भोग और उपभोग वीर्यान्तराय से (पचभेद) पाच भेद वाला (अय) यह (अन्तराय.) अन्तराय कर्म (स्यात्) है (यत्) इस कर्म के उदय से (दानाद्यन्तरम्) दानादि मे विघ्न (एति) प्राप्त होते हैं।

**भावार्थ**—तिरानवें नाम कर्म के भेद हैं। गति—जिसके उदय से जीव दूसरे भव को प्राप्त करता है उसे

गति नाम कर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति। जिसके उदय से आत्मा को नरकगति प्राप्त हो, उसे गति नाम कर्म कहते हैं इसीप्रकार सबमे लगाना चाहिये। जाति—जिस कर्म के उदय से जीव नरकादि गतियो में अव्यभिचार रूप समानता से एक रूपता को प्राप्त हो, वह जाति नाम कर्म है। इसके पाच भेद हैं, एकेन्द्रिय,द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जाति। जिसके उदय से जीव एकेन्द्रिय जाति मे पैदा हो उसे एकेन्द्रियादि जाति कर्म कहते है। शरीर—जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना हो उसे शरीर नाम कर्म कहते हैं। इसके पाच भेद हैं औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर नाम कर्म जिसके उदय से औदारिक शरीर की रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं। इसीप्रकार सबमे लगाना चाहिये। अंगोपाग—जिसके उदय से अंग उपागो की रचना हो उसे अंगोपाग नाम कर्म कहते हैं। इसके तीन भेद है। १ औदारिक शरीराङ्गोपाग २ वैक्रियिक शरीरागोपाग और आहार शरीरागोपाग। जिसके उदय से औदारिक शरीर के अग और उपागो की रचना हो उसे औदारिक शरीरागोपाग नाम कर्म कहते हैं। इस प्रकार शेष लक्षण समझना चाहिये। बन्धन—जिसके उदय से औदारिक शरीर के परमाणु दीवाल मे लगे हुए ईंट और गारे की तरह छिद्र सहित परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त हो उसे औदारिक बन्धन नाम कर्म कहते हैं, इसी प्रकार अन्य सबमे लक्षण जानना चाहिये।

वैक्रियिक बन्धन, आहारक बन्धन, तैजस, कार्माण बन्धन, औदारिक बन्धन। सघात नाम कर्म के उदय से औदारिक शरीर के प्रदेशो का छिद्र रहित बन्धन हो उसे सघात नाम कर्म कहते हैं। इसके भी पाच भेद हैं औदारिक सघात इत्यादि। संस्थान नाम कर्म के उदय से शरीर का सस्थान (आकार) बने उसे सस्थान नाम कर्म कहते हैं। उसके छह भेद हैं। समचतुरस्र सस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक सस्थान। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर ऊपर नीचे तथा बीच मे समान भाग रूप अर्थात् सुडौल हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। जिसका शरीर वटवृक्ष की तरह नाभि से नीचे पतला ऊपर मोटा हो उसे न्यग्रोध परिमण्डल सस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की बामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वाति सस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कुबडा हो उसे कुब्जक सस्थान नामकर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से बौना हो उसको वामन सस्थान नाम कर्म कहत हैं। जिस कर्म के उदय से आगोपाग किसी खास आकृति के न हो उसे हुडक सस्थान नाम कर्म कहते हैं। सहनन-जिस नामकर्म के उदय से हड्डियो के बन्धन मे विशेषता हो उसे सहनन नाम कर्म कहते है। इसके छह भेद है। १ वज्रर्षभनाराच संहनन वज्रन राज नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन। जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) और संहनन (हड्डिया वज्र की हो उसे वज्रर्षभनाराच सहनन कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड और वज्र की कीलिया हो परन्तु वेष्टन वज्र के न हो, उसे वज्रनाराच सहनन कहते हैं। सामान्य वेष्टन और कीलि सहित हाड हो उसे नाराच सहनन नामकर्म कहते हैं। हड्डियो की संधिया अर्धकीलित हो उसे अर्धनाराच सहनन नाम कर्म कहते है। हड्डियां परस्पर कीलित हो उसे कीलक संहनन नाम कर्म कहते हैं। जुदी जुदी हड्डिया नसो से बंधी हो परस्पर मे कीलित नही हो उसे असम्प्राप्तसृपाटिका सहनन नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से शरीर मे स्पर्श हो उसे स्पर्श नाम कर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं कोमल, कठोर,गुरु,लघु, शीत, उष्ण,स्निग्ध और रूक्ष। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। रसके पाच भेद हैं। तिक्त, कडुआ कषायला, खट्टा और मधुर गन्ध के दो भेद हैं। सुगन्ध और दुर्गन्ध। वर्ण के पाच भेद हैं। शुक्ल,कृष्ण,नील,रक्त और पीत। आनुपूर्व्य जिस कर्म के उदय से विग्रह गति मे मरण से पहिले के शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं उसे आनुपूर्वी नाम कर्म कहते है। इनके चार भेद हैं। नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और देवगत्यानुपूर्व्य। अगुरु लघु—नाम कर्म जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे गोले के समान भारी और आक के तूल के समान हलका न हो, वह अगुरु लघु नामकर्म है। उपघात नामकर्म के उदय से अपने अंगो से अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। परघात के उदय मे दूसरे का घात करने वाले अंगोपाग हो उसे परघात नामकर्म कहते हैं। आतप कर्म के उदय से आतप रूप शरीर हो, उसे आतप नाम कर्म है। उद्योत कर्म के उदय से उद्योत रूप शरीर हो उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं। उच्छ्वास कर्म के उदय से शरीर मे उच्छ्वास हो उसे उच्छ्वास कहते हैं। जिसके उदय से आकाश मे गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके

प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति दो भेद हैं। एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नाम कर्म कहते हैं। एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते है। द्वीन्द्रियादिक जीवो मे जन्म हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं। एकेन्द्रिय जीवो मे जन्म हो उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं। दूसरे जीवो को अपने से प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं। रूपादि गुणो से युक्त होने पर भी दूसरे जीवो को अप्रीति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

जिसके उदय से उत्तम स्वर हो उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से खराब स्वर हो उसे दु स्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव देखने मे सुन्दर हो उसे शुभ नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हो उसे अशुभ नामकम कहते हैं। जिसके उदय से शरीर से न किसी को रोकता है और न किसी से रोका जा सकता है उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से दूसरे को रोकने वाला तथा दूसरे से रुकने वाला स्थूल शरीर हो उसे बादर शरीर नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से पर्याप्ति एक भी पूर्ण नही हो उसे अपर्याप्ति नामकर्म कहते है। जिसके उदय से शरीर के धातु तथा उपधातुएं अपने अपने स्थिरता को प्राप्त हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते है। जिसके उदय से धातु तथा उपधातु अपने अपने स्थान मे स्थिर न रहे उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं। जिसके उदय से प्रभा सहित शरीर हो उसे आदेय नाम कर्म कहते है। जिसके उदय से प्रभा रहित शरीर हो उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव की प्रशसा हो उसे यशकीर्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव को ससार मे निन्दा हो उसे अयशकीर्ति नामकर्म कहते हैं। अरहन्त के कारण भूत कर्म को तीर्थकरत्व नामकर्म कहते हैं। उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो भेद गोत्र कर्म के हैं। जिसके उदय से लोकमान्य कुल मे जन्म हो उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं। जिसके उदय से लोकनिन्द्य कुल मे जन्म हो उसे नीचगोत्र कर्म कहते हैं। दानान्तराय, लाभान्तराय भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तराय कर्म के पाच भेद हैं। जिसके उदय से जीव दान की इच्छा रखता हुआ भी दान न दे सके उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं। इसीप्रकार अन्य भेदो के भी लक्षण समझना चाहिये।

॥१७७,१७८,१७९,१८०,१८१,१८२,१८३॥

त्रिशत्याद्यतरायेषु कोटीकोटयः परा स्थितिः।
सप्ततिर्मोहनीयस्य स्युर्विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१८४॥

सागराणां त्रयस्त्रिंशत्स्यादायुष्यपरा स्थितिः।
वेद्ये मुहूर्त्ताः स्युर्द्वादशाष्टौ ते नाम गोत्रयोः ॥१८५॥

शेषेष्वन्तर्मुहूर्त्त स्यादात्मना सह संस्थिते।
कालः प्रतिक्षणं बद्धकर्मणां स्थितिरीरिता ॥१८६॥

**अन्वयार्थ**—(त्रिशत्याद्यन्तरायेषु) ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय और अन्तराय मे (परा) उत्कृष्ट (स्थितिः) स्थिति (त्रिशत) तीस (मोहनीयस्य) मोहनीय की (सप्तति) सत्तर (नामगोत्रयो) नाम गोत्र की (विंशति) वीस (कोटीकोटय) कोडा कोडी सागर हैं (आयुषि) आयु मे (त्रयस्त्रिंशत) तैंतीस (सागराणा) सागर की है (अपरा) जघन्य (स्थितिः) स्थिति (वेद्ये) वेदनीय मे (द्वादश) बारह (नामगोत्रयो) नाम गोत्र मे (अष्टौ) आठ (मुहूर्त्ताः) मुहूर्त की (स्यु) है (शेषेषु) शेष कर्मो मे (अन्तर्मुहूर्ता) अन्तर्मुहूर्त की जघन्य स्थिति है (प्रतिक्षण) प्रत्येक क्षण मे (बद्धकर्मणा) वधे हुए कर्मो की (आत्मना) आत्मा के (सह) साथ (सस्थिते) सस्थिति का (कालः) काल (स्थिति) स्थितिबन्ध (इति) इस प्रकार (ईरिता) कहा गया है।

**भावार्थ**—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय इन चारो कर्मो की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागर की है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडा कोडी सागर है। नाम कर्म और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति

बीस कोडाकोड़ी सागर की है। आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर की है। वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त की है। नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की है। शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और आयु कर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। प्रत्येक क्षण मे बन्धे हुए कर्मों की आत्मा के साथ संस्थिति का काल स्थिति बन्ध इस प्रकार कहा है ॥१८४,१८५,१८६॥

कर्मस्पर्शगुणो यस्तु सोऽनुभाग इतीष्यते।
लतानिबगुडाद्यात्मनानाभेदैस्त्रिजैर्युत· ॥१८७॥

**अन्वयार्थ**—(य) जो (त्रिजै) तीन से उत्पन्न (लतानिबगुडाद्यात्मनानाभेदै·) लता नीम गुडादि स्वरूप नाना भेदो से युक्त (कर्मस्पर्शगुण) कर्म स्पर्श गुण हैं (स) वह (अनुभाग·) अनुभाग (इति) इसप्रकार (इष्यते) कहा जाता है।

**भावार्थ**—कर्मो मे फल देने की शक्ति का नाम अनुभाग है। वह घातिया कर्मों का अनुभाग लता, दारू, अस्थि और शैल के समान है अघातियो मे अप्रशस्त कर्म प्रकृति का अनुभाग नीम, काजी, विष, हालाहल विष के समान है और प्रशस्त प्रकृतियो का अनुभाग गुण खाड मिश्री और अमृत के समान है ॥१८७॥

संतानापेक्षयाऽनादिः सादिर्नूतनबन्धनात्।
प्रदेश· कर्मण' स्कन्धः प्रकृत्यादित्रयात्मक ॥१८८॥

**अन्वयार्थ**—(प्रकृत्यादित्रयात्मक) प्रकृति आदि त्रयात्मक (कर्मण) कर्मों का (स्कन्ध) स्कन्ध (प्रदेश:) प्रदेश बन्ध है यह (सन्तानापेक्षया) सन्तान की अपेक्षा (अनादि) अनादि है (नूतनबन्धनात्) नूतन बन्ध की अपेक्षा (सादि) सादि है।

**भावार्थ**—प्रकृति आदि त्रयात्मक कर्मों का स्कन्ध प्रदेश बन्ध है। यह प्रदेश बन्ध सन्तान की अपेक्षा अनादि है, नवीनबन्ध की अपेक्षा सादि बन्ध है ॥१८८॥

जीवकर्मस्वरूपज्ञो विज्ञानातिशयान्वित.।
कर्मनोकर्मनिर्मोक्षादात्मा शुद्धात्मतां व्रजेत् ॥१८९॥

**अन्वयार्थ**—(जीवकर्मस्वरूपज्ञः) जीव और कर्म के स्वरूप को जानने वाला (विज्ञानातिशयान्वित·) विज्ञान के अतिशय से युक्त (आत्मा) आत्मा (कर्मनोकर्मनिर्मोक्षात्) कर्म और नौकर्म के निर्मोक्ष से (शुद्धात्मता) शुद्ध आत्मा को (व्रजेत्) प्राप्त होता है।

**भावार्थ**—जीव और कर्म के स्वरूप को जानने वाला विज्ञान के अतिशय से युक्त आत्मा, कर्म नोकर्म के निर्मोक्ष से शुद्धात्मा को प्राप्त होता है ॥१८९॥

श्रीमान्नः परमां रमां निरूपमां दद्यादनतो जिनो।
विज्ञानातिशयेन येन दुरितात्मानौ विभिन्नौ कृतौ
संपृक्तौ प्रतिपक्षहीनममित प्राप्तं सदावस्थित।
शमीनक्षजमक्षयं स्वतिशय शुद्धात्मजात नुतम् ॥१९०॥

**अन्वयार्थ**—(येन) जिसने (विज्ञानातिशयेन) विज्ञान के अतिशय से (सपृक्तौ) मिले हुये (दुरितात्मानौ) शरीर और आत्मा को (विभिन्नौ) पृथग्भूत (कृतौ) करली है तथा (प्रतिपक्षहीनं) प्रतिपक्ष से रहित (अमित) अप्रमित (सदावस्थित) सदावस्थित (अनक्षज) अनीन्द्रिय से उत्पन्न (स्वतिशय) अपूर्व (शुद्धात्मजात) शुद्धात्मा से उत्पन्न (नुतं) नमस्कृत (शर्म) सुख को (प्राप्त) प्राप्त किया है वह (श्रीमान्) श्रीमान (अनन्त.) अनन्त (जिन) जिन भगवान (न) हमारे लिए (परमा) परम (उत्कृष्ट) (निरूपा) निरूपम (रमा) लक्ष्मी को (दधात्) देवें।

**भावार्थ**—जिन्होने अपने ज्ञानातिशय से आत्मा और शरीर को पृथग् पृथग् किया है। जिसने अतिन्द्रिय शुद्धात्मोत्पन्न अपरिमित, अनुपम, शाश्वत, सुख को प्राप्त किया है वह अन्तरग बहिरग लक्ष्मी के स्वामी अनन्तनाथ भगवान हमारे लिए उत्कृष्ट अविनाशी निरूपम मोक्ष लक्ष्मी को प्रदान करे। अथवा देवे।

**इति श्रीमद्वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती प्रणीते श्री आचारसार नाम्नि शास्त्ये जीवकर्म प्ररूपणात्मक एकादशोऽधिकारः ॥११॥**

# द्वादशमोऽधिकारः

**सद्वंशजः पेशलविश्वशीलः शिलष्टो गुणैर्पुष्टतरैर्विशिष्टैः।**
**दुरंतदुःकर्महरः कृतार्थो धर्मो जिनः स्ताद्विजयश्रिये नः ॥१॥**

**अन्वयार्थ**—(सद्वंशज·) उत्तम वश मे उत्पन्न (पेशलविश्वशील) सुन्दर, विश्वशील (पुष्टतरै·) पुष्टत्तर (विशिष्टै) विशिष्ट (गुणैः) गुणो के द्वारा (शिलष्ट·) युक्त (दुरंतदुष्कर्महर.) दुरंत दुष्कर्म के हरण करने वाले (कृतार्थ.) कृतकृत्य (धर्म.) धर्मनाथ (जिन) जिनेश (न) हमारी (जयश्रिये) जय श्री के लिए (स्तात्) हो।

**भावार्थ**—उत्तम कुल मे उत्पन्न, मनोज्ञ, विश्वशील, पुष्टत्तर, विशिष्ट गुणो से युक्त दुरत दुष्कर्म का हरण करने वाले कृतकृत्य, धर्मनाथ जिनेश्वर हमारी जयश्री के लिए हो। विशेषार्थ—धर्म नाम धनुष का भी है, धनुष मे डोरी है, इन धर्मनाथ भगवान मे विशिष्ट गुणो की डोरी है। धनुष उत्तम वश (वेणु) से उत्पन्न होता है, यह धर्मनाथ भगवान उत्तम वश (कुल) मे उत्पन्न है। धनुष दुरतर शत्रु का सहार करने वाला है। और धर्मनाथ दुरत पापो के नाशक हैं। धनुष से युद्ध मे विजय श्री प्राप्त होती है इन धर्मनाथ की सहायता से कर्मों पर जय प्राप्त होती है ॥१॥

**धर्मैर्गुप्तिभिः करणसंज्ञाऽक्षप्राणसयमैः।**
**अष्टादशसहस्राणि शीलान्यन्योऽन्यसंगुणैः ॥२॥**

**अन्वयार्थ**—(धर्मैः) धर्म से (गुप्तिभि) गुप्ति के द्वारा (करणसज्ञाऽक्षप्राणसयमै·) करण, सज्ञा, इन्द्रिय, प्राण संयमो के द्वारा (अन्योन्यसगुणै) परस्पर गुणा करने पर (अष्टादशसहस्राणि) अठारह हजार (शीलानि) शील के भेद होते हैं।

**भावार्थ**—दश धर्म, तीन गुप्ति, तीनकरण, चार सज्ञा, पाच इन्द्रिय और दश प्राण इन सयमो के भेदो को परस्पर गुणा करने से अठारह हजार शील के भेद होते हैं। १०×३×३×४×५×१०=१८०००

सत्क्षान्तिमार्दवार्जवशौचाऽऽकिंचन्यसंयमाः ।
ब्रह्मचर्यतपःसत्यत्यागा धर्मा दश स्मृताः ॥३॥

**अन्वयार्थ**—(सत्क्षान्तिमार्दवार्जवशौचाऽऽकिंचन्यसंयमाः) उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, आकिंचन्य, संयम (ब्रह्मचर्यतपःसत्यत्यागाः) ब्रह्मचर्य, तप, सत्य, त्याग (दशधर्मा) दश धर्म (स्मृता) कहे है ।

**भावार्थ**—उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य ये दश धर्म है ॥३॥

चत्वारः सत्क्षमाद्याः स्युश्चतुःक्रोधादिनिर्जयाः ।
परिग्रहपरित्यागस्त्यागः शेषाः पुरोदिताः ॥४॥

**अन्वयार्थ**—(चतु क्रोधादिनिर्जया.) चार क्रोधादि को जीतने से (सत्क्षमाद्याः) उत्तम क्षमादि (चत्वार) चार धर्म (स्यु) होते हैं (परिग्रहपरित्याग) परिग्रह का परित्याग (त्याग) त्याग धर्म है (शेषा.) शेष धर्म (पुरोदिता) पहिले कहे जा चुके हैं ।

**भावार्थ**—क्रोध का त्याग उत्तम क्षमा है । मान कषाय का त्याग उत्तम मार्दव है । माया कषाय का त्याग उत्तम आर्जव है । लोभ कषाय का त्याग उत्तम शौच हैं । पाच इन्द्रिय मन का विरोध करता और छह कषाय की जीवो की रक्षा करना उत्तम सयम है । असत्य वचन का त्याग उत्तम सत्य है । चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्याग करना उत्तम आकिंचन्य है । अनशन आदि बारह प्रकार उत्तम तप है । चार प्रकार का दान देना उत्तम त्याग हैं । मैथुन का त्याग उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत है ॥४॥

मनोवचनकायानां व्यापाराः करणास्त्रय: ।
ज्ञातास्त्रिगुप्तयः सज्ञाश्चतस्त्रोऽक्षाणि पच च ॥५॥

**अन्वयार्थ**—(मनोवचनकायाना) मन, वचन, काय का (व्यापारा) व्यापार (त्रय) तीन (करणा:) करण हैं । (त्रिगुप्तय) तीन गुप्ति (चतस्त्र.) चार (संज्ञा) संज्ञा (च) और (पच) पाच (अक्षाणि) इन्द्रिया पूर्व मे (ज्ञाता) ज्ञात की जा चुकी हैं ।

**भावार्थ**—मन, वचन और काय का व्यापार तीन करण हैं उसको रोकना करण सयम है । मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, कायगुप्ति ३ गुप्ति हैं । आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की अभिलाषा चार सज्ञाएं हैं । स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाच इन्द्रिय हैं, इनका निरोध करना सयम हैं ॥५॥

प्राणा दशोर्वीतोयाग्निमरुत्प्रत्येककायिकाः ।
अनन्तकायास्युर्द्वित्रिचतुःपंञ्चेन्द्रियाङ्गिनः ॥६॥

**अन्वयार्थ**—(उर्वीतोयाग्निमरुत्प्रत्येककायिका) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येककायिक (अनन्तकाय:) अनन्तकाय (द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाङ्गिन) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय प्राणियो के (दश) दश (प्राण) प्राण (स्यु) हैं ।

**भावार्थ**—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय प्रत्येकवनस्पति, साधारण वनस्पति, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पचेन्द्रिय प्राणियो के ये दश प्राण है ॥६॥

क्षमायुक्ते मनोगुप्ते सुमनस्यशनास्पृहे ।
स्पर्शनोर्वीयमे शीलमाद्यमेवं पराण्यपि ।।७।।

**अन्वयार्थ**—(क्षमायुक्ते) क्षमायुक्त के (मनोगुप्ते) मनोगुप्ति (सुमनसि) मन करण (अशनास्पृहे) आहार सज्ञा का त्याग (स्पर्शनोवींयमे) स्पर्शनइन्द्रिय पृथ्वीकाय सयम (आद्य) प्रथम (शीलं) शील का भेद है (एवं) इस प्रकार (पराणि) दूसरे भग (अपि) भी है।

**भावार्थ**—मनकरण गुप्त, मनकरण से रहित, शुद्धभावसहित, आहारसज्ञा से विरक्त, स्पर्शन इन्द्रिय मे संवृत, पृथ्वीकाय सयम सहित, क्षमागुण युक्त, शुद्ध चारित्र वाले ऐसे मुनिराज के पहला, शील मनोयोग नाम वाला स्थिर रहता है। इसी तरह शेष शीलो के भेद भी जानना चाहिये ।।७।।

एकविंशत्यहिंसाद्या अनतिक्रमणादयः ।
चत्वारः स्युः शतं प्राणप्राणिघातविवर्जनम् ।।८।।

प्रायश्चितानि शीलानामाराधनगुणा दश ।
आलोचनगुणाश्चैते गुणास्त्वन्योन्यसंगुणाः ।।९।।

**अन्वयार्थ**—(अहिंसाया) हिंसादि (एकविशति) इक्कीस (अनतिक्रमणादय) अनतिक्रमणादि (चत्वार) चार (प्राणप्राणिघातविवर्जनम्) प्राण और प्राणियो के घात का त्याग करना (प्रायश्चितानि) प्रायश्चित (शीलाना) शीलो की (आराधनगुणा) आराधना गुण (आलोचनगुणा) आलोचना गुण (एते) ये (दश) दश (गुणा) गुण (अन्योऽन्य-संगुणा) परस्पर गुणा करने पर ८४००००० उत्तरगुण होते है।

**भावार्थ**—हिंसादि, अतिक्रम, काय विराधना, आलोचन शुद्धि इनके क्रम से इक्कीस चारसौदश २ भेदो को आपस मे गुणा करने पर चौरासी लाख गुणो के भेद होते हैं ।।८,९।।

व्रतान्यक्षनिरोधश्च मार्दवादिचतुष्टयम् ।
भीरत्यरतिजुगुप्साऽज्ञानपैशून्यवर्जनम् ।।१०।।

सम्यक्त्वमप्रमादश्च मनोवाक्कायगुप्तयः ।
एकविंशतिरित्येवमहिंसादिगुणाः स्मृताः ।।११।।

**अन्वयार्थ**—(व्रतानि) पच महाव्रत (अक्षनिरोधः) पचेन्द्रिय निरोध (मार्दवादिचतुष्टयम्) मार्दवादि चतुष्टय (भीरत्यरतिजुगुप्साऽज्ञानपैशून्यवर्जनम्) भय, रति, अरति, जुगुप्सा अज्ञान और पैशून्य का त्याग (सम्यक्त्व) सम्यक्त्व (अप्रमादः) अप्रमाद (च) और (मनोवाक्कायगुप्तय.) मन, वचन, कायगुप्ति (इति) इसप्रकार (एव) ही (एकविंशति.) एक विंशति (अहिंसादिगुणा) अहिंसादिगुण (स्मृता) कहे गये हैं।

**भावार्थ**—हिंसा, झूंठ, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, अरति, रति, जुगुप्सा, मन, वचन, काय अगुप्ति मिथ्यादर्शन, प्रमाद पैशून्य, अज्ञान, इन्द्रियो का अनिग्रह ये हिंसादि इक्कीस भेद हैं ।।१०,११।।

अतिक्रमणव्यतिक्रमानाचारातिचारगाः ।
त्यागा अनतिक्रमणचतुष्टयमितीरितम् ।।१२।।

**अन्वयार्थ**—(अतिक्रमणव्यतिक्रमात्) अतिक्रमण, व्यतिक्रमण (अनाचारातिचारगाः) अनाचार, अतिचार रूप अपराधो का (त्यागाः) त्याग (अनतिक्रमणचतुष्टय) अनतिक्रमण चतुष्टय (इति) इस प्रकार (ईरितं) कहा गया है।

**भावार्थ**—सयमी की विषयाभिलाषा अतिक्रमण हैं, विषयोपकरण का उपार्जन व्यतिक्रमण हैं, व्रत मे शिथिलता तथा कुछ असयम का सेवन करना अतीचार है, व्रत का सर्वथा भग होना अनाचार है। इस तरह अतिक्रमादि चार को गुणा करना चाहिये ॥१२॥

**दशप्राणैर्दशप्राणिष्वेकैकस्य वधाच्छतम् ।**
**प्राणप्राणिवधास्तेषां त्यागाः शतगुणा मताः ॥१३॥**

**अन्वयार्थ**—(दशप्राणैः) दश प्राणो के द्वारा (दशप्राणिषु) दश प्राणियो मे (एकैकस्य) एक एक के (वधात्) वध से (शत) सौ (प्राणप्राणिवधा) प्राण प्राणि वध हैं (तेषा) प्राण प्राणिवध का (त्यागः) त्याग (त्याग करना) (शतगुणा) सौ गुणा (मता.) माना है।

**भावार्थ**—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पति, साधारणवनस्पतिकायिक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाच इन्द्रिय, इन दश को आपस मे गुणा करने से सौ होते है। फिर पहले चौरासी भेदो से गुणा करने पर चौरासी सौ भेद होते है ॥१३॥

**स्त्रीसङ्गोऽर्थार्जन स्वांगमडनं वृष्यभोजनम् ।**
**गीतं वाद्य स्रगादिश्च शयनाशनभूषणम् ॥१४॥**

**रात्रिसचरणं राजसेवा कुत्सितसंगमः ।**
**इत्यमीषा परित्यागा दश शीलप्रसाधकाः ॥१५॥**

**अन्वयार्थ**—(स्त्रीससर्गः) स्त्रियो का ससर्ग (अर्थार्जन) अर्थ का अर्जन (स्वागमंडन) अपने शरीर को सस्कारित करना (वृष्यभोजनं) गरिष्ठ पदार्थ का सेवन (गीत) गीत (वाद्य) वाद्य (स्त्रगादि) मालादि (शयनाशनभूषणं) शयन, आसन, भूषण (रात्रिसचरण) रात्रिसचरण (राजसेवा) राजसेवा (च) और (कुत्सितसगम.) कुशील जनो की सगति (इति) इस प्रकार (अमीषा) इनका (त्यागः) त्याग करना (दश) ये दश (शीलप्रसाधका) शील के प्रसाधक हैं।

**भावार्थ**—स्त्रियो के साथ स्नेह, पुष्ट आहार का ग्रहण, सुगन्ध द्रव्य और पुष्पो की माला का धारण रूप शरीर सस्कार, कोमलशय्या कोमल आसन, कटक आदि आभूषण धारण करना, गीत वासुरी आदि बाजा, सुवर्ण आदि धन का सग्रह, कुशीली जनो की संगति, राजसेवा, बिना कारण रात्रि मे चलना ये दश शील की विराधना (नाशक) कही हैं। इनसे गुणें तो चौरासी हजार भेद होते हैं ॥१४,१५॥

**दशाऽत्र पूर्वमुक्तानि प्रायश्चित्तानि विस्तरात् ।**
**आलोचनागस्त्यागाः स्युरालोचनगुणा दश ॥१६॥**

**अन्वयार्थ**—(अत्र) इसी ग्रन्थ मे (पूर्वं) पूर्व मे (विस्तरात्) विस्तार से (प्रायश्चित्तानि) प्रायश्चित (दश) दश (उक्तानि) कहे हैं (आलोचनाग) आलोचना के दोषो का (त्याग) त्याग (दश) दश (आलोचनगुणा.) आलोचना के गुण (स्युः) हैं।

भावार्थ—आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार, उपस्थापन, इन दश भेदो को गुणने से चौरासी लाख भेद गुणो के होते हैं। उन सब भेदो मे जहा दोष कहे गये हैं उनके विपरीत गुण समझना ॥१६॥

सदयेऽतिक्रमापेते त्यक्तभूभूमिघातने।
सालोचने व्यपेतस्त्रीसगे आकंपितोज्झिते ॥१७॥

आद्यो गुणो भवेदेवं शेषान्नुच्चारयेद्गुणान्।
गुणाश्चतुरशीतिः स्युर्लक्षाणीति प्रसिद्धिदाः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(सदये) अहिंसा (अतिक्रमापेते) अतिक्रम सहित (व्यक्तभूभूमिघातने) भूमिकाय की विराधना रहित (आलोचने) आलोचना सहित (व्यपेतस्त्रीसगे) स्त्री सगति रहित (आकम्पितोज्झिते) आकम्पित दोष रहित (आद्य.) प्रथम (गुणः) गुण (भवेत्) होता है (एव) इस प्रकार (प्रसिद्धिदा) प्रसिद्धि को देने वाले (चतुरशीति.) चौरासी (लक्षाणि) लाख (गुणा) गुण (स्युः) होता है।

भावार्थ—हिंसा से रहित अतिक्रम दोष करने से रहित, पृथ्वी काय से तथा पृथ्वी कायिक की पीडा विराधना से रहित, स्त्री की संगति से रहित, आकम्पित दोष के करने से रहित, आलोचन की शुद्धिकर युक्त सयमी धीर वीर मुनिके पहिला गुण अहिंसा नामा होता है। इसीतरह अन्य गुण भी जानना चाहिये ॥१७,१८॥

गुणादौ पच संख्यानं प्रस्तारः परिवर्त्तनम्।
नष्टमुद्दिष्टमित्येते गुणनादिक्रमा मताः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(गुणादौ) गुणादि मे (सख्यानं) सख्या (प्रस्तार) प्रस्तार (परिवर्त्तनं) परिवर्त्तन (नष्ट) नष्ट (उद्दिष्ट) उद्दिष्ट (इति) इसप्रकार (एमि.) ये (गुणनादिक्रमा) गुणनादि क्रम (पंच) पाच (मता) माने हैं।

भावार्थ—शील और गुणो की सख्या, प्रस्तार, अक्षसंक्रम, नष्ट उद्दिष्ट ये पाच वस्तु जानना चाहिये ।१६।

पूर्वपूर्वेऽखिलाः सार्द्धमेकैकैरुत्तरोत्तरैः।
मिलन्तीति क्रमात्तास्तैर्गुणिते प्रमितिर्मता ॥२०॥

अन्वयार्थ—(पूर्वे पूर्वे) पूर्व पूर्व मे (अखिला) अखिलगुण (उत्तरोत्तरै) उत्तरोत्तर (तं) उसे (एकैकैः) एक एक के (सार्द्ध) साथ (गुणिते) गुणा कर देने पर (क्रमात्) क्रम से (मिलन्ति) मिलते हैं (इति) इस प्रकार (प्रमिति) सख्या (मता) मानी गयी है।

भावार्थ—शील गुणो के सभी पूर्व भेदो को ऊपर ले भंगो मे मिला के एक एक को क्रम से गुणा करने पर दोनो की संख्या बन जाती है ॥२०॥

निक्षिप्याद्यादिक पिंडं प्रतिपिंडं क्रमात्क्षिपेत्।
एकमेकं द्वितीयादेः समप्रस्तारके गुणे ॥२१॥

अन्वयार्थ—(समप्रस्तारके) सम प्रस्तारक (गुणे) गुणा मे (आद्यादिक) प्रथम आदि को (निक्षिप्य) विरलन करके (पिंड) पिंड के (प्रति) प्रति (क्रमात्) क्रम से (पिंड) पिंड को (क्षिपेत्) क्षेपण करे (द्वितायादेः) द्वितीयादिक के (एक) एक को (क्षिपेत्) क्षेपण करे।

**भावार्थ**—प्रथम जो मन वचन काय का त्रिक वह शीलप्रमाण है उसे विरलन कर (जुदा-२ एक-२ बखेर) पीछे क्रम से एक एक भेद प्रति एक-२ ऊपर का तीन करण रूप पिंड स्थापन करना। इस तरह पिंड के प्रति एक-२ रखने से प्रस्तार होता है ॥२१॥

द्वितीयार्धमितं पिंडं निक्षिप्याद्यादिमत्र तु।
एकमेक द्वितीयादेः प्रस्तारे विषमे क्षिपेत् ॥२२॥

**अन्वयार्थ**—(विषमे) विषम (प्रस्तारे) प्रस्तार मे (मितं) प्रमित (पिंडं) पिंड को (निक्षिप्य) विरलन करके (अत्र) इसमे (आद्य) प्रथम तक (एक एकं) एक-२ को पिंडरूप से (क्रमात्) क्रम से (क्षिपेत्) क्षेपण करे।

**भावार्थ**—प्रथम मनवचनकायत्रिक को द्वितीयत्रिकमात्र तीन वार स्थापित करके उसके ऊपर दूसरा करण-त्रिक एक-२ द्वितीय प्रमाण तीन वार स्थापे। इस तरह एक पिंड के ऊपर दूसरा स्थापन करने से प्रस्तार होता है। इसी तरह अन्य भी पिंड कर लेना चाहिये ॥२२॥

अन्तं गत्वाऽऽदिगे आद्ये द्वितीयोऽकः सरत्युभौ।
अन्तं गत्वाऽऽदिसंस्थौ चेत्तृतीयोऽन्येष्वयं क्रमः ॥२३॥

**अन्वयार्थ**—(आदिमे) प्रथमपद के (अन्त) अन्त को (गत्वा) प्राप्त होकर (आद्ये) आदि को प्राप्त होने पर (द्वितीयः) दूसरा (अक) अंक (सरति) प्राप्त होता है (उभौ) दोनो के (अंतं) अंत (गत्वा) जाकर (आदिसंस्थौ) प्रथम मे आजाने पर (तृतीय) तीसरा सक्रमण करता है (अय) यह (क्रम) क्रम (अन्येषु) अन्त मे भी लगाना चाहिये।

**भावार्थ**—प्रथमपद के अन्त को प्राप्त होकर आदि को प्राप्त होने पर दूसरा अक प्राप्त होता है। दोनो के अन्त जाकर प्रथम मे आजाने पर तीसरा संक्रमण करता है। यह अन्त मे भी लगाना चाहिये ॥२३॥

आद्यसख्याहृते स्वेष्टभाज्ये शुद्धेऽन्तसंस्थितः।
शेषे शेषमितस्थाने संस्थितोऽकस्तत. परम् ॥२४॥

लब्धं रूपादिक भाज्यं भाज्यशेषेऽन्यथा पुनः।
लब्धमेव स्वसख्यायाः क्रियान्या स्यात्पुरोदिता ॥२५॥

**अन्वयार्थ**—(स्वेष्टभाज्ये) अपनी इष्ट भाज्य राशि मे (आद्यसंख्याहृते) आदि सख्या का भाग देने पर (शुद्धे) शून्य आ जाने पर (अन्तसंस्थित.) अन्त का स्थान (शेषे) शेष रहने पर (शेषमितस्थाने) शेषप्रमित स्थान मे (सस्थितः) स्थित (अक) अक (तत. पर) उसके बाद फिर भाग देना चाहिये (भाज्याशेषे) भाज्म के शेप रहने पर (रूपाधिक) एक अधिक (लब्ध) लब्ध को (भाज्य) भाग देना चाहिये। (पुन।) फिर (अन्यथा) मेष मे कुछ नही रहे तो (स्वसख्यायाः) अपनी संख्या का (लब्धे) लब्ध (एव) ही भाज्या होता है (अन्या) अन्य (क्रिया) क्रिया (पुरोदिता) पूव कथित (स्यात्) है।

**भावार्थ**—अपनी इष्ट भाज्यराशि मे आदि सख्या का भाग देने पर जब शून्य आ जाय और अन्त का स्थान शेष रहने पर शेष प्रमित स्थान मे स्थित अक मे उसके बाद फिर भाग देना चाहिये। शेष भाज्य मे एक अधिक लब्ध को

भाग देना चाहिये फिर शेष मे कुछ नही रहे तो अपनी सख्या का लब्ध ही भाज्य होता है। अन्यक्रिया पूर्वकथित है ।२४,२५।

ऊर्द्ध्वमात्मप्रमाणघ्ने रूपे तस्मिन्नधः क्रमात् ।
स्वस्वसंख्याहृते संख्या सर्वत्राऽनंकितोज्झिता ॥२६॥

**अन्वयार्थ**—(उर्ध्वं) प्रथम (तस्मिन्) उस (रूपे) एक के अंक मे (अधः क्रमात्) नीचे के क्रम से (आत्मप्रमाणघ्ने) अपने प्रमाण से गुणा कर देने पर (सर्वत्र) सर्व जगह (अनंकितोज्झित) अनकित को छोडकर (स्वस्व-सख्याहृते) अपनी २ संख्या का गुणा करने पर (सख्या) सख्या आती है।

**भावार्थ**—प्रथम उस एक के अक मे नीचे के क्रम से अपने प्रमाण से गुणा कर देने पर सर्व जगह अनकित को छोडकर अपनी-अपनी संख्या का गुणा करने पर सख्या आती है ॥२७॥

ये पालयन्ति शीलानि गुणांश्च क्रमात् प्रगुणाशयाः ।
लभते ते भवच्छेदादनंतसुखसम्पदम् ॥२७॥

**अन्वयार्थ**—(ये) जो (प्रगुणाशया) प्रगुण आसय वाले (शीलानि) शीलो को (च) और (गुणान्) उत्तर गुणो को (पालयति) पालते हैं (ते) वे (भवच्छेदात्) भव का छेद हो जाने से (अनन्तसुखसम्पद) अनन्त सुख सम्पदा को (लभन्ते) प्राप्त करते हैं।

**भावार्थ**—जो प्रगुण आशय वाले सयमी शीलो और उत्तरगुणो को पालते है वे भव का छेद हो जाने पर अनन्त सुख सम्पदा को प्राप्त होते हैं ॥२७॥

प्रणतभुवननाथो धर्मतीर्थाधिनाथः,
प्रहतदुरितवर्गः प्रोक्तसन्मुक्तिमार्गः ।
प्रशमितजनतार्त्तिः शुद्धदृग्ज्ञानमूर्तिः,
प्रवरकनककान्तिः श्रेयसे वोऽस्तु शान्तिः ॥२८॥

**अन्वयार्थ**—(प्रणतभुवननाथो) नमस्कार किया है तीन लोक के स्वामियो ने जिसको (प्रहतदुरितवर्ग) नष्ट किया है पाप समूह को जिसने (प्रोक्तसन्मुक्तिमार्ग) कहा है सन्मुक्ति के मार्ग को जिसने (प्रशमितजनतार्त्ति) शान्त किया है प्राणियो के दुखो को जिसने ऐसा (धर्मतीर्थाधिनाथ) धर्म तीर्थ का अधिनाथ (शुद्धदृग्ज्ञानमूर्त्ति) शुद्ध, दर्शन, ज्ञान की मूर्ति (प्रवरकनककान्ति) प्रवर सुवर्ण की सी कान्ति वाला (शान्तिः) शातिनाथ (व) तुम्हारे (श्रेयसे) कल्याण के लिये (अस्तु) हो।

**भावार्थ**—नमस्कार किया है तीन लोक के स्वामियो ने जिसको, नष्ट किया है पाप समूह को जिसने, कहा है सन्मुक्ति के मार्ग को जिसने, शान्त किया है प्राणियो के दुखो को जिसने, ऐसा धर्म तीर्थ का अधिनाथ शुद्ध दर्शन ज्ञानकी मूर्ति, प्रवर सुवर्ण कान्ति वाले शांतिनाथ तुम्हारे श्रेय के (कल्याण) के लिए हो ॥२८॥

मिथ्याभावभवातिदर्पपरतदुद्ःशासनोच्छेदकं,
प्रज्ञाज्ञावशवर्त्तमानजनतासत्सौख्यसंपादकम् ।

नानारूपविशिष्टवस्तुपरमस्याद्वादलक्ष्मीपदं,
जेजीयाज्जिनराजशासनमिद स्वाचारसारप्रदम् ॥२६॥

**अन्वयार्थ**—(मिथ्याभावभवातिदर्पपरतदुः शासनोच्छेदक) मिथ्याभाव से उत्पन्न अतिदर्प परत दु शासन का उच्छेदक (प्रज्ञाज्ञावशवर्त्तमानजनतासत्सौख्यसम्पादकम्) प्रज्ञा और आज्ञा के वशीभूत वर्त्तमान जनता के समीचीन सुख के सम्पादक (नानारूपविशिष्टवस्तुपरमस्याद्वादलक्ष्मीप्रद) नाना रूप विशिष्ट वस्तु रूप परम स्याद्वाद लक्ष्मी का पद (स्वाचार सारप्रद) अपने आचार के सार पद का देने वाला (इद) यह (जिनराजशासनं) जिनराज का शासन (जेजीयात्) जयवन्त रहे।

**भावार्थ**—मिथ्या भाव से उत्पन्न अतिदर्प परत दु शासन का उच्छेदक, प्रज्ञा और आज्ञा के वशीभूत वर्त्तमान जनता के समीचीन सुख के सम्पादक, नाना रूप विशिष्ट वस्तु रूप परम स्याद्वाद लक्ष्मी का पद, अपने आचार के सारपद का देने वाला यह जिनराज का शासन जयवन्त रहे।

"अपने गुरु श्री मेघचन्द्र की स्तुति"

सिद्धान्तार्णवपूर्णतारकपतिस्तर्काम्बुजाहर्पतिः,
शब्दोद्यानवनामृतोरुसरणिर्योगीन्द्रचूड़ामणिः।
त्रैविद्यापरसार्थनामविभवः प्रोद्धूतचेतोभवः,
स्थेयादन्यमतावनीभृदशनिः श्रीमेघचन्द्रो मुनिः ॥३०॥

**अन्वयार्थ**—(सिद्धातार्णवपूर्णतारकपति) सिद्धान्त रूपी समुद्र को वृद्धिगत करने के लिए चन्द्रमा (तर्काम्वुजा-हर्पत्तिः) तर्क रूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य (शब्दोद्यानवनामृतोरुसरणि) शब्द रूपी उद्यान वनामृत का विस्तरित मार्ग (योगीन्द्रचूडामणि) योगीन्द्र चूडामणि (त्रैविद्यापरसार्थनामविभव) त्रैविद्य दूसरा सार्थक नाम के विभव वाला (प्रोद्धूतचेतोभवः) नाश किया है मनोविकार को जिसने ऐसा (अन्यमतोवनीभृदशनि) अन्यमती रूपी पर्वत के लिए वज्र समान (श्रीमेघचन्द्र) श्री मेघचन्द्र (मुनिः) मुनि (स्थेयात्) स्थिर रहे।

**भावार्थ**—सिद्धात रूपी समुद्र को वृद्धिगत करने के लिए चन्द्रमा, तर्क रूपी कमल को विकवित करने के लिए सूर्य, शब्दरूपी उद्यावनामृत का विस्तरित मार्ग, योगीन्द्र चूडामणि त्रैविद्य दूसरा सार्थक नाम के विभव वाला, नाश किया है मनोविकार को जिसने ऐसा, अन्यमत रूपी पर्वत के लिए वज्र श्री मेघचन्द्र मुनि स्थिर रहे।

यद्वाक्छ्रीखतंसमण्डनमणिर्वैदग्ध्यदिग्धत्विषां,
यच्चारित्रविचित्रता शमभृतां सूत्र पवित्रात्मनाम्।
यत्कीर्त्तिर्धवलप्रसादनधुरधत्ते धरायोषितः,
स त्रैविधविभूषणं विजयते श्री मेघचन्द्रो मुनिः ॥३१॥

**अन्वयार्थ**—(यद्वाक्छ्री) जिसकी वचन श्री (वैदग्ध्यदिग्धत्विषा) विद्वता से व्याप्त कान्ति वाले की (अवतसमण्डनमणि.) कर्ण फूल को मणि है (शमभृता) ममता को (यच्चारित्रविचित्रता) जिसके चारित्र की विचित्रता धारण करने वाले (पवित्रात्मनाम्) पवित्र आत्माओ का (सूत्र) सूत्र है। (यत्कीर्त्ति) जिसकी कीर्त्ति (धरायोषित) पृथ्वी रूपी वनिता के (धवलप्रसादनधुर) धवल प्रसाद की धुरा को (धत्ते) धारण करती है (स) वह (श्रीमेघचन्द्र) श्री मेघचन्द्र (मुनि) मुनि (त्रैविधभूषणं) त्रैविध भूषण को (विजयते) जीतते हैं।

**भावार्थ**—जिसकी वचन श्री विद्वता से व्याप्त कान्ति वालो की कर्णपूरमणि जिसके चारित्र की विचित्रता कर्ण फूल की मणि हैं, समता को धारण करने वाले पवित्र आत्माओ का सूत्र हैं, जिसकी कीर्ति पृथ्वी रूपी वनिता के धवल प्रसाद की धुरा को धारण करतो हैं। वह श्री मेघचन्द्र मुनि त्रैविध भूषण को जीवते हैं ॥३१॥

वैदग्ध्यश्रीवधूटीपतिरतुलगुणालंकृतिर्मेघचन्द्र,
स्त्रैविद्यस्यात्मजातो मदनमहिभृतो भेदने वज्रपातः।
सैद्धांतिव्यूह चूडामणिरनुफलचिन्तामणिर्भूजनाना,
योऽभूत्सौजन्यरुन्द्रश्रियमवति महौवीरनदी मुनीन्द्रः ।३२।

**अन्वयार्थ**—(वैदग्ध्यश्रीवधूटीपति) विद्वता रूपी लक्ष्मी वधूटी के पति (अतुल गुणालकृति·) अतुल गुणों से अलकृत (त्रैविधस्यात्मजात·) त्रैविध का पुत्र (मदनमहिभृतो) मदन रूपी पर्वत को (भेदने) भेदन करने में (वज्रपातः) वज्र के पात समान (य) जो (मेघचन्द्र) मेघचन्द्र (भूर्जनाना) प्राणियो के लिए (सैद्धान्तिव्यूहचूडामणि) सिद्धान्तव्यूहचिंतामणि (अनुफलचितामणि) अनुफल चिंतामणि (अभूत्) हुआ था (स) वह (वीरनदीमुनीन्द्रः) वीरनन्दी नुनीद्र (मही) पृथ्वी पर (सौजन्यरुन्द्रश्रियम्) सुजनता की रुन्द्र श्री को (अवति) रक्षा करता है।

**भावार्थ**—विद्वता और लक्ष्मी रूपी स्त्री के पति अतुल गुणो से अलकृत त्रैविध के पुत्र, कर्मरूपी पर्वत को भेदने वाला वज्रपात, मेघचन्द्र मुनि भूजनो के लिए सिद्धान्त व्यूह के लिए अनुफल चिंतामणि हुये थे। वह वीरनन्दी मुनीद्र पृथ्वी पर सौजन्यता की उत्कृष्टता श्री की रक्षा करें ॥३२॥

श्रीमेघचन्द्रोज्वलमूर्त्तिःकीर्त्तिः,
समस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्ती।
श्रीवीरनदीकृतवानुदार,
माचारसार यतिवृत्तसारम् ॥३३॥

**अन्वयार्थ**—(श्री मेघचन्द्रोज्वलमूर्तिः) श्री मेघचन्द्र उज्वल कीर्ति (समस्तसैद्धान्तिकचक्रवर्तिः) समस्त सिद्धान्त का चक्रवर्ती (श्रीवीरनन्दी) वीरनन्दी ने (यतिव्रतसारं) यति व्रत का सार (उदार) उदार (आचारसार) आचार सार को (कृतवान्) किया है।

**भावार्थ**—श्री मेघचन्द्र की उज्जवलमूर्त्ति समस्त सैद्धान्तिक चक्रवर्ती श्री वीरनन्दी ने उद्धारकर यह यतियो के व्रतो का सारभूत आचारसार शास्त्र वनाया है ॥३३॥

इति श्रीमद्वीरनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिप्रणीते श्री आचारसारनाम्नि शास्त्रे शीलगुण वर्णनात्मको द्वादशोऽधिकारः ॥

—※※:—

## श्लोकप्रमाणमाह

ग्रन्थप्रमाणमाचारस्तस्य श्लोकसम्मितम्।
भवेत्सहस्त्रं द्विशतं पंचाशच्चांकतस्तथा ॥

इस आचारसार ग्रन्थ का प्रमाण अनुष्ठय श्लोकों मे एक हजार दो सौ पचास है।

—:※※:—

# * दान दाताओं की सूची *

३००१) श्रीमान् सेठ मेघराजजी चिरंजीलालजी पाटनी इम्फाल (मणिपुर)
१००१) सुमेरचदजी पाड्या मुकाम--शिलाग
८०१) श्री कु थुमती माताजी की प्रेरणा से प्राप्त
५०१) किशनलालजी सेठी डीमापुर
५०१) श्री दिगम्बर जैन महिला समाज मुकाम-गौरीपुर
५०१) गुप्त
५०१) श्रीमान् सेठ चेतनमलजी चूडीवाल, कलकत्ता
४०१) श्रीमान् सेठ हुकमचंदजी झूमरमलजी बडजात्या की माताजी (नागौर)
२५१) श्री हुकमचन्दजी सेठी, सनोद
२०१) गुप्त दान
१०१) श्रीमान् सेठ मिश्रीलालजी सेठी, किशनगज
१०१) श्रीमान् सेठ राजकुमारजी पाटनी की माताजी--कलकत्ता
१०१) श्रीमान् रतनलालजी कवरलालजी काला (ढाणी वाले) मदनगंज
१०१) श्रीमान् डू गरमलजी सवलावत
१०१) श्रीमती प्रकाशबाई धर्मपत्नि श्री पदमचन्दजी जायसवाल
१०१) श्री ब्र सुगनचन्दजी गगवाल
१०१) श्री दुलीचन्दजी बड़जात्या
१०१) श्री शान्तिलालजी बडजात्या
१०१) श्री स्वरूपचन्दजी गदिया
१०१) श्री माणकचन्दजी स्वरूपचन्दजी काशलीवाल
१०१) श्रीमती सुन्दरबाई धर्मपत्नि श्री हेमराजजी बडजात्या
१०१) श्री कैलाशचन्दजी लुहाडिया
१०१) श्री तिलोकचदजी सोमाणी
१०१) श्री महेन्द्रकुमारजी बोहरा
१०१) श्री मिलापचन्दजी पाटनी
१०१) श्री प्रभुदयालजी जैन
५१) श्री नोरतनमलजी पाटनी
५१) श्रीमती पाचीबाई धर्मपत्नि श्री तिलोकचन्दजी काला

---

जिनवाणी की सेवा व गुरु भक्ति मे रत इन सभी उपर्युक्त महानुभावो को सादर धन्यवाद है जिनके द्वारा प्रदत्त दान की रकम से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

# शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ५ | १८ | सतप | संतप्त |
| ६ | १४ | प्रददक्षिणी कृत्य | प्रदक्षिणीकृत्य |
| ६ | १७ | मीडित | मीडित |
| ७ | २४ | अस्ना | अस्नानत्व |
| ९ | ६ | माड | भाड |
| १० | ९ | उद्गयादि | उद्गमादि |
| १३ | १७ | वृपभादिजिना. | वृषभादि जिनाधीशस्तवनं |
| १६ | १६ | त्वगनखादिभि· | त्वङनखादिभि |
| १८ | १६ | सवविद | सर्वविद |
| १ | १६ | नरवाशु | नखाशु |
| २२ | ३ | स्वात्मार्थ | स्वात्मार्थे |
| २३ | २१ | तुभ्यस्मीति | तुभ्यमस्मीति |
| ३७ | १ | विधवी | विधवा |
| ३९ | ४ | चारित्र | चारित्र |
| ४२ | ११ | अन्वयाथ | अन्वयार्थ |
| ४२ | १४ | भावाथ | भावार्थ |
| ५४ | २० | चिन्मात्रवि | चिन्मात्रनि |
| ६० | १४ | गत | मत |
| ६४ | ४ | रसतत्प | परमत |
| ११४ | ५ | कासराधु | कासराद्यु |
| १४३ | १६ | नम्ना | नाम्ना |
| १४५ | २२ | आर्पदेश | आर्यदेश |
| १५१ | २४ | क्षधा | क्षुधा |
| १६३ | २४ | शोभाश्रियेः | शोभाश्रिये |
| १६५ | १५ | वालेना | बोलना |
| १६६ | ११ | इर्यापथ | ईर्यापथ |
| १६८ | १७ | तदुलान्व | तदुलाम्व |
| १६८ | २० | " | " |
| १६९ | १० | यक्षादेव | यक्षादेवं |
| १७८ | ९ | स्वस्थ | स्वस्य |
| १८२ | १२ | अनुल्लक्षण | अनुल्वण |
| १८९ | १ | त्यख्याप्ति | त्यरत्याप्ति |
| १९३ | १७ | देवता स्तवन | देवतास्तवने |
| १९५ | ११-१२ | श्लोक | नही है |
| २०८ | २८ | आत्यभरे | आत्यभर |
| २१२ | १३ | कथ | कथ |
| २१५ | २७ | रुद. | रुद्र. |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २२३ | १ | म्मलनस्य | स्मवलस्य |
| २२४ | १७ | नारकादिमृव | नारकादिभव |
| २३२ | २३ | एकादशामो | एकादशमो |
| २४२ | १५ | मोनोपोत्तर | मानुषोत्तर |
| २५६ | ११ | वाच्छा | वाक्षा |
| २६२ | २२ | ज्ञानसष्ट | ज्ञानमष्ट |
| २८४ | १२ | कृतायो | कृतार्थो |

